उदयपुर राज्य का इतिहास

पहली जिल्द

ग्रन्थकर्ता

महामहोपाध्याय

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

मुद्रक

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

वि० सं० १९८५

प्रथम संस्करण ५००

मूल्य ८)

सजिल्द ६)



वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह
(चेटक घोड़े पर).

The Indian Press, Ltd., Allahabad.

आर्यकुल-कमल-दिवाकर

स्वतन्त्रता के पुजारी क्षात्रधर्म के रक्षक

प्रातःस्मरणीय वीरशिरोमणि

महाराणा प्रतापसिंह

की

पवित्र स्मृति को

सादर समर्पित



भूमिका

संसार के साहित्य में इतिहास का बहुत कुछ आदर है। उससे मानव समाज का बहुत कुछ उपकार होता है। देशों, जातियों, राष्ट्रों तथा महापुरुषों के उदाहरणीय कामों को प्रकट करने का एकमात्र साधन इतिहास है। किसी जाति को सजीव रखने, अपनी उन्नति करने तथा उसपर दृढ़ रहकर सदा अग्रसर होते रहने के लिए संसार में उससे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। इतिहास महापुरुषों के कृत्यों से हमारा परिचय कराता, हमें उन्नति का मार्ग बतलाता और अपना कर्तव्य स्थिर करने के लिए उत्साहित करता है। सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ विद्वान ऐडमण्ड बर्क ने लिखा है कि इतिहास उदाहरणों के साथ साथ तत्त्वज्ञान का शिक्षण है। वस्तुत: यह बिलकुल ठीक है। जिस प्रकार सिनेमा में भूतकाल की किसी घटना का सम्पूर्ण चित्र हमारे सामने आ जाता है, उसी प्रकार इतिहास भी हमारे सामने एक देश या समाज के भूतकालीन आचार, विचार, धार्मिक भाव, रहन सहन, राजनैतिक संस्था, शासनपद्धति आदि सभी ज्ञातव्य बातों का एक सुन्दर चित्र सामने रख देता है, तथा यह बतलाता है कि किन कारणों से कोई जाति उन्नत हुई और किन कारणोंसे उसकी अवनति हुई। इतिहास भिन्न भिन्न देशों के पिछले सैकड़ों और हज़ारों वर्षों के अनुभव हमारे सामने रखकर हमें भावी कर्तव्यों का उपदेश देता है। इससे हम यह भी जान सकते हैं कि देश अथवा जातियाँ किस तरह पराधीन हो जाती हैं, सामाजिक संगठन क्यों टूट जाते हैं और सुविशाल साम्राज्य तथा महाप्रतापी राजवंश भी किस तरह नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। अतीत का गौरवपूर्ण इतिहास समाज में एक संजीवनी शक्ति और अदम्य उत्साह का संचार करता है। किसी ऐतिहासिक का यह कथन बहुत ठीक है कि 'यदि किसी राष्ट्र को सदैव अध:पतित एवं पराधीन बनाये रखना हो, तो सब से अच्छा उपाय यह है कि उसका इतिहास नष्ट कर दिया जाय'। कोई अवनत राष्ट्र अपनी उन्नति करना चाहे, तो उसे सबसे पहले अपने इतिहास का निर्माण करने की आवश्यकता है।

वैसे तो प्राचीन भारत का प्राय: सम्पूर्ण ही इतिहास गौरवपूर्ण है, तथापि

राजपूताने का इतिहास जिस प्रशंसनीय वीरता, अनुकरणीय आत्मोत्सर्ग, पवित्र त्याग और आदर्श स्वातन्त्र्यप्रेम की शिक्षा देता है, वैसा अन्य इतिहास नहीं। राजपूताने के सम्पूर्ण इतिहास में भी मेवाड़ या उदयपुर का इतिहास ही सब से अधिक गौरवपूर्ण है। इस छोटे से राज्य ने जितने वर्षों तक उस समय के सबसे अधिक सम्पन्न साम्राज्य का वीरतापूर्वक मुक़ाबला किया, वैसे उदाहरण सम्पूर्ण संसार के इतिहास में बहुत कम मिलेंगे।

केवल राजपूताने की रियासतों के ही नहीं, परन्तु संसार के अन्य राज्यों के राजवंशों से भी उदयपुर का राजवंश अधिक प्राचीन है। उदयपुर का राजवंश वि० सं० ६२५ (ई० स० ५६८) के आसपास से लगाकर आजतक समय के अनेक हेरफेर सहते हुए भी उसी प्रदेश पर राज्य करता चला आ रहा है। १३५० से भी अधिक वर्ष तक एक ही प्रदेश पर राज्य करनेवाला संसार में शायद ही कोई दूसरा राजवंश होगा। प्रसिद्ध ऐतिहासिक फ़रिश्ता ने इस वंश की प्राचीनता के विषय में लिखा है—"राजा विक्रमादित्य (उज्जैनवाले) के बाद राजपूतों ने उन्नति की। मुसलमानों के भारतवर्ष में आगमन से पूर्व यहां पर बहुत से स्वतन्त्र राजा थे, परन्तु सुलतान महमूद गज़नवी तथा उसके वंशजों ने बहुतों को अपने अधीन किया। तदनन्तर शहाबुद्दीन गोरी ने अजमेर और दिल्ली के राजाओं को जीता। बाक़ी रहे सहे को तैमूर के वंशजों ने अपने अधीन किया। यहां तक कि विक्रमादित्य के समय से जहांगीर तक कोई पुराना राजवंश न रहा, परन्तु राणा ही ऐसे राजा हैं, जो मुसलमान धर्म की उत्पत्ति से पहले भी विद्यमान थे और आज तक राज्य करते हैं"।

केवल प्राचीनता में ही नहीं, अन्य भी बहुत सी बातों के कारण उदयपुर का इतिहास बहुत महत्त्वपूर्ण है। उदयपुर का इतिहास अधिकांश में स्वतन्त्रता का इतिहास है। जब तत्कालीन अन्य सभी हिन्दू राजा मुग़ल साम्राज्य की शासन सत्ता के सामने अपनी स्वतन्त्रता स्थिर न रख सकें और उन्होंने अपने सिर झुका लिए तब भी नाना प्रकार के कष्ट और अनेक आपत्तियां सहते हुए भी उदयपुर ने ही सांसारिक सुख, सम्पत्ति और ऐश्वर्य का त्याग करके भी अपनी स्वतन्त्रता और कुलगौरव की रक्षा की। यही कारण है कि आज भी उदयपुर के महाराणा 'हिन्दुआ सूरज' कहलाते हैं।

बाबर के आने से पूर्व तक तो उदयपुर राज्य अत्यन्त समृद्ध, शक्तिशाली तथा बहुत विस्तृत था। बाबर अपनी दिनचर्या की पुस्तक 'तुज़ुके बाबरी' में लिखता है—"हमारे हिन्दुस्तान में आने से पहले राणा सांगा की शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि दिल्ली, गुजरात और मांडू (मालवे) के सुलतानों में से कोई भी हिन्दू राजाओं की सहायता के बिना अकेला उसका मुक़ाबला नहीं कर सकता था। मेरे साथ की लड़ाई में बड़े बड़े राजा व रईस राणा सांगा की अध्यक्षता में लड़ने को आये थे। मुसलमानों के अधीनस्थ देशों के भी २०० शहरों में राणा का झण्डा फहराता था।.........उसके अधीन १००००००००० रुपयों की आय का प्रदेश है, जिसमें हिन्दुस्तान के क़ायदे के अनुसार एक लाख सवार रह सकते हैं।

महाराणा सांगा के समय में ही नहीं, उसके भी बहुत पूर्व (वि० स० १४९०-१५२५) मेवाड़ अत्यन्त शक्तिशाली था। महाराणा कुंभा के राज्यकाल में भी मालवा, गुजरात और दिल्ली के सुलतानों को भी उसका लोहा मानना पड़ा। केवल महाराणा कुंभा ही नहीं, दूसरे महाराणाओं ने भी मुसलमान शासकों को सैकड़ों वर्षों तक परेशान किया। महाराणा सांगा के बाद यद्यपि उदयपुर के विजयों का उज्ज्वल इतिहास नहीं मिलता, तथापि महाराणा प्रताप का अपने राज्य की स्वतंत्रता के लिए अनेक लड़ाइयां लड़ना इतिहास की उज्ज्वल घटनाएं हैं। महाराणा अमरसिंह ने जहांगीर से सुलह कर अधीनता स्वीकार कर ली, तथापि उस सुलह से उस के वंश का गौरव नष्ट नहीं हुआ, क्योंकि मेवाड़ के महाराणाओं को बादशाही दरबार में कभी जाना नहीं पड़ा। अधीन होकर भी महाराणाओं ने दिल्ली के बादशाहों की उपेक्षा ही की। महाराणा राजसिंह ने औरंगज़ेब से न डरकर अजीतसिंह की सहायता की और जज़िया देना स्वीकार न किया, जिसके परिणामस्वरूप उसे बादशाह से बड़ी भारी लड़ाई लड़नी पड़ी।

औरंगज़ेब के बाद जब मुग़ल साम्राज्य का पतन बड़ी शीघ्रता से हो रहा था तब जयपुर, जोधपुर आदि नरेशों ने अपने राज्य को बहुत बढ़ाया, परन्तु उदयपुर ने इस तरफ़ कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इसका भी मुख्य कारण यह था कि महाराणा बादशाह के पास जाकर उनका विशेष कृपापात्र बनने में अपना और अपने कुल का अपमान समझते रहे। यदि वे भी अन्य राजपूत

राजाओं की तरह बादशाही दरबारों में जाकर कुछ अधिकार प्राप्त कर लेते, तो उनको भी राज्य बढ़ाने में अधिक सुविधा होती। जब दिल्ली में मरहटों का ज़ोर हुआ, तब उन्होंने सारे राजपूताने, विशेषतः उदयपुर राज्य पर बहुत आक्रमण किये, जिनके परिणामस्वरूप उदयपुर को बहुत क्षति उठानी पड़ी और उनके राज्य का काफ़ी प्रदेश मरहटों के हाथ में चला गया। अंग्रेज़ों ने मरहटों से उदयपुर की रक्षा की। इस तरह पहले का विस्तृत राज्य अब बहुत छोटा रह गया है, तो भी गौरव की दृष्टि से अन्य सब राजपूत रियासतों में आज उदयपुर का स्थान ही सब से प्रथम है। साधारण हिन्दू जनता के हृदय में आज भी प्रताप के वंशज महाराणा के प्रति श्रद्धा है।

मेवाड़ राज्य के इतिहास को कालक्रम की दृष्टि से चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१. मेवाड़ राज्य का गुहिल से पूर्व का इतिहास।

२. गुहिल से रत्नसिंह तक का इतिहास।

३. महाराणा हम्मीरसिंह प्रथम से महाराणा हम्मीरसिंह द्वितीय तक।

४. महाराणा भीमसिंह से वर्तमान समय तक।

(१)—गुहिल से पूर्व के मेवाड़ राज्य के सच्चे इतिहास के विषय में निश्चितरूप से अधिक लिखना कठिन ही नहीं, असंभव सा है, क्योंकि गुहिल से पूर्व वर्तमान मेवाड़ प्रदेश कोई पृथक् राज्य नहीं था। भिन्न भिन्न प्राचीन राजवंशों ने समय समय पर राजपूताने पर अधिकार किया, जिससे वर्तमान मेवाड़ भी राजपूताने के अन्य प्रदेशों के साथ उनके अधीन होता रहा। प्राचीन शोध से जो इतिहास उपलब्ध हुआ है, उससे ज्ञात होता है कि मौर्यवंशी, यूनानी, क्षत्रप, गुप्तवंशी आदि अनेक राजाओं ने मेवाड़ के प्रदेश पर भिन्न भिन्न समय में राज्य किया। इसका विस्तृत विवेचन हम अपने राजपूताने के इतिहास में कर चुके हैं।

(२)—गुहिल से रत्नसिंह तक का इतिहास यद्यपि उतना अज्ञात तथा लुप्त नहीं, जितना कि उससे पहले का है; तथापि अभी तक वह पर्याप्त अंधकार में है। उदयपुर के वर्तमान राजवंश के संस्थापक गुहिल और उस के वंश के निर्णय में भी बहुत से ऐतिहासिक विद्वानों ने भूल की है। कर्नल टॉड ने

गुहिल को नौशेरवां का वंशज और वलभी के राजा शीलादित्य का पुत्र लिखा है। उसके इस लेख का आधार आईने अकबरी के कर्ता अबुलफ़ज़ल का कथन ही है, जो सर्वथा विश्वास के योग्य नहीं है। वर्तमान लेखकों में श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने गुहिल को ब्राह्मण बतलाया है। इसी तरह दूसरे विद्वानों ने भी उदयपुर के राजवंश का निर्णय करने में भूलें की हैं। वर्तमान पुरातत्त्व संशोधन से यह सिद्ध हो चुका है कि गुहिल सूर्यवंशी था। इसका हमने इस ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में विस्तार से विवेचन करने का प्रयत्न किया है।

मेवाड़ के महाराणाओं की प्राचीन वंशावली में तो बहुतों ने धोखा खाया है। पिछले कई शिलालेखों में भी शुद्ध वंशावली नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत सी बड़ी बड़ी भूलें इस काल के इतिहास में कर्नल टॉड आदि विद्वानों ने की हैं। कर्नल टॉड को इस काल का इतिहास लिखते समय पुरातत्त्व संशोधन की विशेष सहायता न मिल सकी। हमने अनेक शिलालेखों का अन्वेषण कर कई ऐतिहासिक त्रुटियों को सुधारने तथा कई अज्ञात घटनाओं को प्रकाश में लाने का यत्न किया है। इस काल के ऐतिहासिक निर्णय करने में इस समय के प्राचीन सिक्कों, शिलालेखों और ताम्रपत्रों, हम्मीरमदमर्दन आदि कुछ प्राचीन संस्कृत की पुस्तकों और तारीख़े फ़ीरोज़शाही, तबक़ाते नासिरी, तारीख़ फ़िरिश्ता, फ़तूहाते फ़ीरोज़शाही आदि फ़ारसी तवारीख़ों से हमें सहायता मिली है। शिलालेखों में रावल तेजसिंह के समय का वि० सं० १३२२ का घाघसा ग्रामका; रावल समरसिंह के समय का वि० सं० १३३० का चीरवा गांव से मिला हुआ, वि० सं० १३३१ का चित्तोड़ का (पहली शिलामात्र) और वि० सं० १३४२ का आबू का लेख मुख्य है। इस समय के पीछे के शिलालेखों से भी इस समय का इतिहास जानने में विशेष सहायता मिलती है। मुसलमानों के बार बार होनेवाले आक्रमणों के कारण युद्धों में लगे रहने से शिलालेखादि खुदवाने या ऐतिहासिक ग्रंथ लिखवाने की तरफ़ राजाओं का विशेष ध्यान नहीं रहा और कई शिलालेख मन्दिरों आदि के टूट जाने के कारण नष्ट भी हो गये एवं कई मुसलमानों ने भी तोड़ डाले।

(३) महाराणा हम्मीर प्रथम से महाराणा हम्मीरसिंह द्वितीय तक के समय को भी हम दो भागों—महाराणा हम्मीर प्रथम से महाराणा अमरसिंह तक और

२

उससे हम्मीरसिंह द्वितीय तक—में बांट सकते हैं। महाराणा कुंभा, महाराणा सांगा, महाराणा प्रतापसिंह इसके प्रथम काल के उज्ज्वल नक्षत्र हैं। यह काल मेवाड़ के इतिहास में सबसे अधिक गौरवपूर्ण और महत्त्वशाली है। महाराणा अमरसिंह तक मेवाड़ ने अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने की पूरी कोशिश की और अन्त में उक्त महाराणा के समय बादशाह जहांगीर से सुलह हुई, परन्तु संधि करने से उदयपुर के महाराणा बादशाहों के बिलकुल ही अधीन नहीं हुए। महाराणा राजसिंह ने औरंगज़ेब से कई लड़ाइयां लड़ीं। मुग़ल साम्राज्य के शिथिल हो जाने पर महाराणाओं ने अपना राज्य बढ़ाने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया, जिसका कारण हम ऊपर लिख चुके हैं। इस समय के इतिहास में हमें वि० सं० १४८५ के शृंगीऋषि, और चित्तोड़ के मोकलजी के मन्दिर के; वि० सं० १४९१ के देलवाड़े के; वि० सं० १४९६ के राणपुर के; वि० सं० १५१७ के चित्तोड़ के कीर्तिस्तंभ और कुंभलगढ़ के; वि० सं० १५४५ की एकलिंगजी के दक्षिणद्वार की प्रशस्ति; वि० सं० १५६१ के घोसुंडी के लेख, और जगदीश के मंदिर की प्रशस्ति आदि महत्त्वपूर्ण शिलालेखों से पर्याप्त सहायता मिली है। एकलिंगमाहात्म्य (महाराणा कुंभा के समय का बना हुआ), अमरकाव्य, राजप्रशस्ति महाकाव्य, राजविलास आदि अनेक संस्कृत और भाषा के ग्रंथों तथा तुज़ुके बाबरी, तारीख़े शेरशाही, मिराते अहमदी, मिराते सिकंदरी, अकबरनामा, तबक़ाते अकबरी, मुन्तख़बुत्तवारीख़, तुज़ुके जहांगीरी, शाहजहांनामा, आलमगीरनामा और मुन्तख़बुल्लुबाब आदि फ़ारसी तवारीख़ों से भी बहुत सहायता मिली है। कर्नल टॉड ने इस इतिहास में यद्यपि कई स्थलों पर भूलें की हैं, तथापि उसने इस भाग पर विशेष प्रकाश डाला है और हमें उससे भी विशेष सहायता मिली है।

(४) महाराणा अरिसिंह और उससे कुछ समय पूर्व से मरहटों के मेवाड़ पर बहुत आक्रमण होने लग गये थे। उनके अत्याचारों और आक्रमणों से मेवाड़ को बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी। महाराणा भीमसिंह के समय तो मेवाड़ बहुत कमज़ोर हो चुका था। ऐसे समय अंग्रेज़ों से संधि हुई। कर्नल टॉड अंग्रेज़ी सरकार का एजेंट होकर यहां आया, तब से मेवाड़ में मरहटों के आक्रमण बन्द हो गये। बाहर से किसी प्रकार का भय न होने के कारण राज्य में शान्ति स्थापित हो गई और महाराणाओं को अपने उजड़े हुए मुल्क को फिर

आबाद करने तथा व्यापार और कृषि की उन्नति करने का अवसर मिला। इस समय से मेवाड़ के सामाजिक जीवन में शनैः शनैः विदेशी सभ्यता का कुछ प्रवेश होने लगा।

इस समय का इतिहास विशेष रूप से प्राप्त होता है। कर्नल टॉड ने इस काल का विस्तृत इतिहास लिखा। उसके बाद भी समय समय पर अंग्रेज़ अधिकारियों ने तत्कालीन इतिहास लिखने का प्रयत्न किया है, जिनमें एचिसन की 'कलैक्शन ऑफ़ ट्रीटीज़, एन्गेजमेण्ट्स ऐंड सनद्ज़'; जे० सी० ब्रुक-कृत 'हिस्ट्री ऑफ़ मेवार'; जे० पी० स्ट्रेटन-कृत 'चित्तोर ऐंड दी मेवार फ़ेमिली'; कर्नल वाल्टर का 'मेवाड़ के सरदारों का इतिहास' और अंग्रेज़ी सरकार के उदयपुर सम्बन्धी गैज़ेटियर तथा सालाना रिपोर्टें मुख्य हैं।

पिछले तीनों कालों के इतिहास की उपर्युक्त सामग्री के अतिरिक्त कई जन्मपत्रियों के संग्रहों, भिन्न भिन्न वीर-कथाओं पर बने हुए डिंगल भाषा के गीतों, कुछ ख्यातों, मुसलमान बादशाहों के फ़रमानों और शाहज़ादों के निशानों, पट्टों, परवानों तथा अन्य तत्कालीन राजकीय पत्रों से भी सहायता मिली है।

उदयपुर का प्राचीन इतिहास न मिलने का मुख्य कारण पहले के राजाओं का इस विषय की तरफ़ ध्यान न देना है। मुसलमानों की देखादेखी पीछे से राजपूत राजाओं ने भी इतिहास बनाने की ओर ध्यान दिया, जिसके परिणाम-स्वरूप 'पृथ्वीराजरासा' और बहुत सी ख्यातें बनीं। लगभग सौ वर्ष पूर्व ये ही पुस्तकें इतिहास के मुख्य साधन मानी जाती थीं, परन्तु ज्यों ज्यों प्राचीन शोध का काम आगे बढ़ता गया और अनेक राजवंशों की वंशावलियां तथा कई राजाओं के निश्चित संवत् शिलालेखादि से ज्ञात होते गये, त्यों त्यों इनपर से विद्वानों का विश्वास उठता गया और उनमें दिये हुए अनेक नामों में से पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व के अधिकांश नाम और संवत् प्रायः कल्पित सिद्ध हुए।

आजतक मिली हुई सब ख्यातों में मुहणोत नैणसी की ख्यात विशेष महत्त्व की है। उसे वि० सं० १७०७ के कुछ पूर्व से वि० सं० १७२२ के कुछ पीछे तक भिन्न भिन्न राज्यों के प्रसिद्ध पुरुषों, चारणों और भाटों आदि से जो कुछ ऐतिहासिक बातें ज्ञात हुईं, उनका उसने संग्रह कर लिया, पर उसका भी प्राचीन इति-

हास भाटों की ख्यातों से संगृहीत होने के कारण अधिक प्रामाणिक नहीं है। वि० सं० १३०० के बाद से नैणसी के समय तक के राजपूतों के इतिहास के लिए तो मुसलमानों की लिखी हुई तवारीख़ों से भी नैणसी की ख्यात कहीं कहीं अधिक महत्त्व की है। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ने तो नैणसी को राजपूताने का अबुलफ़ज़ल माना था। उसकी ख्यात में सीसोदियों, राठोड़ों, कछवाहों, यादवों, पड़िहारों, परमारों आदि के अतिरिक्त राजपूताने से बाहर के अनेक राजवंशों का भी उपयोगी इतिहास मिलता है। राजपूताने के इतिहास को संग्रह करने का पहला प्रयत्न मुहणोत नैणसी का ही था। यदि कर्नल टॉड को नैणसी की ख्यात मिल जाती तो उसका लिखा हुआ इतिहास बहुत अधिक शुद्ध होता।

नैणसी के बाद उदयपुर के इतिहास पर जो कुछ प्रकाश पड़ा है, उसका श्रेय वस्तुतः कर्नल टॉड को ही है। उसने उसकी खोज के लिए बहुत प्रशंसनीय परिश्रम किया, क्योंकि उसको उदयपुर से विशेष अनुराग था। उसके पीछे राजपूताने या उसके भिन्न भिन्न राज्यों के जो इतिहास प्रकाशित हुए हैं, वे अधिकांश में कर्नल टॉड के ग्रन्थ के आधार पर ही लिखे गये हैं।

कर्नल टॉड के बाद राजपूताने के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाले ग्रंथ—बूंदी के महाराव रामसिंह के समय मिश्रण सूर्यमल ने 'वंशभास्कर', और भरतपुर निवासी मुंशी ज्वालासहाय ने 'वक़ाये राजपूताना'—लिखे। इनमें उदयपुर के इतिहास के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है, परन्तु वे भी त्रुटिपूर्ण हैं। उदयपुर के विद्यानुरागी महाराणा सज्जनसिंह ने 'वीरविनोद' नामक उदयपुर का विस्तृत और प्रामाणिक इतिहास लिखवाने के लिए महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास को नियत किया। इस बृहत् इतिहास के लिखने तथा छपने में अनुमान बारह वर्ष लगे और एक लाख रुपये व्यय हुए। कर्नल टॉड के ग्रंथ के अतिरिक्त इसमें फ़ारसी तवारीख़ों, कई एक शिलालेखों, ख्यातों संस्कृत और भाषा के काव्यों, बादशाही फ़रमानों, शाहजादों के निशानों तथा, राजकीय पत्रों आदि से भी सहायता ली गई है। कई हज़ार पृष्ठों में यह बृहत् ग्रन्थ समाप्त हुआ है। इसके पहले खण्ड के प्रारम्भ में यद्यपि कई अनावश्यक बातें भर दी गई हैं और उदयपुर राज्य का पुराना इतिहास नाम मात्र ही है, तथापि यह ग्रन्थ इतिहास के लिए अवश्य उपयोगी है। इसको छपे अनुमान ३७ वर्ष हो चुके, परन्तु यह

अबतक प्रकाशित नहीं हुआ। सौभाग्य की बात है कि इसकी कुछ प्रतियां बाहर निकल गईं, जिनको प्राप्तकर आजकल के अंग्रेज़ी तथा हिन्दी में इतिहास लिखनेवाले विद्वान् इससे भी सहायता ले रहे हैं। वस्तुतः कर्नल टॉड के बाद का उदयपुर के इतिहास सम्बन्धी यह दूसरा प्रयत्न है। यद्यपि इसमें बहुत सी भूलों का संशोधन किया गया है, तथापि कई त्रुटियां रह गई हैं।

इतने प्रयत्न होते हुए भी वस्तुतः अबतक उदयपुर के इतिहास में बहुत से ऐसे स्थल है, जिनके लिए अब भी विशेष शोध करने की आवश्यकता है।

मुझे विद्यार्थी-जीवन में ही इतिहास और पुरातत्त्व से प्रेम उत्पन्न हो गया, जिससे मैं उन विषयों का विशेष अध्ययन करने लगा। उन्हीं दिनों कर्नल टॉड के राजस्थान के इतिहास के पढ़ने से उसका मुझपर बड़ा प्रभाव पड़ा। राजपूतों की स्वदेशभक्ति, आत्मोत्सर्ग और आदर्श वीरता के उदाहरण पढ़कर मैं मुग्ध हो गया और राजपूताना-निवासी होने के कारण यहां का इतिहास जानने की मुझे प्रबल उत्कंठा हुई। इसी के परिणामस्वरूप मैं वि० सं० १६४४ में उदयपुर पहुंचा। वहां इतिहास कार्यालय के मन्त्री पद पर रहते हुए मुझे मेवाड़ के भिन्न भिन्न ऐतिहासिक स्थानों को देखने, सैकड़ों प्राचीन शिलालेख, सिक्के, ताम्रपत्र, ख्यातें और प्राचीन गीत इकट्ठे करने का अवसर मिला। इसके बाद वि० सं० १६६४ से अजमेर के राजपूताना म्यूज़ियम का अध्यक्ष रहते हुए मुझे राजपूताने के इतिहास की सामग्री का संग्रह करने की विशेष सुविधा प्राप्त हुई। स्थिर रूप से राजपूताने में रहते हुए और यहां का अनुसंधान करते हुए मुझे ४१ वर्ष हो गये। इस दीर्घकाल में मेरे पास सैकड़ों शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों, वंशावलियों, ख्यातों, कई पट्टों और पत्रों, तथा बहुत सी प्राचीन पुस्तकों का संग्रह हो गया, जिनके अध्ययन और निरीक्षण से मुझे बहुत सी नई बातें मालूम हुईं। मैं चाहता था कि यदि कोई सुयोग्य ऐतिहासिक तथा पुरातत्त्ववेत्ता राजपूताने के इतिहास को लिखे, तो मैं अपनी संग्रह की हुई सामग्री-द्वारा उसे पूर्णरूप से सहायता दूं, परन्तु जब इतने वर्षों में किसी विद्वान् ने इस तरफ़ ध्यान नहीं दिया, तब मेरी संगृहीत सामग्री और इतने वर्षों के अध्ययन तथा भ्रमण से प्राप्त राजपूताने के इतिहास का मेरा अनुभव निष्फल न हो, यही सोचकर अपनी वृद्धावस्था एवं शारीरिक अस्वस्थता होते हुए भी मैंने यह

निश्चय कर लिया कि यथाशक्ति अपनी शेष आयु में राजपूताने का एक स्वतन्त्र और बृहत् इतिहास लिखूं। इसी निश्चय के अनुसार मैंने वि० सं० १६८२ के प्रारंभ से उसको खंडशः प्रकाशित करना प्रारंभ किया। अबतक उसके दो खंड प्रकाशित हो चुके हैं और तीसरा खंड छप रहा है।

राजपूताने का इतिहास प्रकाशित करते समय यह भी ख़याल हुआ कि बहुत से ऐसे भी व्यक्ति होंगे, जो सम्पूर्ण राजपूताने के इतिहास को न ख़रीद सकेंगे। वे केवल उदयपुर के इतिहास को ही लेना चाहेंगे। उनके लिए हम उदयपुर राज्य का इतिहास पृथक् रूप से प्रकाशित कर रहे हैं। यह राजपूताने के इतिहास में प्रकाशित उदयपुर राज्य के इतिहास से भिन्न नहीं है। इसकी दो जिल्दें होंगी। पहली में महाराणा अमरसिंह (प्रथम) तक का इतिहास है और दूसरी में उदयपुर का शेष इतिहास और सरदारों आदि का संक्षिप्त इतिहास होगा।

हम किसी प्रकार भी यह कहने के लिए तैयार नहीं हैं कि हमारा यह इतिहास सर्वांगपूर्ण और निर्भ्रान्त है। हम इस बात को भली भांति जानते हैं कि इस इतिहास में अनेक त्रुटियां रह गई होंगी। हमारी यह भी धारणा है कि उदयपुर का सच्चा इतिहास लिखे जाने का समय अभी दूर है, क्योंकि उसके लिए अधिक खोज की आवश्यकता है। यदि शोध के कार्य में निरन्तर उन्नति होती गई, तो आधी शताब्दी के भीतर इतिहास का रूपान्तर हो जायगा और उस परिपूर्ण शोध के आधार पर यहां का एक सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वांगसुन्दर इतिहास लिखने का श्रेय किसी भावी विद्वान् को ही मिलेगा, परन्तु हम इतना अवश्य कहेंगे कि भविष्य में जो कोई विद्वान् इस देश का इतिहास लिखने का प्रयत्न करेगा, उसे हमारा यह इतिहास कुछ न कुछ सहायता अवश्य देगा। हमारी आन्तरिक इच्छा यही है कि इस ग्रन्थ-द्वारा इस देश के भावी ऐतिहासिकों के लिए कुछ सामग्री रख दी जाय।

इस ग्रंथ के लिखने में जिन जिन ग्रंथों आदि से सहायता ली गई है और जिनके नाम यथा स्थान टिप्पणों में दिये गये हैं, उनके कर्त्ताओं के हम अनुगृहीत हैं। यहां पर हमारे इतिहास विभाग के कार्यकर्त्ताओं में से श्रीयुत् कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

तथा पंडित चिरंजीलाल नाथुलाल व्यास (औदीच्य) ने अच्छा काम किया है, अतएव मैं उनका यहां नामोल्लेख करना आवश्यक समझता हूं।

अजमेर
जन्माष्टमी
१९८५ } गौरीशंकर हीराचंद ओझा.

विषय-सूची

पहला अध्याय

भूगोल-सम्बन्धी वर्णन

दूसरा अध्याय

उदयपुर का राजवंश

तीसरा अध्याय

उदयपुर राज्य का इतिहास

परिशिष्ट

चौथा अध्याय

महाराणा हम्मीर से महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) तक

पांचवां अध्याय

महाराणा रत्नसिंह से महाराणा अमरसिंह तक

विषय				पृष्ठांक

चित्रसूची

* यह चित्र उदयपुर राज्य के सुप्रसिद्ध मंत्री स्वर्गीय राय मेहता पन्नालाल सी० आई० ई० के यहां के रंगीन चित्र की उदयपुर के चित्रकार पन्नालाल छगनलाल गौड़ की तैयार की हुई नक़ल के आधार पर प्रकाशित किया गया है।

चित्र	पृष्ठांक

पहली जिल्द में दिये हुए पुस्तकों के संक्षिप्त नामसंकेतों का परिचय

इं. ऐं. ...	···इंडियन् ऐंटिक्वेरी
ए. ई. ...	···एपिग्राफ़िया इंडिका.
क. आ. स. ई. रि. क. आ. स. रि.	} ···कनिंगहाम की 'आर्कियालॉजिकल् सर्वे की रिपोर्ट'
टॉ; रा. ...	···टॉड-'कृत राजस्थान' (ऑक्सफ़र्ड संस्करण)
ना. प्र. पत्रिका ना. प्र. प.	} ···नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण)
प्र. च. ...	···महाराणा प्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र
फ्ली. गु. इं. ...	···फ्लीट-सम्पादित 'गुप्त इंस्क्रिप्शन्स'
बंगा, ए. सो. ज.	···जर्नल ऑफ़ दी एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल
बं. ब. ए. सो. ज.	···जर्नल ऑफ़ दी बाम्बे ब्रांच ऑफ़ दी रायल एशियाटिक सोसायटी
बंब. गै.	···बम्बई गैज़ेटियर
रा. म्यू. रि.	···राजपूताना म्यूज़ियम (अजमेर) की रिपोर्ट.
हिन्दी टॉड रा. हि. टॉ, रा.	} ···हिन्दी टॉड-राजस्थान (खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर से प्रकाशित)

सूचना

इस ग्रंथ में जहां जहां 'देखो ऊपर पृष्ठ' या 'पृष्ठ' करके पृष्ठांक लिखे गये हैं, उन्हें राजपूताने के इतिहास के पृष्ठ समझना चाहिए। ३०४ से ५४४ तक की पृष्ठ-संख्या में से ३०४, और पृष्ठ ५४४ से आगे की संख्या में से ३१२ घटा देने पर इस ग्रन्थ का पृष्ठ निकल आयेगा।

उदयपुर राज्य का इतिहास

पहला अध्याय

भूगोलसंबंधी वर्णन

संस्कृत शिलालेखों तथा पुस्तकों में उदयपुर राज्य का नाम 'मेदपाट'[1] मिलता है और भाषा में उसको 'मेवाड़' कहते हैं। जब से राजधानी उदयपुर नगर में हुई तब से मेवाड़ के स्थान में 'उदयपुर राज्य' का भी प्रयोग होने लगा है।

---

(१) इस देश पर पहले मेद अर्थात् मेव या मेर जाति का अधिकार रहने से इसका नाम मेदपाट (मेवाड़) पड़ा। मेवाड़ का एक हिस्सा अब तक मेवल कहलाता है, जो मेवों के राज्य का स्मरण दिलाता है। मेवाड़ के देवगढ़ की तरफ के इलाक़े में और अजमेर-मेरवाड़े के मेरवाड़ा प्रदेश में, जिसका अधिकतर अंश मेवाड़ से ही लिया गया है, अब तक मेरों की आबादी अधिक है। कितने एक विद्वान् मेर (मेव, मेद) लोगों की गणना हूणों में करते हैं, परंतु मेर लोग शाकद्वीपी ब्राह्मणों की नाईं अपना निकास ईरान की तरफ के शाकद्वीप (शकस्तान) से बतलाते हैं और मेर (मिहिर) नाम भी यही सूचित करता है, अतएव संभव है कि वे लोग पश्चिमी क्षत्रपों के अनुयायी या वंशज हों (ना. प्र. प.; भाग २, पृ० ३३९)।

चित्तोड़ के क़िले से ७ मील उत्तर में मध्यमिका नाम की प्राचीन नगरी के खंडहर हैं और उसको इस समय 'नगरी' कहते हैं। वहां से मिलनेवाले कई तांबे के सिक्कों पर वि० सं० के पूर्व की तीसरी शताब्दी के आसपास की ब्राह्मी लिपि में 'मझिमिकाय शिबिजनपदस' (शिबिदेश की मध्यमिका का-सिक्का) लेख है। इससे अनुमान होता है कि उस समय मेवाड़ (या उसका चित्तोड़ के आसपास का अंश) शिबि नाम से प्रसिद्ध था। पीछे से वही देश मेदपाट या मेवाड़ कहलाया और उसका प्राचीन नाम (शिबि) लोग भूल गये (ना. प्र, प.; भाग २, पृ० ३३४-३९)।

करनबेल (जबलपुर के निकट) के एक शिलालेख में प्रसंगवशात् मेवाड़ के गुहिल-वंशी राजा हंसपाल, वैरिसिंह और विजयसिंह का वर्णन आया है जिसमें उनको 'प्राग्वाट' के राजा कहे हैं। अतएव प्राग्वाट मेवाड़ का ही दूसरा नाम होना चाहिये। संस्कृत शिलालेखों

उदयपुर राज्य राजपूताने के दक्षिणी विभाग में २३° ४६′ से २५° २८′ उत्तर अक्षांश और ७३° १′ से ७५° ४६′ पूर्व देशांतर के बीच फैला हुआ है। उसका क्षेत्रफल १२६६१ वर्ग मील है।

स्थान और क्षेत्रफल

उदयपुर राज्य के उत्तर में अजमेर-मेरवाड़ा और शाहपुरे (फूलिये) का इलाक़ा; पश्चिम में जोधपुर और सिरोही राज्य; नैर्ऋत्य कोण में ईडर; दक्षिण में डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ राज्य; पूर्व में सिंधिया का परगना नीमच, टोंक का परगना, नींबाहेड़ा और बूंदी तथा कोटा राज्य हैं; और ईशान कोण में देवली के निकट जयपुर का इलाक़ा आ गया है। इस राज्य के भीतर ग्वालियर का परगना गंगापुर, जिसमें १० गांव हैं, और आगे पूर्व में इंदौर का परगना नंदवास (नंदवाय) आ गया है[१] जिसमें २६ गांव हैं।

सीमा

अर्वली (आड़ावळा) पहाड़ की श्रेणियां अजमेर और मेरवाड़े में होती हुई दीवेर के निकट मेवाड़ में प्रवेश करती हैं। वहां इनकी ऊंचाई और चौड़ाई कम है, परंतु नैर्ऋत्य कोण में मारवाड़ के किनारे किनारे बढ़ती गई हैं। कुंभलगढ़ पर इनकी ऊंचाई ३५६८ फुट तक पहुंच गई है और जर्गा की पहाड़ी पर, जो गोगूंदा से १५ मील उत्तर में है, ऊंचाई ४३१५ फुट हो गई है। ये पर्वत-श्रेणियां राज्य के वायव्य कोण से लगाकर सारे पश्चिमी तथा दक्षिणी हिस्से में फैल गई हैं। उत्तर में खारी नदी से लगाकर चित्तोड़ से कुछ दक्षिण तक और चित्तोड़ से देबारी तक समान भूमि है। दूसरी पर्वत-श्रेणी राज्य के ईशान कोण में देवली के पास से शुरू होकर भीलवाड़े तक चली गई है। तीसरी श्रेणी देवली के पास से निकलकर राज्य के पूर्वी हिस्से में जहाज़पुर[२],

पर्वत-श्रेणियां

तथा पुस्तकों में 'पोरवाड़' महाजनों के लिये 'प्राग्वाट' नाम का प्रयोग मिलता है और वे लोग अपना निकास मेवाड़ के 'पुर' क़स्बे से बतलाते हैं, जिससे संभव है कि प्राग्वाट देश के नाम पर से वे अपने को प्राग्वाटवंशी कहते रहे हों (ना. प्र. प.; भाग २, पृ० ३३६)।

(१) टोंक का परगना नींबाहेड़ा तीन तरफ़ मेवाड़ से और एक तरफ़ ग्वालियर राज्य से मिला हुआ है। सिंधिया का भीचोर का परगना चारों ओर मेवाड़ से घिरा हुआ है; ऐसे ही सिंधिया के जाठ, सिंगोली और खेड़ी के इलाक़े अधिकतर मेवाड़ के भीतर आ गये हैं। ये सब इलाक़े पहले मेवाड़ के ही थे, परंतु पीछे से समय के हेर-फेर में मेवाड़ से छूट गये।

(२) जहाज़पुर से ही यह पहाड़ियों की श्रेणी विस्तृत और ऊंची होती चली गई है और मांडलगढ़ से आगे जाकर उसके ऊपर समान भूमि आ गई है जिससे इसको 'ऊपरमाळ' कहते हैं। यह श्रेणी पूर्व में कोटे से आगे चली गई है और यह 'पथार' भी कहलाती है। ऊपरमाळ की भूमि उपजाऊ है और जल भी वहां बहुतायत से है।

मांडलगढ़, बीजोल्यां, भैंसरोड़गढ़ और मैनाल होती हुई चित्तोड़ से दक्षिण तक जा पहुंची है। इस श्रेणी की ऊंचाई २००० फुट से अधिक नहीं है। देवारी से लगाकर राज्य का सारा पश्चिमी और दक्षिणी हिस्सा पहाड़ियों से भरा हुआ है। मेवाड़ की पहाड़ियां बहुधा घने जंगलों से भरी हुई हैं और वहां जल की भी बहुतायत है।

इस राज्य के पूर्वी विभाग में उपजाऊ समतल प्रदेश है, परंतु दक्षिणी और पश्चिमी विभाग में घने जंगलों से भरी हुई पहाड़ियां आ गई हैं, जिनके बीच में जगह जगह खेती के योग्य भूमि है। दक्षिण में डूंगरपुर की सीमा से लगाकर पश्चिम में सिरोही की सीमा तक सारा प्रदेश पहाड़ी होने से 'मगरा' कहलाता है जहां बहुधा भीलों आदि जंगली लोगों की बस्ती है।

नालें

पर्वत-श्रेणी में होकर निकलनेवाले तंग रास्तों को यहां नाल कहते हैं; ऐसी नालें इस राज्य में बहुत हैं जिनमें मुख्य नीचे लिखी हुई हैं—

जीलवाड़ा की नाल—इसको लोग पगल्या नाल भी कहते हैं। यह अनुमान ४ मील लम्बी तथा बहुत सँकड़ी है और मारवाड़ से मेवाड़ में आने का रास्ता है।

सोमेश्वर की नाल—यह नाल देसूरी (मारवाड़ में) से कुछ मील उत्तर की ओर है। यह बहुत लंबी और विकट है इसलिये जीलवाड़े की नाल के खुल जाने पर लोगों ने इससे बहुधा आना-जाना बंद कर दिया है।

हाथीगुड़ा की नाल—देसूरी से दक्षिण में ५ मील की दूरी पर यह नाल है। इसके मुंह पर एक मोरचेबन्द फाटक है और मेवाड़ के सिपाहियों का वहां पहरा रहता है। कुंभलगढ़ का पहाड़ी क़िला इस नाल के ठीक ऊपर है और केलवाड़े का क़स्बा उसके निकट ही है। इस नाल में लड़ाई में मारे जानेवाले वीर पुरुषों के स्मारकरूप चबूतरे भी बने हुए हैं।

नदियां

सालभर बहनेवाली मेवाड़ में एक भी नदी नहीं है। चंबल भी वास्तव में मेवाड़ की नदी नहीं कही जा सकती, क्योंकि उसका बहाव इस राज्य में केवल भैंसरोड़गढ़[1] के निकट अनुमान ६ मील है।

बनास—यह नदी कुंभलगढ़ के निकट से निकलकर नाथद्वार के पास

---

(१) उदयपुर राज्य में भैंसरोड़गढ़ से तीन मील पर 'चूलियां' नामी स्थान पर चंबल ६० फुट की ऊंचाई से गिरती है, जिससे वहां बड़े बड़े भंवर पड़ते हैं। वहां का दृश्य बड़ा ही मनोहर है।

बहती हुई मांडलगढ़ के समीप पहुंचती है। वहां पर दाहिनी ओर से आकर बेड़च इसमें मिलती है। उसी स्थान पर मैनाली नदी भी इसमें मिल गई है, जिससे वह स्थान त्रिवेणी तीर्थ कहलाता है। वहां से उत्तर की तरफ आगे बहने पर कोटेसरी (कोठारी) भी इसमें जा मिली है। फिर जहाज़पुर की पहाड़ियों में होती हुई देवली के निकट इस राज्य में १८० मील बहने के बाद अजमेर और जयपुर की सीमा में बहती हुई यह रामेश्वर तीर्थ (ग्वालियर राज्य में) में चंबल में मिल जाती है।

बेड़च—यह नदी उदयपुर के पश्चिम की पहाड़ियों से निकलती हुई आहाड़ के पास बहती है, जिससे वहां इसको 'आहाड़ की नदी' कहते हैं। वहां से आगे बढ़कर उदयसागर तालाब में गिरकर उसे भरती है। वहां से निकलने पर यह उदयसागर का नाला कहलाती है; फिर आगे जाने पर बेड़च नाम धारण कर चित्तोड़ के पास बहती हुई मांडलगढ़ के निकट बनास से जा मिलती है। इसका बहाव १३० मील है।

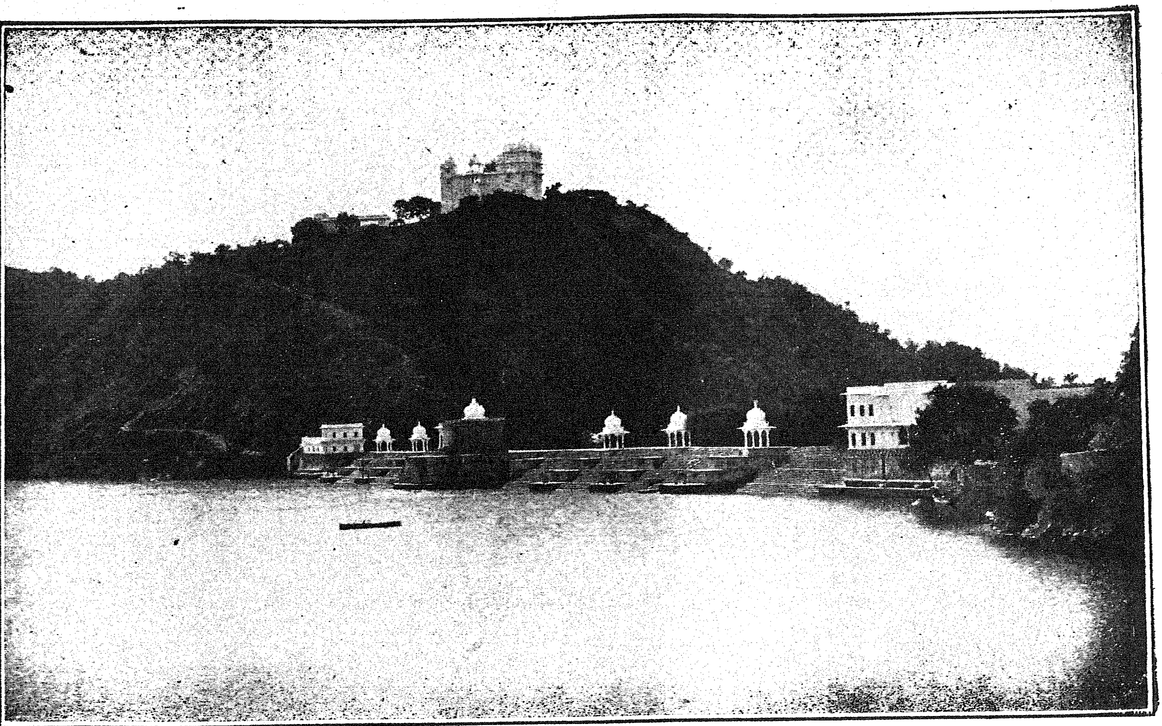
कोटेसरी—इसको कोठारी भी कहते हैं। यह अर्वली की पर्वतश्रेणी से निकलकर दीवेर से दक्षिण में ६० मील बहने के पश्चात् नंदराय से दो मील की दूरी पर बनास से जा मिलती है।

खारी—यह मेवाड़ की नदियों में सबसे उत्तर में है। दीवेर की पहाड़ियों से यह निकलती है और देवगढ़ के निकट बहती हुई अजमेर की सीमा पर देवली से थोड़ी दूर पर बनास में मिलती है।

जाकुम—यह नदी छोटी सादड़ी के निकट राज्य के नैर्ऋत्य कोण की पहाड़ियों से निकलती है और प्रतापगढ़ राज्य के नैर्ऋत्य कोण में बहती हुई मेवाड़ में धरियावद के पास होकर सोम में जा मिलती है।

वाकल—यह गोगूंदा के पश्चिम की पहाड़ियों से निकलती है और अनुमान ५० मील दक्षिण में ओगणा और मानपुर के पास बहती हुई उत्तर-पश्चिम में मुड़कर कोटड़े की छावनी के पास पहुंचती है। वहां से ५ मील तक पश्चिमवाहिनी होकर आगे ईडर राज्य में साबरमती में मिल जाती है।

सोम—यह बीछावेरा के समीप राज्य के नैर्ऋत्य कोण की पहाड़ियों से निकलकर डूंगरपुर राज्य की सीमा के पास बहती हुई उक्त राज्य में मही में आ मिलती है।



जयसमुद्र

मेवाड़ में छोटी बड़ी झीलें बहुत हैं जिनमें मुख्य नीचे लिखी हुई हैं—

झीलें

जयसमुद्र—इसको ढेबर भी कहते हैं। यह झील राजधानी उदयपुर से ३२ मील दक्षिण-पूर्व में है और वहां तक पक्की सड़क बनी हुई है। वि० सं० १७४४ और १७४८ (ई० स० १६८७ और १६९१) के बीच चार वर्षों में महाराणा जयसिंह ने लाखों रुपये ख़र्च कर यह झील बनवाई थी। इसके भर जाने पर इसकी अधिक से अधिक लंबाई ९ मील से कुछ ऊपर और चौड़ाई ६ मील से कुछ अधिक हो जाती है। इसके भीतर कुछ वर्ग मील विस्तार के तीन टापू हैं जिनपर मीणे (मीने), साधु आदि लोग बसते हैं। इनमें से दो टापुओं को 'बाबा के मगरे' और तीसरे को 'प्यारी' कहते हैं। इनपर रहनेवाले लोग लकड़ी के बने हुए भेलों (तमेड़ों) पर झील से बाहर आते हैं और उन्हीं भेलों पर अपने पशुओं को बाहर ले जाते और लाते हैं। इसका बांध दो पहाड़ों के बीच संगमरमर का बना है, जो १००० फुट लंबा और ९५ फुट ऊंचा है। उसकी नीचे की चौड़ाई ५० फुट और ऊपर की, सीढ़ियां छूटने के कारण, १५ फुट रह गई है। उसके पीछे एक दूसरा बांध भी उतना ही ऊंचा बांधा गया था जो १३०० फुट लंबा है। इन दोनों बांधों के बीच का हिस्सा १८४ वर्ष तक बिना भरे ही पड़ा रहा, परंतु जल की तरफ का बांध इतना सुदृढ था कि वह कभी नहीं टूटा। वि० सं० १९३२ (ई० स० १८७५) की अतिवृष्टि को देखकर महाराणा सज्जनसिंह ने दोनों बांधों के बीच के विस्तृत खड्डे का $\frac{२}{३}$ हिस्सा दो लाख रुपये व्यय कर बड़े बड़े पत्थर, मिट्टी और चूने से भरवा दिया। बाकी का काम वर्तमान महाराणा साहब ने पूरा करवाया। अब दोनों बांधों के बीच विस्तृत समभूमि बन गई है जहां वृक्ष लगाये गये हैं। जल की तरफ के बांध पर ६ सुंदर छत्रियां बनी हैं और प्रत्येक छत्री के सामने नीचे की ओर वेदियों पर मध्यम क़द के एक एक पत्थर के बने हुए ६ हाथी खड़े हैं। बांध के उत्तरी छोर पर वर्तमान महाराणा साहब ने महल बनवाये हैं और दक्षिणी छोर पर के महल 'महाराजकुमार के महल' कहलाते हैं। दक्षिणी छोर की पहाड़ी पर महाराणा जयसिंह के बनवाये हुए महल हैं, जिनका जीर्णोद्धार महाराणा सज्जनसिंह ने करवाया था। उक्त बांध पर महाराणा जयसिंह का बनवाया हुआ संगमरमर का नर्मदेश्वर नामक शिवालय भी है। बांध से थोड़े ही अंतर पर एक पहाड़ी की आड़ आ जाने के

कारण बांध पर से झील का अधिक विस्तार दृष्टिगोचर नहीं होता, परंतु किश्ती में या भेले पर बैठकर आगे जाने से दर्शक को उसका विस्तार और महत्त्व मालूम होता है। इस झील के आसपास का पहाड़ी प्रदेश सघन वृक्षों और घने जंगलों से आच्छादित है, जहां नाहर, चीते, तेंदुए, सूअर, रींछ, सांभर, चीतल, रोझ (नीलगाय), हिरण आदि जंगली जानवर बहुतायत से पाये जाते हैं। वर्तमान महाराणा साहब बहुधा शीतकाल में शिकार के लिये यहां निवास करते हैं।

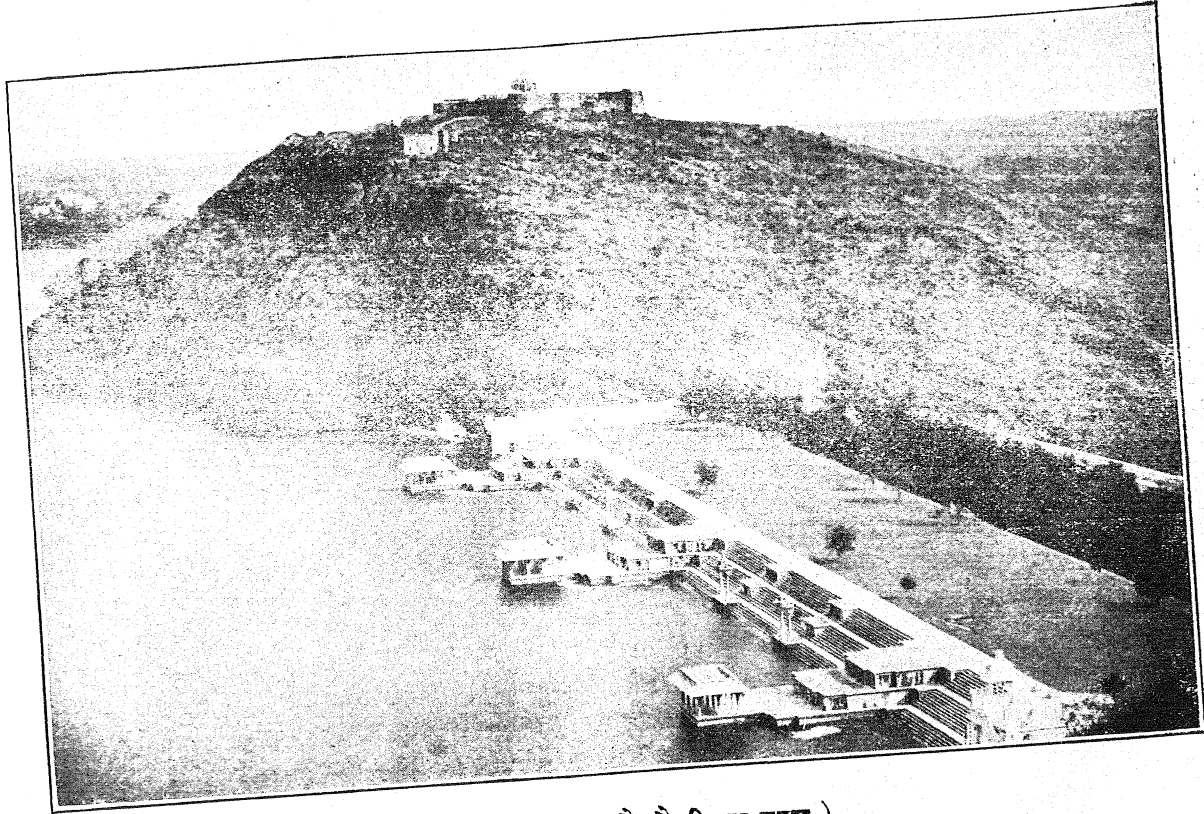
यह प्रदेश दर्शकों को बड़ा ही रमणीय प्रतीत होता है। मनुष्य की बनाई हुई संसार भर की झीलों में यह सबसे बड़ी[1] मानी जाती है, परंतु मालवे के परमार राजा भोज की बनाई हुई भोजपुर (भोपाल) की झील अवश्य इससे बहुत बड़ी थी, परंतु अब वह नहीं रही, क्योंकि मालवे के सुलतान होशंगशाह ने उसे तुड़वा दिया था, जिससे उसके स्थान में कितने ही गांव आबाद हो गये हैं[2]।

राजसमुद्र—यह झील उदयपुर नगर से ४० मील उत्तर में है। इसकी लंबाई ४ मील, चौड़ाई $१\frac{३}{४}$ मील और १९५ वर्ग मील भूमि का जल इसमें आता है। गोमती नाम की नदी इसमें गिरती है और जल के निकास के लिये तीन स्थान रक्खे गये हैं। इसका प्रारंभ महाराणा राजसिंह ने वि० सं० १७१८ (ई० स० १६६२) माघ वदि ७ को किया; वि० सं० १७३२ (ई० स० १६७६) माघ सुदि १५ को प्रतिष्ठा हुई और वि० सं० १७३५ (ई० स० १६७८) के आषाढ़ तक इसका काम चलता रहा। इस झील की बनवाई, प्रतिष्ठा, उत्सव तथा इनाम इकराम आदि में १०५०७५८४ रुपये खर्च हुए थे। इसका बांध धनुषाकृति में तीन मील लंबा है और उसका राजनगर की तरफ़ का छोर, जो दो पहाड़ियों के बीच में है, २०० गज़ लंबा और ७० गज़ चौड़ा तथा सुंदर सीढ़ियों सहित सारा राजनगर की खान के संगमरमर का बना हुआ है। बांध के इस हिस्से पर संगमरमर के तीन सुन्दर मंडप बने हुए हैं, जिनके स्तंभों एवं छत में कहीं सूर्य का रथ, कहीं ब्रह्मादि देवता, कहीं अप्सराओं का नृत्य, कहीं कबूतरों की लड़ाई आदि दृश्य उत्तम कारीगरी के साथ अंकित किये गये हैं।

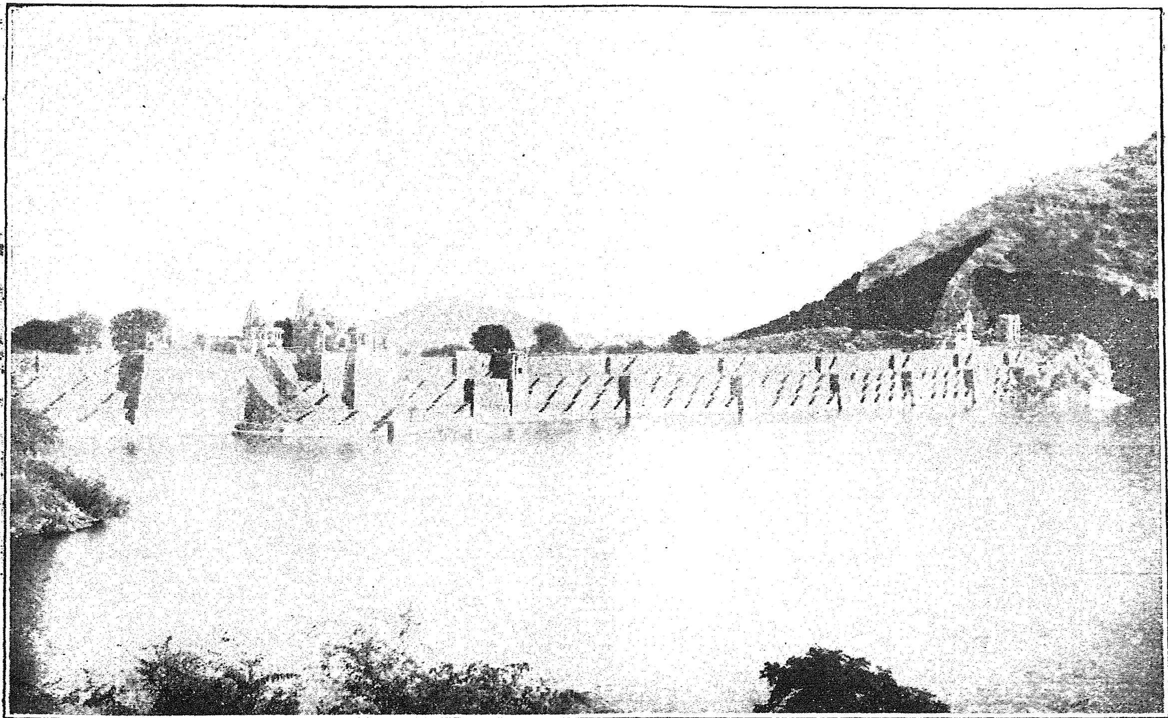
---

(१) इं. एँ; जि० १, पृ० १५–१६ ।

[illegible] २२८ के पास का नक्शा ।



राजसमुद्र (नौचौकी का दृश्य)



उदयसागर

वहीं तुलादान के पांच तोरण भी बने हुए हैं, जिनमें से तीन अच्छी स्थिति में और दो टूटे पड़े हैं। बांध के इस सुन्दर हिस्से को 'नौचौकी' कहते हैं और इस झील की प्रतिष्ठा का उत्सव भी यहीं हुआ था। यहीं पर खड़ा रहकर देखनेवाला व्यक्ति इस झील की सुन्दरता और भव्यता का अच्छी तरह अनुमान कर सकता है। नौचौकी के राजनगर की तरफ के किनारेवाली पहाड़ी पर महाराणा राजसिंह के बनवाये हुए महल हैं जो इस समय टूटी फूटी दशा में हैं। बांध के उपर महाराणा सज्जनसिंह का बनाया हुआ महल भी है।

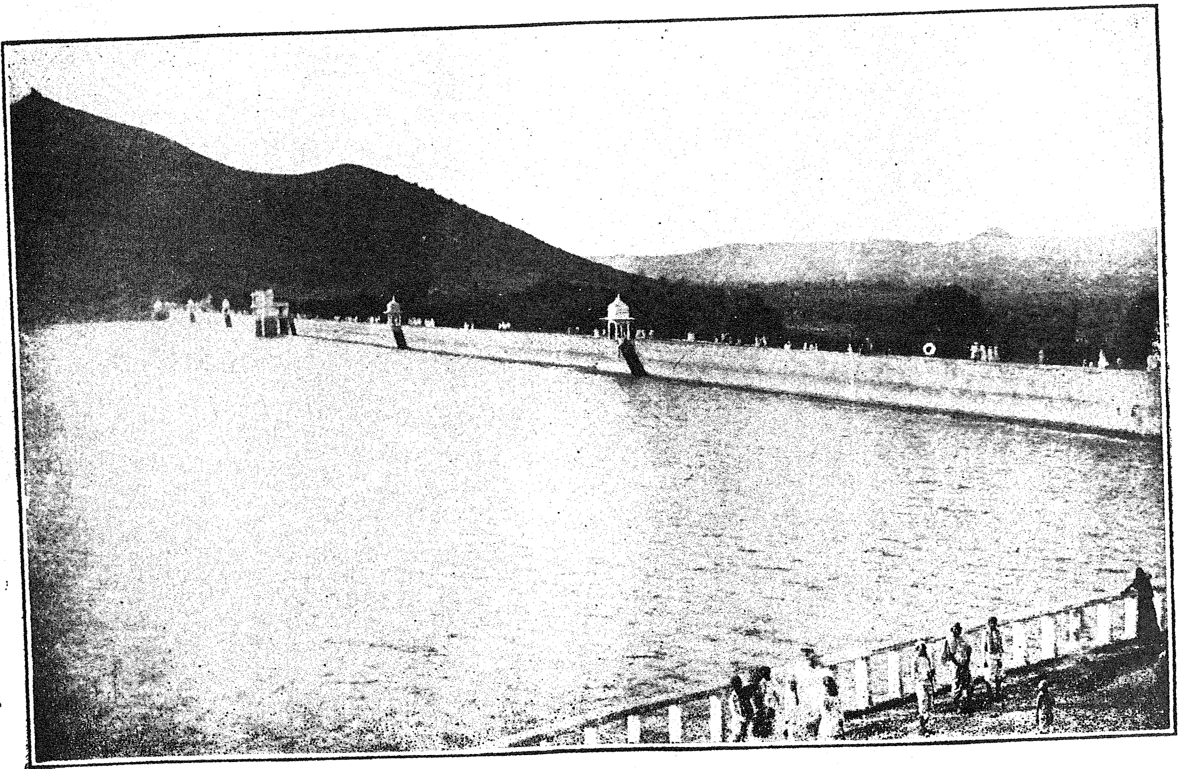
महाराणा राजसिंह ने इस झील के लिये मेवाड़ का इतिहास भी संग्रह करवाया और तैलंग भट्ट मधुसूदन के पुत्र रणछोड़ भट्ट ने उसके आधार पर 'राजप्रशस्ति' नाम का महाकाव्य लिखा, जो पाषाण की बड़ी बड़ी २५ शिलाओं पर खुदवाया जाकर नौचौकी के बांध पर अलग अलग ताकों मे लगाया गया है। पहली शिला पर देवताओं की स्तुति और बाकी की २४ शिलाओं पर उक्त काव्य के २४ सर्ग खुदे हैं, जिनमें इस झील के संबंध का विस्तृत वर्णन भी है। शिलाओं पर खुदी हुई अब तक कई पुस्तकें मिली हैं, परंतु इतनी बड़ी और कोई नहीं है।

उदयसागर—यह झील उदयपुर से ६ मील पूर्व में है। इसकी लंबाई २½ मील, चौड़ाई २ मील और १८५ वर्ग मील भूमि का जल इसमें आता है। आहाड़ की नदी भी इसी में गिरती है। इसका बांध, जो एक पहाड़ी की नाल के एक किनारे से दूसरे तक बनाया गया है, बहुत ऊंचा और १८० फुट चौड़ा है। इस झील को महाराणा उदयसिंह ने वि० सं० १६१६ से १६२१ (ई० स० १५५९ से १५६४) तक, ५ वर्षों में बनवाया था। इसकी शोभा बड़ी रमणीय होने से वर्तमान महाराणा साहब ने बांध के सामने के तट पर मेड़ी मगरी नाम के स्थान में महल बनवाये हैं। इस झील के आसपास की पहाड़ियां घने जंगल से ढकी हुई होने के कारण उनपर शिकार के लिये ओदियां (मूल) बनी हुई हैं।

पीछोला—यह झील वि० सं० की १५वीं शताब्दी में महाराणा लाखा (लक्षसिंह) के समय एक बनजारे ने बनवाई थी, ऐसी प्रसिद्धि है। इसके निकट पीछोली गांव होने के कारण इसका नाम 'पीछोला' पड़ा है। इसकी लंबाई २½ मील, चौड़ाई १½ और ५६ वर्ग मील भूमि का जल इसमें आता है। इसके पूर्वी किनारे की पहाड़ी पर उदयपुर शहर का अधिकांश और राजमहल बने हैं। इसके

किनारे किनारे बड़ी दूर तक कहीं एक ओर तथा कहीं दोनों ओर सुन्दर घाट, मंदिर और हवेलियां बनी हैं। इसका बांध ३३४ गज़ लम्बा है जिसके ऊपर के भाग की चौड़ाई ११० गज़ और नीचे उससे भी अधिक है। चातुर्मास में जब पहाड़ियां हरी हो जाती हैं तब यहां की शोभा कश्मीर की सी दीख पड़ती है। इस झील का यह बांध वि० सं० १८५२ (ई० स० १७९५) में टूट गया जिससे शहर का कितना एक हिस्सा बह गया, इसलिये महाराणा भीमसिंह ने नया बांध ऐसा सुदृढ बनवाया कि वि० सं० १९३२ (ई० स० १८७५) की अतिवृष्टि में उसकी कुछ भी हानि न हुई। इस झील के अंदर के टापुओं पर जगमंदिर, जगनिवास आदि महल बड़े ही रम्य बने हुए हैं जिनका वर्णन आगे किया जायगा। इन जलमहलों को देखने के लिये अनेक देशी और विदेशी लोग किश्तियों में बैठकर बड़ी चाह से जाते हैं और उनके लिये नावघाट पर राज्य की तरफ से किश्तियां हर वक़्त तैयार रहती हैं।

फतहसागर—उदयपुर से उत्तर के देवाली गांव के पास पहले एक छोटासा तालाव बना हुआ था जिसको देवाली का तालाव कहते थे। बांध ऊंचा न होने के कारण उसका जल दक्षिण में बहुत दूर तक नहीं फैल सकता था, इसलिये वर्तमान महाराणा साहब ने उसका सुदृढ और ऊंचा बांध नये सिरे से बंधवाया, जिससे अब उसका जल दक्षिण में दूर दूर तक फैलता हुआ पीछोले के उत्तरी अंत से भी आगे तक पहुंच गया है। अब इस झील को महाराणा साहब के नाम पर फतहसागर कहते हैं। इन झीलों के बीच का अंतर बहुत ही थोड़ा रह जाने के कारण एक नहर काटकर दोनों जोड़ दी गई हैं। उस नहर के अंत पर फतहसागर के किनारे एक मज़बूत लकड़ी का द्वार बना हुआ है। जब ये दोनों सरोवर भरे हुए होते हैं तब यह द्वार खोल देने से नाव और जल सुगमतापूर्वक पीछोले से फतहसागर में जा सकते हैं। यह झील डेढ़ मील लंबी है और इसकी सबसे अधिक चौड़ाई एक मील है। फतहसागर को भरने के लिये देवाली ग्राम से लगभग चार मील दूर की एक नदी में बांध बांधकर नहर द्वारा उसका जल लाया गया है। फतहसागर का बांध २८०० फुट लंबा है। श्रीमान् ड्यूक ऑफ़ कॉनाट (Duke of Connaught) के हाथ से इसकी नींव रक्खी जाने के कारण इसका नाम 'कॉनाट बांध' है। इस झील के किनारे किनारे पहाड़ियों



फ़तहसागर

को काटकर पाषाण के सुंदर कटहरेवाली एक सड़क बनाई गई है, जो अनुमान एक मील लंबी होगी। बांध के ऊपर छत्रियां बनी हुई हैं और ठीक मध्य-भाग में संगमरमर का एक छोटासा महल है, जो पहले शिवनिवास महल के द्वार के समीप बना हुआ था और जिसको वहां से हटाकर यहां स्थापित कर दिया है।

बांध पर आनेवाली घुमावदार सड़क की एक तरफ सघन वृक्षों से आच्छादित पहाड़ियां, दूसरी ओर बहुत दूर तक सरोवर का जल और संध्या समय अस्तंगम सूर्य की रक्त किरणों का जल में प्रतिबिम्ब आदि दृश्य दर्शक के चित्त में आनंद की लहर उत्पन्न करते हैं। बांध के पास जल की गहराई ५० फुट से भी अधिक है।

मेवाड़ का जलवायु सामान्य रीति से आरोग्यप्रद समझा जाता है, परंतु पहाड़ी विभाग के जल में खनिज पदार्थ और वनस्पति का अंश मिला हुआ होने से वह भारी होता है और वहां के रहनेवाले प्रायः बारिश के अंत में मलेरिया ज्वर से पीड़ित रहते हैं तथा तिल्ली की भी शिकायत उनमें अधिक रहती है। भूमि की ऊंचाई के कारण यहां सर्दी के दिनों में न तो अधिक सर्दी और उष्णकाल में न अधिक गर्मी होती है।

जलवायु

उदयपुर में वर्षा की औसत २४ इंच और पहाड़ी विभाग में २६ से ३० इंच तक है। वि० सं० १९३२ (ई० स० १८७५) में वर्षा इतनी अधिक हुई कि कई नदियों के पुल टूट गये और राजधानी में तथा दूसरी जगह भी सैकड़ों मकान गिरने से कितने ही मनुष्य दबकर मरे; इसी प्रकार नदियों की बाढ़ से पशुओं की भी बहुत हानि हुई।

वर्षा

यहां की समतल भूमि पैदावारी के लिये बहुत अच्छी है। उसमें ख़रीफ़ (सियालू) और रबी (उनालू) दोनों फसलें होती हैं। रबी की फसल विशेषकर कुओं से और थोड़ी तालावों से होती है। माळ की ज़मीन इस राज्य में बहुत थोड़ी है। पहाड़ी प्रदेश में मक्की अधिकता से होती है और पहाड़ों के ढालों में, जहां हल नहीं चल सकते, ज़मीन को खोदकर खेती की जाती है, जिसको यहां 'वालरा' (प्राकृत वल्लर) कहते हैं। पहाड़ियों के बीच के हिस्सों में, जहां पानी भरा रहता है, चावल भी पैदा होते हैं। ज़मीन की पैदावारी में मुख्य गेहूं, मक्की, जवार, मूंग, उड़द, चना, चावल, तिल, सरसों, जीरा, धनिया, रुई, तंबाकू, ईख और अफ़ीम हैं,

ज़मीन और पैदावारी

जिनमें से अफीम और रुई विशेषकर बाहर जाती थीं, परंतु अब तो अफीम की खेती नाममात्र की रह गई है।

जंगल

मेवाड़ का बहुतसा हिस्सा पहाड़ी प्रदेश होने से यहां जंगल विशेष हैं, जिनमें आम, इमली, महुआ, सागवान, धामण (फालसा), टींबरू (आबनूस), बड़, पीपल, चंदन, नीम, सीसम, खैर, गूलर, जामुन, खिजूर, खेजड़ा, बंबूल, रूंजड़ा, आंवला, बेहड़ा, धौ, हलदू, हिंगोटा, कचनार, कालियासिरस (शिरीष), सालर, मोखा, सेमल, गूगल, कड़ाया आदि पेड़ बहुतायत से पाये जाते और कहीं कहीं बांस भी बहुत होते हैं। बानसी और धरियावद के जंगलों में इमारती काम की कीमती लकड़ी विशेष रूप से होती है। जंगल की पैदाइश में सागवान आदि इमारती लकड़ी, गूंद, बेहड़ा, लाख, महुआ आदि हैं। मेवाड़ में आम बहुतायत से होते और अच्छे भी होते हैं।

जंगली जानवर, पक्षी और जलजन्तु

हिंसक जानवरों में नाहर (सुनहरी), बघेरा (जिसको यहां अधबेसरा भी कहते हैं और टीमर्या, चौफूल्या आदि जिसके और भी भेद प्रसिद्ध हैं), चीता और भेड़िया (जिसको यहां वरगड़ा और ल्याळी भी कहते हैं) कितने एक पहाड़ी हिस्सों में मिल आते हैं। नाहर (सुनहरी) अब कम मिलते हैं, क्योंकि वर्तमान महाराणा साहब ने सैकड़ों को मार डाला और बचे हुओं को वे मारते ही जाते हैं। अन्य जानवर बंदर, रीछ, सूअर, सांभर, रोझ (नीलगाय), चीतल (जो सांभर की किस्म का सींगदार पशु है और जिसके बदन के भूरे रंग में सफेद धब्बे होते हैं), हिरण (जिसकी कई किस्में हैं काला, चीखला और चौसींगा अर्थात् भेड़ला आदि), करू (जंगली कुत्ते), बनबिलाव, लोमड़ी, गीदड़ (सियार), जरख (लकड़बग्घा), खरगोश, सियागोश आदि हैं।

जंगली पक्षियों में गिद्ध (गृध्र), चील, शिकरा, बाज, मोर, तोता, कोयल, कौआ, जंगली मुर्गे, तीतर, कबूतर, बटेर, हरियल आदि अनेक हैं। जल के निकट रहनेवाले पक्षियों में ढींच, सारस, बगुला, हंजा, घरट, टिटहरी, बतक, जलमुर्ग आदि। जलजन्तुओं में मगर, कछुए, अनेक प्रकार की मछलियां, केंकड़े, जलमानस आदि झीलों और नदियों में पाये जाते हैं।

इस राज्य में पहले लोहा बहुत निकलता था। वीगोद, गुंहली (मांडलगढ़ ज़िले में), मनोहरपुर (जहाज़पुर ज़िले में), पारसोला (बड़ी सादड़ी से कुछ

खानें

मील दूर) में अब भी थोड़ा बहुत लोहा मिलता है, परंतु विदेशी लोहा सस्ता मिलने के कारण उसका निकलना कम पड़ गया है, तो भी बीगोद की खानों से लोहा कुछ अधिक निकाला जाता है, क्योंकि वहां का लोहा अच्छा समझा जाता है और उसके बर्तन महंगे मिलने पर भी लोग उन्हें खरीदते हैं। चांदी और सीसे की खान जावर (मगरा ज़िले में) में है, जहां से पहले ३००००० रुपये सालाना की चांदी निकलती थी, परंतु अब वह बंद है। जावर में मूसों के टुकड़ों के बड़े बड़े ढेर पड़े हुए हैं इतना ही नहीं, किंतु कितने एक पुराने मकानों की दीवारें भी मूसों की बनी हुई दीख पड़ती हैं। इसी खान के सबब से पहले यह एक नगरसा था, परंतु अब बहुधा वहां भीलों ही की बस्ती है। दरीबे में भी सीसे की खान थी, परंतु अब वह भी बंद है। तामड़े (रक्तमणि), भोडल तथा स्फटिक की खानें भी इस राज्य में हैं, परंतु इस समय वे बंदसी हैं। राजनगर में संगमरमर की खानें हैं, जिनका पत्थर मकराणे से कुछ हलका है। चित्तोड़ के निकट मादलदा, सेंती आदि में काला पत्थर मिलता है। चित्तोड़ के स्टेशन से इस पत्थर के चौके फ़र्श की जड़ाई के लिये रेल द्वारा बाहर जाते हैं। ढींकली के पास चक्की बनाने का पत्थर निकलता है और पत्थर की बड़ी बड़ी पट्टियां उदयपुर के निकट तथा कई अन्य स्थानों में भी पाई जाती हैं।

किले

मेवाड़ में प्रसिद्ध क़िले (गढ़) चित्तोड़गढ़, कुंभलगढ़ और मांडलगढ़ हैं, जिनका वर्णन इसी प्रकरण में आगे प्रसिद्ध और प्राचीन स्थानों के साथ किया जायगा। इनके सिवा छोटे-बड़े गढ़ और गढ़ियां भी अनेक हैं।

रेल्वे

बॉम्बे बड़ौदा एण्ड सेंट्रल इंडिया रेल्वे की अजमेर से खंडवा जानेवाली छोटे नापवाली रेल की सड़क मेवाड़ में होकर निकली है और उसके रूपाहेली से लगाकर शंभुपुरा तक के स्टेशन इस राज्य में हैं। चित्तोड़गढ़ जंक्शन से उदयपुर तक ६९ मील रेल की सड़क उदयपुर राज्य की तरफ़ से बनाई गई है, जो 'उदयपुर-चित्तोड़गढ़ रेल्वे' कहलाती है।

सड़कें

नसीराबाद से नीमच को जानेवाली सरकारी सड़क इस राज्य में होकर निकली है। राज्य की तरफ से बनी हुई पक्की सड़कें उदयपुर से खैरवाड़े तक, उदयपुर से नाथद्वारे तक, और उदयपुर से जयसमुद्र तक हैं। उदयपुर-चित्तोड़गढ़ रेल्वे के बनने के पहले उदयपुर से चित्तोड़गढ़ तक भी

पक्की सड़क बनी हुई थी, परंतु रेल खुल जाने के बाद उसपर लोगों का आना-जाना बहुत कम हो गया है। इसके अतिरिक्त 'नाथद्वारा रोड' से नाथद्वारे तक भी पक्की सड़क बन गई है और नाथद्वारे से कांकड़ोली तक बन रही है।

जनसंख्या

इस राज्य में अब तक मनुष्यगणना पांच बार हुई है। यहां की जनसंख्या ई० स० १८८१ (वि० सं० १९३७) में १४९४२२०, ई० स० १८९१ (वि० सं० १९४७) में १८४५००८, ई० स० १९०१ (वि० सं० १९५७) में[1] १०१८८०५, ई० स० १९११ (वि० सं० १९६७) में १२९३७७६ और ई० स० १९२१ (वि० सं० १९७७) में १३८००६३ थी, जिसमें ७१२१०० मर्द और ६६७९६३ औरतें थीं। इस हिसाब से प्रत्येक वर्ग मील भूमि पर १०८·७४ मनुष्यों की आबादी की औसत आती है।

धर्म

यहां के लोगों में मुख्य धर्म वैदिक (ब्राह्मण), जैन और इस्लाम हैं। वैदिक धर्म के माननेवालों में शैव, वैष्णव, शाक्त आदि अनेक भेद हैं। जैन धर्म में श्वेतांबर, दिगंबर और थानकवासी (ढूंढिये) आदि भेद हैं। मुसलमानों में सुन्नी और शिया नाम के दो भेद हैं, जिनमें सुन्नियों की संख्या अधिक है और शिया मत के माननेवालों में दाऊदी बोहरे मुख्य हैं।

ई० स० १९२१ (वि० सं० १९७७) की मनुष्यगणना के अनुसार भिन्न भिन्न धर्मावलंबियों की संख्या नीचे दी जाती है—

हिन्दू १३३१५९३, इनमें ब्राह्मण धर्म को माननेवाले १०६९०५६, आर्य (आर्य-समाजी) १७१, ब्राह्मो १, सिक्ख ९, जैन ६३१३२ और भैरव आदि देवताओं को माननेवाले भील, मीणे आदि लोग १९९२०४ हैं। मुसलमान ४८२९५, ईसाई १७९ और पारसी १६ हैं[2]।

हिन्दुओं में ब्राह्मण, राजपूत, महाजन, कायस्थ, चारण, भाट, सुनार, दरोगा, दर्जी, लुहार, सुथार (बढ़ई), कुम्हार, माली, नाई, धोबी, जाट, गूजर,

---

(१) ई० स० १९०१ की मनुष्य-गणना में जनसंख्या की बड़ी कमी होने के मुख्य कारण वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९–१९००) का भयंकर दुष्काल और महामारी (हैज़ा) तथा वि० सं० १९५७ का भीषण ज्वर था, जिन्होंने लाखों मनुष्यों का संहार कर दिया।

(२) ई० स० १९२१ की मनुष्य-गणना की रिपोर्ट में आर्य, सिक्ख, जैन, ब्राह्मो, भील, मीणे आदि को हिन्दुओं से भिन्न बतलाया है, परंतु वास्तव में इन सब का समावेश हिंदुओं में ही होता है, इनमें केवल मत-भेद है।

जातियां अहीर, मेर, कोली, घांची, कुनबी, मोची, बलाई, रेगर, भांबी, गाड़री, धाकड़, ढोली, बोला, महतर, आदि अनेक हैं। ब्राह्मण, महाजन आदि कई एक जातियों की अनेक उपजातियां भी बन गई हैं तथा उनमें परस्पर विवाह-संबंध आदि नहीं होता और ब्राह्मणों की उपजातियों में तो बहुधा परस्पर भोजन-व्यवहार भी नहीं है। जंगली जातियों में भील, मीणे, गिरासिये, मोगिये, बावरी, सांसी आदि हैं। भील, मीणे पहले चोरी-धाड़े अधिक किया करते थे, परंतु अब वे खेती और मज़दूरी करने लग गये हैं, तो भी दुष्काल वगैरा में वे अपना पुराना पेशा करना नहीं छोड़ते। मुसलमानों में शेख़, सैयद, मुग़ल, पठान आदि कई हैं।

यहां के लोगों में से अधिकतर खेती करते हैं, कितने ही पशुपालन पर अपना निर्वाह चलाते हैं और कोई व्यापार, नौकरी, दस्तकारी, मज़दूरी या पेशा लेनदेन करते हैं। व्यापार करनेवाली जातियों में मुख्य महाजन और बोहरे हैं। ब्राह्मण विशेषकर पाठ-पूजन तथा पुरोहिताई करते और कोई व्यापार, नौकरी एवं खेती भी करते हैं। राजपूतों में अधिकतर सैनिक सेवा और कितने ही खेती करते हैं।

यहां के पुरुषों की सामान्य पोशाक पगड़ी, कुरता, लंबा अंगरखा और धोती है। ग्रामीण और भील आदि जंगली लोग पगड़ी के स्थान पर पोतिया (मोटा वस्त्र) पोशाक बांधते हैं। राजकीय सेवक पजामा और अंगरखा पहनकर कमर बांधते और अंगरखे के ऊपर छोटा कोट पहनते हैं। यह रीति शहर और बड़े क़स्बों के धनाढ्य लोगों में भी चल पड़ी है। साफ़े का प्रचार भी होता जाता है और टोपी भी व्यवहार में आने लगी है। बोहरे तथा मुसलमान प्रायः पजामा पहनते हैं।

स्त्रियों की पोशाक में घाघरा (लहँगा), साड़ी, और कांचली (कंचुलिका) मुख्य हैं और कोई कोई कुरती, अंगरखी या बास्कट भी पहनती हैं। भीलों, किसानों, और ग्रामीण लोगों की स्त्रियों के घाघरे कुछ ऊंचे होते हैं। मुसलमानों की स्त्रियां बहुधा पजामे पहनती हैं और बोहरों की स्त्रियां बाहर जाने पर बहुधा लहँगा ही पहनती हैं तथा मुंह पर नक़ाब डाले रहती हैं।

यहां की मुख्य भाषा मेवाड़ी है, जो हिन्दी का ही एक विकृत रूप है। राज्य के दक्षिणी और पश्चिमी विभागों के लोगों तथा भीलों की भाषा वागड़ी है, जिसका

भाषा

गुजराती से विशेष संबंध है। राज्य के पूर्वी (खैराड़ की तरफ के) हिस्से में खैराड़ी बोली जाती है जो मेवाड़ी, ढूंढाड़ी और हाड़ौती का मिश्रण है।

लिपि

यहां की राजकीय और प्रचलित लिपि नागरी है, जो लकीर खींचकर घसीट रूप में लिखी जाती है। राजकीय अदालतों आदि में उसे कुछ अशुद्ध रूप में लिखते और उसमें फारसी शब्द भी अधिक मिलाते हैं। महाजनों तथा अन्य लोगों के पत्रव्यवहार आदि की लिपि भी वही है, परंतु उसमें शुद्धता का विचार कम रहता है।

दस्तकारी

शहर उदयपुर में लहरियां आदि कई प्रकार की तलवारें, भाले, छुरी, कटार आदि शस्त्र बनते हैं और तलवारों की मूठों, छुरियों के दस्तों एवं कटारों पर तरह तरह का सोने का काम अच्छा बनता है। रंगाई के काम में लहरिये, मोठड़े, एवं स्त्रियों की भिन्न भिन्न प्रकार की साड़ियां आदि वस्त्र तथा रंगीन कपड़ों पर सोने और चांदी के वरक़ों की छपाई का काम बहुत होता है। ऐसे ही रंग रंग के लकड़ी के खिलौने आदि भी अच्छे बनते है। भीलवाड़े में बर्तनों पर पक्की कलई करने का काम होता है और चित्तोड़ में बहुधा मोटे कपड़ों की रंगाई व छपाई का काम ही विशेष रूप से होता है। हाथीदांत, नारियल तथा लाख के चूड़े उदयपुर में और अन्यत्र भी तैयार होते हैं। सोने चांदी के ज़ेवर तथा तांबे और पीतल के बर्तन आदि राजधानी एवं बड़े क़स्बों में बनते हैं। मीनाकारी का काम केवल नाथद्वारे में ही होता है।

व्यापार

व्यापार के लिये उदयपुर राज्य प्रसिद्ध नहीं है। पहले यहां मुख्य व्यापार अफीम और रुई का था, परंतु अब तो अफीम का बोना बंदसा हो गया है। बाहर जानेवाली वस्तुओं में मुख्य रुई है, और तिल, सरसों, घी, चमड़ा, शस्त्र, लकड़ी के खिलौने, ऊन, गोंद, मोम तथा भेड़, बकरी आदि जानवर भी हैं। बाहर से आनेवाली वस्तुओं में मुख्य गुड़, शक्कर, नमक, तम्बाकू, मिट्टी का तेल, हाथीदांत, सब तरह का कपड़ा, लोहा, सीसा, तांबा पीतल, सोना, चांदी तथा नाना प्रकार की अन्य आवश्यक वस्तुएं हैं।

यहां हिन्दुओं के मुख्य त्यौहार होली, दिवाली, दशहरा और श्रावणी (रक्षाबन्धन) हैं। इनके अतिरिक्त गनगौर और तीज (श्रावणी तथा काजली)

त्यौहार — स्त्रियों के मुख्य त्यौहार हैं। दशहरा (नवरात्रि) राजपूतों का और रक्षाबंधन ख़ास कर ब्राह्मणों का त्यौहार है। नवरात्रि और गनगौर के समय महाराणा साहब की सवारियां बड़ी धूमधाम से निकलती हैं और गनगौर की सवारियों के अवसर पर पीछोले में दरबार की नावों का जमघट तथा उसके तट पर स्त्री-पुरुषों की भीड़ का दृश्य भी देखने योग्य होता है। पहले दशहरे के बाद एक दिन 'मोहल्ला' (मुसिल्लह) नाम की सवारी भी होती थी, जिसमें महाराणा, उनके सरदार, बड़े बड़े अहलकार तथा राजपूत लोग पुराने समय के युद्ध के भेष में घोड़ों पर सवार होकर निकलते थे। उनके सिर पर लोहे का टोप, शरीर पर पूरा कवच (बख़्तर), हाथ में बर्छी, कमर में तलवार, कटार या जमधर, और पीठ पर ढाल रहती तथा घोड़ों पर पाखरें[1] (प्रक्षरा) डाली जाती थीं। इस सवारी को देखने से राजपूतों के पुराने समय के युद्धसंबंधी ठाट-बाट का अनुमान होता था इतना ही नहीं, किंतु उनके शस्त्र और बख़्तर आदि भी साल भर में एक बार साफ हो जाते थे। मैंने एक बार यह सवारी देखी थी, परंतु गत ३८ वर्षों से इसका होना बंद हो गया है। मुसलमानों के मुख्य त्यौहार दोनों ईद और ताज़िये हैं।

मेवाड़ में ऐसा प्रसिद्ध कोई मेला नहीं होता जहां पशुओं या माल की बिक्री यथेष्ट रूप से होती हो। वैशाख सुदि १५ को मातृकुण्डियों (राश्मी ज़िले में) का, भाद्रपद सुदि ११ को चारभुजा का, और चैत्र वदि ८ को ऋषभदेव (केसरियानाथ) का मेला भरता है। इन मेलों में कई हज़ार मनुष्य एकत्र होते हैं। फाल्गुन सुदि ११ को आहाड़ में भीलों का मेला होता है जहां भील बहुत जाते हैं। — मेले

इस राज्य में सरकार अंग्रेज़ी के डाकखाने शहर उदयपुर, भीलवाड़ा, चित्तोड़-गढ़, खैरवाड़ा, नाथद्वारा, बदनौर, बनेड़ा, बड़ी और छोटी सादड़ी, बानसी, बेगूं, भादोड़ा, भींडर, देलवाड़ा, देवगढ़, गंगराड़, घोसुंडा, हमीरगढ़, हुरड़ा, जहाज़पुर, कांकड़ोली, कपासण, खेमली, कोटड़ा, लांबिया, मांडल, — डाकखाने

(१) जैसे युद्ध-समय योद्धे अपने शरीर की रक्षा के लिये बख़्तर, टोप आदि पहनते थे वैसे ही हाथी और घोड़ों की रक्षा के लिये उनपर पाखरें (झूल के समान) डाली जाती थीं, जो लोहे की बारीक गुंथी हुई कड़ियों से अथवा मोटे कपड़े के अंदर लोहे की शलाकाएं डालकर बनाई जाती थीं।

मांडलगढ़, मावली, पारसोली, ऋषभदेव, सलूंबर, सनवाड़ और सराड़े में हैं। राज्य के कागज़-पत्र आदि परगनों में पहुंचाने के लिये राज्य की तरफ से भी प्रबंध है, जिसे 'बामणी डाक' कहते हैं, परंतु उसके लिये डाकखाने नियत नहीं हैं।

सरकार अंग्रेज़ी के तारघर—उदयपुर शहर, चित्तोड़गढ़, खैरवाड़ा, भीलवाड़ा और नाथद्वारे में डाकखानों के साथ हैं। इनके अतिरिक्त 'बॉम्बे बड़ौदा एंड सेंट्रल इंडिया रेल्वे' के रूपाहेली, सरेड़ी, लांबिया, मांडल, हमीरगढ़, गंगराड़, चंदेरिया और शंभुपुरा के स्टेशनों तथा 'उदयपुर चित्तोड़गढ़ रेल्वे' के घोसुंडा, पांडोली, कपासण, करेड़ा, कांकड़ोली रोड़, नाथद्वारा रोड़ और खेमली के स्टेशनों से भी आसपास के गांवों के तार लिये और पहुंचाये जा सकते हैं।

तारघर

उदयपुर राज्य में सरकार अंग्रेज़ी की छावनियां खैरवाड़े और कोटड़े में हैं। खैरवाड़े की अपेक्षा कोटड़े में सिपाही कम रहते हैं और इन छावनियों में सिपाही अधिकतर भील हैं।

छावनियां

इस राज्य में शिक्षा का प्रबंध पहले राज्य की तरफ से नहीं था। खानगी पाठशालाओं में प्रारंभिक शिक्षा और कुछ हिसाब-किताब की पढ़ाई होती थी। संस्कृत पढ़नेवाले पंडितों के यहां और फारसी तथा उर्दू पढ़नेवाले मौलवियों के घरू मक्तबों में पढ़ते थे। अंग्रेज़ी ढंग की पढ़ाई के लिये पहले पहल महाराणा शंभुसिंह ने 'शंभुरत्नपाठशाला' स्थापित की, जहां हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी और अंग्रेज़ी की पढ़ाई शुरू हुई और एक कन्या पाठशाला भी खोली गई। महाराणा सज्जनसिंह ने उसी पाठशाला को हाई स्कूल बनाकर उसका नाम 'महाराणा हाई स्कूल' रक्खा, जिसमें एंट्रेन्स तक की अंग्रेज़ी पढ़ाई के साथ हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी का भी अलग प्रबंध किया गया। वर्तमान महाराणा साहब के समय में विद्याविभाग की पहले से विशेष उन्नति हुई और दो वर्ष पूर्व इंटरमीजिएट तक की पढ़ाई के लिये महाराणा हाई स्कूल 'कालेज' बना दिया गया। इसी तरह चित्तोड़गढ़, भीलवाड़ा और जहाज़पुर में मिडल तक अंग्रेज़ी की पढ़ाई भी होती है और चालीस के लगभग हिन्दी पाठशालाएं देहातों में कई जगह खुल गई हैं। सरदारों के लड़कों की पढ़ाई के लिये दो वर्ष पूर्व महाराजकुमार सर भूपालसिंहजी के नाम से 'भूपाल नोबल् स्कूल' भी खुला है, जहां एक सौ से अधिक राजपूत सरदारों के

शिक्षा

लड़के हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेज़ी की शिक्षा पाते और वहीं रहते हैं। राजधानी और उसके आसपास के गाँवों में ईसाइयों के स्कॉटिश मिशन की तरफ से लड़कों के ७ स्कूल और १ लड़कियों का मदरसा भी है। ऐसे ही शहर में 'हरिश्चन्द्र आर्यविद्यालय' नाम की पाठशाला भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के स्मरण में कई वर्षों से स्थापित है, जहां अंग्रेज़ी तथा हिन्दी की पढ़ाई होती है। इनके अतिरिक्त और भी खानगी पाठशालाएं चल रही हैं।

उदयपुर नगर में सर्वप्रथम महाराणा शंभुसिंह के समय में राज्य की तरफ से एक अस्पताल खुला और महाराणा सज्जनसिंह के राज्यसमय उसी का नाम 'सज्जन हॉस्पिटल' रक्खा गया। वर्तमान महाराणा साहब ने हॉस्पिटल के लिये सुन्दर मकान बनवाकर उसका नाम 'लैन्सडाउन हॉस्पिटल' रक्खा, क्योंकि उसका खातमुहूर्त हिन्दुस्तान के वायसराय लॉर्ड लैन्सडाउन साहब के हाथ से हुआ था। महाराणा सज्जनसिंह ने मेवाड़ के रेज़िडेएट कर्नल वॉल्टर के नाम से 'वॉल्टर फ़ीमेल हॉस्पिटल' नामक एक ज़नाना अस्पताल खोला, जिसके लिये वर्तमान महाराणा साहब ने एक सुन्दर मकान बनवाया है। इसके अतिरिक्त शहर में एक मिशन अस्पताल भी है। ऐसे ही बहुधा प्रत्येक ज़िले के मुख्य स्थान में अस्पताल बन गया है और नाथद्वारे में गोस्वामीजी महाराज की तरफ से भी एक अस्पताल स्थापित है।

अस्पताल

राज्य-प्रबंध के लिये मेवाड़ के १६ विभाग किये गये हैं, जो ज़िले या परगने कहलाते हैं। प्रत्येक ज़िले या परगने में एक हाकिम और प्रत्येक तहसील पर उसकी मातहती में एक एक नायब हाकिम रहता है। उन हाकिमों को दीवानी फौजदारी तथा माल के मुक़द्दमे तय करने का नियमित अधिकार है और उनके किये हुए मुक़द्दमों की अपीलें उदयपुर नगर की अदालतों में होती हैं। इन ज़िलों में से १० में पैमाइश होकर पक्का बन्दोबस्त हो जाने से वहां ज़मीन का हासिल रुपयों में लिया जाता है और बाकी के ज़िलों में पुराने ढंग का प्रबंध होने के कारण वहां अन्न आदि का लाटाकूंता होता है, अर्थात् पैदावारी का हिस्सा लिया जाता है। ये ज़िले और परगने नीचे लिखे अनुसार हैं—

ज़िले

(१) गिरवा (गिर्दनवाह)—इस ज़िले का मुख्य स्थान उदयपुर है और इसमें उदयपुर तथा उससे मिले हुए कितने एक प्रदेश का समावेश होता है। इसके दो विभाग—भीतरी गिरवा और बाहरी गिरवा—हैं। उदयपुर के आस-

पास का पर्वतश्रेणी से घिरा हुआ अंश 'भीतरी गिरवा'' और उक्त श्रेणी से बाहर का समतल प्रदेश 'बाहरी गिरवा' कहलाता है। इसके अंतर्गत गिरवा (भीतरी गिरवा), लसाड़िया, मावली और ऊंटाला की तहसीलें हैं। नाई के सिवा प्रत्येक तहसील में नायब हाकिम नियत है। शहर उदयपुर के अतिरिक्त इसके अंतर्गत ४८६ गांव हैं।

(२) छोटी सादड़ी—यह ज़िला राज्य के अग्निकोण में है और इसमें क़स्बा छोटी सादड़ी तथा २०६ गांव हैं। इसके अंतर्गत दो तहसीलें—छोटी सादड़ी और करजू—हैं।

(३) कपासण—यह ज़िला राज्य के मध्य भाग में है और इसमें १४२ गांव हैं। इसके अधीन तीन तहसीलें—कपासण, आकोला और जासमा—हैं।

(४) चित्तोड़—इस ज़िले का मुख्य स्थान क़स्बा चित्तोड़ है। उसके अतिरिक्त इसमें ४४० गांव और इसमें तीन तहसीलें—चित्तोड़, कणेरा तथा भगावली—हैं।

(५) रास्मी—यह ज़िला भी मेवाड़ के मध्य में है और इसमें १०० गांव तथा दो तहसीलें—रास्मी और गलूंड—हैं।

(६) भीलवाड़ा—इसमें मुख्य क़स्बे भीलवाड़ा और पुर, तथा २०५ गांव हैं। इसमें भीलवाड़ा और मांडल तहसीलें हैं।

(७) सहाड़ां—यह ज़िला राज्य के नैर्ऋत्य कोण में है और इसमें २७४ गांव एवं तीन तहसीलें-सहाड़ां, रायपुर और रेलमगरा—हैं।

(८) मांडलगढ़—यह ज़िला राज्य के ईशान कोण में है। इसमें २५८ गांव और कोटड़ी तथा मांडलगढ़ की तहसीलें हैं।

(९) जहाज़पुर—यह ज़िला उदयपुर राज्य के ईशान कोण में है। इसमें क़स्बा जहाज़पुर एवं ३०६ अन्य गांव तथा जहाज़पुर और रूपान की तहसीलें हैं।

(१०) राजनगर—यह परगना राज्य के पश्चिमी विभाग में है और इसमें १२३ गांव हैं।

(११) सायरा—यह परगना राज्य के पश्चिमी विभाग में अर्वली की पर्वत-श्रेणी में है और इसके अंतर्गत ५८ गांव हैं।

---

(१) भीतरी गिरवे में बंदोबस्त नहीं हुआ, वहां लाटाकूंता ही होता है।

(१२) कुंभलगढ़—यह परगना भी राज्य के पश्चिमी विभाग में अर्वली की पहाड़ियों के बीच है और इसमें १६५ गांव हैं। यहां का हाकिम कुंभलगढ़ के नीचे कैलवाड़ा नामक गांव में और नायब हाकिम रीछेड़ में रहता है।

(१३) मगरा—यह ज़िला राज्य के दक्षिण और दक्षिण-पश्चिमी विभाग में है। इसमें ३२८ गांव तथा चार तहसीलें—सराड़ा, खैरवाड़ा, कल्याणपुर और जावर—हैं। यहां का हाकिम सराड़े में रहता है।

(१४) बागोर—इस परगने में ६४ गांव हैं। पहले यह बागोर के महाराज की जागीर थी, परंतु इस समय खालसे में है।

(१५) आसींद—यह परगना पहले आसींद के रावत का ठिकाना था, परंतु थोड़े ही समय पूर्व यह खालसे कर लिया गया है।

(१६) कुआखेड़ा—यह जहाज़पुर ज़िले का ही एक विभाग है, परंतु इन्हीं दिनों यह अलग परगना बनाया गया, ऐसा सुना है। इसमें कितने गांव आये यह ज्ञात नहीं हुआ।

न्याय

राजधानी में न्याय के लिये सदर दीवानी और सदर फौजदारी अदालतें हैं। ज़िलों और परगनों के हाकिमों के दीवानी फैसलों की अपील सदर दीवानी अदालत में होती है। दीवानी मामलों में ज़िलों के हाकिमों को ५००० रुपये तक के मुक़द्दमे फैसल करने का अधिकार है और सदर दीवानी का हाकिम १०००० रुपये तक का दावा सुन सकता है। ऐसे ही फौजदारी मामलों में ज़िलों के हाकिमों को एक साल तक की क़ैद और ५०० रुपये तक जुर्माना करने का अधिकार है। उनके मुक़द्दमों की अपील सदर फौजदारी में होती है। सदर फौजदारी के हाकिम को तीन साल तक की क़ैद और १००० रुपये तक जुर्माना करने का अधिकार है तथा वह १२ बेंत भी लगवा सकता है। दीवानी और फौजदारी के सब फैसलों की अपील 'महद्राजसभा' में होती है, जिसके प्रेसिडेंट स्वयं महाराणा साहब हैं। उक्त सभा के मेम्बरों के इजलास को 'इजलास मामूली' कहते हैं और इस इजलास को मगरे ज़िले के सिवा सब मुक़द्दमों में १५००० रुपये तक के दीवानी दावे सुनने और फैसले करने, तथा फौजदारी मुक़द्दमों में सात बरस तक की क़ैद और ५००० रुपये तक जुर्माना करने, एवं २४ तक बेंत लगवाने का अधिकार है। संगीन

और बड़े मुक़द्दमे फ़ैसल करने के समय स्वयं महाराणा साहब सभा में उपस्थित रहते हैं और उसको 'इजलास कामिल' कहते हैं। महद्राजसभा के फ़ैसल किये हुए सब मुक़द्दमों के लिखित फ़ैसले स्वीकृति के लिये महाराणा साहब के पास जाते हैं और उनकी स्वीकृति हो जाने पर उनकी तामील कराई जाती है।

न्याय विभाग के अतिरिक्त राज्य के सब माली और मुल्की काम 'महकमा ख़ास' के अधीन हैं। महकमे ख़ास के हाकिम (जो अब दो रहते हैं) पहले के प्रधान के स्थान पर समझे जाते हैं। दूसरे राज्यों से संबंध रखनेवाली उदयपुर राज्य की कुल कार्रवाई भी इसी महकमे के द्वारा होती है। ज़िलों तथा परगनों के हाकिम महाराणा साहब की स्वीकृति से नियुक्त होते और पलटे जाते हैं।

जागीर, भोम और शासन

ऐसा माना जाता है कि यदि मेवाड़ की भूमि के १३½ विभाग किये जावें तो उनमें से ७ विभाग जागीरदार और भोम के, ३ शासन के और ३½ विभाग राज्य के खालसे के होते हैं। जागीर यहां दो प्रकार की है अर्थात् एक तो सैनिक सेवा के बदले में मिली हुई और दूसरी राजा की कृपा से प्रधान आदि अधिकारियों तथा अन्य पुरुषों को उनकी अच्छी सेवा के निमित्त दी हुई। सैनिक सेवा के बदले में जिनको परगने, गांव या ज़मीन दी गई है वे लोग 'काले पट्टे के जागीरदार' कहलाते हैं। महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के समय से यह नियम प्रचलित हुआ था कि सरदार (उमराव) के रहने के ख़ास गांव को छोड़कर बाकी के गांव समय समय पर पलट दिये जावें, परंतु इसमें प्रजा की हानि देखकर महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने यह प्रबंध कर दिया कि जब तक सरदार नौकरी अच्छी तरह देता रहे और सरकारी हक़ पूरे अदा करता रहे तब तक उसके पट्टे (जागीर) के गांव बदले न जावें। तभी से जागीरों की स्थिरता हुई है।

मेवाड़ में सरदारों की तीन श्रेणियां हैं। प्रथम श्रेणी के सरदार 'सोला' (सोलह) कहलाते हैं, क्योंकि महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने अपने प्रथम श्रेणी के सरदारों की संख्या १६ नियत की थी, जिनके ठिकानों के नाम निम्नलिखित हैं—

(१) सादड़ी, (२) बेदला, (३) कोठारिया, (४) सलूंबर, (५) घाणेराव, (६) बीजोल्यां, (७) बेगम (बेगूं), (८) देवगढ़, (९) देलवाड़ा,

(१०) आमेट, (११) गोगूंदा, (१२) कानोड़, (१३) भींडर, (१४) बदनौर, (१५) बानसी और (१६) पारसोली।

पीछे से महाराणा अरिसिंह (दूसरे[1]) ने भैंसरोड़, महाराणा भीमसिंह ने कुराबड़, महाराणा जवानसिंह ने आसींद तथा महाराणा शंभुसिंह ने मेजा के सरदारों को प्रथम श्रेणी में दाखिल किया, जिससे उनकी संख्या २० हो गई; परंतु घाणेराव के मारवाड़ में चले जाने से संख्या १९ ही रही, तो भी उनकी बैठकों की संख्या अब तक १६ ही नियत है। पीछे से जो चार बढ़ाए गये हैं वे उपर्युक्त १६ में से किसी नियत सरदार की अनुपस्थिति के समय दरबार में उपस्थित होते हैं।

द्वितीय श्रेणी के सरदारों की संख्या महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के समय ३२ होने से, उनको 'बत्तीस' कहते हैं, परन्तु अब उनकी संख्या ३२ से अधिक है। पहले की नियत की हुई संख्या में से कुछ तीसरी श्रेणी में आ गये, कितने एक नये भी बढ़ाए गये और थोड़े से, मेवाड़ से जो इलाक़े निकल गये उनके साथ, अन्य राज्यों में चले गये जिससे उनका संबंध अब मेवाड़ के साथ नहीं रहा। अब जो सरदार इस वर्ग में हैं उनके ठिकानों के नाम नीचे लिखे जाते हैं—

(१) हंमीरगढ़, (२) चावंड, (३) भदेसर, (४) बोहेड़ा, (५) भूंणास, (६) पीपल्या, (७) बेमाली, (८) तांणा, (९) रामपुरा, (१०) खैराबाद, (११) महुआ, (१२) लूंणदा, (१३) थाणा, (१४) बंबोरा, (१५) जरखाणा (धनेरिया), (१६) कैलवा, (१७) बड़ी रूपाहेली, (१८) भगवानपुरा, (१९) रूपनगर, (२०) बाबा दूलहसिंह, (२१) नेतावल, (२२) पीलाधर, (२३) लीमाड़ा, (२४) बाठरड़ा, (२५) बंबोरी, (२६) बाबा मदनसिंह (अब यह जागीर नहीं रही), (२७) सनवाड़, (२८) करेड़ा, (२९)

(१) मेवाड़ के इतिहास की कुछ पुस्तकों में वहां के राजाओं की नामावली में अरिसिंह नाम के तीन राजाओं का उल्लेख है—प्रथम, विजयसिंह का पुत्र; द्वितीय, हम्मीरसिंह का पिता; और तृतीय, राजसिंह दूसरे का पुत्र। राणा हम्मीरसिंह का पिता अरिसिंह कभी मेवाड़ का स्वामी नहीं हुआ, और कुंवरपदे में ही वह अपने पिता लक्ष्मणसिंह सहित अलाउद्दीन खिलजी से लड़ने में मारा गया था। वह तो सीसोदे की जागीर का स्वामी भी नहीं हुआ था, अतएव उसका नाम मेवाड़ के राजाओं की नामावली में दर्ज करना भ्रम है। वास्तव में अरिसिंह नाम के दो ही राजा हुए।

अमरगढ़, (३०) लसाणी, (३१) धरियावद, (३२) फलीचड़ा, (३३) संग्रामगढ़ और (३४) विजैपुर।

तीसरी श्रेणी के सरदारों को 'गोळ के सरदार' कहते हैं, जिनकी संख्या कई सौ है। प्रथम और द्वितीय श्रेणी के सब सरदारों को ताज़ीम दी जाती है और गोळ के सरदारों में भी कुछ ताज़ीमी सरदार हैं। मेवाड़ के समस्त ताज़ीमी सरदारों का संक्षिप्त वृत्तान्त इस राज्य के इतिहास के अंत में दिया जायगा। मेवाड़ के सरदारों को राजपूताने के अन्य राज्यों के सरदारों की अपेक्षा अधिक हक़ प्राप्त है, जिसका विवेचन आगे किया जायगा।

भोम भी एक प्रकार की जागीर है और भोमिये लोगों को गांवों का रक्षण करना तथा हाकिमों के पास रहना पड़ता है। भोमियों को खुराक-खर्च, और यदि घोड़ा हो तो उसका घासदाना भी, राज्य से मिलता है। ये लोग राज्य की सेवा के अतिरिक्त 'भोम बराड़' नामक कर भी देते हैं। भोमट ज़िले में कई छोटे छोटे भोमिये सरदार हैं, जो नियत खिराज दिया करते हैं।

देवमंदिर, ब्राह्मण, चारण, भाट, यति, संन्यासी, नाथ, फकीर आदि को पुण्यार्थ दी हुई भूमि को यहां शासन कहते हैं। ये लोग न तो कोई हासिल और न नौकरी ही देते हैं, परंतु किसी किसी से कुछ लागतें वसूल की जाती हैं। जो देवमंदिर राज्य के अधिकार में हैं, उनके लिये एक अधिकारी नियत है, जो 'हाकिम देव-स्थान' कहलाता है।

इस राज्य में कुल सेना ६०१५ सिपाहियों की है, जिसमें २५४९ क़वायदी और ३४६६ बेक़वायदी हैं। क़वायदी सेना में १७५० पैदल, ५६० सवार और २३९ गोलंदाज़ और तोपख़ाने के सिपाही हैं। बेक़वायदी सेना में ३००० पैदल और ४६६ सवार हैं। इनके अलावा सरदारों की 'जमियत' भी राजसेवा में रहा करती है। इस सेना के अतिरिक्त १४१ सवार 'इंपीरियल सर्विस ट्रुप्स' के भी हैं।

सेना

इस राज्य की सालाना आमद अनुमान ५१०००००[1] कलदार रुपये और खर्च उससे कुछ ही कम है। आमद के मुख्य सीगे ज़मीन का हासिल, दाण (सायर),

(१) ये अंक 'दी इंडियन स्टेट्स' नामक गवर्नमेंट की प्रकाशित पुस्तक से उद्धृत किये गये हैं; (ई० स० १९२१ का संस्करण)।

आमद-खर्च

गवर्नमेंट से मिलनेवाले नमक के रुपये, उदयपुर-चित्तोड़गढ़ रेल्वे की आमद, सरदारों की छटूंद तथा स्टैंप आदि हैं। खर्च के मुख्य सीगे सेना, पुलिस, हाथखर्च, महलों का खर्च, अदालती खर्च, अस्तबल खर्च, गवर्नमेंट का खिराज, धर्मादा, रेल-खर्च, सड़कें तथा इमारतें आदि हैं।

इस राज्य में प्राचीन काल से ही सोने, चांदी और तांबे के सिक्के चलते थे। चांदी के सिक्के द्रम्म, रूपक और तांबे के कार्षापण कहलाते थे। यहां से

सिक्का

मिलनेवाले सबसे पुराने सिक्के चांदी और तांबे के हैं, जिनपर कोई लेख नहीं, किन्तु मनुष्य, पशु, पक्षी, सूर्य, चन्द्र, धनुष, वृक्ष आदि चिह्न बने होते हैं। वे प्रारंभ में चौखूंटे होते थे और पीछे से उनके किनारों पर कुछ गोलाई भी आती रही। ऐसे चांदी और तांबे के सिक्के 'नगरी' (मध्यमिका) में अधिक मिलते हैं। लेखवाले सबसे पुराने सिक्के नगरी से ही प्राप्त हुए हैं, जो विक्रम संवत् पूर्व की तीसरी शताब्दी के हों, ऐसा उनपर के अक्षरों की आकृति से प्रतीत होता है। वहीं से यूनानी राजा मिनैंडर के द्रम्म भी मिले हैं। पश्चिमी क्षत्रपों के कई चांदी के सिक्के चित्तोड़ के बाज़ार में मुझे मिले और गुप्तों के सोने के सिक्के भी मेवाड़ में कभी कभी मिल आते हैं। हूणों के प्रचलित किये हुए चांदी और तांबे के गधिये सिक्के आहाड़ आदि कई स्थानों में पाये जाते हैं। वर्तमान राजवंश के संस्थापक राजा गुहिल के चांदी के सिक्कों का एक बड़ा संग्रह आगरे से प्राप्त हुआ है। 'गुहिलपति' लेखवाले सिक्कों का भी पता लगा है, परंतु गुहिलपति एक बिरुद होने से यह ज्ञात नहीं होता कि वे सिक्के किस राजा के हैं। शील (शीलादित्य) का एक तांबे का सिक्का और उसके उत्तराधिकारी बापा (कालभोज) की सोने की मोहर भी मिली है। खुम्माण (प्रथम) और महाराणा मोकल तक के राजाओं का कोई सिक्का अब तक प्राप्त नहीं हुआ। फिर महाराणा कुंभकर्ण के तीन प्रकार के तांबे के सिक्के भी पाये गये हैं और उसके चांदी के सिक्के भी चलते थे, ऐसा उल्लेख मिलता है। इसी तरह महाराणा सांगा, रत्नसिंह, विक्रमादित्य और उदयसिंह के सिक्के भी मिल आते हैं।

महाराणा अमरसिंह (प्रथम) ने बादशाह जहांगीर से सुलह की, तभी से मेवाड़ की टकसाल बंद हो गई, क्योंकि मुसलमानों के राज्यसमय अपने तथा अपने अधीनस्थ राज्यों में सिक्का उन्हीं का चलता था। जब बादशाह अकबर ने चित्तोड़ ले लिया तब वहां अपने नाम के सिक्के चलाये और टकसाल

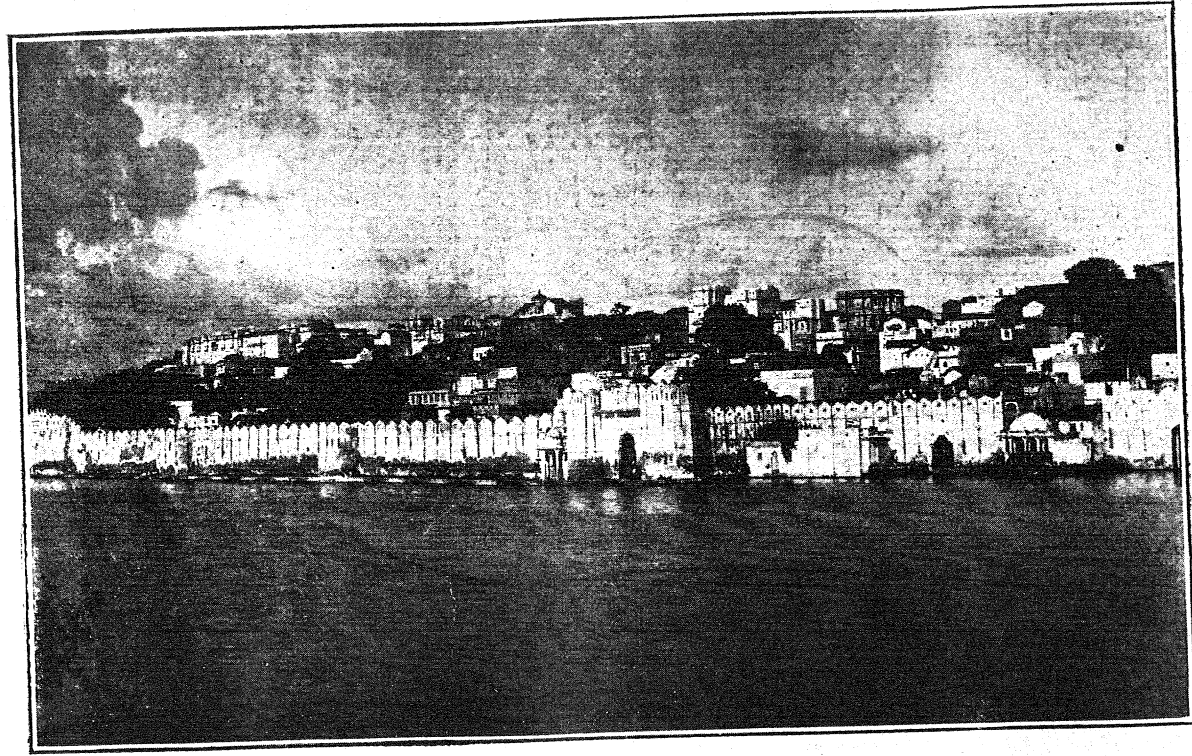
भी खोली। चित्तोड़ की टकसाल के अकबर के ही सिक्के मिलते हैं। जहांगीर तथा उसके पिछले बादशाहों के समय बाहरी टकसालों के बने हुए उन्हीं के सिक्के यहां चलते रहे, जिनका नाम पुराने बहीखातों में 'सिक्का एलची' मिलता है। मुहम्मद शाह और उसके पिछले बादशाहों के समय उनकी अवनत दशा में राजपूताने के भिन्न भिन्न राज्यों ने बादशाह के नामवाले सिक्कों के लिये शाही आज्ञा से अपने अपने यहां टकसालें जारी कीं। तब मेवाड़ में भी चित्तोड़, भीलवाड़े और उदयपुर में टकसालें खुलीं। उन टकसालों के बने हुए रुपये चित्तोड़ी, भीलाड़ी और उदयपुरी कहलाते हैं और उनपर शाहआलम (दूसरे) का लेख रहता है। इन रुपयों का चलना जारी होने पर एलची सिक्के बंद होते गये और पहले के लेन-देन में तीन एलची रुपयों के बदले में चार चित्तोड़ी, उदयपुरी आदि दिये जाने लगे। सरकार अंग्रेज़ी के साथ अहदनामा होने के बाद महाराणा स्वरूपसिंह ने अपने नाम का रुपया चलाया जिसको 'सरूपसाही' कहते हैं^१। उसकी एक तरफ 'चित्रकूट उदयपुर' और दूसरी ओर 'दोस्ति लंधन' (इंग्लैंड का मित्र) लेख नागरी लिपि में है। सरूपसाही अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी और अन्नी भी अब तक बनती रही है। सरूपसाही मुहर भी बनती हैं, परंतु उनका चलन नहीं है। मेवाड़ में कई तरह के तांबे के सिक्के चलते हैं, जो उदयपुरी (ढींगला), भीलवाड़ी (भीलाड़ी), त्रिशूलिया, भींडरिया, नाथद्वारिया आदि नामों से प्रसिद्ध हैं और वे भिन्न भिन्न तोल और मोटाई के होते हैं। उनपर कहीं अस्पष्ट फारसी अक्षर या त्रिशूल, वृक्ष आदि चिह्न बने होते हैं।

प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान

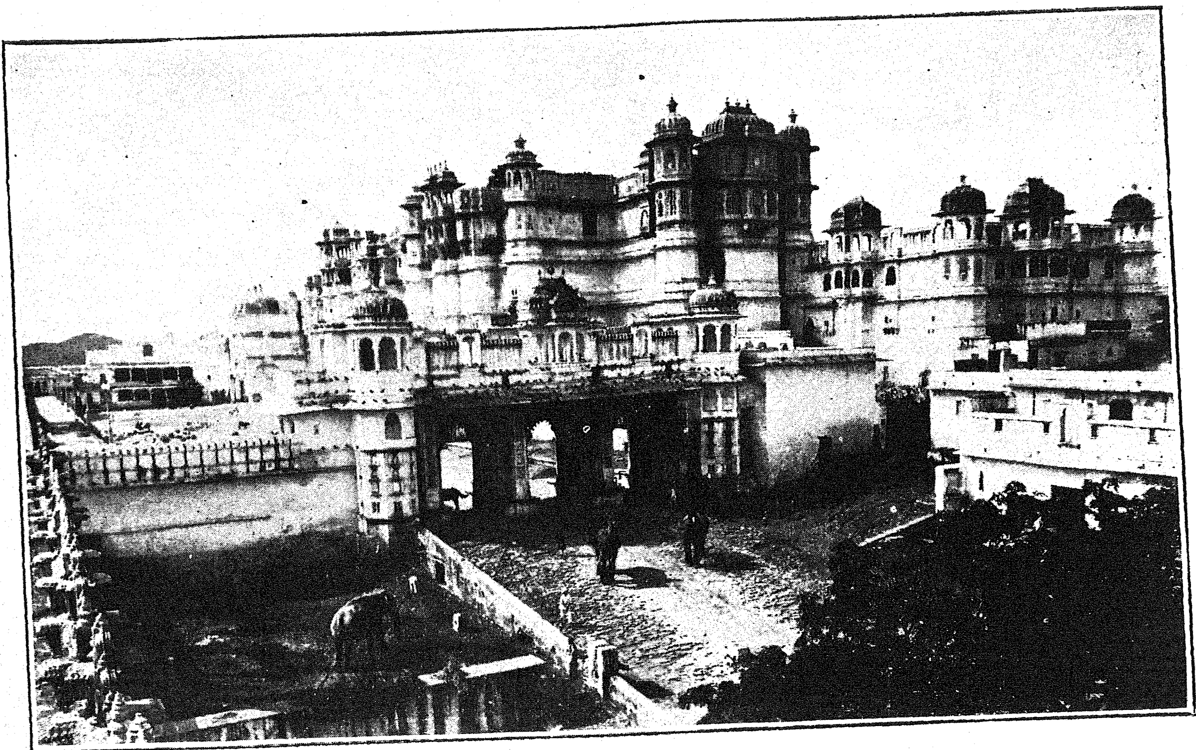
उदयपुर राज्य में प्राचीन स्थान बहुत हैं। यदि उनका सविस्तर वर्णन किया जाय तो एक बड़ी पुस्तक बन सकती है, परंतु यहां इतना स्थान नहीं है, अतएव उनमें से मुख्य मुख्य का बहुत ही संक्षिप्त वृत्तान्त नीचे लिखा जाता है—

---

(१) महाराणा भीमसिंह की बहिन चंद्रकुंवर बाई के स्मरण में उक्त महाराणा के समय में 'चांदोड़ी' रुपया, अठन्नी, चवन्नी आदि भी चलाई गई। उनपर पहले फारसी अक्षर थे, परंतु महाराणा स्वरूपसिंह ने फारसी अक्षरों को निकलवाकर उनके स्थान में बेल-बूटों के चिह्न बनवाये। ये सिक्के अब तक दान-पुण्य या विवाह आदि के अवसर पर देने के काम में आते हैं।



पीछोला तालाब और उसके पूर्वी तट का
नगर का दृश्य



त्रिपोलियों की तरफ़ से राजमहलों का दृश्य

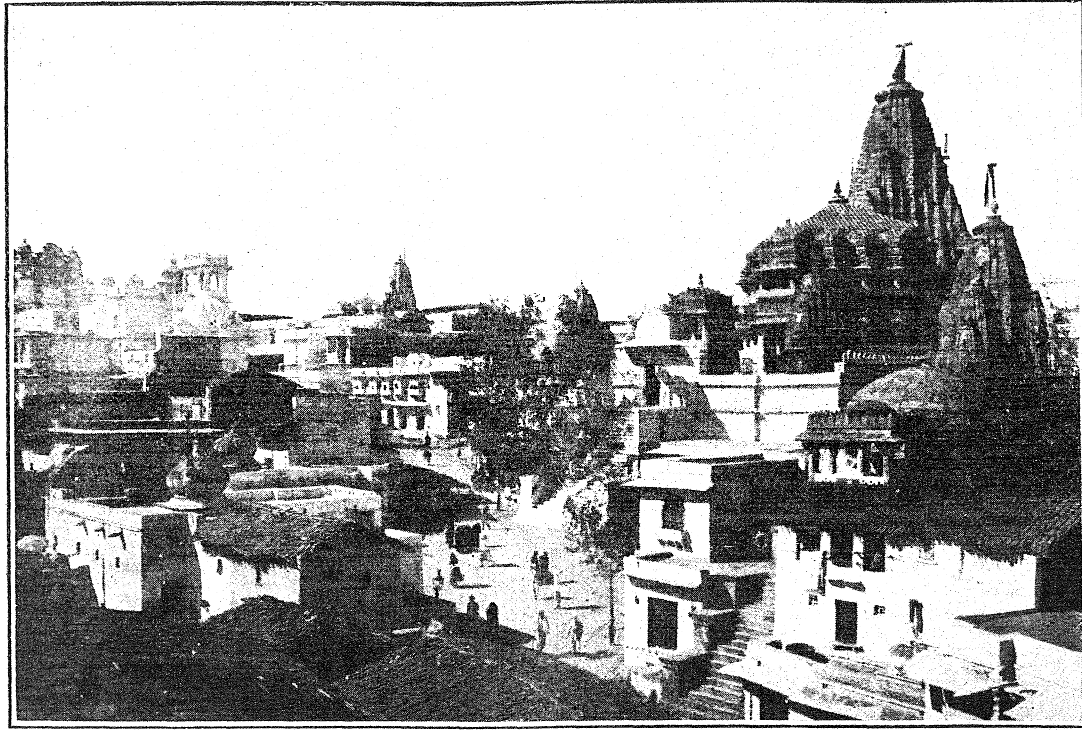
उदयपुर[1] शहर पीछोला तालाब के पूर्वी किनारे की उत्तर-दक्षिण स्थित पहाड़ी के दोनों पार्श्व पर बसा हुआ है। इसके पूर्व तथा उत्तर में समान भूमि आ गई है, जिधर नगर बढ़ता जाता है। शहर पुराने ढंग का बना हुआ है और एक बड़ी सड़क को छोड़कर बहुधा सब रास्ते व गलियां तंग हैं। इसकी तीन तरफ पक्की शहरपनाह है, जिसमें स्थान स्थान पर बुर्जें बनी हुई हैं। नगर के उत्तर तथा पूर्व में, जहां शहरपनाह पर्वतमाला से दूर है, एक चौड़ी खाई कोट के पास पास खुदी हुई है। शहर के दक्षिणी भाग में पहाड़ी की ऊंचाई पर पीछोले के किनारे पुराने राजमहल बड़े ही सुन्दर और प्राचीन शैली के बने हुए हैं। पुराने महलों में मुख्य छोटी चित्रशाली, सूरज चौपाड़, पीतमनिवास, मानिकमहल, मोतीमहल, चीनी की चित्रशाली, दिलखुशाल, बाड़ीमहल (अमर-विलास) मुख्य हैं। पुराने महलों के आगे अंग्रेज़ी तर्ज़ का शंभुनिवास नाम का नया महल, और उसके निकट वर्तमान महाराणा साहब का बनवाया हुआ शिव-निवास नामक सुविशाल महल लाखों रुपयों की लागत से तैयार हुआ है। राज-महल शहर के सबसे ऊंचे स्थान पर बनाये जाने के कारण और इनके नीचे ही विस्तीर्ण सरोवर होने से उनकी प्राकृतिक शोभा बहुत बढ़ी-चढ़ी है। राजमहलों के नीचे सज्जननिवास नाम का बड़ा ही रमणीय और विस्तृत बाग़ आ गया है, जिसमें जगह जगह फव्वारे छूटते हैं। इस बाग़ में एक तरफ शेर, नाहर, चीते आदि जानवरों; और रोझ, हिरण, ज़ेबरा, रींछ आदि जन्तुओं एवं तरह तरह के पक्षियों के रहने के स्थान निर्माण किये गये हैं। एक तरफ विक्टोरिया हॉल नामक विशाल भवन बना हुआ है, जिसके सामने महारानी विक्टोरिया की पूरे क़द की मूर्ति खड़ी है और भवन में पुस्तकालय, वाचनालय, अजायबघर आदि बने हैं। पुस्तका-लय में ऐतिहासिक पुस्तकों का बड़ा संग्रह है और अजायबघर में पुराने शिला-

उदयपुर

(१) पहले राजधानी चित्तोड़गढ़ थी, परंतु वह गढ़ सुदृढ होने पर भी एक ऐसी लंबी पहाड़ी पर बना हुआ है, जो अन्य पर्वतश्रेणियों से पृथक् आ गई है; अतएव शत्रु उसका घेरा डालकर क़िलेवालों के पास बाहर से रसद आदि का पहुंचना सहज ही बंद कर सकता है। यही कारण था कि यहां कई बार बड़ी बड़ी लड़ाइयों में क़िले के लोगों को, भोजनादि सामग्री खतम हो जाने पर, विवश दुर्ग के द्वार खोलकर शत्रुसेना से युद्ध करने के लिये बाहर आना पड़ा। इसी असुविधा का अनुभव करके महाराणा उदय-सिंह ने चारों तरफ पर्वतों से घिरे हुए सुरक्षित स्थान में उदयपुर नगर बसाकर उसे अपनी दूसरी राजधानी बनाया।

लेख तथा प्राचीन मूर्तियां भी यथेष्ट संख्या में हैं। शहर में देखने योग्य स्थान जगदीश का मन्दिर भी है। महाराणा जगत्सिंह प्रथम ने वि० सं० १७०६ (ई० स० १६५२) में लाखों रुपये व्यय कर इस देवालय का निर्माण किया था। यह विशाल और सुंदर शिखरबंद मंदिर एक ऊंचे स्थान पर बना हुआ होने के कारण बड़ा ही भव्य दीखता है। इस मंदिर के बाहरी भाग में चारों ओर अत्यंत सुंदर खुदाई का काम बना हुआ है, जिसमें गजथर, अश्वथर तथा संसारथर भी प्रदर्शित किये गये हैं। गजथर के कई हाथी और बाहरी द्वार के पास का कुछ भाग औरंगज़ेब की चढ़ाई के समय मुसलमानों ने तोड़ डाला था, जो नया बनाया गया है। इस के सिवा खंडित हाथियों की पंक्ति में नये हाथी भी यथास्थान लगा दिये हैं। उदयपुर में शिव, विष्णु, देवी आदि के तथा जैनों के कई मंदिर हैं, परन्तु ऐसा भव्य कोई भी नहीं है।

नगर के पश्चिमी किनारे पर पीछोला नामक विस्तीर्ण सरोवर आ गया है, जिसमें कई छोटे-बड़े टापू हैं और उनपर भिन्न भिन्न समय के कई सुंदर स्थान बने हुए हैं जिनमें से दो विशेष उल्लेखनीय हैं। राजमहलों के सामने और नगर के समीप जगनिवास नामक महल हैं, जिनको महाराणा जगत्सिंह द्वितीय ने एक टापू पर बनवाया था। इनमें बगीचे, हौज़ और फव्वारे इत्यादि कई वस्तुएं दर्शनीय हैं। प्राचीन महलों में संगमरमर का बना हुआ 'धोला-महल' देखने योग्य है। इसके सामने ही नहर का हौज़ बना हुआ है, जिसके चारों तरफ भूलभुलैया के रूप में बनी हुई नालियां, पुष्पों की क्यारियां एवं ताड़ के ऊंचे ऊंचे वृक्ष लगे हुए हैं, जिनसे यहां हरियाली की अच्छी छटा बनी रहती है। महाराणा शंभुसिंह तथा सज्जनसिंह ने अपने अपने नाम से शंभुप्रकाश और सज्जननिवास नामक महल बनवाये। सज्जननिवास महल में तैरने के लिये एक विशाल कुंड तथा फव्वारों की पंक्तियां और कुंड के दोनों तरफ बने हुए दालानों में बड़े बड़े दर्पण लगे हुए हैं। इसकी दूसरी मंज़िल में सिंहादि हिंसक जन्तुओं के आखेटसंबंधी चित्र, तथा चौक के एक दूसरे भाग में हाथियों से अन्य पशुओं के युद्ध के दृश्य अनेक रंगीन चित्रों द्वारा अंकित किये गये हैं, जिससे दर्शक का बड़ा मनोरंजन होता है। आजकल महाराजकुमार साहब सज्जननिवास की ऊपरी मंज़िल के पास एक नया महल बनवा रहे हैं, जिससे जगनिवास के इस भाग की शोभा और भी बढ़ जायगी। ये महल जल



जगदीश का मंदिर और नगर का भाग



जगनिवास (जलमहल)

के मध्य में बने हुए होने के कारण उष्ण काल में यहां बड़ी ठंडक रहती है। इस महल की दूसरी मंज़िल से सरोवर, राजमहल एवं नगर का दृश्य ऐसा रमणीय दीख पड़ता है कि सैकड़ों कोस दूर से उदयपुर तक आने के सारे श्रम को यात्री क्षण भर में भूल जाता है और उसके हृदय में नैसर्गिक आनंद की लहर उमड़ उठती है।

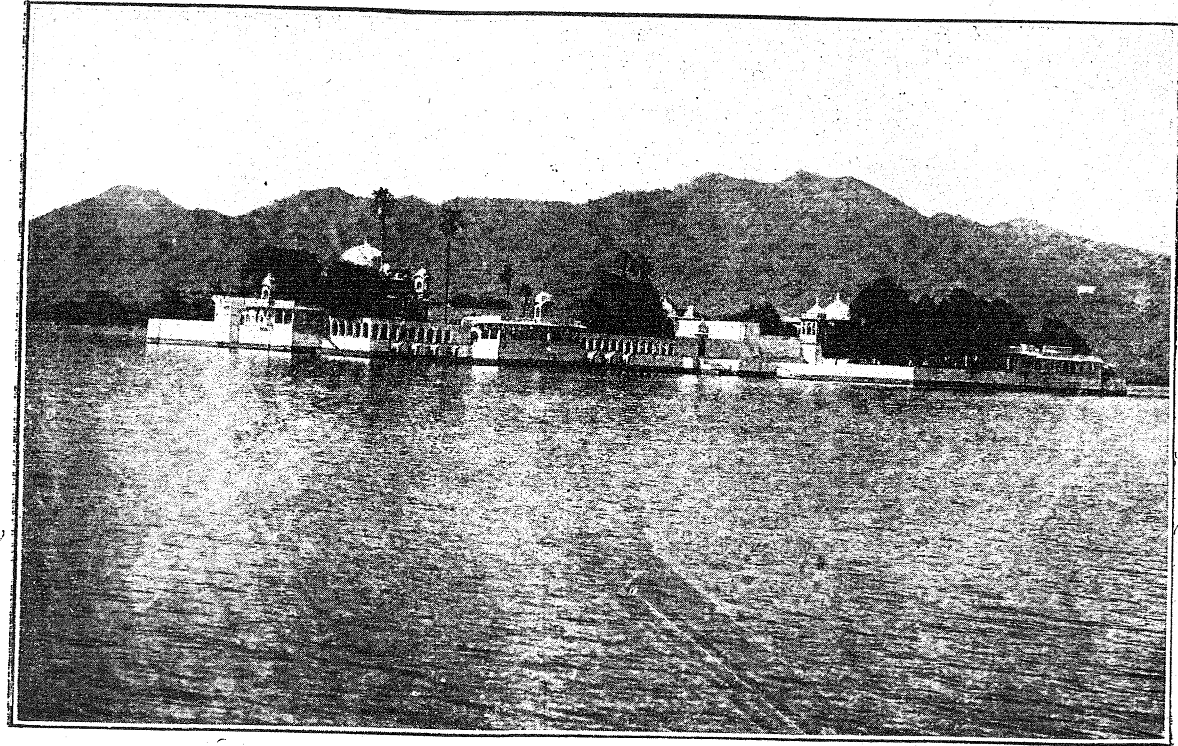
जगनिवास से अनुमान आध मील दक्षिण में एक दूसरे विशाल टापू पर जगमंदिर नामक पुराने महल बने हुए हैं। महाराणा कर्णसिंह ने इनको बनवाना प्रारंभ किया था, परन्तु उनका काम अधूरा ही रहा जिसको उनके पुत्र महाराणा जगत्सिंह (प्रथम) ने समाप्त किया, इसी से ये महल जगमंदिर कहलाते हैं। जगमंदिर के बाहर तालाब के किनारे पर पत्थर के हाथियों की एक पंक्ति बनी हुई है। जगनिवास की अपेक्षा जगमंदिर प्राचीन है और इसमें इतिहासप्रेमी के लिये दर्शनीय स्थान भी अधिक हैं इस महल में केवल प्राचीनता ही है और आजकल की तरह भांति भांति की सजावट यहां दृष्टिगोचर नहीं होती। जगमंदिर में मुख्य स्थान एक गुंबज़दार महल है, जिसको 'गोल महल' कहते हैं। इसके विषय में वहांवालों का यह कथन है कि शाहज़ादा खुर्रम (पीछे से बादशाह शाहजहां) अपने पिता जहांगीर से विद्रोह करने पर उदयपुर आकर कुछ समय तक रहा था, और उसी के लिये महाराणा कर्णसिंह ने यह महल बनवाया था, परंतु विशेषतः संभव तो यह है कि जब शाहज़ादा खुर्रम शाही फौज का सेनापति बनकर उदयपुर में रहा था, उस समय उसने उक्त महल बनवाया हो। इस महल को देखने से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण करने में आगरे के कारीगरों का हाथ अवश्य था, क्योंकि इसके गुंबज़ आदि में पत्थर की पच्चीकारी का जो काम है, वह मेवाड़ की शैली का नहीं, किंतु आगरे के सुप्रसिद्ध ताजमहल के ढंग का है। आश्चर्य्य नहीं कि इसी महल के गुंबज़ की शैली पर ताजमहल का गुंबज़ भी बना हो, क्योंकि यह ताजमहल से पहले का बना हुआ है। इस महल के सामने एक विशाल चौक है, जिसके मध्य में एक बड़ा हौज़ बना हुआ है। इस हौज़ के चारों किनारों पर एवं चौक के मध्य में फव्वारों की पंक्तियां बनी हुई हैं, जो ताजमहल के सामने के फव्वारों का स्मरण दिलाती हैं; परंतु अब ये बिगड़ी हुई दशा में हैं, जिससे जलधाराओं के छूटने का आनंद दर्शक को प्राप्त नहीं होता। इनके सिवा कई एक दालान और छोटे बड़े

अन्य स्थान भी हैं, जो पीछे से महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के समय में बने हैं। जगमंदिर में बहुत बड़ा बगीचा लग जाने से इसकी बहुत कुछ शोभावृद्धि हुई है। गोल महल के पूर्व पार्श्व में संगमरमर की केवल बारह बड़ी बड़ी शिलाओं से बना हुआ एक महल है। ई० स० १८५७ (वि० सं० १९१४) के सिपाही-विद्रोह के समय नीमच के कई एक अंग्रेज़ कुटुंबों को महाराणा स्वरूपसिंह ने अपने यहां लाकर सत्कारपूर्वक इन्हीं महलों में रक्खा था।

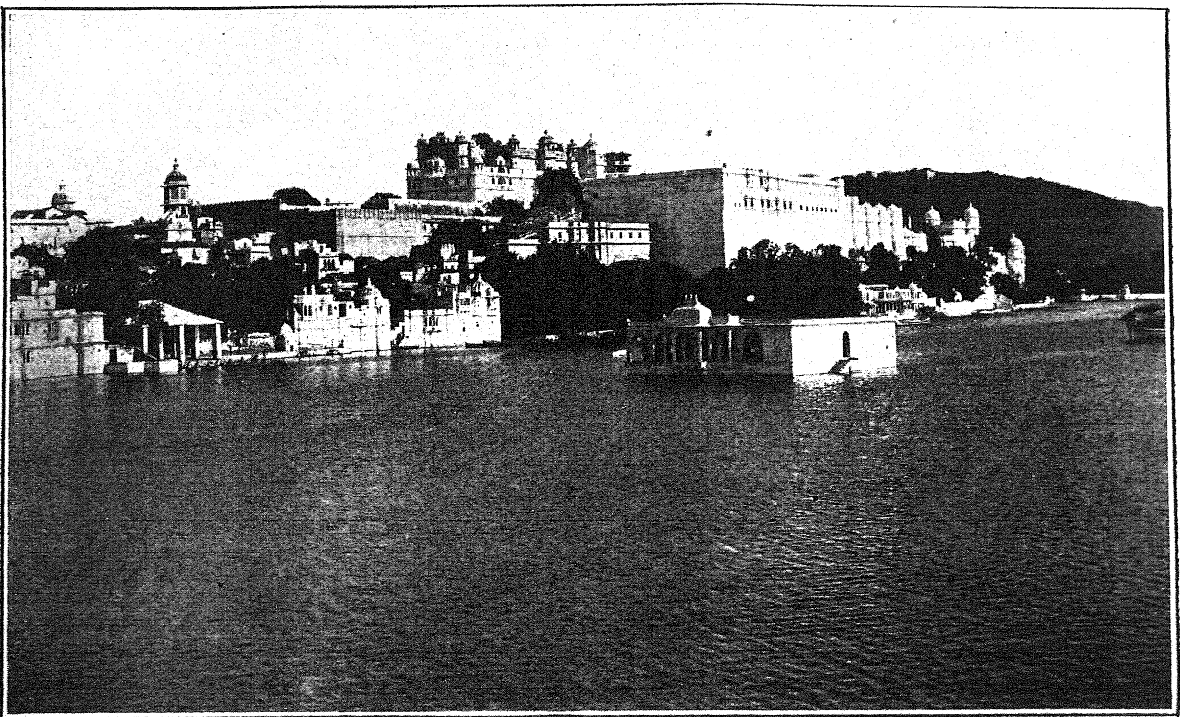
पीछोले के 'बड़ीपाल' नामक बांध के दक्षिणी किनारे से प्रारंभ होकर तालाव के दक्षिणी तट के पास पास पहाड़ियों की एक शृंखला चली गई है। बांध के समीप की ऊंची पहाड़ी 'माछला मगरा' (मत्स्य-शैल) कहलाती है और उस पर एकलिंगगढ़ नामक प्राचीन दुर्ग बना हुआ है, जहां कुछ तोपें भी रहती हैं। उदयपुर पर मरहटों के आक्रमण के समय इस दुर्ग ने नगर की रक्षा करने में बहुत कुछ सहायता की थी। दक्षिण में अर्वली पर्वतमाला की इन श्यामवर्ण पहाड़ियों की पंक्ति आ जाने से तालाब की शोभा बढ़ गई है। इधर दाक्षिणी तट पर 'खास ओदी' नामक एक स्थान है जहां सिंह-शूकर-युद्ध के लिये चौकोर मकान बना हुआ है, जिसकी छत पर बैठकर यह युद्ध देखने में बड़ा ही आनंद रहता है। खास ओदी से कुछ दूर पश्चिम में सरोवर के दक्षिणी सिरे के निकट सीसारमा गांव है, जहां वैद्यनाथ नामक शिवालय देखने योग्य है। इस शिवालय को महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय की माता देवकुमारी ने बनवाया था। अपनी मातृभक्ति के कारण महाराणा संग्रामसिंह ने लाखों रुपये व्यय कर इस देवालय की प्रतिष्ठा वि० सं० १७७२ माघ सुदि १२ को बड़ी धूमधाम से की थी, जिसके उत्सव में कोटे के महाराव भीमसिंह, डूंगरपुर के रावल रामसिंह तथा कई प्रसिद्ध राजवंशी विद्यमान थे[1] और राजमाता ने सुवर्ण का तुलादान किया था। मंदिर में दो बड़ी बड़ी शिलाओं पर खुदी हुई

---

(१) प्रासादवैवाह्यविधिं दिदृक्षुः कोटाधिपो भीमनृपोभ्यगच्छत् ।
रथाश्वपत्तिद्विपनद्धसैन्यो दिल्लीपसम्मानितबाहुवीर्यः ॥ १५ ॥
यो डूंगराख्यस्य पुरस्य नाथो दिदृक्षया रावलरामसिंहः ।
सोऽप्यागमत्तत्र समग्रसैन्यो देशान्तरस्था अपि चान्यभूपाः ॥ १६ ॥
वैद्यनाथ के मंदिर की प्रशस्ति, प्रकरण पांचवां.



जगमंदिर (जलमहल)



पीछोले की तरफ़ से नगर, राजमहल और
बड़ीपाल का दृश्य

वि० सं० १७७५ की प्रशस्ति लगी है, जिसमें उक्त उत्सव का विस्तृत वर्णन है; यह प्रशस्ति इतिहास एवं इतिहासप्रेमियों के लिये बड़े महत्त्व की है।

उदयपुर के पश्चिम में एक कोस दूर बांसदरा पहाड़ पर, जो समुद्र की सतह से ३१०० फुट ऊंचा है, महाराणा सज्जनसिंह ने सुंदर महल बनवाना आरंभ किया था और उसका नाम सज्जनगढ़ रक्खा था। सज्जनगढ़ के महलों में जो काम महाराणा सज्जनसिंह के समय में अपूर्ण रह गया उसे वर्तमान महाराणा साहब ने पूर्ण कराया। इसकी पहली मंज़िल में पत्थर की खुदाई का काम बड़ा ही सुंदर बना हुआ है। ऊंचाई होने के कारण यहां से पीछोला, राज-महल, नगर, फतहसागर, दूर दूर के कई गांव एवं चारों ओर की पर्वतमाला का दृश्य देखने में अपूर्व आनंद आता है, इस कारण दर्शक दो मील की चढ़ाई चढ़कर ऊपर जाने पर अपना सारा श्रम क्षण भर में भूल जाता है। उष्ण काल में यहां गरमी कम रहती है और प्रकृति-सौंदर्य के निरीक्षण के लिये यह सर्वोत्तम स्थान है।

नगर के हाथीपोल दरवाज़े के बाहर ही थोड़ी दूर पर रेज़िडेन्सी का भवन बना हुआ है और यहां से पश्चिम में जाने पर फतहसागर के बांध के नीचे ही 'सहेलियों की बाड़ी' नामक बाग़ आता है। यहां भी मामूली ढंग का एक महल बना हुआ है, जिसके आगे के चौक में एक बहुत बड़ा हौज़ है। इस बाड़ी में महलों की अपेक्षा फव्वारों का दृश्य बड़ा ही चित्ताकर्षक है। हौज़ के चारों तरफ फव्वारों की पंक्तियां लगी हुई हैं, जिनसे सैकड़ों धाराओं के एक साथ छूटने पर दर्शक को ऐसा मालूम होता है कि मानो एक जल-भित्ति खड़ी हो गई हो। हौज़ के चारों किनारों पर बनी हुई छत्रियों के छज्जों आदि विभिन्न भागों तथा उनके ऊपर बने हुए चिड़िया आदि भांति भांति के पक्षियों की चोंचों से ऊंची धाराएं चारों ओर छूटती हैं और हौज़ के बीच की छत्री के छज्जों में से चारों तरफ जल इस प्रकार गिरता है, जैसे एक प्रपात फूट निकला हो। इस बाग़ में फूलों से लदी हुई क्यारियों और हरी हरी दूब की अद्भुत छटा के साथ साथ स्थान स्थान पर छोटे बड़े फव्वारों की ऐसी विचित्र रचना की गई है कि उनके सौंदर्य का ठीक अनुमान देखने से ही हो सकता है। यहां एक विशाल अंडाकृति कुंड है, जिसमें कमल-वन लगा हुआ है। कुंड के चारों तरफ चार चार इंच के अंतर पर फव्वारों के छिद्र बने हैं तथा मध्य में एक विशाल

फव्वारा लगा हुआ है और उस कुंड के आमने-सामने एक एक पत्थर के बने हुए चार हाथी हैं। कमल-वन के मध्य का विशाल फव्वारा जब चलने लगता है तब हाथियों की सूंडों से मोटी मोटी धाराएं बहुत दूर तक छूटती हैं और सहस्रों धाराओं के एक साथ निकलने पर दर्शक को यह अद्भुत दृश्य ऐसा प्रतीत होता है, मानो वर्षारंभ हो गया हो। फव्वारों के बड़े वेग से छूटने का कारण यह है कि इनमें जल बड़ी ऊंचाई पर स्थित फतहसागर से नलों द्वारा पहुंचाया जाता है। राजपूताने में फव्वारों की सुंदर छटा के लिये भरतपुर राज्य का डीग नामक स्थान प्रसिद्ध है; परंतु जिन्होंने डीग के फव्वारे छूटते हुए देखे हैं वे भी इन फव्वारों की मनोमोहक छटा के आगे डीग के फव्वारों की शोभा को कहीं फीकी बतलाते हैं। फव्वारों की यह अद्भुत रचना वर्तमान महाराणा साहब की इच्छा के अनुसार की गई है। श्रावण मास की हरियाली अमावास्या के अवसर पर इस बाड़ी में नगर निवासियों का बड़ा मेला लगता है। उदयपुर में यह बाड़ी भी मन-बहलाव के लिये एक उपयुक्त स्थान है।

उदयपुर में नगर का भाग तो प्राचीन ढंग का बना हुआ है और जगदीश के मंदिर तथा राजमहलों के अतिरिक्त देखने योग्य भव्य भवन विशेष नहीं हैं, तो भी इस नगर के आसपास का प्राकृतिक दृश्य इतना मनोहर है कि उसका ठीक अनुमान देखने से ही हो सकता है। नगर के पास दो सुविशाल सरोवर, मध्य में हरियाली एवं सुरम्य महलोंवाले टापू, कहीं बांध की शोभा, उसके पीछे बड़े बड़े बाग़ और तालाब के किनारे पहाड़ी पर राजमहलों का दृश्य आदि उदयपुर के विषय में विशेष उल्लेखनीय हैं। यहां के प्रकृति-सौंदर्य को देखकर दर्शक के हृदय से यही उद्गार उठने लगते हैं कि प्रकृति देवी के सौंदर्य के सम्मुख मनुष्य की बाह्य आडंबरमयी सजावट कितनी नीरस हो जाती है। यही कारण है कि सुदूर देशों से सैकड़ों यात्री इस अपूर्व शोभा को देखने के लिये प्रतिवर्ष उदयपुर आते हैं और यहां की प्राकृतिक छटा की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए अपने यात्रा-श्रम को सफल मानते हैं[१]।

उदयपुर नगर से अनुमान डेढ़ मील के अंतर पर ईशान कोण में रेल्वे स्टेशन के समीप आहाड़ नामी प्राचीन नगर के खंडहर हैं। इसको जैन ग्रंथों तथा प्राचीन

(१) उदयपुर नगर तथा आसपास के स्थानों के विस्तृत वर्णन के लिये देखो, 'माधुरी', वर्ष ३, खंड १; पृ० ४८०-८६ और ५९३-६०१।



सहेलियों की बाड़ी में महलों के सामनेवाले
हौज़ के फ़व्वारों का दृश्य

आहाड़ शिलालेखों में आघाटपुर अथवा आटपुर लिखा है। यहां गंगोद्भेद (गंगोभेव) नामक एक पुरातन तीर्थरूप चतुरस्र कुंड है, और उसके मध्य में एक प्राचीन छत्री बनी हुई है, जिसको लोग उज्जयिनी के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य के पिता गंधर्वसेन का स्मारक बतलाते हैं। यहां पर यह कुंड बड़ा ही पवित्र माना जाता है और सैकड़ों नागरिक समय समय पर स्नानार्थ यहां आते हैं। अत्यन्त प्राचीन होने के कारण यह कुंड जीर्ण-शीर्ण हो गया था, परंतु उदयपुर के भूतपूर्व दीवान कोठारी बलवंतसिंहजी के यत्न से इसका जीर्णोद्धार हो जाने के कारण लोगों के लिये स्नानादि का सुबीता हो गया। कुंड के दक्षिण में शिवालय के सामने एक दूसरा चतुरस्र कुंड तथा तिबारियां बनी हुई हैं। इन्हीं कुंडों के निकट अहाते से घिरा हुआ महाराणाओं का दाहस्थान है, जिसको यहां 'महासती' कहते हैं। महाराणा प्रताप के बाद राणाओं का अंत्येष्टि संस्कार बहुधा यहीं होता रहा। बहुतसी छोटी-बड़ी छत्रियों में से महाराणा अमरसिंह (प्रथम), अमरसिंह द्वितीय तथा संग्रामसिंह द्वितीय की छत्रियां बड़ी भव्य बनी हुई हैं।

प्राचीन काल में आहाड़ एक समृद्धिशाली नगर था, जिसमें कितने ही देवालय आदि बने हुए थे। मालवे के परमार राजा मुंज (वाक्पतिराज, अमोघवर्ष) ने, वि० सं० १०३० के आसपास इस नगर पर आक्रमण कर इसे तोड़ा था। इसके बाद भी यह नगर आबाद रहा, परंतु कहते हैं, पीछे से भूकंप के कारण नष्ट हो गया। इन खंडहरों में धूलकोट नामक एक ऊंचा स्थान है, जहां पर खोदने से बड़ी बड़ी ईंटें, मूर्तियां एवं प्राचीन सिक्के मिल आते हैं। आजकल प्राचीन नगर के स्थान में उसी नाम का नवीन ग्राम है, जो कुछ शताब्दियों पूर्व बसाया गया था। यहां के नये बने हुए मंदिरों में पुराने मंदिरों के बहुतसे पत्थरों का उपयोग किया गया है, जिनके साथ कई मूर्तियां तथा शिलालेख भी तोड़-फोड़ कर चाहे जहां लगा दिये गये हैं। यहां नये बने हुए चार जैन मंदिरों में भी जहां-तहां प्राचीन मूर्तियां दीवारों में लगी हुई दीखती हैं। मेवाड़ के राजा भर्तृभट द्वितीय के समय का वि० सं० १००० का एक शिलालेख तोड़कर उपर्युक्त दूसरे कुंड की दीवार में लगाया गया है। एक प्राचीन शिलालेख से जैन मंदिर की और दूसरे से हस्तमाता के मंदिर की सीढ़ी बनाई गई थी और राजा अल्लट के समय के वि० सं० १०१० के शिलालेख से

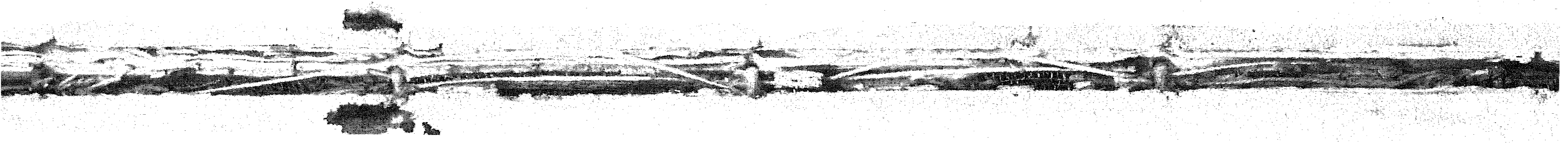
सारणेश्वर के मंदिर का छबना बनाया गया है, परंतु इन चार में से दो शिला-लेख विक्टोरिया हॉल के संग्रहालय में सुरक्षित किये गये हैं। राजा अल्लट के समय का लेख मूल में वाराह के मंदिर में लगा हुआ था, जो मेवाड़ के इतिहास के लिये बड़े महत्त्व की वस्तु है। हमारे प्राचीन इतिहास के सच्चे प्रामाणिक साधनरूप इन शिलालेखों को सुरक्षित रखने की बड़ी आवश्यकता है।

एकलिंगजी

उदयपुर से १२ मील उत्तर में एकलिंगजी का प्रसिद्ध मंदिर है, जो दो पहाड़ियों के बीच में बना हुआ है। जिस गांव में यह मंदिर है उसको कैलाशपुरी कहते हैं। एकलिंगजी महाराणा के इष्टदेव हैं, इतना ही नहीं किंतु मेवाड़ के राज्य के मालिक भी एकलिंगजी ही माने जाते हैं और महाराणा उनके दीवान कहलाते हैं, इसी से महाराणा को राजपूताने में 'दीवाणजी' कहते हैं। यह सुविशाल मंदिर एक ऊंचे कोट से घिरा हुआ है। प्रारंभ में इस मंदिर को किसने बनवाया, इसका कोई लिखित प्रमाण तो नहीं मिलता, परंतु जनश्रुति से प्रसिद्ध है कि सर्वप्रथम राजा बापा (बापा रावल) ने उसे बनाया था; फिर मुसलमानों के हमले में टूट जाने के कारण महाराणा मोकल ने उसका जीर्णोद्धार कराकर एक कोट बनवाया। तदनंतर महाराणा रायमल ने नये सिर से वर्तमान मंदिर का निर्माण किया। इस मंदिर में पूजन बड़े ठाट के साथ होता है और प्रत्येक पूजन के में कई घंटे लग जाते हैं, क्योंकि यहां की पूजा विशेष रूप से तैयार की हुई एक पद्धति[1] के अनुसार होती है। एकलिंगजी की मूर्ति चौमुखी है, जिसकी प्रतिष्ठा महाराणा रायमल ने की थी। मंदिर के दक्षिणी द्वार के सामने एक ताक में महाराणा रायमल की १०० श्लोकों-वाली एक प्रशस्ति लगी हुई है, जो मेवाड़ के इतिहास तथा इस मंदिर के वृत्तांत के लिये बड़े महत्त्व की है।

इस मंदिर के अहाते में कई और भी छोड़े बड़े मंदिर बने हुए हैं, जिनमें से एक महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) का बनवाया हुआ विष्णु का मंदिर है, जिसको

(१) उक्त पद्धति के अनुसार उत्तर के मुख को विष्णु का सूचक मानकर विष्णु के भाव से उसका पूजन किया जाता है, परंतु वास्तव में यह, पद्धति प्रचलित करनेवालों की भूल ही है, क्योंकि शिव की ऐसी कई मूर्तियां मिल चुकी हैं, जिनमें चारों ओर मुख के स्थान में उनके सूचक देवताओं की मूर्तियां बनी हुई हैं; अर्थात् पूर्व में सूर्य की, उत्तर में ब्रह्मा की, पश्चिम में विष्णु की, और दक्षिण में रुद्र (शिव) की हैं। ऐसी दो प्राचीन मूर्तियां राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) में तथा इंडियन म्यूज़ियम् (कलकत्ता) आदि में भी सुरक्षित हैं।



एकलिंगजी का मंदिर-समूह

लोग 'मीरांबाई का मंदिर' कहते हैं और आजकल घी, तेल आदि सामान रखने के लिये इसका दुरुपयोग होता है। एकलिंगजी के मंदिर से दक्षिण में कुछ ऊंचाई पर यहां के मठाधिपति ने वि० सं० १०२८ (ई० स० ९७१) में लकुलीश¹ का मंदिर बनवाया था और इस मंदिर से कुछ नीचे विंध्यवासिनी देवी का मंदिर है। बापा का गुरु नाथ (साधु) हारीतराशि एकलिंगजी के मंदिर का महंत था और उसके पीछे पूजा का कार्य उसकी शिष्यपरंपरा के अधीन रहा। इन नाथों का पुराना मठ एकलिंगजी के मंदिर से पश्चिम में बना हुआ है। पीछे से नाथों का आचरण बिगड़ता गया और वे स्त्रियां भी रखने लगे, जिससे उनको अलग कर संन्यासी मठाधिपति नियत किया गया, तभी से यहां के मठाधीश संन्यासी ही होते हैं, और वे गुसाईंजी (गोस्वामीजी) कहलाते हैं। गुसाईंजी की अध्यक्षता में तीन चार ब्रह्मचारी रहते हैं, वे ही लोग यहां का पूजन किया करते हैं, और स्वयं महाराणा

(१) लकुलीश या लकुटीश शिव के १८ अवतारों में से एक माना जाता है। प्राचीन काल में पाशुपत (शैव) सम्प्रदायों में लकुलीश सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध था, और अब तक सारे राजपूताना, गुजरात, मालवा, बंगाल, दक्षिण आदि में लकुलीश की मूर्तियां पाई जाती हैं। लकुलीश की मूर्ति के सिर पर जैन मूर्तियों के समान केश होते हैं, जिससे कोई कोई उसको जैन मूर्ति मान लेते हैं, परंतु वह जैन नहीं, किंतु शिव के एक अवतार की मूर्ति है। वह द्विभुज होती है, उसके बायें हाथ में लकुट (दंड) रहता है, जिसपर से लकुलीश तथा लकुटीश नाम पड़े, और दाहिने हाथ में बीजोरा नामक फल होता है, जो शिव की त्रिमूर्तियों के मध्य के दो हाथों में से एक में पाया जाता है। यह मूर्ति पद्मासन से बैठी हुई होती है—

न(ल)कुलीशं ऊर्ध्वमेढ्रं पद्मासनसुसंस्थितं ।
दक्षिणे मातुलिंगं च वामे दण्डं प्रकीर्तितम् ॥

विश्वकर्मावतार—वास्तुशास्त्रम्।

लकुलीश की किसी किसी मूर्ति के नीचे नंदी और कहीं कहीं दोनों तरफ एक एक जटाधारी साधु भी बना हुआ होता है। लकुलीश ऊर्ध्वरेता (जिसका वीर्य कभी स्खलित न हुआ हो) माना जाता है, जिसका चिह्न (ऊर्ध्वलिंग) मूर्ति पर स्पष्ट होता है। इस समय इस प्राचीन सम्प्रदाय का अनुयायी कोई नहीं रहा, परंतु प्राचीन काल में इसके माननेवाले बहुत थे, जिनमें मुख्य साधु होते थे। माधवाचार्यरचित-'सर्वदर्शनसंग्रह' में इस संप्रदाय के सिद्धान्तों का कुछ विवरण पाया जाता है, और इसका विशेष वृत्तान्त प्राचीन शिलालेखों तथा विष्णुपुराण आदि में मिलता है। इस संप्रदाय के साधु कनफड़े (नाथ) होते हों, ऐसा अनुमान होता है।

साहब भी कभी कभी पूजा करते हैं। पूजन की सामग्री आदि पहुंचाने के लिए कई परिचारक नियत हैं जो टहलुए कहलाते हैं।

नागदा

एकलिंगजी के मंदिर से थोड़े ही अंतर पर मेवाड़ के राजाओं की पुरानी राजधानी नागदा नगर है, जिसको संस्कृत शिलालेखों आदि में 'नागहृद' या 'नागद्रह' लिखा है। पहले यह बहुत बड़ा और समृद्धिशाली नगर था, परंतु अब तो बिल्कुल ऊजड़ पड़ा हुआ है। यहां प्राचीन काल में अनेक शिव, विष्णु आदि के एवं जैन मंदिर बने हुए थे, जिनमें से कितने एक अब तक विद्यमान हैं। दिल्ली के सुलतान शमसुद्दीन अल्तमश ने अपनी मेवाड़ की चढ़ाई में इस नगर को तोड़ा, तभी से इसकी अवनति होती गई, और महाराणा मोकल ने इसके निकट अपने भाई बाघसिंह के नाम से बाघेला तालाव बनवाया, जिससे इस नगर का कुछ अंश जल में डूब गया। इस समय जो मंदिर यहां विद्यमान हैं, उनमें से दो संगमरमर के बने हुए हैं, जिनको 'सास बहू के मंदिर' कहते हैं। इनमें से दक्षिण की तरफ सास के मंदिर की खुदाई बड़ी ही सुन्दर है और उसका समय वि० सं० ११वीं शताब्दी के आसपास अनुमान किया जा सकता है। एक विशाल जैन-मंदिर भी टूटी फूटी दशा में खड़ा है, जिसको 'खुमाण रावल का देवरा' कहते हैं। उसमें भी खुदाई का काम अच्छा है। दूसरा जैन-मंदिर अदबदजी का मंदिर कहलाता है, उसके भीतर ९ फुट ऊंची शांतिनाथ की बैठी हुई मूर्ति है। इस अद्भुत मूर्ति के कारण ही लोगों ने इसका नाम अदबदजी (अद्भुतजी) का मंदिर रख लिया है। उक्त मूर्ति के लेख से ज्ञात होता है कि महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के राज्य-समय वि० सं० १४९४ (ई० स० १४३७) में ओसवाल सारंग ने वह मूर्ति बनवाई थी। इन मंदिरों के अतिरिक्त और भी कई छोटे छोटे मंदिर वहां विद्यमान हैं, परंतु विस्तार भय से हमने उनका हाल यहां लिखना उचित नहीं समझा।

श्रीनाथजी

उदयपुर से ३० मील और एकलिंगजी से १७ मील उत्तर में नाथद्वारा नामक स्थान में वल्लभ संप्रदायवाले वैष्णवों के मुख्य उपास्य देवता श्रीनाथजी का मंदिर है। समस्त भारत के वैष्णव नाथद्वारे को अपना पवित्र तीर्थ मानकर यात्रार्थ यहां आते हैं और बहुत कुछ भेट चढ़ाते हैं। अन्य देवालयों के समान यहां दर्शन घंटों तक नहीं होते, किन्तु पुष्टिमार्ग के नियमानुसार समय समय पर ही होते हैं, जिनको 'झांकी' कहते हैं। वल्लभ संप्रदाय के संस्थापक श्रीवल्लभाचार्यजी तैलंग जाति के सोमयाजी यज्ञनारायण

भट्ट के वंशज और लक्ष्मण भट्ट के पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १५३५ (ई० स० १४७८) में चम्पारण्य में हुआ था। इन्होंने वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया और कई जगह शास्त्रार्थों में विजयी होकर शुद्धाद्वैत संप्रदाय का, जिसको वल्लभ संप्रदाय भी कहते हैं, प्रचार किया, और दिन दिन इस संप्रदाय के अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई। गोवर्धन पर्वत पर इनको श्रीनाथजी की मूर्ति मिली थी, ऐसी प्रसिद्धि है। वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथजी को गुसाईं (गोस्वामी) की पदवी मिली तभी से उनकी संतान गुसाईं कहलाई। विट्ठलनाथजी के सात पुत्र हुए जिनके पूजन की मूर्तियां अलग अलग थीं। ये वैष्णवों में 'सात स्वरूप' नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके ज्येष्ठ पुत्र गिरिधरजी टीकायत (तिलकायत) थे इसी से उनके वंशज नाथद्वारे के गुसाईंजी टीकायत महाराज कहलाते हैं और श्रीनाथजी की मूर्ति गिरिधरजी के पूजन में रही। जब बादशाह औरंगज़ेब ने हिन्दुओं की मूर्तियां तोड़ने की आज्ञा दी, उस समय इस मूर्ति के तोड़े जाने के भय से उक्त गिरिधरजी महाराज के पुत्र दामोदरजी (बड़े दाऊजी) श्रीनाथजी की प्रतिमा को लेकर वि० सं० १७२६ (ई० स० १६६९) में गुप्त रीति से गोवर्धन से निकल गये और आगरा, बूंदी, कोटा, पुष्कर और कृष्णगढ़ में ठहरते हुए चांपासणी गांव में, जो जोधपुर से तीन कोस दूर है, पहुंचे, परन्तु जोधपुर के महाराज जसवंतसिंह के अधिकारियों की दृढता न देखकर गोस्वामीजी के काका गोपीनाथजी उदयपुर के महाराणा राजसिंह के पास आये और श्रीनाथजी के विषय में अपनी इच्छा प्रकट की, जिसपर महाराणा ने उत्तर दिया कि आप प्रसन्नतापूर्वक श्रीनाथजी को मेवाड़ में पधरावें। मेरे एक लाख राजपूतों के सिर कट जावेंगे उसके बाद औरंगज़ेब इस मूर्ति के हाथ लगा सकेगा। इसपर गोपीनाथजी बड़े प्रसन्न होकर चांपासणी को लौटे और वि० सं० १७२८ (ई० स० १६७१) कार्तिक सुदि १५ को वहां से प्रस्थान कर मेवाड़ की तरफ चले। जब मेवाड़ की सीमा में पहुंचे तो महाराणा पेशवाई कर श्रीनाथजी को ले आये और बनास नदी के किनारे सिहाड़ गांव के पासवाले खेड़े में वि० सं० १७२८ फाल्गुन वदि ७ को उनकी स्थापना हुई। वहां नया गांव बसने लगा, और दिन दिन उसकी उन्नति होते हुए अब एक अच्छा क़स्बा बन गया है, जिसमें ८५२४ मनुष्यों की बस्ती है। वर्तमान टीकायत महाराज गोस्वामीजी गोवर्धनलालजी हैं। इनके समय में नाथद्वारे की विशेष उन्नति हुई और कई बड़ी

बड़ी धर्मशालाएं बनीं, जिससे यात्रियों के ठहरने का सब तरह से सुबीता हो गया है। गोवर्धनलालजी महाराज ने नाथद्वारे में संस्कृत पाठशाला, अंग्रेज़ी तथा हिंदी के मदरसे, देशी औषधालय, अस्पताल, पुस्तकालय आदि स्थापित किये हैं और ये संस्कृत के कई विद्वानों को आदरपूर्वक अपने पास रखते हैं। सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् भारतमार्तण्ड पण्डित गट्टूलालजी को इन्होंने बड़े आग्रह के साथ कई बरसों तक नाथद्वारे में रक्खा था। आप बड़े ही विद्याप्रेमी, मिलनसार, गुणग्राहक और श्रीनाथजी की सेवा में तत्पर हैं। उदयपुर के महाराणा, राजपूताना एवं अन्य बाहरी राज्यों के राजाओं तथा बहुतसे सरदारों की तरफ से कई गांव, कुए आदि श्रीनाथजी के भेट किये गये हैं। गुसांईजी महाराज को अपने इलाक़े में दीवानी तथा फौजदारी के नियमित अधिकार भी हैं।

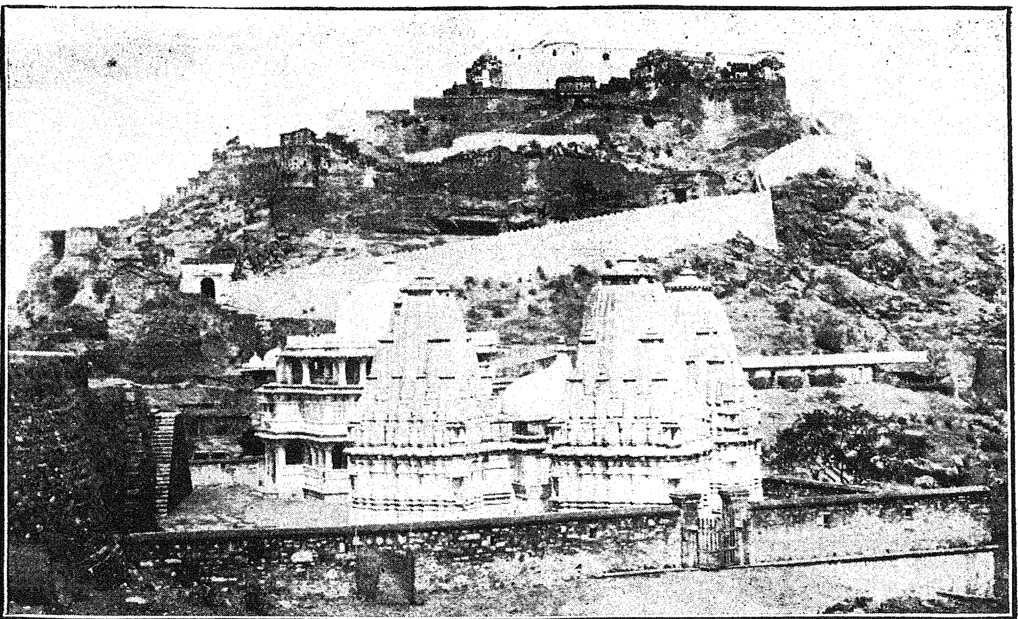
कांकड़ोली

नाथद्वारे से १० मील उत्तर में राजसमुद्र के बांध के पास ही कांकड़ोली गांव बसा है। यहां वल्लभ संप्रदाय का द्वारिकाधीश (द्वारिकानाथजी) का मंदिर बना है। यहां की मूर्ति सात स्वरूपों में से एक होने के कारण यह भी वैष्णवों का एक तीर्थ है और नाथद्वारे आनेवाले वैष्णवों में से बहुतसे यहां भी दर्शनार्थ जाते हैं। औरंगज़ेब के भय से ही यह मूर्ति श्रीनाथजी से कुछ पहले मेवाड़ में लाई जाकर स्थापित की गई थी। यहां के गुसाईंजी महाराणाओं के वैष्णव गुरु हैं।

चारभुजा

कांकड़ोली से अनुमान १० मील पश्चिम के गड़बोर गांव में चारभुजा का प्रसिद्ध विष्णु-मंदिर है। मेवाड़ तथा मारवाड़ आदि के बहुतसे लोग यात्रार्थ यहां आते हैं और भाद्रपद सुदि ११ को यहां बड़ा मेला होता है। यहां के पुजारी गूजर हैं। चारभुजा का मंदिर किसने बनवाया यह ज्ञात नहीं हुआ, परंतु प्राचीन देवालय का जीर्णोद्धार कराकर वर्तमान मंदिर वि० सं० १५०१ (ई० स० १४४४) में खरवड़ जाति के रा० (रावत या राव) महीपाल, उसके पुत्र लखमण (लक्ष्मण), उस(लक्ष्मण)की स्त्री चीमिणी तथा उसके पुत्र झांझा, इन चारों ने मिलकर बनवाया, ऐसा वहां के शिलालेख से पाया जाता है। उक्त लेख में इस गांव का नाम बदरी लिखा है और लोग चारभुजा को बदरीनाथ का रूप मानते हैं।

चारभुजा से अनुमान तीन मील पर सेवंत्री गांव में रूपनारायण का प्रसिद्ध विष्णु-मंदिर है। वहां भी यात्रा के लिये बहुतसे लोग दूर दूर से आते



कुंभलगढ़

(मंदिरों के निकट का गुंबज़वाला स्थान 'वेदी' है)

रूपनारायण

हैं। इस मंदिर को वि० सं० १७०६ (ई० स० १६५२) में महाराणा जगत्सिंह (प्रथम) के राज्यसमय मेड़तिया राठोड़ चांदा के पौत्र और रामदास के पुत्र जगत्सिंह ने ५१००१ रुपये लगाकर, कोठारी कुंभा के द्वारा बनवाया था। पहले का मंदिर जीर्ण होकर उसका कुछ अंश नष्ट हो गया था, जिससे उसी के स्थान पर यह नया मंदिर बनवाया गया है।

नाथद्वारे से अनुमान २५ मील उत्तर में अर्वली की एक ऊंची श्रेणी पर कुंभलगढ़ का प्रसिद्ध क़िला बना हुआ है। समुद्र की सतह से इसकी ऊंचाई ३५६८ फुट है और महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) ने यह क़िला वि० सं० १५१५ (ई० स० १४५८) में बनवाया था, जिससे इसको कुंभलमेर (कुंभलमेरु) या कुंभलगढ़ कहते हैं। इस दुर्ग के स्मरणार्थ महाराणा कुंभा ने सिक्के भी बनवाये थे, जिनपर इसका नाम अंकित है। केलवाड़े के क़स्बे से पश्चिम में कुछ दूर जाकर ७०० फुट ऊंची नाल चढ़ने पर इस क़िले का 'आरेठ पोल' नामक दरवाज़ा आता है जहां राज्य का पहरा रहता है। यहां से अनुमान एक मील के अंतर पर हल्ला पोल है, जहां से थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर हनुमान पोल में पहुंचते हैं जहां महाराणा कुंभा की स्थापित की हुई एक हनुमान की मूर्ति है। फिर विजय पोल नामक दरवाज़ा आता है जहां कुछ भूमि समतल और कुछ नीची आ गई है, और यहीं से प्रारंभ होकर पहाड़ी की एक चोटी बहुत ऊंचाई तक चली गई है।

कुंभलगढ़

समान भूमि में हिन्दुओं तथा जैनों के कई मंदिर हैं, जिनमें से अधिकतर इस समय जीर्ण-शीर्ण दशा में पड़े हुए हैं। यहां पर नीलकंठ महादेव का एक मंदिर है, जिसके चारों ओर ऊंचे ऊंचे सुंदर स्तंभवाले बरामदे बने हुए हैं। इस तरह के बरामदेवाले मंदिर अन्यत्र देखने में नहीं आये। मंदिर की इस शैली को देखकर कर्नल टॉड ने इसको ग्रीक (यूनानी) मंदिर मान लिया है, परंतु वास्तव में इसमें ग्रीक शैली का कुछ भी काम नहीं है और न यह उतना पुराना ही कहा जा सकता है। दूसरा उल्लेखनीय स्थान 'वेदी' है। यह एक दुमंज़िला भवन है, जिसके उन्नत गुंबज़ के नीचे का भाग धुआं निकलने के लिये चारों ओर से खुला हुआ है। महाराणा कुंभा ने, जो शिल्पशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे, इस यज्ञस्थान को शास्त्रोक्त रीति से बनवाया था। कुंभलगढ़ की प्रतिष्ठा का यज्ञ भी इसी वेदी पर हुआ था, और इस समय राजपूताने में प्राचीन काल के

यज्ञ-स्थानों का यही एक स्मारक देखने को रह गया है। पहले महाराणाओं के ठहरने योग्य कुंभलगढ़ पर कोई अच्छा महल न होने से वर्तमान महाराणा साहब ने इस यज्ञ-स्थान में इधर उधर चुनाई कराकर उपयुक्त स्थान बना लिया है। अब तो क़िले के सर्वोच्च भाग पर नये भव्य महल भी बन गये हैं, इसलिये क्या ही अच्छा हो कि महाराणा साहब वेदी के स्थान में बनवाये हुए चुनाई के नये काम को तुड़वाकर इस अद्वितीय स्थान को पीछा अपनी पूर्वस्थिति में परिणत कर दें।

नीचेवाली भूमि में झाली वाव (बावड़ी) और मामादेव का कुंड है। इसी कुंड पर बैठे हुए महाराणा कुंभा अपने ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह (ऊदा) के हाथ से मारे गये थे। इसी कुंड के निकट महाराणा कुंभा ने मामावट स्थान में कुंभस्वामी नामक विष्णु-मंदिर बनवाया था जो इस समय टूटी-फूटी दशा में पड़ा हुआ है। उसके बाहरी भाग में विष्णु के अवतारों, देवियों, पृथ्वी, पृथ्वीराज, कुबेर आदि की कई मूर्तियां स्थापित की गई थीं और वहीं बड़ी बड़ी पांच शिलाओं पर खुदी हुई प्रशस्ति में उक्त राणाने अपने समय तक के मेवाड़ के राजाओं की वंशावली तथा उनमें से कुछ का संक्षिप्त परिचय और अपनी भिन्न भिन्न विजयों का विस्तृत वर्णन अंकित कराया था। इन पांच शिलाओं में से तीन अर्थात् पहली, तीसरी और चौथी प्राप्त हो गई हैं जो मेवाड़ के इतिहास के लिये बड़े ही महत्त्व की हैं। मैंने इन शिलाओं को वहां से लाकर उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित कर दी हैं। बाकी की शिलाओं के लिये खुदाई करवाई तो मुझे दूसरी शिला के ऊपर का एक छोटासा टुकड़ा ही मिला। मामावट के निकट ही राणा रायमल के प्रसिद्ध पुत्र वीरवर पृथ्वीराज का दाहस्थान बना हुआ है।

पहाड़ी की जो चोटी विजय पोल से प्रारंभ होकर बहुत ऊंचाई तक चली गई है उसी पर क़िले का सबसे ऊंचा भाग बना हुआ है, जिसको कटारगढ़ कहते हैं। विजय पोल से आगे बढ़ने पर क्रमशः भैरव पोल, नींबू पोल, चौगान पोल, पागड़ा पोल और गणेश पोल आती हैं। गणेश पोल के सामने की समान भूमि में गुंबज़दार महल और देवी का स्थान था। यहां से कुछ सीढ़ियां और चढ़ने पर महाराणा उदयसिंह की राणी झाली का महल था, जिसको 'झाली का माळिया' कहते थे। वर्तमान महाराणा साहब ने गणेश पोल के सामने के पुराने महल आदि को गिरवाकर उनके स्थान में नये महल बनवाये हैं, जो बड़े ही भव्य

और ऊंचाई पर होने के कारण उष्ण काल में आबू के समान ही ठंडे रहते हैं। इस किले पर मुसलमानों की कई चढ़ाइयां और बड़ी बड़ी लड़ाइयां हुई, जिनका वृत्तान्त आगे यथाप्रसंग लिखा जायगा।

उदयपुर से अनुमान २० मील दक्षिण में जावर नाम का प्राचीन स्थान है। महाराणा लाखा के समय चांदी और सीसे की खान निकल आने से यहां की आबादी अच्छी बढ़ी। यहां पर कई जैन-मंदिर तथा 'जावर माता' नामक देवी का, और शिव एवं विष्णु के भी मंदिर हैं। जावर के दो विभाग हैं—नया जावर और पुराना जावर। महाराणा कुंभा की राजकुमारी रमाबाई, जो गिरनार (जूनागढ़, काठियावाड़ में) के राजा मंडलीक (चौथे) को ब्याही गई थी, पति से अनबन होने पर अपने भाई महाराणा रायमल के समय गिरनार से मेवाड़ में चली आई और जावर में रही। उसने यहां रमाकुंड नाम का एक विशाल जलाशय तथा उसके तट पर रामस्वामी नामक सुंदर विष्णु-मंदिर वि० सं० १५५४ (ई० स० १४९७) में बनवाया, ऐसा उसी मंदिर की दीवार में लगे हुए उक्त संवत् के शिलालेख से ज्ञात होता है। महाराणा रायमल का राजतिलक भी यहीं हुआ था। जब से चांदी की खान का काम बंद हुआ तभी से यहां की आबादी कम होती गई और अब तो नये जावर में थोड़ीसी बस्ती रह गई है, जिसमें अधिकतर भील इत्यादि ही हैं। महाराणा सज्जनसिंह ने चांदी की खान को फिर जारी करने का उद्योग किया था, परंतु मुनाफ़ा विशेष न रहने से काम बंद करना पड़ा। यह स्थान पर्वत-मालाओं के बीच आ गया है और एक ऊंची पहाड़ी के मध्य में 'जावर माळा' नामक स्थान है जहां महाराणा प्रताप अकबर के साथ की लड़ाइयों के समय कभी कभी रहा करते थे। वहीं पहाड़ी के भीतर जल का एक स्थान भी है।

जावर

उदयपुर से खैरवाड़े जानेवाली सड़क पर परसाद गांव से अनुमान ६ मील पूर्व में चावंड नाम का पुराना गांव है, जहां एक जैन-मंदिर भी है। गांव से अनुमान आध मील दूर की एक पहाड़ी पर महाराणा प्रताप के महल बने हुए हैं और उनके नीचे देवी का एक मंदिर है। यह स्थान विकट पहाड़ियों की श्रेणी के बीच आ गया है। महाराणा प्रताप का स्वर्गवास यहीं हुआ और यहां से अनुमान डेढ़ मील के अंतर पर बंडोली गांव के पास बहनेवाले एक छोटेसे नाले के तट पर उक्त महाराणा का अग्निसंस्कार

चावंड

काष्ठासंघ के नदीतट गच्छ और विद्यागण के भट्टारक श्रीसुरेंद्रकीर्त्ति के समय में बघेरवाल जाति के गोवालगोत्री संघवी (संघपति) आल्हा के पुत्र भोज के कुटुम्बियों ने यह मंदिर बनवाकर प्रतिष्ठा-महोत्सव किया[1]। इस मंदिर से आगे की देवकुलिका की दीवार में भी एक शिलालेख लगा हुआ है, जिसका आशय यह है कि वि० सं० १७५४ पौष वदि ५ को काष्ठासंघ के नदीतट गच्छ और विद्यागण के भट्टारक सुरेंद्रकीर्ति के उपदेश से हुंबड़ जाति की वृद्धशाखावाले विश्वेश्वरगोत्री साह आल्हा के वंशज सेठ भूपत के वंशवालों ने यह लघु प्रासाद बनवाया। इन चारों शिलालेखों से ज्ञात होता है कि ऋषभदेव के मंदिर तथा देवकुलिकाओं का अधिकांश काष्ठासंघ के भट्टारकों के उपदेश से उनके दिगंबरी अनुयायियों ने बनवाया था। शेष सब देवकुलिकाएं किसने बनवाई, इस विषय का कोई लेख नहीं मिला।

ऋषभदेव की वर्तमान मूर्ति बहुत प्राचीन होने से उसमें कई जगह खड्डे पड़ गये थे, जिससे उनमें कुछ पदार्थ भरकर उनको ऐसे बना दिये हैं कि वे मालूम नहीं होते। यह प्रतिमा डूंगरपुर राज्य की प्राचीन राजधानी बड़ौदे (वटपद्रक) के जैन-मंदिर से लाकर यहां पधराई गई है। बड़ौदे का पुराना मंदिर गिर गया है और उसके पत्थर वहां वटवृक्ष के नीचे एक चबूतरे पर चुने हुए हैं। ऋषभदेव की प्रतिमा बड़ी भव्य और तेजस्वी है; इसके साथ के विशाल परिकर में इंद्रादि देवता बने हैं और दोनों पार्श्व पर दो नग्न काउसगिये (कायोत्सर्ग स्थितिवाले पुरुष) खड़े हुए हैं। मूर्ति के चरणों के नीचे छोटी छोटी ९ मूर्तियां हैं, जिनको लोग 'नवग्रह' या 'नवनाथ' बतलाते हैं। नवग्रहों के नीचे १६ सपने (स्वप्न[2]) खुदे हुए हैं, जिनके नीचे के भाग में हाथी, सिंह, देवी आदि की

इसके भीतर की मूर्ति के आसन पर के लेख से निश्चित है कि यह तो ऋषभदेव का ही मंदिर है। बाकी के दो मंदिर किन तीर्थंकरों के हैं, यह उनमें कोई लेख न होने से ज्ञात नहीं हुआ।

(१) यह शिलालेख प्राचीन जैन इतिहास के लिये बड़े काम का है, क्योंकि इसमें नदीतट गच्छ की उत्पत्ति तथा उक्त गच्छ के आचार्यों की क्रमपरंपरा दी हुई है।

(२) तीर्थंकर की गर्भवती माता जिन स्वप्नों को देखती है वे जैनों में बड़े पवित्र माने जाते हैं। उनमें हाथी, बैल, सिंह, लक्ष्मी, सूर्य, चंद्र आदि हैं। श्वेतांबर संप्रदायवाले ऐसे १४ स्वप्न और दिगंबर १६ मानते हैं। आबू पर देलवाड़े के एक श्वेतांबर मंदिर के द्वार पर १४ स्वप्न खुदे हुए हैं। जैन आचार्यों के पास पुस्तकों के छूटे पत्रों को हाथ में रखकर पढ़ने के लिये ऊपर की तरफ से आधे मुड़े हुए पुट्ठों के रेशमी वस्त्र पर ज़री के

मूर्तियां और उनके नीचे दो बैलों के बीच देवी की एक मूर्ति बनी हुई है। निज-मंदिर की बाहरी पार्श्व के उत्तर और दक्षिण के ताकों तथा देवकुलिकाओं के पृष्ठभागों में भी नग्न मूर्तियां विद्यमान हैं।

मूलसंघ के बलात्कार गणवाले कमलेश्वरगोत्री गांधी विजयचंद ने वि० सं० १८६३ (ई० स० १८०६) में इस मंदिर के चौतरफ एक पक्का कोट बनवाया। वि० सं० १८८९ (ई० स० १८३२) में जैसलमेर के (उस समय उदयपुर के) निवासी ओसवाल जाति की वृद्ध शाखावाले बाफणागोत्री सेठ गुमानचंद के पुत्र बहादुरमल के कुटुंबियों ने प्रथम द्वार पर का नक्कारखाना बनवाकर वर्तमान ध्वजादंड चढ़ाया।

इस मंदिर के खेला मंडप में तीर्थंकरों की २२ और देवकुलिकाओं में ५४ मूर्तियां विराजमान हैं। देवकुलिकाओं में वि० सं० १७५६ की बनी हुई विजयसागर सूरि की मूर्ति भी है और पश्चिम की देवकुलिकाओं में से एक में अनुमान ६ फुट ऊंचा ठोस पत्थर का एक मंदिर-सा बना हुआ है जिसपर तीर्थंकरों की बहुतसी छोटी छोटी मूर्तियां खुदी हैं, इसको लोग 'गिरनारजी का बिंब' कहते हैं। उपर्युक्त ७६ मूर्तियों में से १४ पर लेख नहीं हैं। लेखवाली मूर्तियों में से ३८ दिगंबर सम्प्रदाय की और ११ श्वेतांबरों की हैं। शेष पर लेख अस्पष्ट होने या चूना लग जाने के कारण उनका ठीक ठीक निश्चय नहीं हो सका। लेखवाली मूर्तियां वि० सं० १६११ से १८६३ तक की हैं और उनपर खुदे हुए लेख जैनों के इतिहास के लिये बड़े उपयोगी हैं।

नौचौकी के मंडप के दक्षिणी किनारे पर पाषाण का एक छोटासा स्तंभ खड़ा है जिसके चारों ओर तथा ऊपर-नीचे छोटे छोटे १० ताक खुदे हैं। मुसलमान लोग इस स्तंभ को मसजिद का चिह्न मानते हैं और उसके नीचे की परिक्रमा में खड़े रहकर वे लोबान जलाते, शीरनी (मिठाई) चढ़ाते और धोक देते हैं[1]।

बने हुए ये स्वप्न भी देखने में आये और अन्यत्र इनके रंगीन चित्र भी मिल आते हैं।

(१) मुसलमान लोग मंदिरों को तोड़ देते थे, जिससे उनके समय के बने हुए बड़े मंदिरों आदि में उनका कोई पवित्र चिह्न इस अभिप्राय से बना दिया जाता था कि उसको देखकर वे उनको न तोड़ें। राणपुर के प्रसिद्ध मंदिर के एक भाग में छोटीसी मसजिद की आकृति बनी हुई है; महाराणा कुंभा के बनवाये हुए चित्तोड़ के सुप्रसिद्ध कीर्तिस्तंभ की एक मंज़िल के द्वार की दोनों तरफ श्वेत पाषाण के स्तंभों के मध्य में तीन तीन बार 'अल्लाह' शब्द उभड़े हुए सुंदर अरबी अक्षरों में अंकित है।

उदयपुर राज्य के अधिकार में जो विष्णु-मंदिर हैं, उनके समान यहां भी विष्णु के जन्माष्टमी, जलझूलनी आदि त्यौहार मंदिर की तरफ़ से मनाये जाते हैं। चौमासे में इस मंदिर में श्रीमद्भागवत की कथा होती है, जिसकी भेट के निमित्त राज्य की तरफ़ से ताम्रपत्र कर दिया गया है और ऋषभनाथजी के भोग के लिये एक गांव भी भेट हुआ था। मंदिर के प्रथम द्वार के पास खड़े हुए महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के शिलालेख में बेगार की मनाई करने, ऋषभदेवजी की रसोई का काम नाथजी के सुपुर्द करने तथा उस संबंध का ताम्रपत्र अखेहजी नाथजी (भंडारी) के पास होने का उल्लेख है। पहले अन्य विष्णु-मंदिरों के समान यहां भोग भी लगता था और भोग तैयार होने के स्थान को 'रसोड़ा' कहते थे। अब तो इस मंदिर में पहले की तरह भोग नहीं लगता और भोग के स्थान में, भंडार की तरफ़ से होनेवाले स्नात्रपूजन में फल और सूखे मेवे आदि के साथ, कुछ मिठाई रख दी जाती है।

महाराणा साहब इस मंदिर में द्वितीय द्वार से नहीं, किंतु बाहरी परिक्रमा के पिछले भाग में बने हुए एक छोटे द्वार से प्रवेश करते हैं, क्योंकि दूसरे द्वार के ऊपर की छत में पांच शरीर और एक सिरवाली एक मूर्त्ति खुदी हुई है, जिसको लोग 'छत्रभंग' कहते हैं। इसी मूर्ति के कारण महाराणा साहब इसके नीचे होकर दूसरे द्वार से मंदिर में प्रवेश नहीं करते।

मंदिर का सारा काम पहले भंडारियों के अधिकार में था और इसकी सारी आमद उनकी इच्छानुसार खर्च की जाती थी, परंतु पीछे से राज्य ने मंदिर की आय में से कुछ हिस्सा उनके लिये नियत कर बाकी के रुपयों की व्यवस्था करने के लिये एक जैन कमेटी बना दी है और देवस्थान के हाकिम का एक नायब मंदिर के प्रबंध के लिये वहां रहता है।

मंदिर में पूजन करनेवाले यात्रियों के लिये नहाने-धोने का अच्छा प्रबंध है। पूजन करते समय स्त्री-पुरुषों के पहनने के लिये शुद्ध वस्त्र भी वहां हर वक्त तैयार रहते हैं और जिनको आवश्यकता हो उनको वे मिल सकते हैं। मंदिर एवं जैन धनाढ्यों की तरफ़ से कई एक धर्मशालाएं भी बन गई हैं, जिससे यात्रियों को धूलेव में ठहरने का बड़ा सुभीता रहता है। उदयपुर से ऋषभदेव तक का सारा मार्ग बहुधा भीलों ही की बस्तीवाले पहाड़ी प्रदेश में होकर निकलता है, परंतु वहां पक्की सड़क बनी हुई है और वर्तमान महाराणा

साहब ने यात्रियों के आराम के लिये ऋषभदेव के मार्ग पर काया, बारापाल तथा टिड्डी गांवों में पक्की धर्मशालाएं बनवा दी हैं। परसाद में भी पुरानी कच्ची धर्मशाला बनी हुई है। मार्ग निर्जन वन तथा पहाड़ियों के बीच होकर निकलता है तो भी रास्ते में स्थान स्थान पर भीलों की चौकियां बिठला देने से यात्रियों को लुट जाने का भय बिल्कुल नहीं रहा। प्रत्येक चौकी पर राज्य की तरफ से नियत किये हुए कुछ पैसे ही देने पड़ते हैं। ऋषभदेव जाने के लिये उदयपुर में बैलगाड़ियां तथा तांगे मिलते हैं और अब तो मोटरों का भी प्रबंध हो गया है।

चित्तोड़गढ़

बॉम्बे बड़ौदा एंड सेंट्रल इंडिया रेल्वे की अजमेर से खंडवा जानेवाली शाखा पर चित्तोड़गढ़ जंक्शन से दो मील पूर्व में एक विलग पहाड़ी पर राजपूताने का ही नहीं वरन् भारत का सुप्रसिद्ध क़िला, चित्तोड़गढ़, बना हुआ है। राजपूत जाति के इतिहास में यह दुर्ग एक अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान है जहां असंख्य राजपूत वीरों ने अपने धर्म और देश की रक्षा के लिये अनेक बार असिधारारूपी तीर्थ में स्नान किया और जहां कई राजपूत वीरांगनाओं ने सतीत्व-रक्षा के निमित्त, धधकती हुई जौहर की अग्नि में कई अवसरों पर अपने प्रिय बाल-बच्चों सहित प्रवेश कर जो उच्च आदर्श उपस्थित किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। राजपूतों ही के लिये नहीं, किन्तु प्रत्येक स्वदेशप्रेमी हिन्दू संतान के लिये क्षत्रिय-रुधिर से सिंची हुई यहां की भूमि के रजकण भी तीर्थ-रेणु के तुल्य पवित्र हैं।

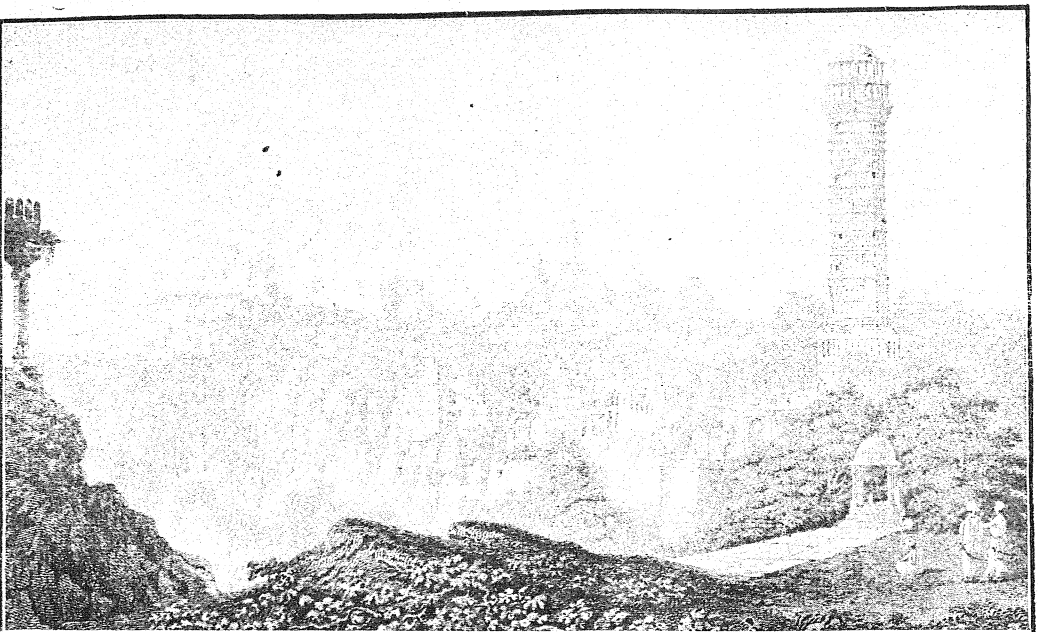
यह क़िला मौर्य वंश के राजा चित्रांगद ने बनवाया था जिससे इसको चित्रकूट (चित्तोड़) कहते हैं। विक्रम संवत् की आठवीं शताब्दी के अंत में मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा बापा ने राजपूताने पर राज्य करनेवाले मौर्य वंश के अंतिम राजा मान से यह क़िला अपने हस्तगत किया। फिर मालवे के परमार राजा मुंज ने इसे गुहिलवंशियों से छीनकर अपने राज्य में मिलाया। वि० सं० की बारहवीं शताब्दी के अन्त में गुजरात के सोलंकी राजा जयसिंह (सिद्धराज) ने परमारों से मालवे को छीना, जिसके साथ ही यह दुर्ग भी सोलंकियों के अधिकार में गया। तदनन्तर जयसिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल के भतीजे अजयपाल को परास्त कर मेवाड़ के राजा सामन्तसिंह ने वि० सं० १२३१ (ई० स० ११७४) के आसपास इस क़िले पर गुहिलवंशियों का आधिपत्य पीछा

जमा दिया। उस समय से आज तक यह इतिहास-प्रसिद्ध दुर्ग प्रायः—यद्यपि बीच में कुछ वर्षों तक मुसलमानों के अधीन भी रहा था—गुहिलवंशियों (सीसोदियों) के ही अधिकार में चला आता है।

चित्तोड़गढ़ जंक्शन से क़िले के ऊपर तक पक्की सड़क बनी हुई है। स्टेशन से रवाना होकर अनुमान सवा मील जाने पर गंभीरी नदी आती है, जिसपर अलाउद्दीन ख़िलजी के शाहज़ादे ख़िज़रख़ां का बनवाया हुआ पाषाण का एक सुदृढ पुल है। नदी का जल बहने के लिये इस पुल में दस महराब बने हैं, जिनमें से नौ के ऊपर के सिरे नुकीले और नदी के पश्चिमी तट से छठे का अग्रभाग अर्धवृत्ताकार है। अलाउद्दीन ख़िलजी ने महारावल रत्नसिंह के समय वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में यह दुर्ग विजय कर अपने पुत्र को यहां का हाकिम नियत किया, उस समय यह पुल बना था[1]।

पुल से थोड़ी दूर जाने पर कोट से घिरा हुआ चित्तोड़ का क़स्बा आता है जिसको 'तलहटी' (तलहट्टिका) कहते हैं। क़स्बे में ज़िले की कचहरी है जिसके पास से क़िले की चढ़ाई आरंभ होती है। सबसे पहले 'पाडल पोल' नामक क़िले का दरवाज़ा मिलता है, जिसके बाहर की तरफ़ एक चबूतरे पर प्रतापगढ़ के रावत बाघसिंह का स्मारक बना हुआ है। महाराणा विक्रमादित्य के राज्य-समय गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने वि० सं० १५९१ (ई० स० १५३४) में चित्तोड़ पर चढ़ाई की, उस समय बालक होने के कारण महाराणा क़िले से बाहर भेज दिये गये थे और बाघसिंह उनका प्रतिनिधि बनकर लड़ता हुआ इसी दरवाज़े के पास—जहां यह स्मारकरूप चबूतरा बना हुआ है—मारा गया था। थोड़ी दूर उत्तर में चलने पर भैरव पोल आती है, जिसके पास ही दाहिने हाथ की तरफ़ दो छत्रियां बनी हुई हैं। इनमें से पहली चार थंभोंवाली प्रसिद्ध राठोड़ जैमल के कुटुंबी कल्ला और इसके समीप ही ६ स्तंभवाली छत्री स्वयं जैमल की

(१) कुछ लोगों का कथन है कि राणा लक्ष्मणसिंह के पुत्र अरिसिंह ने, जो अलाउद्दीन के साथ की लड़ाई में मारा गया था, इस पुल को बनवाया था (डॉक्टर जे० पी० स्ट्रैटन; 'चित्तोर ऐंड दी मेवार फ़ैमिली,' पृ० ६७); परन्तु यह कथन विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि अरिसिंह कभी चित्तोड़ का स्वामी नहीं हुआ। दूसरी बात यह है कि इस पुल का शिल्प हिन्दू शैली का नहीं, किन्तु मुसलमान (सारसेनिक्) शैली का है और कई हिन्दू एवं जैन मंदिरों को गिराकर उनके पत्थरों का इस पुल में उपयोग किया गया है, जो राजपूत लोग कभी नहीं करते।



चित्तौड़गढ़

है, जहां ये दोनों राठोड़ वीर मारे गये थे। वि० सं० १६२४ (ई० स० १५६७) में बादशाह अकबर ने चित्तोड़गढ़ पर चढ़ाई की, उस समय सीसोदिया पत्ता (प्रताप, आमेटवालों का पूर्वज) और मेड़तिया राठोड़ जैमल, दोनों, महाराणा उदयसिंह की अनुपस्थिति में दुर्ग के रक्षक नियुक्त हुए थे और अंतिम दिवस की लड़ाई में लड़ते हुए ये दोनों भिन्न भिन्न स्थानों में वीरोचित गति को प्राप्त हुए। इन छत्रियों से थोड़ी दूर पर हनुमान पोल आती है जहां से कुछ आगे जाकर सड़क दक्षिण की ओर मुड़ती है और इस मोड़ पर गणेश पोल बनी हुई है। गणेश पोल के आगे लक्ष्मण पोल के पास से सड़क फिर उत्तर की तरफ़ मुड़ जाती है और इस घुमाव पर ही जोड़ला पोल आती है। फिर कुछ दूर चलने से राम पोल नामक पश्चिमाभिमुख प्रवेश-द्वार में होकर क़िले पर पहुंच जाते हैं, जहां पहाड़ी की चढ़ाई समाप्त होकर समतल भूमि आती है।

राम पोल में प्रवेश करते ही सामने की तरफ एक चबूतरे पर उपर्युक्त सीसोदिये पत्ता के स्मारक का पत्थर खड़ा है, जहां वह लड़ता हुआ काम आया था। राम पोल में प्रवेश करने के बाद सड़क उत्तर में भी मुड़ती है। उधर थोड़ी ही दूर पर दाहिने हाथ की ओर कुकड़ेश्वर का कुंड आता है जिसके ऊपर के भाग में कुकड़ेश्वर का मंदिर बना हुआ है। आगे बढ़ने पर दाहिनी ओर सड़क से कुछ दूर हिंगलू आहाड़ा के महल आते हैं[1]। ये महल महाराणा रत्नसिंह के

---

(१) बूंदी के वंशभास्कर नामक इतिहास तथा उसके सारांशरूप वंशप्रकाश में लिखा है कि 'वि० सं० १२९८ (ई० स० १२४१) में मीणों से देवीसिंह ने बूंदी ली। उसके छोटे भाइयों में से एक का पुत्र हिंगलू राणाजी के पास रहा तथा अलाउद्दीन के साथ के महाराणा के युद्ध में लड़ता हुआ वह मारा गया जिसके महल चित्तोड़ में हैं'। यह सारा कथन कल्पनामात्र है, क्योंकि देवीसिंह ने महाराणा हम्मीरसिंह की सहायता से वि० सं० १४०० (ई० स० १३४३) के आसपास या उससे कुछ वर्ष पीछे मीणों से बूंदी ली थी और इन महलों से बूंदी के हाड़ा हिंगलू का कोई संबंध भी नहीं है। आहाड़ में रहने के कारण मेवाड़ के राजाओं का उपनाम 'आहाड़ा' हुआ और डूंगरपुर तथा बांसवाड़े के राजा भी आहाड़ा कहलाते रहे ("संवत् १५२० वर्षे शाके १३८६ प्रवर्त्तमाने वैशाष (ख) सुदि ३ तृतीयायां तिथौ सोमदिने रोहिणीनक्षत्रे आहडवंशोत्पन्न राउल श्री कर्मसिंहोद्भव राउल…"—डूंगरपुर राज्य के डेसां गांव का शिलालेख (जो अजमेर के राजपूताना म्यूज़ियम् में सुरक्षित है)। हिंगलू डूंगरपुर का आहाड़ा सरदार था और इन महलों में रहता था जिससे ये महल 'हिंगलू आहाड़ा के महल' कहलाये। पिछले समय में आहाड़ा नाम भूल जाने और बूंदीवालों का हाड़ा नाम प्रसिद्ध होने के कारण लोग इन महलों को 'हिंगलू हाड़ा के महल' कहने लगे।

रहने के थे, जहां रत्नेश्वर का कुंड और मंदिर है। यहां से कुछ दूर चलने पर पहाड़ी के उत्तरी किनारे के निकट पहुंचते हैं, जहां से सड़क पूर्व की तरफ घूमती है। पहाड़ी के पूर्वी किनारे के समीप एक खिड़की बनी हुई है, जिसको 'लाखोटा की बारी' कहते हैं। यहां से राजटीले तक सड़क सीधी दक्षिण में चली गई है। मार्ग में पहले बाईं ओर सात मंज़िलवाला जैन कीर्तिस्तंभ आता है, जिसको दिगंबर संप्रदाय के बघेरवाल महाजन सा (साह, सेठ) नाय के पुत्र जीजा ने वि० सं० की चौदहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में बनवाया था। यह कीर्ति-स्तंभ आदिनाथ का स्मारक है, इसके चारों पार्श्व पर आदिनाथ की एक एक विशाल दिगंबर (नग्न) जैन मूर्ति खड़ी है और बाकी के भाग पर अनेक छोटी छोटी जैन मूर्तियां खुदी हुई हैं। इस कीर्तिस्तंभ के ऊपर की छत्री बिजली गिरने से टूट गई और इस स्तंभ को भी बड़ी हानि पहुंची थी, परन्तु वर्तमान महाराणा साहब ने अनुमान ८०००० रुपये लगाकर ठीक वैसी ही छत्री पीछी बनवा दी और स्तंभ की भी मरम्मत हो गई है। जैन कीर्तिस्तंभ के पास ही महावीर स्वामी का मंदिर है, जिसका जीर्णोद्धार महाराणा कुंभा के समय वि० सं० १४६५ (ई० स० १४३८) में ओसवाल महाजन गुणराज ने कराया था; इस समय यह मंदिर टूटी-फूटी दशा में पड़ा हुआ है। आगे बढ़ने से नीलकंठ महादेव का मंदिर और उसके बाद सूरज पोल नामक क़िले का पूर्वी दरवाज़ा आता है, जहां से इस दुर्ग के नीचे मैदान में जाने के लिये एक रास्ता बना हुआ है। इस दरवाज़े के निकट सलूंबर के रावत साईंदास का चबूतरा है, जहां वह अकबर की लड़ाई के समय वीरता से लड़ता हुआ मारा गया था। यहां से दक्षिण की तरफ जाने पर दाहिनी ओर अदबदजी (अद्भुतजी) का मंदिर आता है, जो महाराणा रायमल के राज्य-समय वि० सं० १५४० (ई० स० १४८३) में बना था। इसमें शिवलिंग और दीवार से सटी हुई शिवजी की एक विशाल त्रिमूर्ति है; इस अद्भुत प्रातिमा को देखकर लोगों ने इसका नाम अदबदजी (अद्भुतजी) रख दिया है। यहां से थोड़ी ही दूर पर राजटीला नामक एक ऊंचा

अलाउद्दीन के समय तो हिंगलू हाड़ा का जन्म भी नहीं हुआ था। खरतर गच्छ के यति कवि खेता ने वि० सं० १७४८ (ई० स० १६९१) में 'चित्तोड़ की गज़ल' नामक पुस्तक लिखी जिसमें भी इन महलों को 'आहड़ महल' कहा है—

आहड़ महल अति ऊंचा कि। जाइ असमान कुं पोहचा कि॥११॥ ऐसा ही डॉक्टर स्ट्रैटन ने लिखा है ('चित्तोर ऐंड दी मेवार फैमिली;' पृ० ७३)।

बना हुआ है, जिसको सूरजकुंड कहते हैं। यहां से आगे पत्ता और जैमल की हवेलियां हैं। जैमल की हवेली से पूर्व में एक तालाव है जो 'जैमलजी का तालाव' कहलाता है। इस जलाशय के तट पर बौद्धों के ६ स्तूप खड़े थे, जो इस समय तोपखाने के मकान के पास पड़े हुए हैं। इन स्तूपों से अनुमान होता है कि उक्त तालाव के निकट प्राचीन काल में बौद्धों का कोई मंदिर या तीर्थ-स्थान अवश्य होगा। इस तालाव से आगे पूर्व में हाथी कुंड और पश्चिम में 'गोमुख' नाम का प्रसिद्ध तीर्थ है, जहां दो दालानों में तीन जगह गोमुखों से शिवलिंगों पर जल गिरता है और प्रथम दालान में द्वार के सामने विष्णु की एक विशाल मूर्ति खड़ी हुई है। इन दालानों के सामने ही गोमुख नामक निर्मल जल का सुविशाल कुंड है, जहां लोग स्नान करते हैं। गोमुख के निकट महाराणा रायमल के समय का बना हुआ एक छोटासा जैन मंदिर है, जिसकी मूर्ति दक्षिण से यहां लाई गई थी, क्योंकि उस मूर्ति के ऊपर प्राचीन कनड़ी लिपि का लेख है और नीचे के भाग में उस मूर्ति की यहां प्रतिष्ठा किये जाने के संबंध में वि० सं० १५४३ का लेख पीछे से नागरी लिपि में खोदा गया है। गोमुख के कुंड के उत्तरी छोर पर समिद्धेश्वर (समाधीश्वर, शिव) का भव्य प्राचीन मंदिर है, जिसके भीतरी और बाहरी भाग में खुदाई का काम बड़ा ही सुंदर बना है। मालवे के सुप्रसिद्ध विद्यानुरागी परमार राजा भोज ने इस मंदिर को निर्माण कराया था और उसके बिरुद 'त्रिभुवननारायण' पर से इसको त्रिभुवननारायण का शिवालय और भोजजगती (भोज का मंदिर) भी कहते थे, ऐसा उल्लेख शिलालेखों में मिलता है। इसके गर्भगृह (निजमंदिर) के नीचे के भाग में शिवलिंग और पीछे की दीवार में शिव की विशाल त्रिमूर्ति बनी हुई है, जिसकी अद्भुत आकृति के कारण लोग इसको अदबदजी (अद्भुतजी) का मंदिर कहते हैं। चित्तोड़ पर यह दूसरा प्राचीन मंदिर है। महाराणा मोकल ने वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८) में इसका जीर्णोद्धार करवाया जिससे इसको लोग 'मोकलजी का मंदिर' भी कहते हैं। अजमेर के चौहान राजा आना (अर्णोराज) को परास्त कर गुजरात का सोलंकी राजा कुमारपाल चित्तोड़ देखने आया था। उसने यहां पूजन किया और एक गांव इस मंदिर को भेट कर वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५०) में यहां अपना शिलालेख लगाया जो अब तक विद्यमान है। मंदिर के साथ ही एक मठ भी बना था जो टूटी-फूटी दशा में अब भी दीख पड़ता है। इस मंदिर

और महाराणा कुंभा के कीर्तिस्तंभ के बीच चित्तोड़ के राजाओं का दाह-स्थान (महासती) है, जिसके चारों ओर रावल समरसिंह ने एक बड़े द्वार सहित कोट बनवाया था, और दो बड़ी बड़ी शिलाओं पर प्रशस्ति खुदवाकर उसके द्वार में लगाई थी, जिनमें से पहली शिला वहां विद्यमान है, परंतु दूसरी नष्ट हो जाने के कारण उसका स्थान खाली पड़ा हुआ है।

पास ही महाराणा कुंभा का बनवाया हुआ विशाल कीर्तिस्तंभ खड़ा है जो भारतवर्ष में अपने ढंग का एक ही स्तंभ है। उपर्युक्त जैन कीर्तिस्तंभ से यह अधिक ऊंचा और चौड़ा होने तथा प्रत्येक मंज़िल में झरोके बने हुए होने से इसके भीतरी भाग में प्रकाश भी काफी रहता है। इसमें जनार्दन, अनंत आदि विष्णु के भिन्न भिन्न रूपों एवं अवतारों की, तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव, भिन्न भिन्न देवियों, अर्धनारीश्वर (आधा शरीर पार्वती का और आधा शिव का), उमामहेश्वर, लक्ष्मीनारायण, ब्रह्मासावित्री, हरिहर (आधा शरीर विष्णु और आधा शिव का), हरिहरपितामह (विष्णु, शिव और ब्रह्मा तीनों एक मूर्ति में), ऋतु, आयुध (शस्त्र), दिक्पाल तथा रामायण और महाभारत के पात्रों आदि की सैकड़ों मूर्तियां खुदी हुई हैं। वास्तव में यह हिन्दुओं के पौराणिक देवताओं का एक अमूल्य कोश है और साथ ही इसमें विशेषता यह है कि प्रत्येक मूर्त्ति के ऊपर या नीचे उसका नाम खुदा हुआ है। इसलिये प्राचीन मूर्तियों का ज्ञान संपादन करनेवालों के लिये यह एक अपूर्व साधन है। मैंने अनेक बार इस कीर्तिस्तंभ में बैठकर प्राचीन मूर्तियों के संबंध की अपनी शंकाएं निवृत्त की हैं। इसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १५०५ माघ वदि १० को हुई थी और इसका प्रारंभ वि० सं० १४९७ में होना चाहिये। इसके विषय में ऐसी प्रसिद्धि है कि वि० सं० १४९७ (ई० स० १४४०) में मालवे के सुलतान महमूद शाह खिलजी को प्रथम बार परास्त कर उसकी यादगार में राणा कुंभा ने अपने इष्टदेव विष्णु के निमित्त यह कीर्तिस्तंभ बनवाया था। इसके ऊपर की छत्री बिजली गिरने से टूट गई थी जिससे महाराणा सरूपसिंह ने उसकी मरम्मत करवाई। कीर्तिस्तंभ से उत्तर में जटाशंकर नामक शिवालय है और थोड़े ही अंतर पर महाराणा कुंभा का निर्माण कराया हुआ विष्णु के वराह अवतार का कुंभस्वामी (कुंभश्याम) नामक भव्य मंदिर बना हुआ है, जिसको लोग भ्रम से 'मीरांबाई का मंदिर' कहते हैं। यह मंदिर भी वि० सं० १५०५

(ई० स० १४४६) में बना था। यहां से आगे जाने पर पुराने महलों का 'बड़ी पोल' नामक द्वार आता है। इस द्वार से पूर्व में कई एक जैन-मंदिर टूटी-फूटी दशा में खड़े हैं और उनमें से 'सतवीस देवळां' (सत्ताईस मंदिर) नामक जिनालय में खुदाई का काम बड़ा ही सुंदर हुआ है। इसी के पास आजकल वर्तमान महाराणा साहब के नये महल बन रहे हैं। बड़ी पोल में प्रवेश कर आगे बढ़ने पर त्रिपोलिया नामक एक दूसरा दरवाज़ा मिलता है, जिसके भीतर महाराणा कुंभा के बनवाये हुए पुराने राजमहल भग्नावस्था में विद्यमान हैं। महाराणा सज्जनसिंह ने इनके जीर्णोद्धार का कार्य आरंभ किया था, परंतु उनके समय में थोड़ा ही काम बन सका। इन्हीं महलों में एक तहखाना बना हुआ है, जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि यहां से प्रारंभ होकर एक सुरंग गोमुख तक चली गई है और ऐसा भी कहते हैं कि इसी के भीतर जौहर हुए थे; परंतु ये दोनों कथन सर्वथा कल्पित हैं, क्योंकि इसकी जांच करने के लिये रोशनी लेकर तहखाने के भीतर जाने पर मुझे मालूम हुआ कि यह सुरंग नहीं, किंतु एक तहखाना मात्र है जहां से आगे कोई मार्ग नहीं है। इसी तरह जौहर की अग्नि प्रज्वलित करने के लिये भी इसमें कोई गुंजाइश नहीं है। यह अभी तक अनिश्चित है कि जौहर किस स्थान में हुए, परन्तु पुराने राजमहलों और गोमुख के बीच किसी स्थान में उनका होना संभव है।

इन महलों के निकट उत्तर की तरफ़ सुंदर खुदाई के कामवाला एक छोटा-सा मंदिर है जिसको सिंगारचौरी (शृंगारचौरी) कहते हैं। इसके मध्य में एक छोटीसी वेदी पर चार स्तंभवाली छत्री बनी हुई है। लोग कहते हैं कि यहां पर राणा कुंभा की राजकुमारी का विवाह हुआ था, जिसकी यह चौरी है। वास्तव में इतिहास के अंधकार में इस कल्पना की सृष्टि हुई है, क्योंकि इसके एक स्तंभ पर खुदे हुए वि० सं० १५०५ (ई० स० १४४८) के शिलालेख से ज्ञात होता है कि राणा कुंभा के भंडारी (कोषाध्यक्ष) वेलाक ने जो साह केल्हा का पुत्र था, शान्तिनाथ का यह जैन-मंदिर बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा खरतर गच्छ के आचार्य जिनसेनसूरि ने की थी। जिस स्थान को लोग चौरी बतलाते हैं वह वास्तव में उक्त मूर्ति की वेदी है और संभव है कि मूर्ति चौमुख (जिसके चारों ओर एक एक मूर्ति होती है) हो। शृंगारचौरी से थोड़ी

दूर पर नवलक्खा (या नवकोठा) नामक स्थान है; कहते हैं कि इसे राणा बनबीर ने भीतरी क़िला बनाने के विचार से एक विशाल बुर्ज सहित बनवाया था। इसी के निकट तोपखाने का नया मकान बना है, जहां इस क़िले की बुर्जों पर की छोटी बड़ी तोपें एकत्र कर रक्खी हुई हैं। महलों के पास से सड़क मुड़कर उत्तर में राम पोल दरवाज़े तक पहुंच जाती है। पत्ता के चबूतरे के पास से उत्तर की तरफ़ एक गली जाती है, उधर भी अन्नपूर्णा देवी आदि के कुछ मंदिर बने हुए हैं।

चित्तोड़ का दुर्ग समुद्र की सतह से १८५० फुट ऊंचाईवाली सवा तीन मील लंबी और अनुमान आध मील चौड़ी उत्तर-दक्षिण-स्थित एक पहाड़ी पर बना हुआ है और तलहटी से क़िले की ऊंचाई ५०० फुट है। पहाड़ी के ऊपरी भाग में समान भूमि आ जाने के कारण वहां कई एक कुंड, तालाव, मंदिर, महल, आदि बने हुए हैं और कुछ जलाशय तो दुष्काल में भी नहीं सूखते। पहले इस दुर्ग पर आबादी बहुत थी, परंतु अब तो पहाड़ी के पश्चिमी सिरे के पास अनुमान २०० घरों की ही बस्ती रह गई है और शेष सब मकानों के गिर जाने से इस समय वहां खेती हुआ करती है।

चित्तोड़ में कई बड़ी बड़ी लड़ाइयां हुईं, असंख्य क्षत्रियों का रक्तपात हुआ और तीन बार जौहर भी हुए, जिनमें सैकड़ों राजपूत रमणियों ने जीते-जी अग्नि-प्रवेश किया। इन कई घटनाओं से चित्तोड़ एक इतिहास-प्रसिद्ध स्थान है और कालान्तर में इसकी बहुत प्रसिद्धि हुई, परंतु वास्तव में देखा जाय तो युद्ध के लिये रणथंभोर, कुंभलगढ़ आदि दुर्गों के जैसा उपयुक्त स्थान यह नहीं है। पहाड़ी के किनारे किनारे सीधे खड़े हुए ऊंचे ऊंचे चट्टानों की एक पंक्ति आ गई है, जिसके ऊपर चौतरफ एक ऊंचा और सुदृढ प्राकार बना हुआ होने के कारण प्राचीन काल में शत्रु के लिये सीढ़ियों की सहायता से चढ़कर अथवा लड़कर इस क़िले को लेना अत्यंत कठिन कार्य था, परंतु विस्तीर्ण मैदान में एक पृथक् पहाड़ी पर बना हुआ होने के कारण शत्रु बड़ी सुगमता से पहाड़ी का घेरा डालकर क़िले में रहनेवालों के लिये रसद का पहुंचना शीघ्र रोक सकता था। इस दुर्ग का जब जब घेरा डाला गया तभी गढ़ में भोजन-सामग्री विद्यमान रहने तक ही गढ़ रक्षकों के अधीन रहा, और जब भोजन की सामग्री शेष न रही तब राजपूतों को विवश दुर्ग के द्वार खोलकर शत्रु-सेना

से युद्ध करने के लिये बाहर आना पड़ा। राजपूतों के अदम्य उत्साह तथा बड़ी वीरता से लड़ने पर भी शत्रुओं की संख्या कहीं अधिक होने से अंत में सब रक्षकों के वीरगति पाने पर गढ़ शत्रुओं के अधिकार में चला गया। इसका पुराना कोट जीर्ण-शीर्ण हो गया था जिससे महाराणा सज्जनसिंह ने कई हज़ार रुपये सालाना इसपर लगाना निश्चय कर नये सिरे से एक सुदृढ प्राकार बनवाना प्रारंभ किया, जिसका काम अभी तक जारी है और उसका बहुतसा हिस्सा बन चुका है; इससे क़िले की मज़बूती और भी बढ़ गई है, परंतु इस समय तो बड़ी बड़ी तोपों तथा वायुयान आदि पाश्चात्य यंत्र-साधनों का प्रचार होने से, संसार के प्रायः सभी क़िले निरुपयोगी हो रहे हैं।

नगरी

चित्तोड़ के क़िले से ७ मील उत्तर में नगरी नाम का अति प्राचीन स्थान बेदले के चौहान सरदार की जागीर के अंतर्गत है। यह भारतवर्ष के प्राचीन नगरों में से एक था, जिसके खंडहर दूर दूर तक दीख पड़ते हैं और यहां से कितने एक प्राचीन शिलालेख तथा सिक्के मिले हैं। इसकी पश्चिम तरफ़ बेड़च नदी बहती है, जिसके निकट बड़े बड़े पत्थरों से बने हुए, कोट से घिरे हुए, राजप्रासाद का होना अनुमान किया जाता है। इस स्थान में घड़े हुए बड़े बड़े पत्थरों के ढेर जगह जगह पड़े हैं और हज़ारों गाड़ियां भरकर यहां के पत्थर लोग दूर दूर तक ले गये और वहां उनसे बावड़ी, महलों के कोट आदि बनाये गये। महाराणा रायमल की राणी शृंगारदेवी की बनवाई हुई घोसुंडी गांव की बावड़ी भी नगरी से ही पत्थर लाकर बनाई गई है। नगरी का प्राचीन नाम मध्यमिका था। बर्ली गांव (अजमेर ज़िले में) से मिले हुए वीर संवत् ८४ (वि० सं० पूर्व ३८६=ई० स० पूर्व ४४३) के शिलालेख में मध्यमिका का उल्लेख मिलता है। पतंजलि ने अपने 'महाभाष्य' में मध्यमिका पर यवनों (यूनानियों, मिनैंडर) के आक्रमण का उल्लेख किया है। वहां से मिलनेवाले शिलालेखों में से तीन वि० सं० पूर्व की तीसरी शताब्दी के आसपास की लिपि में हैं। इनमें से एक पर दो पंक्तियों में कुछ अक्षर हैं, जिनका आशय यह है कि 'सर्व भूतों (जीवों) की दया के निमित्त......बनवाया'। संभवतः यह लेख बौद्धों या जैनों से संबंध रखता हो। ठीक उसी लिपि का दूसरा शिलालेख उपर्युक्त घोसुंडी गांव की बावड़ी बनाने के लिये यहां से जो पत्थर ले गये उनके साथ वहां पहुंचा और एक मामूली पत्थर के समान वह चुनाई में लगा दिया गया। वह

दोनों ओर से खंडित है और उसपर बड़े बड़े अक्षरों की तीन पंक्तियां खुदी हैं। पहली पंक्ति का आशय 'पाराशरी पुत्र गाजायन ने'; दूसरी का, 'भगवान् संकर्षण और वासुदेव के निमित्त' तथा तीसरी का 'पूजा के निमित्त नारायण वट [स्थान] पर शिलाप्राकार बनवाया' है। इससे पाया जाता है कि वि० सं० पूर्व की तीसरी शताब्दी के आसपास विष्णु की पूजा होती थी और उनके मंदिर भी बनते थे।

उसी लिपि के तीसरे लेख का एक छोटा टुकड़ा घोसुंडी और बसी गांवों की सीमा पर मिला, जिसपर एक ही पंक्ति है और उसमें '[ते]न सर्वतातेन अश्वमेध' (उस सर्वतात ने अश्वमेध—यज्ञ किया) शब्द खुदे हुए हैं। अश्वमेध यज्ञ बड़े राजा ही करते थे, अतएव सर्वतात यहां का कोई बड़ा राजा होना चाहिये। वि० सं० की चौथी शताब्दी की लिपि का दोनों किनारों से टूटा हुआ एक लेख का टुकड़ा नगरी से मिला है। उसपर के लेख से ज्ञात होता है कि यहां.........ने वाजपेय यज्ञ किया था, और उसके पुत्रों ने उसका यूप (यज्ञस्तंभ) खड़ा करवाया था। मालव (विक्रम) संवत् ४८१ का एक पांचवां शिलालेख भी यहां से मिला है जिसमें एक विष्णुमंदिर के बनने का उल्लेख है। यह इस समय राजपूताना म्यूज़ियम् में सुरक्षित है।

गांव से थोड़े ही अंतर पर 'हाथियों का बाड़ा' नाम का एक विस्तृत स्थान है, जिसकी चहारदीवारी बहुत लंबे, चौड़े और मोटे तीन तीन पत्थर एक एक के ऊपर रखकर बनाई गई है। ऐसे विशाल पत्थरों को उठाकर एक दूसरे पर रखना भी सहज काम नहीं है। संभव है कि उपर्युक्त दूसरे शिलालेख का 'शिलाप्राकार' इसी स्थान का सूचक हो। यहां से कुछ दूर बड़े बड़े पत्थरों से बनी हुई एक चतुरस्र मीनार है, जिसको लोग 'ऊभदीवट' कहते हैं और उसके संबंध में कहा जाता है कि बादशाह अकबर ने चित्तोड़ पर चढ़ाई की उस समय इस मीनार पर रोशनी की जाती थी। यह कथन सत्य हो वा असत्य, परंतु इस मीनार के लिये पत्थर उक्त हाथियों के बाड़े से ही तोड़कर ले जाये गये थे, ऐसा स्पष्ट दीख पड़ता है। नगरी के निकट तीन स्तूपों के चिह्न भी मिलते हैं और वर्तमान गांव के भीतर माताजी के खुले स्थान में प्रतिमा के सामने एक सिंह की प्राचीन मूर्ति ज़मीन में कुछ गड़ी हुई है; पास ही चार बैलों की मूर्तियोंवाला एक चौखूंटा बड़ा पत्थर रक्खा हुआ है। ये दोनों प्राचीन

विशाल स्तंभों के ऊपर के सिरे होने चाहियें।

उदयपुर से १०० मील उत्तर-पूर्व में मांडलगढ़ का क़िला है, जिसको किसने बनवाया यह अभी तक अनिश्चित है। इसके संबंध में जनश्रुति तो यह है कि

मांडलगढ़

'मांडिया नामी भील को बकरी चराते समय पारस नाम का पत्थर मिला जिसपर उसने अपना तीर घिसा तो वह सुवर्ण का हो गया। यह देखकर उस पत्थर को वह चांनणा नामक गूजर के पास ले गया, जो वहां अपने पशु चरा रहा था, और उससे कहा कि इस पत्थर पर घिसने से मेरा तीर खराब हो गया है। चांनणा उस पत्थर की करामात को समझ गया, जिससे उसने मांडिया से उसे ले लिया और उसके द्वारा धनाढ्य हो जाने पर उसने यह क़िला बनवाकर मांडिया के नाम से इसका नाम 'मांडलगढ़' रक्खा'। यह दंतकथा कल्पनामात्र प्रतीत होती है। एक शिलालेख में इसको 'मंडलाकृति (वृत्ताकार) गढ' कहा है', अतएव संभव है कि इसकी आकृति मंडल (वृत्त) के समान होने से ही इसका नाम मंडलगढ़ (मांडलगढ़) प्रसिद्ध हुआ हो।

यह क़िला पहले अजमेर के चौहानों के राज्य में था और संभव है कि उन्होंने ही इसे बनवाया हो। जब कुतुबुद्दीन ऐबक ने अजमेर का राज्य सम्राट् पृथ्वीराज के भाई हरिराज से छीना तब इस क़िले पर मुसलमानों का अधिकार हुआ, परंतु थोड़े ही समय बाद हाड़ौती के चौहानों ने इसे मुसलमानों से छीन लिया और जब हाड़ों को महाराणा खेता (क्षेत्रसिंह) ने अपने अधीन किया तभी यह दुर्ग मेवाड़ के अधिकार में आया। फिर बीच में कई बार मुसलमानों ने सीसोदियों से इसे लेकर दूसरों को भी दे दिया, परंतु मेवाड़वाले पीछा इसे लेते ही रहे जिसका विवरण आगे यथाप्रसंग लिखा जायगा।

यह गढ़ समुद्र की सतह से १८५० फुट ऊंची पहाड़ी के अग्रभाग पर बना है और इसके चारों ओर अनुमान आध मील लंबाई का बुर्जों सहित कोट बना हुआ है। क़िले से उत्तर की ओर अनुमान आध मील से भी कम

(१) सोपिक्षेत्रमहीभुजा निजभुजप्रौढप्रतापादहो
भग्नो विश्रुतमंडलाकृतिगढो जित्वा समस्तानरीन् ॥ ७ ॥
(शृंगी ऋषि के स्थान का वि० सं० १४८९ का अप्रकाशित शिलालेख)।

अंतर पर एक पहाड़ी (नकटी का चौड़, बीजासण) आ गई है, जो क़िले के लिये हानिकारक है। गढ़ में सागर और सागरी नाम के दो जलाशय हैं, जिनका जल दुष्काल में सूख जाया करता था, इसलिये वहां के अध्यक्ष (हाकिम) महता अगरचंद ने सागर में दो कुए खुदवा दिये, जिनमें जल कभी नहीं टूटता। यह क़िला कुछ समय तक बालनोत सोलंकियों की जागीर में भी रहा था। यहां ऋषभदेव का एक जैन-मंदिर, ऊंडेश्वर और जलेश्वर के शिवालय, अलाउद्दीन नामक किसी मुसलमान अफ़सर की क़ब्र और किशनगढ़ के राठोड़ रूपसिंह के, जिसके अधिकार में बादशाह की तरफ़ से कुछ समय तक यह क़िला रहा था, महल भी हैं।

जहाज़पुर

जहाज़पुर उक्त नाम के ज़िले का मुख्य स्थान तथा मेवाड़ के पुराने स्थलों में से एक है। लोगों का कथन है कि राजा जनमेजय ने नागों को होमने का यज्ञ यहीं किया था, जिससे इसका नाम 'यज्ञपुर' हुआ और उसका अपभ्रंश 'जाजपुर' (जहाज़पुर) है। इस क़स्बे से अग्नि कोण में अनुमान डेढ़ मील के अंतर पर नागेला तालाव है, जिसके बांध पर जनमेजय के यज्ञ का होना माना जाता है। उक्त तालाव से नागदी नाम की एक छोटी नदी निकल कर जहाज़पुर के क़स्बे के पास बहती है। इस नदी के पूर्वी किनारे पर १२ मंदिर एक स्थान में बने हुए हैं, जिनको 'बारा देवळां' कहते हैं। इन मंदिरों के विषय में यह दंतकथा है कि राजा जनमेजय ने यहां सोमनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा अपने हाथ से की थी। यह दंतकथा विश्वास के योग्य नहीं है, परंतु इतना अवश्य है कि सोमनाथ का देवालय प्राचीन एवं तीर्थ-स्थान माना जाता है, क्योंकि वहां एक चबूतरे पर खड़े हुए, गोहिल नामक पुरुष के, स्मारक-स्तंभ पर वि० सं० १०८५ फाल्गुन वदि १३ को उसका स्वर्गवास होना लिखा है।

जहाज़पुर के आसपास के प्रदेश में कई प्राचीन स्थान हैं, जहां चौहानों के शिलालेख मिलते हैं। उक्त क़स्बे से ७ मील दूर अग्नि कोण में धौड़ गांव है जहां रूठी राणी के मंदिर के एक स्तंभ पर वि० सं० १२२५ ज्येष्ठ वदि १३ का अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीभट) का लेख खुदा है। उक्त लेख में पृथ्वीराज की राणी का नाम सुहवदेवी लिखा है, जो रूठी राणी के नाम से लोगों में प्रसिद्ध है। दूसरे स्तंभ पर चौहान राजा सोमेश्वर के दो लेख खुदे हैं, जिनमें से एक वि० सं० १२२८ ज्येष्ठ सुदि १० का और दूसरा सं० १२२९

'उन्नतशिखरपुराण' भी लोलाक ने उसी संवत् में यहां खुदवाया था और इस समय इस पुराण की कोई लिखित प्रति कहीं विद्यमान नहीं है। बीजोल्यां के राव कृष्णसिंह (स्वर्गवासी) ने इन दोनों चट्टानों पर पक्के मकान बनवाकर उनकी रक्षा का प्रशंसनीय कार्य किया है।

बीजोल्यां से अनुमान पांच मील अंतर पर जाड़ोली गांव है जिससे थोड़ी दूर पर कई टूटे-फूटे मंदिर हैं। उनमें सबसे बड़ा वैजनाथ का शिवालय है जिसके भीतर शिवलिंग, और द्वार पर लकुलीश की मूर्ति बनी हुई है। शिवलिंग के पीछे शिव की प्रतिमा और उसके ऊपरी भाग में नवग्रहों की मूर्तियां खुदी हुई हैं। एक ताक में दशभुजा देवी की मूर्ति है, जिसके नीचे सप्तमातृकाओं में से तीन तीन दोनों ओर खुदी हैं और सातवीं उक्त देवी को ही समझना चाहिये। गांव के भीतर ऊंडेश्वर[1] नामक एक शिवालय भी है। बीजोल्यां से अनुमान चार मील पश्चिम में वृंदावन नाम का गांव है जिसके पासवाले टूटे हुए शिवालय को लोग 'कणेरी की पूतली' कहते हैं। यह भी एक प्राचीन मंदिर है और इसके द्वार पर भी लकुलीश की मूर्ति बनी हुई है।

जाड़ोली से ६ मील पूर्व में तिलस्मा गांव है जहां कई प्राचीन स्थान हैं, जिनमें से मुख्य भवेश्वर (तलेश्वर) नामक शिवालय है। इस मंदिर के द्वार पर भी लकुलीश की प्रतिमा विराजमान है और ऊपर नवग्रह बने हुए हैं। यह मंदिर वि० सं० की ११वीं शताब्दी का बना हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है।

मैनाल

मैनाल बेगूं के सरदार की जागीर का गांव है, जो क़रीब क़रीब ऊजड़ पड़ा हुआ है। यहां पहले अच्छी आबादी होने के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। यहां श्वेत पाषाण का बना हुआ महानालदेव का विशाल शिवालय मुख्य है, और इसी के नाम से इस गांव का नाम मैनाल पड़ा है। मंदिर के द्वार पर लकुलीश की मूर्ति बनी है। इस मंदिर के पीछे एक सुंदर कुआ है जहां से ऊंचे ऊंचे स्तंभों पर बनी हुई पाषाण की नाली के द्वारा मंदिर में जल पहुंचता था। मंदिर के आगे सुंदर खुदाईवाला तोरण बना हुआ है। इस मंदिर के साथ दुमंज़िला मठ भी है, जिसकी दूसरी

(१) जिन शिवालयों में शिवलिंग मंडप की सतह से नीचा (ऊंडा) होता है, ऐसे मंदिरों को लोग ऊंडेश्वर कहते हैं। वास्तव में 'ऊंडेश्वर' मंदिर का नाम नहीं है, केवल लोगों ने इस प्रकार के शिवालयों का नाम 'ऊंडेश्वर' रख लिया है।



बाड़ोली के मंदिर के द्वार का
एक पार्श्व

मंज़िल के एक स्तंभ पर अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीभट) के समय का वि० सं० १२२६ का लेख (मास नहीं दिया) खुदा है, जिससे पाया जाता है कि यह मठ उक्त राजा के राज्यसमय भावब्रह्म मुनि (साधु) ने बनवाया था।

महानाल के मंदिर के आगे कई शिवमंदिर भग्नावस्था में पड़े हुए हैं, जो वहां के महंतों की समाधियों पर बने हुए प्रतीत होते हैं। यहां से कुछ अंतर पर पृथ्वीराज दूसरे की राणी सुहवदेवी (रूठी राणी) के महल और उसी का बनवाया हुआ सुहवेश्वर नामक शिवालय है, जो वि० सं० १२२४ में बना था, ऐसा वहां के लेख से ज्ञात होता है।

मैनाल में एक सुन्दर विशाल कुंड भी इस समय गिरी हुई दशा में है। कर्नल टॉड को यहां से एक शिलालेख वि० सं० १४४६ का मिला, जो हाड़ा शाखावाले चौहानों के प्राचीन इतिहास के लिये बड़ा उपयोगी है, परंतु अब वहां पर उसका पता नहीं लगता। शायद कर्नल टॉड अन्य शिलालेखों के साथ उसे भी इंग्लैंड ले गये हों।

बाड़ोली

भैंसरोड़गढ़ से चंबल को पार कर तीन मील जंगल में जाने पर बाड़ोली के प्रसिद्ध मंदिर आते हैं। मेवाड़ में ही नहीं, किंतु भारतवर्ष में भी कारीगरी के विचार से इन मंदिरों की समता करनेवाला—आबू के प्रसिद्ध जैन-मंदिरों तथा नागदा के 'सास के मंदिर' को छोड़कर—और कोई नहीं है। ये मंदिर २५० गज़ लंबे और उतने ही चौड़े अहाते के भीतर बने हुए हैं। इनमें मुख्य घटेश्वर का शिवालय है, जिसके आगे तोरण के दो स्तंभ खड़े थे, जिनमें से एक टूट गया है। इस मंदिर के सामने (मंदिर से विलग) एक सुंदर मंडप बना हुआ है, जिसको लोग 'राजा हूण की चौरी' कहते हैं। घटेश्वर के मंदिर के सिवा यहां गणेश, नारद, सप्तमातृका, त्रिमूर्ति और शेषशायी नारायण के मंदिर भी हैं और अहाते के बाहर एक कुंड है। यहां के मंदिरों की कारीगरी की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। भारतीय शिल्प के अद्वितीय ज्ञाता फर्गुसन ने यहां के मंदिरों की कारीगरी की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए इनको उस समय के देवालयों में अद्वितीय माना है, और शेषशायी नारायण की मूर्ति के संबंध में तो यहां तक लिखा है कि 'मेरी देखी हुई हिंदू मूर्तियों में यह सर्वोत्कृष्ट है'। कर्नल टॉड ने भी इन मंदिरों की शैली और सुन्दर खुदाई की बहुत कुछ प्रशंसा की है। ये मंदिर कब बने, इसका

ठीक ठीक निर्णय नहीं हो सका, परंतु वहां पर खुदे हुए छोटे छोटे लेखों में से एक वि० सं० ६८३ का है। यह लेख इन मंदिरों के बनने के संबंध का नहीं है, तो भी इससे इतना तो निश्चित है कि उक्त संवत् से पूर्व ये मंदिर बन गये थे। ये देलवाड़े (आबू) के मंदिरों से भी प्राचीन हैं, परंतु उदयपुर से वहां जाना श्रमसाध्य है, क्योंकि मार्ग विकट पर्वतश्रेणियों में होकर निकलता है, इसी से भारत के इन सर्वश्रेष्ठ मंदिरों को देखने का सौभाग्य अब तक अधिक पुरुषों को प्राप्त नहीं हुआ। दर्शकों के लिये कोटे से भैंसरोड़गढ़ पहुंचना सुगम है, वहां से ३ मील पर ये मंदिर हैं।

मांडलगढ़ से पूर्व के बीजोल्यां, मैनाल, बाड़ोली आदि के जिन शिवमंदिरों का वर्णन किया है और जिनके द्वार पर लकुलीश की मूर्तियां बनी हुई हैं, उनके महंत लकुलीश संप्रदाय के नाथ (कनफड़े साधु) होने चाहियें और संभव है कि वे अजमेर के चौहानों के गुरु हों। इन मंदिरों को देखते हुए चौहानों के अधीनस्थ इस प्रदेश की विपुल समृद्धि का बहुत कुछ अनुमान हो सकता है।

देलवाड़ा

एकलिंगजी से चार मील उत्तर में देलवाड़ा (देवकुलपाटक) गांव वहां के झाला सरदार की जागीर का मुख्य स्थान है। यहां पहले बहुतसे श्वेतांबर जैन-मंदिर थे, उनमें से तीन अब तक विद्यमान हैं, जिनको वसी (वसही, वसति) कहते हैं। इनमें से एक आदिनाथ का और दूसरा पार्श्वनाथ का है। इन मंदिरों तथा इनके तहखानों में रक्खी हुई भिन्न भिन्न तीर्थंकरों, आचार्यों एवं उपाध्यायों की मूर्तियों के आसनों, तथा पाषाण के भिन्न भिन्न पट्टों आदि पर खुदे हुए लेख वि० सं० १४६४ से १६८६ तक के हैं। पहले यहां अच्छे धनाढ्य जैनों की आबादी थी और प्रसिद्ध सोमसुंदर सूरि का, जिनको 'वाचक' पदवी वि० सं० १४५० (ई० स० १३९३) में मिली थी, कई बार यहां आगमन हुआ, उनका यहां बहुत कुछ सम्मान हुआ और उनके यहां आने के प्रसंग पर उत्सव भी मनाये गये थे, ऐसा 'सोमसौभाग्य' काव्य से पाया जाता है। कुछ वर्ष पूर्व यहां के एक मंदिर का जीर्णोद्धार करते समय मंदिर के कोट के पीछे के खेत में से १२२ जिनप्रतिमाएं तथा दो एक पाषाणपट्ट निकले थे। ये प्रतिमाएं मुसलमानों की चढ़ाइयों के समय मंदिरों से उठाकर यहां गाड़ दी गई हों, ऐसा अनुमान होता है। महाराणा लाखा के समय से पूर्व का यहां कोई शिला-लेख नहीं मिलता। महाराणा मोकल और कुंभा के समय यह स्थान अधिक

संपन्न रहा हो, ऐसा उनके समय की बनी हुई कई मूर्तियों के लेखों से अनुमान होता है। देलवाड़े से बाहर एक कलाल के मकान के सामने के खेत में कई विशाल मूर्तियां गड़ी हुई हैं, ऐसी खबर मिलने पर मैंने वहां खुदवाया तो चार बड़ी बड़ी मूर्तियां निकलीं, जो खंडित थीं और उनमें से कोई भी महाराणा कुंभा के समय से पूर्व की न थी।

उदयपुर-चित्तोड़गढ़ रेल्वे के करेड़ा स्टेशन के पास ही श्वेत पाषाण का बना हुआ पार्श्वनाथ का विशाल मंदिर है। मंदिर के मंडप की दोनों तरफ छोटे छोटे मंडपवाले दो और मंदिर बने हुए हैं। उनमें से एक के मंडप में अरबी का एक लेख है, जो पीछे से मरम्मत कराने के समय वहां लगा दिया गया हो, ऐसा अनुमान होता है। मंडप में जंजीर से लटकती हुई घंटियों की आकृतियां बनी हैं, जिसपर से लोगों ने यह प्रसिद्धि की है कि इस मंदिर के बनाने में एक बनजारे ने सहायता दी थी, जिससे उसके बैलों के गले में बांधी जानेवाली जंजीर सहित घंटियों की आकृतियां यहां अंकित की गई हैं, परंतु यह भी कल्पनामात्र है, क्योंकि जैन, शैव एवं वैष्णवों के अनेक प्राचीन मंदिरों के थंभों पर ऐसी आकृतियां बनी हुई मिलती हैं, जो एक प्रकार की सुंदरता का चिह्नमात्र था। मंडप के ऊपर के भाग में एक ओर मसजिद की आकृति बनी हुई है, जिसके विषय में लोग यह प्रसिद्ध करते हैं कि जब बादशाह अकबर यहां आया था तब उसने इस मंदिर में यह मसजिद की आकृति इस अभिप्राय से बनवा दी थी कि भविष्य में मुसलमान इसे न तोड़ें, परंतु वास्तव में मंदिर के निर्माण करानेवालों ने मुसलमानों का यह पवित्र चिह्न इसी विचार से बनवाया है कि इसको देखकर वे मंदिर को न तोड़ें, जैसा कि मुसलमानों के समय के बने हुए अन्य मंदिरादि के संबंध में ऊपर उल्लेख किया गया है। मंदिर में श्यामवर्ण पाषाण की बनी हुई पार्श्वनाथ की एक मूर्ति है, जिसपर खुदे हुए लेख से पाया जाता है कि वह वि० सं० १६५६ में बनी थी। लोग यह भी कहते हैं कि यहां मूर्ति के ठीक सामने के भाग में एक छिद्र था, जिसमें होकर पौष शुक्ला १० को सूर्य की किरणें इस प्रतिमा पर पड़ती थीं, उस समय यहां एक बड़ा मेला भरता था, परंतु महाराणा सरूपसिंह के समय से यह मेला बंद हो गया। पीछे से जीर्णोद्धार कराते समय उधर की दीवार ऊंची बनाई गई, जिससे अब सूर्य की किरणें मूर्ति पर नहीं गिरतीं। थोड़े समय पूर्व इस मंदिर की फिर मरम्मत

करेड़ा

होकर सारे मंदिर पर चूना पोत दिया गया जिससे इसके श्वेत पाषाण की शोभा नष्ट हो गई है। कई देशी एवं विदेशी श्वेतांबर जैन यहां यात्रार्थ आते हैं और एक धर्मशाला भी यहां बन गई है।

अंग्रेज़ सरकार में तोपों की सलामी

उदयपुर के महाराणाओं की सरकार अंग्रेज़ी में १६ तोपों की नियत सलामी है और वर्तमान महाराणा साहब की व्यक्तिगत सलामी २१ तोपों की है।

दूसरा अध्याय

उदयपुर का राजवंश

प्राचीन भारत में जो राजा राज्य करते थे उनमें से मुख्य मुख्य को पुराण आदि ग्रंथों में सूर्यवंशी और चंद्रवंशी कहा है, और उनमें भी सूर्य वंश अधिक प्रतिष्ठित और पूज्य समझा जाता है। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचंद्र, जिनको हिन्दू ईश्वर का अवतार मानते हैं, इसी वंश में उत्पन्न हुए थे। बुद्धदेव ने भी इसी वंश में जन्म लिया था और जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का भी इस वंश में होना प्रसिद्ध है। रामचंद्र के ज्येष्ठ पुत्र कुश के वंश में उदयपुर के राजवंश का होना माना जाता है[1]।

कुश के वंश के अंतिम राजा सुमित्र तक की नामावली पुराणों में दी हुई है, फिर उस वंश में वि० सं० ६२५ (ई० स० ५६८) के आसपास मेवाड़ में गुहिल नाम

नाम

का प्रतापी राजा हुआ, जिसके नाम से उसका वंश 'गुहिल वंश' कहलाया। संस्कृत शिलालेखों तथा पुस्तकों में इस वंश का नाम 'गुहिल[2]',

---

१–कर्नल टॉड ने रामचन्द्र के दूसरे पुत्र लव के वंश में उदयपुर के राजवंश का होना माना है जो सर्वथा भ्रम है, क्योंकि 'टॉड-राजस्थान' के वंशवृक्ष में रामचंद्र के ज्येष्ठ पुत्र का नाम लव तथा छोटे का कुश दिया है और कुश का पुत्र कूरम या कछवा होना मानकर लिखा है कि उससे कछवाहा वंश चला। फिर लव के वंश में अतिथि से लगाकर सुमित्र तक की नामावली पुराणों (भागवत) के अनुसार दी है, परंतु भागवत या किसी अन्य पुराण में अतिथि से सुमित्र तक के राजाओं का लव के वंश में होना कहीं नहीं लिखा है।

(२) राजा श्रीगुहिलान्वयामलपयोराशौ स्फुरद्दीधिति-
ध्वस्तध्वान्तसमूहदुष्टसकलव्यालावलेपान्तकृत्।
श्रीमानित्यपराजितः क्षितिभृतामभ्यर्चितो मूर्धभि-
र्वृत्तस्वच्छतयैव कौस्तुभमणिर्ज्जातो जगद्भूषणं ॥

मेवाड़ के राजा अपराजित के समय का वि० सं० ७१८ का शिलालेख
(ए. इं; जि० ४, पृ० ३१)।

प्रत्यर्थिवामनयनानयनांबुधारासंवर्धितः क्षितिभृतां शिरसि प्ररूढः।

'गुहिलपुत्र[1]', 'गोभिलपुत्र[2]' 'गुहिलोत[3]' या 'गौहिल्य[4]' मिलते हैं और भाषा में 'गुहिल', 'गोहिल', 'गहलोत' और 'गैलोत' प्रसिद्ध हैं। संस्कृत के गोभिल और गौहिल्य नाम भाषा के गोहिल के, तथा गुहिलपुत्र और गोभिलपुत्र गहलोत नाम के संस्कृत शैली के रूप हैं। पीछे से इस वंश की एक शाखा सीसोदा गांव में रही, जिससे उक्त शाखावाले उस गांव के नाम पर से सीसोदिये[5] कहलाये। इस समय इसी सीसोदिया शाखा के वंशधर उदयपुर के महाराणा हैं।

यः कुंठितारिकरवालकुठारधारस्तं ब्रूमहे गुहिलवंशमपारशाखं ॥

रावल समरसिंह की वि० सं० १३३१ की चित्तोड़ के क़िले की प्रशस्ति

(भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ७४)

(१) *श्रीएकलिङ्गहराराधनपाशुपताचार्यहारीतराशि ········ क्षत्रियगुहिलपुत्रसिंहलब्धमहोदयाः ········ ।*

रावल समरसिंह के समय के वि० सं० १३३५ के शिलालेख से, जो उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित है।

(२) *अस्ति प्रसिद्धमिह गोभिलपुत्रगोत्रन्तत्राजनिष्ट नृपतिः किल हंसपालः ॥ शौर्यावसज्जितनिरर्गलसैन्यसंघनम्रीकृताखिलमिलद्रिपुचक्रवालः ॥*

भेराघाट का शिलालेख (ए. इं; जि० २, पृ० ११-१२)।

(३) *गूहिलोतान्वयव्योममण्डनैकशरच्छशी ।*

वि० सं० १२२५ का हांसी का शिलालेख (इं. ऐं; जि० ४१, पृ० १६)।

(४) *यस्माद्धौ गुहिलवर्णनया प्रसिद्धां गौहिल्यवंशभवराजगणोऽत्र जातिं ।*

रावल समरसिंह की वि० सं० १३३१ की चित्तोड़ की प्रशस्ति (भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ७५)

(५) इतिहास के अंधकार में प्राचीन नामों की उत्पत्ति के विषय में लोगों ने विलक्षण कल्पनाएं की हैं। सीसोदिया नाम की उत्पत्ति के संबंध में यह कल्पना भी की गई है कि इस वंश के एक राजा ने अजान में दवा में मिलाये हुए मद्य का पान कर लिया। इस बात को जानने पर उसने उसके प्रायश्चित्त के लिये सीसा गलवाकर पी लिया, जिससे उसके वंश का नाम सीसोदिया हुआ। यह निरी गढ़ंत बात है। वास्तव में सीसोदा गांव में रहने से इस वंश के लोग सीसोदिये कहलाये हैं, जैसे कि आहाड़ में रहने से आहाड़ा, केलपुर (केलवे) में रहने से केलपुरा आदि।

उदयपुर का राजवंश वि० सं० ६२५ (ई० स० ५६८) के आसपास से लगाकर आज तक समय के अनेक हेर-फेर सहते हुए उसी प्रदेश पर राज्य करता चला आ रहा है। इस प्रकार १३५० से अधिक वर्ष तक एक ही प्रदेश पर राज्य करनेवाला संसार भर में दूसरा कोई राजवंश शायद ही विद्यमान हो। जिस समय कन्नौज के महाराज्य पर हर्ष (हर्षवर्द्धन) का राज्य था, उस समय मेवाड़ का शासन राजा शीलादित्य कर रहा था, ऐसा उसके समय के वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) के सामोली गांव से मिले हुए शिलालेख से पाया जाता है। हर्ष का महाराज्य तो उसके मरते ही नष्ट हो गया, परंतु शीलादित्य का वंश अब तक मेवाड़ पर राज्य कर रहा है।

राजवंश की प्राचीनता

फिरिश्ता लिखता है कि "राजा विक्रमादित्य (उज्जैनवाले) के पीछे राजपूतों ने तरक्की की। मुसलमानों के हिंदुस्तान में आने के पहले यहां पर बहुतसे स्वतंत्र राजा थे, परंतु सुलतान महमूद ग़ज़नवी तथा उसके वंशजों ने बहुतों को अपने अधीन किया, फिर शहाबुद्दीन ग़ोरी ने अजमेर और दिल्ली के राजाओं को जीता, बाकी रहे-सहे को तैमूर के वंशजों ने अधीन किया; यहां तक कि विक्रमादित्य के समय से जहांगीर बादशाह के समय (हि० स० १०१५= वि० सं० १६६३=ई० स० १६०६) तक कोई पुराना राजवंश न रहा, परंतु राणा ही ऐसे राजा हैं, जो मुसलमान धर्म की उत्पत्ति से पहले भी विद्यमान थे और आज तक राज्य करते हैं।" ऐसे ही अन्य मुसलमान और अंग्रेज़ इतिहास-लेखकों ने महाराणा के वंश की प्राचीनता को स्वीकार किया है।

उदयपुर का राजवंश गौरव में सूर्यवंशियों में भी सर्वोपरि माना जाता है और भारत के सभी राजपूत राजा उदयपुर के महाराणाओं को शिरोमणि मानकर उनकी ओर सदा पूज्य भाव रखते आये और अब भी रखते हैं। उनके इस महत्त्व के कई कारण हैं, जिनमें मुख्य उनकी स्वातंत्र्यप्रियता और अपने धर्म पर दृढ रहना है, जैसा कि उनके राज्यचिह्न में अंकित 'जो दृढ राखै धर्म को, तिहिं राखै करतार' शब्दों से पाया जाता है। गत १४०० वर्षों में हिन्दुस्तान में कई प्राचीन राज्य लुप्त हो गये, अनेक नये स्थापित हुए, भारतभूमि के भाग्य ने अनेक पलटे खाये, मुसलमानों के राज्य की प्रबल शक्ति के आगे सैंकड़ों हिन्दू राजाओं ने सिर झुकाकर अपनी वंशपरंपरा की मान-मर्यादा को उसके चरणों में समर्पित कर दिया, परंतु एक उदयपुर

राजवंश का गौरव

का ही राजवंश, जो समस्त संसार के राजवंशों में सबसे प्राचीन है, नाना प्रकार के कष्ट और अनेक आपत्तियां सहकर अपनी मान-मर्यादा, कुल-गौरव तथा स्वातंत्र्यप्रियता के लिये सांसारिक सुख-संपत्ति और ऐश्वर्य को निछावर करते हुए भी अपने अटल पथ से विचलित न हुआ। इसी कारण भारतवासी हिन्दूमात्र उदयपुर के महाराणाओं को पूज्य दृष्टि से देखते हैं और 'हिन्दुआ सूरज' कहते हैं। इसमें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं, किंतु हिन्दुओं के विरोधी स्वयं मुसलमान बादशाहों तथा मुसलमान इतिहास-लेखकों ने उक्त वंश के महत्त्व का उल्लेख किया है, जिसके कुछ उदाहरण नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

बाबर बादशाह ने अपनी दिनचर्या की पुस्तक 'तुज़ुके बाबरी' में लिखा है कि "हिन्दुओं में बीजानगर (विजयनगर) के सिवा दूसरा प्रबल राजा राणा सांगा है, जो अपनी वीरता तथा तलवार के बल से शक्तिशाली हो गया है। उसने मांडू (मालवे) के बहुतसे इलाके—रणथंभोर, सारंगपुर, भिलसा और चंदेरी—ले लिये हैं"। आगे फिर लिखा है कि "हमारे हिन्दुस्तान में आने से पहले राणा सांगा की शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि दिल्ली, गुजरात और मांडू (मालवे) के सुलतानों में से एक भी बड़ा सुलतान हिन्दू राजाओं की सहायता के बिना अकेला उसका सामना नहीं कर सकता था। मेरे साथ की लड़ाई में बड़े बड़े राजा व रईस राणा सांगा की अध्यक्षता में लड़ने को आये थे। मुसलमानों के अधीनस्थ देशों में भी २०० शहरों में राणा का झंडा फहराता था, जहां मसजिदें तथा मकबरे बर्बाद हो गये थे और मुसलमानों की औरतें तथा बाल-बच्चे क़ैद कर लिये गये थे। उसके अधीन १०००००००० रुपये की आमद का मुल्क है, जिसमें हिन्दुस्तान के क़ायदे के अनुसार एक लाख सवार रह सकते हैं"।

बादशाह जहांगीर ने अपनी 'तुज़ुके जहांगीरी' में लिखा है कि "राणा अमरसिंह हिंदुस्तान के सबसे बड़े सरदारों तथा राजाओं में से एक है। उसकी तथा उसके पूर्वजों की श्रेष्ठता और अध्यक्षता इस प्रदेश (राजपूताना आदि) के सब राजा और रईस स्वीकार करते हैं। बहुत काल तक उनके वंश का राज्य पूरब में रहा। उस समय उनकी पदवी राजा थी। फिर वे दक्षिण में आये और वहां के कई प्रदेशों पर उन्होंने अपना अधिकार कर लिया तथा रावल

कहलाने लगे; वहां से मेवात (मेवाड़) के पहाड़ी प्रदेश की ओर बढ़ते हुए शनैः शनैः चित्तोड़ का क़िला उन्होंने ले लिया। उस समय से मेरे इस आठवें जुलूस (राज्यवर्ष=वि० सं० १६७०=ई० स० १६१३) तक १४७१ (?) वर्ष बीते हैं। इतने दीर्घ काल में उन्होंने हिंदुस्तान के किसी नरेश के आगे सिर नहीं झुकाया और बहुधा लड़ाइयां लड़ते ही रहे। बादशाह बाबर के साथ इधर के सब राजाओं, रईसों तथा सरदारों को लेकर १८०००० सवार तथा कई लाख पैदल सेना सहित राणा सांगा ने बयाने के पास युद्ध किया। ईश्वर की सहायता और भाग्य के बल से इस्लाम की सेना ने विजय प्राप्त की। मेरे पिता (अकबर बादशाह) ने भी इन सरकशों (विद्रोहियों) को दबाने की बहुत कुछ कोशिश की और कई बार उनपर सेनाएं भेजीं। अपने सन् जुलूस (राज्यवर्ष) १२वें (वि० सं० १६२४=ई० स० १५६७) में चित्तोड़ के क़िले को, जो संसार के बांके गढ़ों में से एक है, छीनने और राणा के राज्य को नष्ट करने के लिये वे (बादशाह) स्वयं गये। चार मास और दस दिन घेरा रहने के बाद क़िला छीना और उसको नष्ट कर वे लौट आये। कई बार बादशाही सेनाओं ने राणा (प्रताप) को इस विचार से तंग किया कि या तो वह क़ैद हो जाय या भागता फिरे, परंतु इसमें निष्फलता ही हुई। जिस दिन वे दक्षिण को विजय करने चढ़े उसी दिन मुझे बड़ी सेना और विश्वासपात्र सरदारों के साथ राणा पर भेजा, परंतु ये दोनों चढ़ाइयां दैवयोग से निष्फल हुईं। मैंने तख़्त पर बैठते ही जो मुख्य मुख्य उमराव उस समय राजधानी में थे उनको साथ देकर शाहज़ादे परवेज़ को राणा पर भेजा और उसके साथ बहुतसा खज़ाना और तोपखाना भी भेजा, परंतु खुसरो का झगड़ा खड़ा हो जाने से आगरे की रक्षा के लिये परवेज़ को पीछा बुला लेना पड़ा (वह भी हारकर लौटा था)। फिर महाबतखां, अब्दुल्लाखां और दूसरे सरदारों की अधीनता में प्रबल सेनाएं भेजीं और उस समय से अब तक लड़ाइयां होती रही हैं, परंतु जब उनसे भी मेरा मनोरथ सिद्ध न होता देखा तब मैं स्वयं आगरे से इसकी सिद्धि के लिये रवाना हुआ और अजमेर में ठहर कर वहां से बाबा ख़ुर्रम (पीछे से बादशाह शाहजहां) की अध्यक्षता में एक प्रबल सेना राणा पर भेजी"।

आगे बादशाह ने फिर लिखा है कि "जब मैं अजमेर के निकट शिकार खेल रहा था तो मुहम्मद बेग सुलतान ख़ुर्रम की अर्ज़ी लेकर पहुंचा, जिसमें

लिखा था कि राणा अपने बेटों सहित मेरे पास उपस्थित हो गया है। यह ख़बर पढ़कर मैंने ख़ुदा का सिजदा (दंडवत् प्रणाम) शुकर (धन्यवाद) अदा किया और इस ख़ुशख़बरी के इनाम में मुहम्मद बेग को हाथी, घोड़ा, जड़ाऊ ख़ंजर और ज़ुल्फिकारख़ां का ख़िताब दिया[१]"।

महाराणा अमरसिंह ने बादशाह जहांगीर की अधीनता स्वीकार की, परंतु बादशाही दरबार में किसी राजा आदि को बैठक नहीं मिलती थी और उनको घंटों खड़ा रहना पड़ता था इसलिये यह शर्त करा ली गई कि मेवाड़ के महाराणा शाही दरबार में कभी उपस्थित न होंगे और अपने बड़े कुंवर को भेज देंगे। यह शर्त स्वीकार हुई, जिससे मेवाड़ के किसी राणा ने मुसलमान बादशाहों के दरबार में जाकर कभी सिर नहीं झुकाया था।

'एचीसन ट्रीटीज़' में लिखा है कि उदयपुर का राजवंश पद-प्रतिष्ठा में हिन्दुस्तान के राजपूत राजाओं में सबसे बढ़कर है और हिंदू उनको राम का प्रतिनिधि मानते हैं। ऐसे ही बर्नियर, मिल, एलफिन्स्टन, माल्कम आदि अनेक यूरोपियन इतिहास-लेखकों ने भी इस वंश की महत्ता को स्वीकार किया है।

राजवंश के संबंध में पिछले लेखकों का भ्रम

भारतीय राजवंशों का इतिहास जानने का आधार पहले केवल बड़वे भाटों की पुस्तकों (ख्यातों) और परंपरागत दंतकथाओं पर ही विशेषकर निर्भर था। कई राजवंशों के प्राचीन दानपत्र, शिलालेख आदि इतिहास के साधन कभी कभी उपलब्ध होने पर भी उनकी लिपि प्राचीन होने के कारण वे नहीं पढ़े जाते थे। इसलिये राजपूत जाति का पुराना हाल प्रायः अंधकार में ही रहा, और भाटों आदि ने उस विषय में पीछे से मनमानी कल्पना की और कई मनगढ़ंत क़िस्से कहानी उसके साथ जोड़कर उस समस्या को और भी जटिल बना दिया। पहले के विद्वानों को उन्हीं का आश्रय लेकर अपने इतिहास लिखने पड़े। राजपूतों का इतिहास लिखनेवालों में सर्वप्रथम बादशाह अकबर का मंत्री अबुल्फज़ल था। उसने अपने बड़े ग्रंथ 'आईने अकबरी' में अकबर के राज्य के प्रत्येक सरकार (सूबे) के वर्णन में वहां का पुराना इतिहास लिखने का यत्न किया, परंतु उस समय प्राचीन संस्कृत ऐतिहासिक पुस्तकों का, जो भिन्न भिन्न स्थानों के पुस्तक-संग्रहों में पड़ी हुई थीं, किसी ने संग्रह भी नहीं

(१) ए. रॉजर्स; 'मैमॉयर्स ऑफ़ जहांगीर'; जि० १, पृ० २७१।

किया था और प्राचीन शिलालेख तथा दानपत्र तो पढ़े ही नहीं जाते थे। ऐसी दशा में अबुल्फ़ज़ल को भिन्न भिन्न राजपूत वंशों का इतिहास भाटों की ख्यातों से ही, जो उसको राजाओं की तरफ से प्राप्त हो सकीं, लिखना पड़ा। अतएव उसका लिखा हुआ राजपूतों का प्राचीन इतिहास इस समय की प्राचीन शोध से जो इतिहास ज्ञात हुआ है, उसके सामने सर्वथा विश्वासयोग्य नहीं है। उस समय तक मेवाड़वालों ने अकबर बादशाह की अधीनता स्वीकार नहीं की थी, जिससे अकबर उनका कट्टर शत्रु हो रहा था और वह उनको नष्ट करना चाहता था, जैसा कि जहांगीर के लिखने से अनुमान होता है।

अबुल्फ़ज़ल ने सरकार (सूबे) अजमेर के प्रसंग में मेवाड़ का प्राचीन इतिहास लिखने का यत्न किया है, जो कुछ भी महत्त्व का नहीं है। उसने मनमानी कल्पना कर मेवाड़ के राजवंश को ईरान के बादशाह नौशेरवां आदिल की संतान होना लिख दिया, परंतु अबुल्फ़ज़ल के पहले की अरबी अथवा फारसी तवारीख़ों, भाटों की ख्यातों, जैनों के पुस्तकों तथा प्राचीन शिलालेख आदि में कहीं इसका उल्लेख नहीं है। यह कल्पना अबुल्फ़ज़ल की मनगढ़ंत होने से आधुनिक विद्वान् इसको कुछ भी प्रामाणिक नहीं समझते[१]।

अबुल्फ़ज़ल के आधार पर 'मासिरुल्उमरा' के कर्त्ता ने भी, और पीछे से हिजरी सन् १२०४[२] (वि० सं० १८४७=ई० स० १७९०) में लक्ष्मीनारायण शफ़ीक़ औरंगाबादी ने अपनी किताब 'बिसातुल ग़नाइम्' में लिखा है कि "यह तो भली भांति प्रसिद्ध है कि उदयपुर के राजा हिंद (हिंदुस्तान) के तमाम राजाओं में सर्वोपरि हैं और दूसरे हिंदू राजा अपने पूर्वजों की गद्दी पर बैठने के पूर्व राजतिलक उदयपुर के राजाओं से प्राप्त करते हैं। उनका खिताब राणा है और वे नौशेरवां के, जिसने कई देशों तथा हिन्दुस्तान के कई विभागों पर विजय प्राप्त की थी, वंशज हैं। उसकी जीवित दशा में उसके पुत्र नौशेज़ाद ने, जिसकी माता रूम (तुर्की) के कैसर की पुत्री थी, अपना प्राचीन धर्म छोड़कर ईसाई मत को ग्रहण किया और वह बड़ी सेना के साथ हिंदुस्तान में

(१) बंब. गै; जि० १, भाग १, पृ० १०२; और विलियम क्रुक-संपादित टॉड राजस्थान का सटिप्पण नवीन ऑक्सफर्ड-संस्करण, जि० १, पृ० २७८, टिप्पण २।

(२) टॉड; 'राजस्थान'; जि० १, पृ० २७५-७६।

आया। यहां से बड़ी सेना लेकर वह अपने पिता से लड़ने को ईरान पर चढ़ा, परंतु लड़ाई में मारा गया, तो भी उसकी संतान हिंदुस्तान में रही, उसके वंश में उदयपुर के राणा हैं[1]"।

कर्नल टॉड ने प्रथम तो यह लिखा कि "मेवाड़ के राजा सूर्यवंशी हैं और राणा तथा रघुवंशी कहलाते हैं; हिंदू जाति एकमत होकर मेवाड़ के राजाओं को राम की गद्दी के वारिस मानती है और उनको 'हिंदुआ सूरज' कहती है। राणा ३६ राजवंशों में सर्वोपरि माने जाते हैं[2]"। परंतु आगे चलकर लिखा कि "सूर्य वंश का राजा कनकसेन अपनी राजधानी लोहकोट (लवपुर, लाहोर) छोड़कर सौराष्ट्र में आया और परमार राजा का राज्य छीनकर वहां पर ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी (ई० स० १४४) में वीरनगर (वीरपुर) बसाया। उससे चार पीढ़ी बाद विजयसेन हुआ, जिसको आंबेर का राजा (सवाई जयसिंह) नौशेरवां मानता है। उसने सौराष्ट्र में विजयपुर नगर और विदर्भ बसाया, जिसका नाम पीछे से सिहोर हुआ, परंतु उसकी मुख्य राजधानी वलभीपुर (वळा) थी। वि० सं० ५८० में वलभी के राजा शीलादित्य के समय विदेशियों ने वलभी का नाश किया उस समय उसकी राणी पुष्पावती ही जो अंबा भवानी की यात्रा को गई थी बचने पाई और उसका पुत्र गोह (गुरुदत्त) मेवाड़ का राजा हुआ[3]"। आगे चलकर टॉड ने अबुल्फ़ज़ल, मासिरुल्उमरा और लक्ष्मीनारायण औरंगाबादी के कथन को उद्धृत कर यह बतलाने की खींच-तान की है कि वलभीपुर के राजा नौशेरवां के बेटे नौशेज़ाद या यज़्दजर्द की लड़की माहबानू के वंशज होने चाहियें।

फिर आगे चलकर लिखा है कि 'यद्यपि यह सर्वथा असंभव प्रतीत होता है कि राणा ईरानी वंश की पुरुष शाखा के वंशधर हों, तो भी यज़्दजर्द की भाग जानेवाली पुत्री माहबानू का विवाह सौराष्ट्र के राजा के साथ होना यह संभव है और कदाचित् वह शीलादित्य की माता सुभगा हो'।

कनकसेन का काठियावाड़ में जाना, उसके वंश में शीलादित्य का होना, उसके समय में वलभी का नाश होना और शीलादित्य के पुत्र गोहा का मेवाड़

(१) टॉड राजस्थान; जि० १, पृ० २७५-७७।

(२) वही; जि० १, पृ० २४७।

(३) वही; जि० १, पृ० २५१-२६०।

का स्वामी होना तथा वलभीपुर के एवं उसी से निकले हुए मेवाड़ के राजवंश का नौशेरवां के पुत्र नौशेज़ाद[1] या यज़्दजर्द की पुत्री माहबानू के वंश में होना इत्यादि कर्नल टॉड का सारा कथन कपोलकल्पित है, क्योंकि ई० स० १४४ (वि० सं० २००) में सौराष्ट्र (काठियावाड़) का स्वामी कनकसेन नहीं, किंतु क्षत्रप वंश का प्रतापी राजा रुद्रदामा था, जिसके अधीन सारा काठियावाड़ तथा दूर दूर के देश थे, जैसा कि ऊपर पश्चिमी क्षत्रपों के इतिहास (पृ० १०३-५; ११०) में बतलाया गया है। सौराष्ट्र पर परमारों का कभी राज्य ही नहीं रहा। कनकसेन से पांचवीं पीढ़ी में विजयसेन का वहां होना भी कल्पित ही है, क्योंकि उस समय वहां क्षत्रपवंशियों का राज्य था, जैसा कि उनके इतिहास में लिखा गया है। अबुल्फ़ज़ल के कथन पर विश्वास कर आंबेर के राजा (जयसिंह) का विजयसेन को नौशेरवां मानना केवल भ्रम ही है, क्योंकि नौशेरवां आदिल ई० स० ५३१ (वि० सं० ५८८) के आसपास ईरान का बादशाह हुआ; उसके बेटे नौशेज़ाद ने ई० स० ५५१ (वि० सं० ६०८) में अपने पिता से विद्रोह किया और क़ैद होकर वह अंधा किया गया अथवा मारा गया। यज़्दजर्द ईरान का अंतिम बादशाह था, जिसको ख़लीफ़ा उमर के सेनापति ने ई० स० ६३६-३७ (वि० सं० ६९३-९४) में परास्त किया और ई० स० ६५१-५२ (वि० सं० ७०८-७०९) में वह अपने एक सामंत के हाथ से मारा गया था[2]। कर्नल टॉड ने वलभी का नाश वि० सं० ५८० (ई० स० ५२४) में होना, वहां के राजा शीलादित्य का युद्ध में मारा जाना, उसकी राणी पुष्पावती का मेवाड़ में आना और वहां गोहा (गुहदत्त) का जन्म होना लिखा है। ये सब घटनाएं नौशेरवां के ई० सं० ५३१ में ईरान के तख़्त पर बैठने से पूर्व की हैं, अतएव नौशेज़ाद या माहबानू के वंश में न तो वलभी के राजाओं का और न टॉड के कथनानुसार उनसे निकले हुए मेवाड़ के राजाओं का होना संभव हो सकता है।

श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के

(१) नौशेज़ाद के हिंदुस्तान में आने का कोई प्रमाण नहीं है; वह तो बग़ावत करने पर मारा गया था (माल्कम, हिस्टरी ऑफ़ पर्शिया; जि० १, पृ० ११२ और आगे; द्वितीय संस्करण)। ऐसा ही टॉड-राजस्थान के ऑक्सफ़र्ड-संस्करण के संपादक विलियम क्रुक ने भी माना है (टॉ; रा; जि० १, पृ० २७६; टिप्पण २)।

(२) एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका; जि० १८, पृ० ६१३।

जर्नल में एक लेख प्रकाशित कर यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि मेवाड़ के राजा ब्राह्मण (नागर) हैं। उक्त लेख में इस कथन की पुष्टि के जो प्रमाण दिये हैं, उनको नीचे लिखकर प्रत्येक के साथ उसकी जांच भी की जाती है—

(१) "आटपुर (आहाड़) से मिले हुए वि० सं० १०३४ के शिलालेख में लिखा है कि 'आनंदपुर (वड़नगर) से निकले हुए ब्राह्मणों के कुल को आनंद देनेवाला महीदेव गुहदत्त, जिससे गुहिल वंश चला, विजयी है'[1]; यह मेवाड़ के गुहिलवंशी राजाओं का ब्राह्मण होना प्रकट करता है"।

जिस श्लोक का अनुवाद ऊपर दिया है उससे तो यही ज्ञात होता है कि गुहदत्त आनंदपुर से निकले हुए ब्राह्मण-कुल का सम्मान करनेवाला था। उसी लेख के छठे श्लोक में गुहिल के वंशज नरवाहन के वर्णन में उसको 'विजय का निवास-स्थान' एवं 'क्षत्रियों का क्षेत्र' अर्थात् क्षत्रियों का उत्पत्ति-स्थान कहा है[2]। इससे स्पष्ट है कि गुहदत्त और उसके वंशज ब्राह्मण नहीं, किंतु क्षत्रियों में श्रेष्ठ थे, परंतु भंडारकर महाशय ने उक्त छठे श्लोक का उल्लेख भी नहीं किया।

अब यह भी देखना चाहिये कि संवत् १०३४ से पूर्व गुहिलवंशियों की उत्पत्ति के विषय में क्या माना जाता था। इसी वंश के राजा बापा (बप्प) का सोने का एक सिक्का मिला है, जिसपर चंवर और छत्र के चिह्नों के बीच सूर्य का भी चिह्न बना हुआ है, जो उनका सूर्यवंशी होना प्रकट करता है[3]। एकलिंगजी के मंदिर के निकट उक्त देवालय के मठाधिपति का बनवाया हुआ पाशुपत संप्रदाय का लकुलीश का मंदिर है, जिसके बाहर लगे हुए वि० सं० १०२८ के मेवाड़ के

(१) आनंदपुरविनिर्गतविप्रकुलानंदनो महीदेवः ।
जयति श्रीगुहदत्तः प्रभवः श्रीगुहिलवंशस्य ॥
इं. ऐं; जि० ३६, पृ० १९१।

(२) अविकलकलाधारो धीरः स्फुरद्वरलसत्करो
विजयवसतिः क्षत्रक्षेत्रं क्षताहतिसंहतिः ।
समजनि जना············प्रतापतरूद्गतो
विभवभवनं विद्यावेदी नृपो नरवाहनः ॥ [६ ॥]
वही; जि० ३९, पृ० १९१।

(३) ना. प्र. प; भाग १, पृ० २४९–६८।

राजा नरवाहन के समय के शिलालेख में वहां के मठाधिपतियों (तपस्वियों) को 'शाप और अनुग्रह के स्थान, तथा हिमालय से सेतुपर्यंत रघुवंश की कीर्ति को फैलानेवाला कहा है'[1]। ये मठाधीश एकलिंगजी के मंदिर के क्रमागत पुजारी और मेवाड़ के गुहिलवंशी राजाओं के गुरु थे, जिनको उन राजाओं की तरफ से कई सहस्र रुपयों की जागीर मिली हुई थी, अतएव 'रघुवंश की कीर्ति' से यहां अभिप्राय 'मेवाड़ के राजाओं की कीर्ति' से ही है। भंडारकर महाशय ने जहां यह लेख प्रकाशित किया है, वहां मूल में 'रघुवंश' शब्द छपा है, परंतु लेख का सारांश देने में उस शब्द को छोड़कर अर्थ यह किया कि 'उन तपस्वियों की कीर्ति हिमालय से सेतुपर्यन्त फैली हुई है' जो सर्वथा अशुद्ध है।

मेवाड़ में यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि यहां के राजवंश के मूल पुरुष गुहिल (गुहदत्त) का, उसके पिता के मारे जाने पर, एक ब्राह्मण ने पालन किया था। मुंहणोत नैणसी ने भी अपनी ख्यात के प्रारंभ में ही मेवाड़ के राजाओं के विषय में लिखा है कि "सीसोदिये प्रारंभ में गहिलोत (गुहिलोत) कहलाते थे, पहले इनका राज्य दक्षिण में नासिक-त्र्यंबक की तरफ था। इनका पूर्वज सूर्य की उपासना करता था, मंत्राराधना करने पर सूर्य आकर प्रत्यक्ष होता था, जिससे कोई योद्धा उसको नहीं जीत सकता था। उसके पुत्र न हुआ तो उसने पुत्र-प्राप्ति के लिये सूर्य से विनती की, जिसपर सूर्य ने कहा कि अंबा देवी की यात्रा बोलो और पुत्र की इच्छा करो, जिससे राणी के गर्भ रहेगा। राजा ने यात्रा बोली और राणी के गर्भ रहा। जब राणी यात्रा को निकली उस समय राजा की सूर्य की उपासना मिट गई, जिससे शत्रुओं ने उसपर आक्रमण कर दिया। राजा युद्ध में मारा गया और बांसला नामक उसका गढ़ शत्रुओं ने छीन लिया। राणी अंबाजी की यात्रा कर नागदा गांव में पहुंची, जहां उसको अपने पति के मारे जाने के समाचार मिले। वह चिता बनवाकर सती होने को तैयार हुई तो उसको रोकने के लिये ब्राह्मणों ने कहा कि सगर्भा स्त्री के सती होने का निषेध

(१) *तेभ्यो ....*

.... क्लेशसमुद्गतात्ममहसः .... योगिनः।

शापानुग्रहभूमयो हिमशिलाव(ब)न्धोज्ज्वलादागिरे-

रासेतो रघुवंशकीर्तिपिशुनास्ती .... ॥

बंब० ए० सो० ज; जि० २२, पृ० १६६–६७।

है और आपके प्रसव के दिन भी निकट हैं। इसपर वह रुक गई और पंद्रह दिन बाद उसके पुत्र हुआ। फिर १५ दिन हो जाने पर उसने स्नान किया और चिता तैयार करवाई। राणी जलने को चली और लड़का उसकी गोद में था। वहीं कोटेश्वर महादेव के मंदिर में ब्राह्मण विजयादित्य, पुत्र के लिये आराधना किया करता था। उसको बुलाकर राणी ने वस्त्र में लिपटा हुआ वह बालक दे दिया। विजयादित्य ने माल (दौलत) समझकर उसे ले लिया। इतने में लड़का रोया, जिससे ब्राह्मण ने कहा 'मैं इस राजपूत के लड़के को लेकर क्या करूं? बड़ा होने पर यह शिकार में जानवर मारेगा और दुनिया से लड़ाई-झगड़े करेगा, जिससे मैं पाप में पड़ूंगा और मेरा धर्म जाता रहेगा, अतएव यह दान मुझसे नहीं लिया जाता'। इसपर राणी ने उससे कहा कि तुम्हारा कथन ठीक है, परंतु यदि मैं सती होकर जलती हूं तो मेरा यह वचन है कि इस पुत्र के वंश में जो राजा होंगे, वे १० पुश्त तक तेरे कुल के आचार का पालन करेंगे और तुझको बड़ा आनंद देंगे। तब विजयादित्य ने उस लड़के को रख लिया। फिर राणी ने उसको द्रव्य, भूषण आदि दिया और वह सती हो गई। विजयादित्य के उस लड़के के वंशजों ने १० पीढ़ी तक ब्राह्मण धर्म का पालन किया और वे नागदा (नागर) ब्राह्मण कहलाये। विजयादित्य का यह सूर्यवंशी पुत्र गुहिलोत (गुहिल) सोमदत्त कहलाया। उसके पीछे सीलादत (शीलादित्य) आदि हुए[1]"।

नैणसी की यह कथा प्राचीन काल से चली आती हो, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि वि० सं० १०३४ के उपर्युक्त शिलालेख में राजा गुहदत्त (गुहिल) को 'आनंदपुर से निकले हुए ब्राह्मण-कुल को आनंद देनेवाला' कहा है, जो उक्त विजयादित्य के कुल का सूचक होना चाहिये।

(२-३) "रावल समरसिंह के समय की वि० सं० १३३१ (ई० स० १२७४) की चित्तोड़ की प्रशस्ति में बापा को 'विप्र[2]' कहा है और वि० सं० १३४२

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; पृ० १; ना. प्र. प; भाग १, पृ० २६१-६४।

(२) जीयादानंदपूर्वं तदिह पुरमिलाखंडसौंदर्यशोभि-
क्षोणीप्र(पृ)ष्ठस्थमेव त्रिदशपुरमधः कुर्व्वदुच्चैः समृध्या।
यस्मादागत्य विप्रश्चतुरुदधिमहीवेदिनिक्षिप्तयूपो

(ई० स० १२८५) की उसी राजा के समय की आबू की प्रशस्ति में लिखा है कि "ब्रह्मा के सदृश हारीत से बप्प (बापा) ने पैर के कड़े के बहाने से क्षात्र तेज प्राप्त किया और अपनी सेवा के छल से ब्रह्मतेज मुनि को दे दिया[1]। ये दोनों कथन बापा का ब्राह्मण होना प्रकट करते हैं"।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि बापा के सोने के सिक्के पर वंशसूचक सूर्य का चिह्न है, वि० सं० १०२८ में इनको रघुवंशी माना है, वि० सं० १०३४ के लेख में 'क्षत्रियों का उत्पत्ति-स्थान' कहा है और ऊपर दिये हुए नैणसी की ख्यात के कथन से पाया जाता है कि गुहिल की माता ने अपना क्षत्रिय पुत्र विजयादित्य को यह कहकर सौंपा था कि १० पीढ़ी तक इसके वंशज ब्राह्मणकुल के आचार का पालन करेंगे, अतएव आबू की प्रशस्ति के उक्त कथन का अभिप्राय यही होना चाहिये कि बापा के पूर्व के राजाओं ने ब्राह्मण धर्म का भी पालन किया, किंतु बापा ने केवल क्षात्र धर्म धारण कर लिया, क्योंकि उसी श्लोक के उत्तरार्द्ध में स्पष्ट लिखा है कि 'उस वंश के राजा मूर्तिमान् क्षात्रधर्मरूप' आज भी पृथ्वी पर शोभते हैं[2]।

उसी रावल समरसिंह की माता जयतलदेवी ने वि० सं० १३३५ (ई० स० १२७८) में चित्तोड़ पर श्यामपार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया, जिसके शिलालेख में गुहिलोतवंशी सिंह के नाम का उल्लेख करते हुए गुहिल को क्षत्रिय बतलाया है[3], परंतु उसका श्रीयुत भंडारकर ने उल्लेख भी नहीं किया।

(४-५) "वि० सं० १५१७ की राणा कुंभा की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में तथा उसी राणा के समय के बने हुए 'एकलिंगमाहात्म्य' में 'आनंदपुर से निकले हुए ब्राह्मण (नागर) वंश को आनंद देनेवाला'—इस अभिप्राय का वि० सं०

बप्पाख्यो वीतरागश्चरणयुगमुपासीत(सीद्)हारीतराशेः ॥

चित्तोड़ का लेख, श्लोक ६ (भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ७५)।

(१) *हारीतात्किल बप्पकोऽह्रिवलयव्याजेन लेभे महः*

क्षात्रं धातृनिभाद्वितीर्य मुनये ब्राह्मं स्वसेवाच्छलात् ।

(२) *एतेऽद्यापि महीभुजः क्षितितले तद्वंशसंभूतयः*

शोभंते सुतरामुपात्तवपुषः क्षात्रा हि धर्मा इव ॥ ११ ॥

आबू का शिलालेख. (इं० ऐं०; जि० १६, पृ० ३४७)।

(३) देखो ऊपर पृ० ३७०, टिप्पण १।

१०३४ की प्रशस्ति का श्लोक (आनंदपुरविनिर्गत०) उद्धृत किया गया है जो इनका ब्राह्मण होना सूचित करता है"।

वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) की प्रशस्तिवाले उक्त श्लोक के विषय में हम ऊपर (पृ० ३७८) लिख आये हैं और यह भी बतला चुके हैं कि उसी लेख के छठे श्लोक में राजा नरवाहन को 'क्षत्रियों का क्षेत्र' अर्थात् 'क्षत्रियों का उत्पत्ति-स्थान' भी कहा है, जिसके विषय में भंडारकर महाशय ने कुछ भी नहीं लिखा।

राणा कुंभा के पिता मोकल ने अपनी राणी वाघेली (बघेली) गौरांबिका के पुण्य के निमित्त एकलिंगजी से ६ मील दूर शृंगी ऋषि नामक स्थान पर वि० सं० १४८५ में एक बावड़ी बनवाई, जिसके शिलालेख में कुंभलगढ़ की प्रशस्ति और एकलिंगमाहात्म्य के विरुद्ध उक्त महाराणा मोकल के दादा क्षेत्र (क्षेत्रसिंह, खेता) को 'क्षत्रिय वंश का मंडनमणि' कहा है[1]।

राणा कुंभा के पुत्र रायमल के समय के वि० सं० १५५७ के नारलाई गांव (जोधपुर राज्य में) के जैन मंदिर के शिलालेख में गुहिदत्त (गुहदत्त), बप्प (बापा), खुम्माण आदि राजाओं को सूर्यवंशी बतलाया है[2]।

(६) "मुंहणोत नैणसी की ख्यात का नीचे लिखा हुआ पद्य गुहिलवंशियों का ब्राह्मण होना प्रकट करता है"—

आद मूल उतपत्ति ब्रह्म पिण खत्री जाणां।
आणंदपुर सिंगार नगर आहोर वखाणां॥

इस पद्य के लिखने के पहले नैणसी ने गहलोत (गुहिलोत, गुहिल) वंश के मूल पुरुष के मारे जाने, उसकी सगर्भा राणी के नागदा में पहुंचने और वहां उसके पुत्र उत्पन्न होने, विजयादित्य ब्राह्मण (नागर) को उसे सौंपकर सती होने, विजयादित्य का उस क्षत्रिय बालक का पालन करने, उसके वंशजों का १०

(१) एवं सर्वमकंटकं समगमद्भूमंडलं भूपति-
हंमीरो ललनास्मरः सुरपदं संपाल्य काश्चित्समाः।
सम्यग्वर्महरं ततः स्वतनयं सुस्थाप्य राज्ये निजे
क्षेत्रं क्षत्रियवंशमंडनमणिं प्रत्यर्थिकालानलं॥ ५॥

शृंगी ऋषि की बावड़ी का शिलालेख (अप्रकाशित)।

(२) ना. प्र. प; भाग १, पृ० २६८; टिप्पण ९३।

(कहीं आठ) पीढ़ी तक ब्राह्मणकुल का आचार पालन करने और गुहदत्त का सूर्यवंशी क्षत्रिय होने का हाल विस्तार से लिखा है, जिसके विषय में भी भंडारकर चुपकी साध गये हैं।

(७) "चाटसू (जयपुर राज्य में) से मिले हुए गुहिलवंशी राजा बालादित्य के शिलालेख में, जो ई० स० की १०वीं शताब्दी का है, लिखा है कि 'गुहिल के वंश में राम के समान पराक्रमी और शत्रुओं का नाश करनेवाला ब्रह्मक्षत्र गुण-युक्त भर्तृपट्ट हुआ'[1]। यहां राम से तात्पर्य परशुराम से है। परशुराम ब्राह्मण वंश का था और क्षात्र कर्म करता था। अतएव 'ब्रह्मक्षत्र' शब्द से यही पाया जाता है कि भर्तृपट्ट भी ब्राह्मण था"।

ब्रह्मक्षत्र शब्द का प्रयोग कई पुराणों में मिलता है और विष्णु, वायु, मत्स्य तथा भागवत आदि में पौरव (पांडु) वंश का वर्णन करते हुए अंतिम राजा क्षेमक के प्रसंग में लिखा है कि 'पुरु वंश में २५ राजा होंगे; इस संबंध में प्राचीन ब्राह्मणों का कथन है कि ब्रह्मक्षत्र को उत्पन्न करनेवाले तथा देवताओं एवं ऋषियों से सत्कार पाये हुए इस (पौरव) कुल में अंतिम राजा क्षेमक होगा' (देखो ऊपर पृ० ६६ का टिप्पण २)। यहां 'ब्रह्मक्षत्र' से यही अभिप्राय है कि 'ब्राह्मण और क्षत्रियगुणयुक्त', अर्थात् जैसे सूर्य वंश में विष्णुवृद्ध, हरित आदि क्षत्रियों ने, जो मांधाता के वंशज थे, ब्रह्मत्व प्राप्त किया, उसी तरह चंद्र वंश में विश्वामित्र, अरिष्टसेन आदि क्षत्रिय भी ब्रह्मत्व प्राप्त कर चुके थे। देवपारा से मिले हुए बंगाल के सेनवंशी राजा विजयसेन के शिलालेख में उक्त राजा के पूर्वजों को चंद्रवंशी, और राजा सामंतसेन को ब्रह्मवादी तथा 'ब्रह्मक्षत्रिय कुल' का शिरोमणि कहा है (देखो ऊपर पृ० ६६, टिप्पण २)। ऐसे ही मालवे के परमार राजा मुंज (वाक्पतिराज, अमोघवर्ष) के दरबार के पंडित हलायुध ने 'पिंगलसूत्रवृत्ति' में राजा मुंज को 'ब्रह्मक्षत्र कुल' का कहा है (देखो ऊपर पृ० ६६, टिप्पण २)। ऐसी दशा में यह नहीं कह सकते कि सभी (२५) पुरुवंशी

(१) *अस्त(स्त्र)ग्रामोपदेशैरवनतनृपतीन्भूतलं भूरिभूत्या*
भूदेवान्भूमिदानैस्त्रिदिवमपि मखैर्व[न्दय]न्नन्दितात्मा ।
व(ब)ह्मक्षत्रान्वितोऽस्मिन्समभवदसमे रामतुल्यो विशल्यः
सौ(शौ)र्याढ्यो भर्तृपट्टो रिपुभटविटपिच्छेदकेलीपटीयान् ॥ ७ ॥

ए. इं; जि० १२, पृ० १३।

राजा, बंगाल का चंद्रवंशी राजा सामंतसेन तथा मालवे का परमार राजा मुंज, ये सब ब्राह्मण थे। 'ब्रह्मक्षत्र' का आशय यही है कि ब्रह्मत्व और क्षात्रत्व दोनों गुणयुक्त।

चाटसू के लेख में भर्तृपट्ट(भर्तृभट) को 'ब्रह्मक्षत्र गुणयुक्त' कहा है, जिसका अर्थ यह नहीं है कि वह ब्राह्मण वंश का था। इसका अर्थ यही है कि वह ब्रह्मत्व और क्षात्रत्व दोनों गुणों से संपन्न था। उसकी तुलना राम (परशुराम) से करने का तात्पर्य यही है कि वह परशुराम के समान शौर्याढ्य (शूरवीर) और अपने शत्रुओं का संहार करनेवाला था।

भंडारकर महाशय ने अपना लेख लिखते समय जो प्रमाण अपने मंतव्य के अनुकूल देखे उनको तो ग्रहण किया और जो उसके प्रतिकूल थे उनको छोड़ दिया या उनका उलटा अर्थ कर दिया, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है।

बापा के सोने के सिक्के[1] पर सूर्य का चिह्न होना, वि० सं० १०२८ (ई० स० ९७१) के शिलालेख में मेवाड़ के राजाओं को रघुवंशी बतलाना, वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) के शिलालेख में उनको क्षत्रियों का उत्पत्ति-स्थान मानना, रावल समरसिंह के समय के आबू के वि० सं १३४२ (ई० स० १२८५) के लेख में उन राजाओं को 'मूर्तिमान् क्षात्रधर्म' कहना, रावल समरसिंह की माता जयतलदेवी के वि० सं० १३३५ (ई० स० १२७८) के लेख में क्षत्रिय बतलाना, वि० सं० १४८५ के शिलालेख में 'क्षत्रियवंश का मंडनमणि' मानना, राणा रायमल के समय के वि० सं० १५५७ (ई० स० १५००) के शिलालेख में सूर्यवंशी बतलाना और मुंहणोत नैणसी का गुहदत्त (गुहिल) को सूर्यवंशी क्षत्रिय कहना—ये सब बातें उदयपुर के राजवंश का सूर्य वंश में होना सूचित करती हैं। इतिहास के अंधकार की दशा में कई जनश्रुतियां और कथाएं प्रसिद्ध होती रही हैं। नैणसी की ख्यात आदि में जो कथाएं मिलती हैं वे ऊपर उद्धृत की गई हैं। वि० सं० की चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से लगाकर सोलहवीं शताब्दी तक के शिलालेखों से यही पाया जाता है कि एक ही समय का एक लेखक गुहिल-वंशियों को ब्राह्मण कहता है, तो उसी समय का दूसरा लेखक उनको क्षत्रिय बतलाता है, जिसका कारण नैणसी की लिखी हुई उपर्युक्त वंशपरंपरागत कथा ही है[2]।

---

(१) बापा के सोने के सिक्के के लिये देखो ना. प्र. प; भाग १, पृ० २४१–२८९।

(२) भंडारकर महाशय की उपर्युक्त दलीलों का यह विवेचन लिखने के पूर्व उनका मूल

कर्नल टॉड ने लिखा है कि वलभी संवत् २०५ (वि० सं० ५८०=ई० स० ५२४) में वलभी का नाश होने पर वहां के राजा शीलादित्य की सगर्भा राणी पुष्पावती मेवाड़ में आई, जिसका पुत्र गोहा (गुहिल, गुहदत्त) मेवाड़ के राजवंश का संस्थापक हुआ; परंतु मेवाड़ की किसी ख्यात, शिलालेख और दानपत्र से, या वि० सं० १७३२ (ई० स० १६७५) के बने हुए 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' के समय तक भी, मेवाड़ के राजाओं का वलभीपुर से आना कोई जानता ही नहीं था।

राजवंश और वलभी का संबंध

अबुल्फ़ज़ल ने 'आईने अकबरी' लिखी उस समय भी मेवाड़ के राजाओं के वलभीपुर से आने की बात अज्ञात थी, क्योंकि उसने लिखा है कि 'चित्तोड़ के ज़मींदार (राजा) गहलोत (गुहिल) वंश के हैं; इनके पूर्वज बराड़ देश में जाकर परनाला के ज़मींदार हो गये। अब से आठ सौ वर्ष पहले परनाला शत्रु ने ले लिया और बहुतसे मारे गये। बापा नामक एक छोटे लड़के को लेकर उसकी माता मेवाड़ में चली आई'।

वि० सं० १७०६ के आसपास मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात लिखी, उसमें भी मेवाड़ के राजाओं का दक्षिण में नासिक-त्र्यंबक की तरफ राज्य करना लिखा है। सारांश यह कि उस समय (वि० सं० १७०६=ई० स० १६४६) तक भी इनका वलभी से आना कोई नहीं जानता था।

अब प्रश्न यह होता है कि कर्नल टॉड को मेवाड़ के राजाओं का वलभी के अंतिम राजा शीलादित्य के वंश में होना तथा वलभी का नाश होने पर गोहा (गुहिल) की माता का मेवाड़ में आना बतलाने का आधार कहां से मिला? इसका उत्तर यह है कि जैनों को वलभी का परिचय था, क्योंकि उनमें यह बात प्रसिद्ध थी कि वीर संवत् ९८० (वि० सं० ५१०=ई० स० ४५३) में वलभी में जैन संघ एकत्र हुआ, जहां देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने जैन सूत्रों (सिद्धांतों) का नया संस्कार किया[1]। जैनों को मुसलमानों के द्वारा वलभी का नाश होने का हाल भी मालूम था, परंतु उसका ठीक समय ज्ञात न था, जिससे भिन्न भिन्न लेखकों

लेख हमारे एक मित्र द्वारा खो जाने के कारण पीछा हस्तगत न हो सका, परन्तु उसमें लिखी हुई सब दलीलें मुझे स्मरण थीं, तदनुसार वे ऊपर दर्ज की गई हैं। संभव है कि उनका क्रम शायद कुछ उलट-पुलट हुआ हो।

(१) 'सेक्रेड बुक्स ऑफ़ दी ईस्ट'; जि० २२ की भूमिका, पृ० ३७।

ने उस घटना के संवत् अलग अलग माने[1]। वि० सं० १३६१ की बनी हुई 'प्रबंधचिंतामणि' नामक जैन पुस्तक में वलभी के राजा शीलादित्य के विषय में यह लिखा है कि "रंक नामक महाजन वलभीपुर में रहता था; प्रारंभ में वह बहुत ही ग़रीब था, परंतु सुवर्णपुरुष (सोने का कल्पित पोरसा अर्थात् पुरुष, जिसका अंग काटने से पीछा उतना ही बढ़ जाना माना जाता है) की सिद्धि मिल जाने से वह बड़ा ही धनाढ्य हो गया। राजा शीलादित्य ने उसकी पुत्री की रत्नजटित कंघी अपनी पुत्री के लिये बलात् छीन ली, जिसपर क्रुद्ध होकर वह म्लेच्छों (मुसलमानों) के पास गया और बहुतसा धन देकर उनको वलभीपुर पर चढ़ा लाया। उन्होंने राजा शीलादित्य को मारकर नगर को नष्ट किया"। ऐसी ही कथा 'शत्रुंजयमाहात्म्य' में भी मिलती है।

वास्तव में वलभी में शीलादित्य नाम के ६ राजा हुए, परंतु जैन लेखकों को केवल एक (अर्थात् अंतिम) शीलादित्य का होना ही ज्ञात था। मेवाड़ में भी शीलादित्य नाम का राजा वि० सं० ७०३ में हुआ था। ऐसी दशा में जैनों ने वलभी के शीलादित्य और मेवाड़ के शीलादित्य को, जो वलभी के शीलादित्य से भिन्न था, एक मानकर मेवाड़ के राजाओं का वलभी से आना मान लिया और टॉड ने उसको स्वीकार कर उसकी पुष्टि में नीचे लिखी हुई दलीलें पेश कीं—

(१) "वलभी नगर का अस्तित्व जैन पुस्तक 'शत्रुंजयमाहात्म्य' से निश्चित हुआ। वहां से राणा (के पूर्वज) दूसरे देश में जा बसे, जिसके संतोषजनक प्रमाण की त्रुटि को १२वीं शताब्दी का एक लेख—जो राणा के वर्तमान राज्य की पूर्वी सीमा पर के ऊपरमाळ से मिला—पूरी कर देता है। उस लेख में 'वल्लभी की दीवार' का उल्लेख मिलता है[2]"।

'शत्रुंजयमाहात्म्य' धनेश्वरसूरि ने बनाया था, जिसमें वह अपने को वलभी के राजा शीलादित्य का गुरु बतलाता है, और उक्त शीलादित्य का वि०

(१) मेरुतुंग ने 'प्रबंधचिंतामणि' में वलभीभंग का समय वि० सं० ३७५ दिया है ('प्रबंधचिंतामणि', पृ० २७६); कर्नल टॉड ने किसी जैन ग्रंथ के आधार पर वलभी (गुप्त) संवत् २०५ (वि० सं० ५८०=ई० स० ५२४) माना है जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि ई० स० ६३६ (वि० सं० ६९६) के आसपास चीनी यात्री हुएन्त्संग वलभी में गया, उस समय वह नगर बड़ी उन्नत दशा में था। वलभी का नाश वि० सं० ८२६ में सिंध के अरबों ने किया था (हि. टॉ. रा; खंड १, पृ० ३१८)।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० २५३।

सं० ४७७ (ई० स० ४२०) में विद्यमान होना मानता है; परंतु वास्तव में वह पुस्तक वि० सं० की तेरहवीं शताब्दी या उससे भी पीछे की बनी हुई होनी चाहिये, क्योंकि उसमें राजा कुमारपाल का, जिसने वि० सं० ११९९ से १२३० (ई० स० ११४२ से ११७३) तक राज्य किया था, वृत्तांत मिलता है। ऐसी दशा में धनेश्वरसूरि का वलभीपुर-संबंधी कथन बहुत पिछला होने से विश्वासयोग्य नहीं है और न उसमें मेवाड़ के राजाओं के मूल पुरुष का वलभीपुर से मेवाड़ में आना लिखा है। ई० स० की १२वीं शताब्दी में मेवाड़ की पूर्वी सीमा पर के जिस शिलालेख का प्रमाण टॉड ने दिया है, वह उनके गुरु से ठीक ठीक पढ़ा भी नहीं गया था। वह लेख मेवाड़ के राजाओं का नहीं, किंतु अजमेर के चौहान राजा सोमेश्वर के समय का वि० सं० १२२६ (ई० स० ११६९) का ऊपर लिखा हुआ बीजोल्यां के एक चट्टान पर का लेख है। उसमें 'वलभी' शब्द अवश्य है, परंतु वह वलभी नगर का नहीं किंतु 'झरोखे' का सूचक है। जिस श्लोक में इस शब्द का प्रयोग हुआ है उसका आशय यह है कि "विग्रहराज (वीसलदेव चौथे) ने ढिल्लिका (दिल्ली) लेने से थके हुए और आसिका (हांसी) प्राप्त करने से स्थगित अपने यश को प्रतोली (पोल, द्वार) और वलभी (झरोखे) में विश्रांति दी"[1] अर्थात् दिल्ली और हांसी विजय कर उसने अपना यश दरवाज़े दरवाज़े और झरोखे झरोखे में फैलाया। इसी 'वलभी' शब्द पर से कर्नल टॉड ने राणा के पूर्वजों के दूर देश (मेवाड़) में जा बसने का संतोषजनक प्रमाण मान लिया, जिसपर कैसे विश्वास किया जा सकता है? आगे चलकर फिर इसी लेख में चौहान वाक्पतिराज के प्राकृत (लौकिक) रूप 'बप्पयराज' का प्रयोग देखकर टॉड ने बप्पय को मेवाड़ का राजा बापा मान लिया और उसी 'वलभी' शब्द पर फिर लिखा कि "यहां वलभीपुर के द्वार का स्मरण दिलाया है, जो सौराष्ट्र के गहलोतों की राजधानी थी"[2]। परंतु यह भी कपोलकल्पना ही है।

(२) "राणा राजसिंह (प्रथम) के राज्य की यादगार में बनी हुई एक पुस्तक के प्रारंभ में लिखा है कि पश्चिम में सोरठ (सौराष्ट्र) देश प्रसिद्ध है।

(१) *प्रतोल्यां च वलभ्यां च येन विश्रामितं यशः।*
ढिल्लिकाग्रहणश्रांतमासिकालाभलंभितं ॥

बीजोल्यां का शिलालेख.

(२) टॉ. रा; जि० ३, पृ० १७१७–१८।

जंगली लोगों ने उसपर चढ़ाई कर बाल-का-नाथ[1] को परास्त किया और परमार राजा की पुत्री के सिवा सब वलभी के पतन में मारे गये[2]"। टॉड ने यह अवतरण जैन यति मान के, वि० सं० १७३४ (ई० स० १६७७) के बने हुए 'राजविलास' नामक हिंदी काव्य से लिया है। इसमें बाल-का-नाथ शब्द का अर्थ या तो बाल (भाल) क्षेत्र (काठियावाड़ में) का राजा, या वलभी का राजा होना चाहिये। राजविलास में आगे यह भी लिखा है कि वहां के राजा का रघुवंशी पुत्र गुहादित्य (गुहदत्त, गुहिल) मेवाड़ में आया और नागद्राह (नागदा) नगर में उसने सोलंकी राजा संग्रामसी की पुत्री धनवती के साथ विवाह किया। यह भी जैनों की पिछले समय की कपोलकल्पना है। वाल्लिका अर्थात् वलभीपुर का नाश होने के बाद वहां के राजवंश का यहां आना संभव नहीं है, जैसा कि हम आगे बतलावेंगे।

(३) "सांडेराव (जोधपुर राज्य में) के यति के यहां की पुस्तक में लिखा है कि जब वलभी का नाश हुआ उस समय लोग वहां से भागे और उन्होंने वाली, सांडेराव और नाडौल बसाये"। यह भी गढ़ंत है और इसमें मेवाड़ में आने का उल्लेख भी नहीं है।

मेवाड़ के राजाओं को वलभी के राजाओं के वंशधर मानने के संबंध में कर्नल टॉड के ये तीनों प्रमाण निर्मूल हैं। वलभी का नाश टॉड के कथनानुसार वलभी संवत् २०५ (वि० सं० ५८०=ई० स० ५२३) में हुआ; यह कथन भी कल्पित है, क्योंकि ई० स० ६३१ (वि० सं० ६६६) के आसपास चीनी यात्री हुएन्त्संग वलभी में पहुंचा जहां का आखों देखा बहुतसा हाल उसने लिखा है। वलभी के अंतिम राजा शीलादित्य (छठे) का अलीना का दानपत्र गुप्त (वलभी) संवत् ४४७ (वि० सं० ८२३=ई० स० ७६६) का मिल चुका है। उसके पीछे वलभी का नाश हुआ। जैन लेखकों को वलभी के नाश के ठीक संवत् का पता न था, जिससे उन्होंने उस घटना के मनमाने संवत् लगाये और उन्हीं पर विश्वास

(१) मूल में बाल्हिका' शब्द है, न कि बाल

पच्छिम दिशा प्रसिद्ध देश सोरठ धर दीपत।
नगर बाल्हिकानाथ जंग करि भासुर जीपत॥

'राजविलास' (नागरीप्रचारिणी सभा का संस्करण), पृ० १८।

(२) टॉ. रा. जि० १, पृ० २५३।

कर टॉड ने भी उनके कथनानुसार लिख दिया। वलभी में शीलादित्य नाम के ६ राजा हुए, जिनमें से अंतिम वि० सं० ८२३ (ई० स० ७६६) में विद्यमान था। मेवाड़ में भी शीलादित्य नाम का राजा हुआ, जो सामोली के लेख के अनुसार वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) में यहां राज्य कर रहा था। गुहिल उसका पांचवां पूर्वपुरुष होने से उसका समय वि० सं० ६२५ (ई० स० ५६८) के आसपास स्थिर होता है। ऐसी दशा में गुहिल को वलभी के अंतिम शीलादित्य का पुत्र मानना असंभव है। वास्तव में मेवाड़ के राजाओं का वलभी से कोई संबंध नहीं है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यदि मेवाड़ के राजाओं का मूल पुरुष वलभी (वलभीपुर) से नहीं आया तो वह कहां से आया? इसका ठीक ठीक उत्तर देना अशक्य है, क्योंकि अब तक इस विषय का संतोष-जनक निर्णय करने के लिये आवश्यक साधन उपलब्ध नहीं हुए हैं। राजा गुहिल के २००० चांदी के सिक्के ई० स० १८६५ (वि० सं० १६२२) में आगरे से मिले तथा गुहिलवंशी राजा भर्तृभट (प्रथम) के वंशज वि० सं० १००० के आसपास तक चाटसू (जयपुर राज्य में) तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश पर राज्य करते थे, ऐसा चाटसू से मिले हुए राजा बालादित्य के शिला-लेख से निश्चित है। ऐसे ही अजमेर ज़िले के नासुण गांव से मिले हुए वि० सं० ८८७ (ई० स० ८३०) के शिलालेख से यह भी अनुमान होता है कि चाटसू के गुहिलवंशियों की एक शाखा का अधिकार उस समय अजमेर के आसपास के प्रदेश पर भी रहा था; अतएव यह अनुमान करना अन्यथा नहीं कि गुहदत्त के पूर्वजों का राज्य पहले आगरे के आसपास के प्रदेश पर रहा हो और वहीं से गुहिल का मेवाड़ में आना हुआ हो। दूसरा अनुमान यह भी हो सकता है कि गुहिल के पूर्वज पहले मेवाड़ के किसी विभाग पर शासन करते हों और गुहिल ने प्रबल एवं स्वतंत्र राजा होकर अपना राज्य दूर दूर तक फैलाया हो और अपने नाम के सिक्के चलाये हों। हमारे ये दोनों अनुमान भी कल्पनामात्र हैं और जब तक प्राचीन शोध से इसके ठीक ठीक प्रमाण न मिल आवें तब तक इस विषय को संदिग्ध ही समझना चाहिये, तो भी वलभीपुर का नाश होने के पीछे गुहिल के मेवाड़ में आने का कथन तो किसी प्रकार स्वीकार करने योग्य नहीं है।

मेवाड़ का राजवंश बहुत प्राचीन होने से उसकी शाखाएं भी राजपूताना मालवा, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि में समय समय पर फैली थीं। रावल समर-

राजवंश की शाखाएं

सिंह के समय की वि० सं० १३३१ (ई० स० १२७४) की चित्तौड़ की प्रशस्ति में गुहिल वंश की अपार (अनेक) शाखाएं होने का उल्लेख है (ऊपर पृ० ३६६, टिप्पण २)। मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में गुहिल वंश की नीचे लिखी हुई २४ शाखाओं के नाम दिये हैं—

(१) गैहलोत (गुहिलोत), (२) सीसोदिया, (३) आड़ा (आहाड़ा), (४) पीपाड़ा, (५) हुल, (६) मांगलिया, (७) आसायच, (८) कैलवा (कैलपुरा), (९) मंगरोपा, (१०) गोधा, (११) डाहलिया, (१२) मोटसीरा, (१३) गोदारा, (१४) भींवला, (१५) मोर, (१६) टीबणा, (१७) माहिल, (१८) तिबडकिया, (१९) बोसा, (२०) चंद्रावत, (२१) धोरणिया, (२२) बूटीवाला, (२३) बूटिया और (२४) गोतमा।

इनमें से अधिकतर शाखाएं तो उनके निवास के गांवों से प्रसिद्ध हुई हैं, जैसे कि सीसोदा गांव (उदयपुर राज्य में) से सीसोदिया; आहाड़ (उदयपुर के निकट) से आहाड़ा; पीपाड़ (जोधपुर राज्य में) से पीपाड़ा; कैलवे (कुंभलगढ़ के नीचे) से कैलवा या कैलपुरा; मंगरोप (मेवाड़ में) से मंगरोपा; डाहल देश से डाहलिया[1]; भींवल (भीमल, मेवाड़ में) से भींवला या भीमला आदि। कुछ शाखाएं मूल पुरुषों के नाम से भी प्रसिद्ध हुई हैं, जैसे कि गुहिल के गहलोत (गुहिलोत), चंद्रा के चंद्रावत आदि[2]।

कर्नल टॉड के गुरु यति ज्ञानचन्द्र के मांडल (मेवाड़ में) के उपासरे के पुस्तक-संग्रह में एक पत्रा मुझे मिला, जिसमें गुहिल वंश की शाखाओं के नाम नीचे लिखे अनुसार दिये हैं—

---

(१) डाहल (चेदि) के राजा गयकर्णदेव का विवाह मेवाड़ के राजा विजयसिंह की पुत्री आल्हणदेवी के साथ हुआ था, इस प्रसंग से मेवाड़ के कोई गुहिलवंशी वहां गये हों और डाहल देश के नाम पर वे डाहलिये कहलाये हों, यह संभव है। मध्य प्रदेश के दमोह ज़िले के दमोह स्थान से एक शिलालेख वहां के गुहिलवंशियों का मिला है, जिसमें क्रमशः विजयपाल, भुवनपाल, हर्षराज और विजयसिंह के नाम मिलते हैं। विजयसिंह के विषय में लिखा है कि वह चित्तोड़ में आकर लड़ा और उसने दिल्ली के मुसलमानों को परास्त किया था।

(२) सीसोदे के राणा भुवनसिंह के पुत्र चंद्रा से चंद्रावत शाखा की उत्पत्ति हुई। अन्य शाखाओं की उत्पत्ति कैसे हुई, इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता और बहुतसी शाखाएं तो अब नष्ट हो चुकी हैं।

(१) गहिलोत, (२) अहाड़ा, (३) सीसोदिया, (४) पीपाड़ा, (५) मांगलिया, (६) अजबरिया, (७) कैलवा, (८) मंगरोपा, (९) कूड़ेचा, (१०) धोराणा, (११) भीमला, (१२) हुल, (१३) गोधा, (१४) सोहाड़िया, (१५) कोढकरा, (१६) आसएचा, (१७) नादोज्या, (१८) ओड़लिया, (१९) पालरा, (२०) दुवासा, (२१) कुचेरा, (२२) भटेवरा, (२३) मुंघरायता और (२४) बूसा।

कर्नल टॉड ने अपने 'राजस्थान' में इन २४ शाखाओं के जो नाम दिये हैं, उनमें से कितने एक ऊपर दी हुई दोनों नामावलियों से नहीं मिलते।

उदयपुर के राजवंश के अधिकार में अब तक कई राज्य हैं। राजपूताने में उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ हैं, जिनका इतिहास इस पुस्तक में आगे लिखा जायगा।

गुहिल वंश के अधीन वर्तमान राज्य

नेपाल का बड़ा राज्य भी इसी वंश का है, वहां के राजाओं का मूल पुरुष मेवाड़ के रावल समरसिंह के पुत्र रत्नसिंह का छोटा भाई कुंभकर्ण माना जाता है। रावल रत्नसिंह के समय दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तोड़ का क़िला ले लिया, जिससे उसके भाई-बेटे इधर उधर चले गये। उसके भाई कुंभकर्ण के वंशज समय पाकर कमाऊं की पहाड़ियों में होते हुए पहले पाल्पा में जा जमे, फिर क्रम-क्रमशः वे अपना राज्य बढ़ाने लगे और पृथ्वीनारायणशाह ने नेपाल पर अपना अधिकार जमा लिया[1]। कुंभकर्ण से लगाकर पृथ्वीनारायणशाह तक का इतिहास बहुधा अंधकार में ही है[2]।

---

(१) इंपीरियल गैज़ेटियर ऑफ़ इंडिया, जि० १६, पृ० ३२-३३।

(२) कुंभकर्ण से लगाकर पृथ्वीनारायणशाह तक की नामावली उदयपुर राज्य के इतिहास में इस तरह लिखी मिलती है—

(१) कुंभकर्ण, (२) अयुत, (३) परावर्म, (४) कविवर्म, (५) यशवर्म, (६) उदुंबरराय, (७) भट्टराय, (८) जिल्लराय, (९) अजबराय, (१०) अटलराय, (११) तुत्थाराय, (१२) भामसीराय, (१३) हरिराय, (१४) ब्रह्मनिकराय, (१५) मन्मन्थराय, (१६) भूपालखान, (१७) मींचाखान, (१८) जयंतखान, (१९) सूर्यखान, (२०) मीयाखान, (२१) विचित्रखान, (२२) जगदेवखान, (२३) कुलमंडनशाह, (२४) आसोवनशाह, (२५) द्रव्यशाह, (२६) पुरंदरशाह, (२७) पूर्णशाह, (२८) रामशाह, (२९) डंबरशाह, (३०) श्रीकृष्णशाह, (३१) पृथ्वीपतिशाह, (३२) वीरभद्रशाह, (३३) नरभूपालशाह और (३४) पृथ्वीनारायणशाह।

पृथ्वीनारायणशाह के वंशज महाराजाधिराज राजेन्द्रविक्रमशाह ने 'राजकल्पद्रुम' नाम तंत्रग्रंथ लिखा, जिसमें विक्रम (जिह्नराज का पिता) से लगाकर अपने समय तक की वंशावली दी है जो ऊपर लिखी हुई वंशावली से बहुत कुछ मिलती हुई है। उक्त पुस्तक में अपने मूल पुरुष विक्रम का चित्रकूट (चित्तोड़) से आना बतलाया है। महाराणा जवानसिंह के समय से नेपाल के लोगों का मेवाड़ में आना-जाना शुरू है।

बंबई इहाते के सूरत ज़िले में धरमपुर का राज्य सीसोदियों का है, वहां के महाराणा अपने को राणा राहप के वंशधर रामराज या रामशाह की संतान मानते हैं। रामराजा ने मेवाड़ से गुजरात में जाकर वहां अपना राज्य स्थापित किया हो।

मालवे में बड़वानी का राज्य सीसोदियों का है, जहां के राणा अपने को मेवाड़ के राजवंश में होना मानते हैं। उनका प्राचीन इतिहास प्रसिद्धि में नहीं आया। राणा लीमजी से उनका शृंखलाबद्ध इतिहास मिलता है।

काठियावाड़ में भावनगर के महाराजा, पालीताणा के ठाकुर तथा लाठी और वळा के ठाकुर भी गुहिलवंशी हैं। ऐसे ही रेवाकांठा एजेंसी में राजपीपला के महाराणा भी गुहिलवंशी हैं। इन पांचों को 'गोहिल' कहते हैं और वे अपनी उत्पत्ति चंद्रवंशी पैठण (प्रतिष्ठान, दक्षिण में) के शालिवाहन से बतलाते हैं। वे अपना मूल निवासस्थान खेड़ (जोधपुर राज्य में) होना और वहां से काठियावाड़ तथा गुजरात में जाना प्रकट करते हैं, परंतु यह इतिहास के अज्ञान में भाटों की की हुई कल्पना ही है। पैठण (प्रतिष्ठान) का राजा शालिवाहन चंद्रवशी नहीं, किंतु आंध्र(सातवाहन)वंशी था। खेड़ के गोहिल मेवाड़ के राजा शालिवाहन के वंशज हैं, जिनसे राठोड़ों ने खेड़ का इलाक़ा छीना था। मेवाड़ के शालिवाहन के नाम से परिचित न होने और पैठण के शालिवाहन का नाम अधिक प्रसिद्ध होने के कारण भाटों ने पीछे से उसको दक्षिण का शालिवाहन मान लिया, जो चंद्रवंशी भी नहीं था। काठियावाड़ के गोहिल वि० सं० की १५वीं शताब्दी तक अपने को सूर्यवंशी ही मानते थे, जैसा कि गंगाधर-कृत 'मंडलीक काव्य' से ज्ञात होता है। इस विषय का अधिक विवेचन हम अगले अध्याय में मेवाड़ के राजा शालिवाहन के प्रसंग में करेंगे।

कोल्हापुर और सावंतवाड़ी के राजा भी मेवाड़ के राजाओं के वंश से ही निकले हैं, परंतु अब वे मरहटों में मिल गये हैं।

तीसरा अध्याय

उदयपुर राज्य का प्राचीन[1] इतिहास

भारतवर्ष के अन्य प्राचीन राजवंशों के समान उदयपुर के राजवंश का प्राचीन इतिहास भी अंधकार में लीन है। प्राचीन लिखित इतिहास न होने के कारण पीछे से कई दंतकथाएं गढ़ंत की गईं और समय पाकर उनकी भी गणना इतिहास के साधनों में होने लगी। वि० सं० १७३२ के बने हुए 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' तथा भाटों की ख्यातों में दी हुई इस वंश की पुरानी वंशावलियां परस्पर बहुधा मिलती हुई हैं; अन्तर इतना ही है कि भाटों की ख्यातों में नाम अशुद्ध रूप में लिखे मिलते हैं और राजप्रशस्ति में उनके शुद्ध रूप हैं। अनुमान तो यही होता है कि 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' की वंशावली भाटों से ही ली गई हो। उक्त काव्य में सूर्य[2] से लगाकर राजा सुमित्र तक की[3] वंशावली तो 'भागवत'

---

(१) इस प्रकरण में प्राचीन काल से लगाकर महाराणा हम्मीर के चित्तोड़ लेकर वहां अपने वंश का राज्य पीछा स्थिर करने तक का इतिहास लिखा जायगा।

(२) भागवत आदि पुराणों में नारायण (विष्णु) के नाभिकमल से ब्रह्मा, ब्रह्मा से मरीचि, उससे कश्यप और कश्यप से विवस्वान् (सूर्य) का उत्पन्न होना लिखा है। विवस्वान् का अर्थ सूर्य भी होता है, जिससे विवस्वान् के वंशज सूर्यवंशी कहलाये।

(३) भिन्न भिन्न पुराणों में भी विवस्वान् (सूर्य) से लगाकर सुमित्र तक की नामावली में कहीं कहीं अंतर पाया जाता है। कितने एक पुराणों में कुछ नाम छूट भी गये हैं इसलिये कई पुराणों की वंशावलियों का परस्पर मिलान करने से ही ठीक वंशावली स्थिर हो सकती है। विष्णु, भागवत, वायु, मत्स्य, ब्रह्मांड और अग्नि पुराणों की वंशावलियों का मिलान करने से विवस्वान् (सूर्य) से सुमित्र तक की नामावली नीचे लिखे अनुसार स्थिर होती है—

विवस्वान् (सूर्य), मनु (वैवस्वत), इक्ष्वाकु, विकुक्षि (शशाद), ककुत्स्थ (पुरंजय), अनेना (सुयोधन), पृथु, विश्वगाश्व, आर्द्र (चंद्र), युवनाश्व, श्रावस्त (शाबस्त), बृहदश्व, कुवलयाश्व (धुंधुमार), दृढाश्व, हर्यश्व, निकुंभ, संहताश्व, कृशाश्व, प्रसेनजित्, युवनाश्व (दूसरा), मांधाता, पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, संभूत, अनरण्य, प्रषदश्व, हर्यश्व, सुमना, त्रिधन्वा, त्रय्यारुण, सत्यव्रत (त्रिशंकु), हरिश्चंद्र, रोहित (रोहिताश्व), हरित, चंचु, विजय, रुरुक, वृक, बाहु, सगर, असमंजस, अंशुमान्, दिलीप, भगीरथ, श्रुत, नाभाग, अंबरीष, सिंधुद्वीप, अयुतायु (अयुताश्व), ऋतुपर्ण, सर्वकाम, सुदास, सौदास (मित्रसह, कल्माषपाद), अश्मक,

पुराण से उद्धृत कर लिखा है कि सुमित्र के पीछे सूर्य वंश में क्रमशः वज्रनाभ, महारथी, अतिरथी, अचलसेन, कनकसेन, महासेन, विजयसेन, अजयसेन अभंगसेन, मदसेन और सिंहरथ राजा हुए, जिन्होंने अयोध्या में राज्य किया। सिंहरथ का पुत्र विजयभूप अयोध्या से दक्षिण में गया और वहां के राजाओं को विजय कर वहीं रहा। विजयभूप के पीछे क्रमशः पद्मादित्य, हरदत्त, सुजसादित्य (सुयशादित्य), सुमुखादित्य, सोमदत्त, शिलादित्य (शीलादित्य), केशवादित्य, नागादित्य, भोगादित्य, देवादित्य, आशादित्य, कालभोजादित्य, गुहादित्य और बप्पा (बापा) हुए[1], जिनमें से पिछले कुछ नाम पुराने शिलालेखों में भी मिल जाते हैं[2], परंतु उक्त काव्य तथा ख्यातों में वे उलट-पुलट दिये गये हैं। बापा से हम्मीर तक के नामों में भी कुछ तो छोड़ दिये गये हैं, कुछ कृत्रिम धरे हुए हैं और सीसोदे की छोटी शाखा नाम भी मुख्य वंश में मिला दिये गये हैं[3]। ख्यातों में

मूलक, दशरथ (शतरथ), इडविड, कृतशर्मा, विश्वसह, दिलीप दूसरा (खट्वांग, दीर्घबाहु) रघु, अज, दशरथ (दूसरा), राम, कुश, अतिथि, निषध, नल, नभ, पुंडरीक, क्षेमधन्वा, देवानीक, अहीनगु, पारियात्र, दल, बल (शल), उक्थ, वज्रनाभ, शंखनाभ (शंखण), ध्युषिताश्व (व्युषिताश्व) विश्वसह (दूसरा), हिरण्यनाभ, पुष्य, ध्रुवसंधि, सुदर्शन, अग्निवर्ण, शीघ्र, मरु, प्रसुश्रुत, सुसंधि, अमर्ष, महस्वान्, विश्रुतवान्, बृहद्बल (श्रुतायु), बृहत्क्षय, उरुक्षय, वत्स (वत्सवृद्ध), वत्सव्यूह, प्रतिव्योम, दिवाकर (भानु), सहदेव, बृहदश्व (ध्रुवाश्व), भानुरथ, प्रतीकाश्व, सुप्रतीक, मरुदेव, सुनक्षत्र, किन्नराश्व (पुष्कर), अंतरिक्ष, सुतपा (सुपर्ण), अमित्रजित्, बृहद्राज (भरद्वाज), धर्मी (बर्ही), कृतंजय, रणंजय (रणेजय), संजय, शाक्य, शुद्धोदन, राहुल, प्रसेनजित्, क्षुद्रक, कुलक (रणक), सुरथ और सुमित्र।

(१) सुमित्र से बापा तक की वंशावली 'राजप्रशस्ति महाकाव्य'; सर्ग १, श्लो० ३२ से ३५; और सर्ग २, श्लोक २–६ से उद्धृत की गई है (भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १४६–१५०)।

सुमित्र से बापा तक की वंशावली को हम विश्वास के योग्य नहीं समझते, क्योंकि बापा, गुहादित्य (गुहिल) का पुत्र नहीं, किंतु उससे ८वीं पीढ़ी में हुआ था, ऐसा शिलालेखों से पाया जाता है।

(२) शीलादित्य, नाग (नागादित्य), भोज (भोगादित्य), कालभोज (कालभोजादित्य) और गुहिल (गुहादित्य), ये नाम शिलालेखों में मिलते हैं, परंतु उनमें क्रम यह है—गुहिल (गुहदत्त), भोज, महेन्द्र, नाग, शील (शीलादित्य), अपराजित, महेन्द्र (दूसरा) और कालभोज (बापा)।

(३) रावल रणसिंह (कर्णसिंह) से गुहिल वंश की दो शाखाएं हुईं। बड़ी

बापा से हम्मीर तक के जो संवत् दिये हैं, वे मनमाने होने से सर्वथा विश्वास के योग्य नहीं हैं। उनमें हम्मीर से पीछे की वंशावली अवश्य शुद्ध है, परंतु हम्मीर से राणा कुंभा' तक के संवत् संशयरहित नहीं हैं। कुंभा (कुंभकर्ण)

शाखावाले मेवाड़ के स्वामी रहे और रावल कहलाये, छोटी शाखावालों को सीसोदे की जागीर मिली और वे राणा कहलाये। रावल शाखा का अंतिम राजा रत्नसिंह हुआ, जिससे वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में अलाउद्दीन ख़िलजी ने चित्तोड़ छीन लिया और रत्नसिंह के साथ ही मेवाड़ की रावल शाखा की समाप्ति हुई।

वि० सं० १३८२ (ई० स० १३२५) के आसपास सीसोदे के राणा हम्मीरसिंह ने चित्तोड़गढ़ पीछा लेकर मेवाड़ पर राणा शाखा का राज्य स्थिर किया, जो अब तक चला आता है। भाटों ने रत्नसिंह के पीछे सीसोदे की शाखा के मूल पुरुष कर्णसिंह (रणसिंह) से लगाकर हम्मीर तक के सब राणाओं को मेवाड़ के राजा मान लिया, जिसका मुख्य कारण यह था कि बापा के राज्य का प्रारंभ वि० सं० ७९१ (ई० स० ७३४) से हुआ, जिसको उन्होंने वि० सं० १९१ मान लिया। ६०० वर्ष के इस अंतर को निकालने के लिए उन्होंने सीसोदे के राणाओं के नाम भी मेवाड़ के राजाओं की वंशावली में शामिल कर दिये तो भी संवतों का हिसाब ठीक हुआ, जिससे संवत् मनमाने धर दिये और बापा का तो १०१ वर्ष राज्य करना लिखा।

(१) भाटों की ख्यातों से बापा से हम्मीर तक की मेवाड़ के राजाओं की नामावली तथा उनके गद्दीनशीनी के संवत् नीचे दिये जाते हैं—

संख्या	नाम	संवत्	संख्या	नाम	संवत्
१	बापा	१९१	१६	कर्णादित्य	८०७
२	खुम्माण	२९२	१७	भावसिंह	८३९
३	गोविंद	३५२	१८	गात्रसिंह	८८०
४	महेंद्र	३८१	१९	हंसराज	९२६
५	अल्लू	४५१	२०	योगराज	९६१
६	सिंह	५२१	२१	वैरड़	९९६
७	शक्तिकुमार	५६२	२२	वैरिसिंह	१०३६
८	शालिवाहन	५८७	२३	तेजसिंह	१०६६
९	नरवाहन	६१८	२४	समरसिंह	११०६
१०	अम्बपसाव	६४६	२५	रत्नसिंह	११५८
११	कीर्तिवर्म	६९१	२६	कर्णसिंह	११५९
१२	नरवर्म	७३२	२७	राहप	१२०१
१३	नरवै	७५३	२८	नरपति	१२६२
१४	उत्तम	७७९	२९	दिनकरण	१२९५
१५	भैरव	७९६	३०	जसकरण	१३०१

के पीछे ख्यातों के संवत् अवश्य शुद्ध हैं। इन सब बातों से अनुमान होता है कि भाटों ने वि० सं० की १६वीं शताब्दी के आसपास अपनी ख्यातें लिखना आरंभ किया हो, जिससे जो नाम उस समय मालूम थे वे ही उनमें शुद्ध मिलते हैं।

शिलालेखों में मेवाड़ के राजाओं की वंशावली गुहिल (गुहदत्त) से आरंभ होती है। वि० सं० की ११वीं शताब्दी के प्रारंभ तक के लेखों से ज्ञात होता है कि उस समय तक तो वहांवालों को उक्त वंशावली का ठीक ठीक ज्ञान था, परंतु उसके बाद वि० सं० की १५वीं शताब्दी के अंत तक के शिलालेखों से पाया जाता है कि उस समय लोग पुराने नाम भूल गये थे, क्योंकि कितने एक नाम जो स्मरण थे, वे ही उस समय के शिलालेखों में दर्ज किये गये हैं। वि० सं० १०२८ के शिलालेख में गुहिल के वंश में बप्प (बापा) का होना लिखा है, परंतु वि० सं० १३३१, १३४२ और १४९६ के शिलालेखों में बप्प (बापा) को, जो गुहिल से आठवीं पुश्त में हुआ था, गुहिल का पिता मान लिया। बापा किसी राजा का नाम नहीं, किंतु उपनाम था और पीछे से तो वे यह भी भूल गये कि किस राजा का उपनाम बापा था। राणा कुंभा बड़ा ही विद्वान् राजा था जिसको अपने कुल की वंशावली की त्रुटि ज्ञात होने से उसने पहले के शिलालेखों का संग्रह कराकर वंशावली को ठीक करने, और बापा किस राजा का नाम था, यह निश्चय करने का उद्योग कर वि० सं० १५१७ की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में अपनी शोध के अनुसार वंशावली दी, परंतु उसमें भी कुछ त्रुटियां रह गईं। उसमें शील (शीलादित्य) को बापा ठहरा दिया, जो ठीक नहीं है। अब हम गुहिल से लगाकर शक्तिकुमार तक की नामावली भिन्न भिन्न शिलालेखों से नीचे उद्धृत करते हैं, जिससे पाठकों को भिन्न भिन्न समय के वंशावली लिखनेवालों के तद्विषयक ज्ञान का भली भांति परिचय हो सकेगा।

संख्या	नाम	संवत्	संख्या	नाम	संवत्
३१	नागपाल	१३०६	३६	जयसिंह	१३२६
३२	पूर्णपाल	१३११	३७	गढ़ लक्ष्मणसिंह	१३३१
३३	पृथ्वीपाल	१३१५	३८	अरिसिंह	१३४६
३४	भूणसिंह	१३१६	३९	अजयसिंह	१३५६
३५	भीमसिंह	१३२२	४०	हम्मीरसिंह	१३५७

इस वंशावली में राजाओं के कई नाम कृत्रिम हैं और संवत् तो एक भी शुद्ध नहीं है।

संख्या	आटपुर (आहाड़) का लेख वि० सं० १०३४ का	चित्तोड़ का लेख वि० सं० १३३१ का	आबू का लेख वि० सं० १३४२ का	राणपुर का लेख वि० सं० १४९६ का	कुंभलगढ़ का लेख वि० सं० १५१७ का	शिलालेखों से निश्चित ज्ञात संवत्
१		बप्प	बप्प (बप्पक)	बप्प	...	...
२	गुहदत्त	गुहिल	गुहिल	गुहिल	गुहिल	...
३	भोज	भोज	भोज	भोज	भोज	...
४	महेंद्र	...	...	...	महींद्र	...
५	नाग	...	...	...	नाग	...
६	शील	शील	शील	शील	बप्प	वि० सं० ७०३ (शीलादित्य का लेख)
७	अपराजित	...	...	...	अपराजित	वि० सं० ७१८.
८	महेंद्र (दूसरा)	...	...	...	महींद्र (दूसरा)	...
९	कालभोज	कालभोज	कालभोज	कालभोज	कालभोज	...
१०	खोम्माण	...	...	...	खुम्माण	...
११	मत्तट	मत्तट	...	...	मत्तट	...

संख्या	आटपुर आहाड़ का लेख वि० सं० १०३४ का	चित्तोड़ का लेख वि० सं० १३३१ का	आबू का लेख वि० सं० १३४२ का	राणपुर का लेख वि० सं० १४९६ का	कुंभलगढ़ का लेख वि० सं० १५१७ का	शिलालेखों से निश्चित ज्ञात संवत्
१२	भर्तृपट्ट	भर्तृभट	भर्तृभट	भर्तृभट	भर्तृभट	...
१३	सिंह	सिंह	सिंह	सिंह	...	...
१४	खोम्माण (दूसरा)	...	...	...	...	...
१५	महायक	महायक	महायक	महायक	...	...
१६	खोम्माण (तीसरा)	खुम्माण	खुम्माण	खुम्माण	...	...
१७	भर्तृपट्ट (दूसरा)	...	...	...	...	वि० सं० ९९९, १०००
१८	अल्लट	अल्लट	अल्लट	अल्लट	अल्लट	वि०सं० १००८, १०१०
१९	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	वि० सं० १०२८
२०	शालिवाहन	...	...	...	शालिवाहन	...
२१	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	वि० सं० १०३४

इस प्रकार मेवाड़ का प्राचीन इतिहास भारत के अन्य राजवंशों के समान अंधकार में ही है। मेवाड़ में प्राचीन शोध का काम भी बहुत कम हुआ है और भोमट के इलाक़े में इस वंश के राजाओं के आहोर, भाडेर आदि कई प्राचीन स्थान हैं, परंतु वह प्रदेश पहाड़ियों से भरा हुआ होने के कारण अब तक किसी प्राचीन शोधक का उधर जाना ही नहीं हुआ। उक्त वंश के राजा शीलादित्य का सामोली गांव का वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) का शिलालेख मुझे अनायास ही प्राप्त हुआ था। ऐसी दशा में अब तक के शोध से इस वंश का जो कुछ प्राचीन इतिहास उपलब्ध हुआ, उसको पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न किया जाता है।

गुहिल (गुहदत्त)

हम ऊपर बतला चुके हैं कि गुहिल (गुहदत्त) से पूर्व का जो इतिहास कर्नल टॉड ने लिखा है वह—जैनों की अनिश्चित कथाओं पर विश्वास कर मेवाड़ की ख्यातों तथा 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' में लिखे हुए गुहिल के पूर्वजों का, जिनका वलभीपुर से कोई संबंध न था, उन्होंने भ्रम से काठियावाड़ में राज्य करना मान लिया है—सर्वथा कल्पित है। उदयपुर राज्य से मिले हुए शिलालेखों में गुहिल (गुहदत्त, गुहादित्य) से वंशावली प्रारंभ होती है।

शिलालेखों में गुहिल (गुहदत्त) का कुछ भी इतिहास नहीं मिलता, परंतु ई० स० १८६६ (वि० सं० १९२६) में उसके २००० से अधिक चांदी के सिक्के आगरे से गड़े हुए मिले, जिनपर 'श्रीगुहिल' लेख है[1]। ये सिक्के आकार में छोटे हैं और मिस्टर कार्लाइल ने आर्कियालॉजिकल् सर्वे की रिपोर्ट में इनका सविस्तर वर्णन किया है। उनसे यही ज्ञात होता है कि गुहिल एक स्वतंत्र राजा था।

---

(१) क; आ. स. रि; जि० ४, पृ० ६५। नरवर से एक सिक्का जनरल कनिंगहाम को ऐसा मिला जिसपर 'श्रीगुहिलपति' लेख है (बंगा. ए. सो. ज; ई० स० १८६५, पृ० १२२)। उक्त सिक्के के लेख की लिपि गुहिल के आगरे के सिक्कों की लिपि से मिलती हुई है। जनरल कनिंगहाम ने उस सिक्के को हूण राजा तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल के किसी वंशज का होना अनुमान किया जो ठीक नहीं हैं, क्योंकि 'गुहिलपति' नाम नहीं, किंतु केवल उपनाम है जिसका अर्थ 'गुहिलवंशियों का स्वामी या अग्रणी' होता है। अतः संभव है कि वह सिक्का भी गुहिल के किसी वंशज का हो।

जयपुर राज्य के चाटसू नामक प्राचीन नगर से ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास की लिपि का एक बड़ा शिलालेख[1] मिला है, जिसमें गुहिल के वंशज भर्तृपट्ट (भर्तृभट, प्रथम) से बालादित्य तक १२ पीढ़ियों के नाम दिये हैं। वे चाटसू के आसपास के प्रदेश पर, जो आगरे से बहुत दूर नहीं है, वि० सं० की आठवीं से ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास तक राज्य करते थे। इसी तरह अजमेर ज़िले के खरवा ठिकाने के अधीनस्थ नासूण गांव से वि० सं० ८८७ (ई० स० ८३०) वैशाख वदि २ का एक खंडित शिलालेख मिला है, जिसमें धनिक और ईशानभट मंडलेश्वरों के नाम मिलते हैं, जो गुहिल वंश की चाटसू की शाखा से सम्बन्ध[2] रखते हों ऐसा अनुमान होता है।

सिक्कों का एक जगह से दूसरी जगह चला जाना साधारण बात है, परन्तु एक ही स्थान में एक साथ एक ही राजा के २००० से भी अधिक सिक्कों के मिलने और वि० सं० की ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास तक अजमेर ज़िले से लगाकर चाटसू और उससे परे तक के प्रदेश पर भी गुहिलवंशियों का अधिकार होने से यह भी अनुमान हो सकता है, कि गुहिल का राज्य आगरे के आसपास के प्रदेश तक रहा हो और वे सिक्के वहां चलते हों, जैसा मि० कार्लाइल का अनुमान है[3]। गुहिल के उक्त सिक्कों से यह भी सम्भव हो सकता है कि गुहिल से पहले भी इस वंश का राज्य चला आता हो और उस वंश में पहले पहल गुहिल के प्रतापी होने के कारण शिलालेखों में उसी से वंशावली प्रारंभ की गई हो। ऐसी दशा में गुहिल के सम्बन्ध की जो कथाएं पीछे से इतिहास के अभाव में प्रचलित हुईं और जिनका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं, वे अधिक विश्वास के योग्य नहीं हैं, क्योंकि यदि सूर्यवंशी राजपुत्र गुहिल का बहुत ही सामान्य स्थिति में एक ब्राह्मण के यहां पालन हुआ होता तो वह स्वतन्त्र राजा होकर अपने नाम के सिक्के चलाने में समर्थ न होता। सम्भव है कि हूण राजा मिहिरकुल के पीछे राजपूताने के अधिकांश तथा उसके समीपवर्ती प्रदेशों पर गुहिल का राज्य रहा हो, क्योंकि मिहिरकुल के पीछे गुहिल के ही सिक्के मिलते हैं।

(१) ए. इं; जि० १२, पृ० १३–१७।

(२) आर्कियॉलॉजिकल् सर्वे ऑफ़ इंडिया, ऐन्युअल् रिपोर्ट, ई० स० १६२०–२१, पृ० ३४।

(३) क; आ. स. रि; जि० ४, पृ० ६५।

गुहिल के समय का कोई शिलालेख या ताम्रपत्र अब तक नहीं मिला, जिससे उसका निश्चित समय ज्ञात नहीं हो सकता, परन्तु उसके पांचवें वंशधर शीलादित्य (शील) का वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) का सामोली गांव का शिलालेख राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) में विद्यमान है। यदि हम शीलादित्य (शील) से पूर्व के प्रत्येक राजा का राजत्वकाल औसत हिसाब से २० वर्ष मानें तो गुहिल (गुहदत्त) का वि० सं० ६२३ (ई० स० ५६६) के आसपास विद्यमान होना स्थिर होता है।

भोज, महेंद्र और नाग

गुहिल (गुहदत्त) के पीछे क्रमशः भोज, महेंद्र और नाग राजा हुए, जिनका कुछ भी वृत्तांत नहीं मिलता। ख्यातों में भोज को भोगादित्य या भोजादित्य और नाग को नागादित्य लिखा है। मेवाड़ के लोगों का कथन है कि नागदा[1] नगर, जिसका नाम प्राचीन शिलालेखों में 'नागह्रद' या 'नागद्रह' मिलता है, नागादित्य का बसाया हुआ है। नागदा नगर पहाड़ों के बीच बसा हुआ है। प्राचीन काल से ही नागों (नागवंशियों) की अलौकिक शक्ति की कथाएं चली आती थीं इसलिये नागह्रद का सम्बन्ध प्राचीन नागवंशियों[2] से हो तो भी आश्चर्य नहीं।

शीलादित्य (शील)

नाग (नागादित्य) का उत्तराधिकारी शीलादित्य हुआ, जिसको मेवाड़ के शिलालेखादि में शील भी लिखा है। उसके राजत्वकाल के उपर्युक्त सामोली गांववाले वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) के शिलालेख[3] में लिखा है—'शत्रुओं को जीतनेवाला; देव, ब्राह्मण और गुरुजनों को आनन्द देनेवाला, और अपने कुल-

---

(१) नागदा नगर के लिए देखो ऊपर पृ० २३८।

(२) यह भी जनश्रुति प्रसिद्ध है, कि राजा जनमेजय ने अपने पिता परीक्षित का वैर लेने के लिए नागों को होमने का यज्ञ 'सर्पसत्र' यहीं किया था। यह जनश्रुति सत्य हो वा नहीं, परन्तु इससे उक्त नगर के साथ नागों (नागवंशियों) के सम्बन्ध की सूचना अवश्य पाई जाती है।

(३) नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग १, पृ० ३११–२४।

रूपी आकाश का चन्द्रमा राजा शीलादित्य पृथ्वी पर विजयी हो रहा है। उसके समय वटनगर से[1] आये हुए महाजनों के समुदाय ने, जिसका मुखिया जेक (जेंतक) था, आरण्यक गिरि में लोगों का जीवन (साधन) रूपी आगर[2] उत्पन्न किया, और महाजन (महाजनों के समुदाय) की आज्ञा से जेंतक महत्तर[3] ने अरण्यवासिनी देवी का मंदिर बनवाया, जो अनेक देशों से आये हुए अट्ठारह वैतालिकों (स्तुतिगायकों) से विख्यात, और नित्य आनेवाले धनधान्यसम्पन्न मनुष्यों की भीड़ से भरा हुआ था। उसकी प्रतिष्ठा कर जेंतक महत्तर ने यमदूतों को आते हुए देख 'देवबुक' नामक सिद्धस्थान में अग्नि में प्रवेश किया[4]'। राजा शील का एक तांबे का सिक्का[5] मिला है, जिस पर एक तरफ़ शील का नाम सुरक्षित है, परंतु दूसरी तरफ़ के अक्षर अस्पष्ट हैं।

अपराजित

शीलादित्य (शील) के पीछे अपराजित राजा हुआ, जिसके समय का वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) मार्गशीर्ष सुदि ५ का एक शिलालेख नागदे के निकट कुंडेश्वर के मंदिर में पड़ा हुआ मिला, जिसको मैंने वहां से उठवाकर उदयपुर के विक्टोरिया हॉल के अजायबघर में सुरक्षित किया। उसका सारांश यह है—'गुहिल वंश के तेजस्वी राजा अपराजित ने सब दुष्टों को नष्ट किया और अनेक राजा उसके आगे सिर झुकाते थे। उसने शिव (शिवसिंह) के पुत्र महाराज वराहसिंह को—जिसकी शक्ति को कोई तोड़ न सका, जिसने भयंकर शत्रुओं को परास्त किया और जिसका उज्ज्वल यश दसों दिशाओं में फैला हुआ था—

(१) सामोली गांव से थोड़े ही मील दूर सिरोही राज्य का वटनगर नामक प्राचीन नगर, जिसको अब वसंतपुर या वसंतगढ़ कहते हैं (ना. प्र. प; भाग १, पृ० ३२०-२१)

(२) राजपूताने में नमक की खान को 'आगर' कहते हैं।

(३) 'महत्तर' राजकर्मचारियों का एक बड़ा पद था, जिसका अपभ्रंश मेहता (मूंता) है। ब्राह्मण, महाजन, कायस्थ आदि जातियों के कई पुरुषों के नामों के साथ मेहता की उपाधि, जो उनके प्राचीन गौरव की सूचक है, अब तक चली आती है। फ़ारसी में भी 'मह्तर' प्रतिष्ठित अधिपति का सूचक है, जैसे 'चित्राल के मह्तर'।

(४) ना. प्र. प; भाग १, पृ० ३१४-१५; ३२२-२४।

(५) यह सिक्का उदयपुर-निवासी शास्त्री शोभालाल को मिला और मैंने उसे देखा है।

अपना सेनापति बनाया। अरुंधती के समान विनयवाली उस (वराहसिंह) की स्त्री यशोमती ने लक्ष्मी, यौवन और वित्त को क्षणिक मानकर संसाररूपी विषम समुद्र को तैरने के लिये नावरूपी कैटभरिपु (विष्णु) का मंदिर बनवाया। दामोदर के पौत्र और ब्रह्मचारी के पुत्र दामोदर ने उक्त प्रशस्ति की रचना की, और अजित के पौत्र तथा वत्स के पुत्र यशोभट ने उसे खोदा"[1]। इस लेख (प्रशस्ति) की कविता बड़ी ही मनोहर है और उसकी कुटिल लिपि को लेखक ने ऐसा सुन्दर लिखा, और शिल्पी ने इतनी सावधानी से खोदा है कि वह लेख छापे में छपा हो, ऐसा प्रतीत होता है। इस लेख को देखकर यह कहना पड़ता है कि उस समय भी वहां (मेवाड़ में) अच्छे विद्वान् और कारीगर थे।

महेंद्र (दूसरा)

अपराजित के पीछे महेंद्र (दूसरा) मेवाड़ के राज्य-सिंहासन पर बैठा, जिसका कुछ भी विवरण नहीं मिलता। उसके पीछे कालभोज राजा हुआ।

कालभोज (बापा)

मेवाड़ और राजपूताने में यह राजा, बापा या 'बापारावल[2]' नाम से अधिक प्रसिद्ध है। मेवाड़ के भिन्न भिन्न शिलालेखों, दानपत्रों, ऐतिहासिक पुस्तकों तथा

---

(१) ए. इं; जि० ४, पृ० ३१-३२।

(२) गुहिल से लगाकर करण (कर्ण) सिंह (रणसिंह) तक मेवाड़ के राजाओं का ख़िताब राजा ही होना चाहिये, जैसा कि उनके शिलालेखादि से पाया जाता है। करणसिंह के पुत्र खेमसिंह (या उसके किसी उत्तराधिकारी) ने राजकुल या महाराजकुल (रावल या महारावल) ख़िताब धारण किया जो उनके पिछले शिलालेखादि में मिलता है। पिछले इतिहास-लेखकों को प्राचीन इतिहास का ज्ञान न होने के कारण उन्होंने प्रारंभ से ही उनका ख़िताब 'रावल' होना मान लिया और प्राचीन इतिहास के अंधकार में पीछे से उसी की लोगों में प्रसिद्धि हो गई, जो भ्रम ही है। राजकुल (रावल) शब्द का वास्तविक अर्थ 'राजवंश' या 'राजसी घराना' ही है। जैसे मेवाड़ के राजाओं ने यह ख़िताब धारण किया वैसे ही आबू के परमारों (*एवमियं व्यवस्था श्रीचन्द्रावतीपतिराजकुलश्रीसोमसिंहदेवेन तथा तत्पुत्रराजकान्हडदेवप्रमुखकुमारैः*—आबू पर के देलवाड़ा के मंदिर की वि० सं० १२८७ की प्रशस्ति-

बापा के सोने के सिक्के पर उसका नाम नीचे लिखे हुए भिन्न भिन्न रूपों में मिलता है--वप्प, वोप्प, वप्पक, बप्प, बप्पक, बप्पाक, वाप्प, बाप्प, और बापा[1]।

बप्प, और वप्प दोनों प्राकृत भाषा के प्राचीन शब्द हैं, जिनका मूल अर्थ 'बाप' (संस्कृत 'वाप'=बीज बोनेवाला, पिता) था[2]। इनका या इनके भिन्न भिन्न रूपांतरों का प्रयोग बहुधा सारे हिन्दुस्तान में प्राचीन काल से अब तक उसी अर्थ[3] में चला आता है। पीछे से यह शब्द सम्मानसूचक होकर नाम के लिये भी प्रयोग में आने लगा। मेवाड़ के पिछले अनेक लेखों में बापा के लिये बापा रावल शब्द मिलता है[4]।

ए० इं; जि० ८, पृ० २२२) तथा जालोर के चौहानों ने भी उसे धारण किया (*संवत् १३४५ वर्षे कार्तिकशुदि १४ सोमे अद्येह श्रीसत्यपुरमहास्थाने महाराजकुलश्रीसाम्वतसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये*—सांचोर का शिलालेख-ए. इं; जि० ११, पृ० ५८। *संवत् १३५२ वैशाखसुदि ४ श्रीवाहडमेरौ महाराजकुलश्रीसामंतसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये*—जूना गांव का शिलालेख—वही, जि० ११, पृ० ५६)

(१) इन भिन्न भिन्न रूपों के मूल प्रमाणों के लिये देखो ना. प्र. प; भाग १, पृ० २४८-५० और टिप्पण १०-२१ तक।

(२) फ्ली; गु. इं; पृ० ३०४।

(३) वलभी के राजाओं के दानपत्रों में पिता के नाम की जगह 'बप्प' शब्द सम्मान के लिये कई जगह मिलता है (*परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीबप्पपादानुध्यातः परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरः श्रीशीलादित्यः*—वलभी के राजा शीलादित्य का अलीना से मिला हुआ गुप्त संवत् ४४७ (वि० सं० ८२३ = ई० स० ७६६) का दानपत्र फ्ली; गु. इं; पृ० १७८)। नेपाल के लिच्छवीवंशी राजा शिवदेव और उसके सामंत अंशुवर्मा के (गुप्त) संवत् ३१६ (या ३१८ ?, वि० सं० ६६२ = ई० स० ६३५) के शिलालेख में 'बप्प' शब्द का प्रयोग ऐसे ही अर्थ में हुआ है (*स्वस्ति मानगृहादपरिमितगुणसमुदयोद्भासितदिशो बप्पपादानुध्यातो लिच्छविकुलकेतुर्भट्टारकमहाराजश्रीशिवदेवः कुशली*······इं. ऐं; जि० १४, पृ० ६८)।

(४) 'बप्प' शब्द के कई भिन्न भिन्न रूपांतर बालक वृद्ध आदि के लिये अथवा उनके सम्मानार्थ या उनको संबोधन करने के लिये संस्कृत के 'तात' शब्द के समान काम में आने लगे। मेवाड़ में 'बापू' शब्द लड़के या पुत्र के अर्थ में प्रयुक्त होता है, और 'बापजी' राजकुमार के लिये। राजपूताना, गुजरात आदि में बापा, बापू और बापो शब्द पिता, पूज्य या वृद्ध के अर्थ में आते हैं। बापूजी, बापूदेव, बोपदेव, बापूराव, बापूलाल, बाबाराव, बापाराव

राजा नरवाहन तक के मेवाड़ के राजाओं के जो शिलालेख मिले हैं उनमें उनकी पूरी वंशावली नहीं, किन्तु एक, दो या तीन ही नाम मिलते हैं। पहले पहल राजा शक्तिकुमार के समय के वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) के आटपुर (आघाटपुर, आहाड़-उदयपुर से दो मील) के शिलालेख[1] में गुहदत्त (गुहिल) से शक्तिकुमार तक की पूरी वंशावली दी है। उसमें बापा का नाम नहीं है, परन्तु उससे पूर्व राजा नरवाहन के समय के वि० सं० १०२८ (ई० स० ९७१) के शिलालेख[2] में वप्पक (बापा) को गुहिलवंशी राजाओं में चन्द्र के समान (प्रकाशमान) लिखा है, जिससे शक्तिकुमार से पूर्व बापा का होना निर्विवाद है। ऊपर हम बतला चुके हैं कि प्राचीन 'बप्प' शब्द प्रारम्भ में पिता का सूचक था और पीछे से नाम के लिये तथा अन्य अर्थों में भी उसका प्रयोग होता था; अतएव सम्भव है कि शक्तिकुमार के लेख को तैयार करनेवाले पंडित ने उस लेख में बप्प (बापा) नाम का प्रयोग न करके उसका वास्तविक नाम ही दिया हो, परन्तु वह वास्तविक नाम क्या था, इसका उक्त लेख से कुछ भी निश्चय नहीं हो सकता। इस जटिल समस्या ने वि० सं० की १४वीं शताब्दी से ही विद्वानों को बहुत कुछ चक्कर खिलाया है और अब तक इसका संतोषजनक निर्णय नहीं हो सका था। चित्तोड़-निवासी नागर ब्राह्मण प्रियपटु के पुत्र वेदशर्मा ने रावल समरसिंह के समय की वि० सं० १३३१[3] (ई० स० १२७४) की चित्तोड़गढ़ की और वि० सं० १३४२[4] (ई० स० १२८५) की आबू के अचलेश्वर के मठ की प्रशस्तियां बनाई, जिनमें वह मेवाड़ के राजाओं की वंशावली भी शुद्ध न दे सका। इतना ही नहीं, किन्तु बप्प (बापा) को गुहिल का पिता लिख दिया। उसका यह कथन तो उपर्युक्त वि० सं० १०२८ (ई० स० ९७१) के शिलालेख से कल्पित सिद्ध हो गया, क्योंकि उसमें बप्पक (बापा) को गुहिलवंशी राजाओं में चंद्र के समान

कालभोज का दूसरा नाम बापा

बापरणाभट्ट, बोपरणभट्ट, बोप्पणदेव आदि अनेक शब्दों के पूर्व अंश 'बप्प' शब्द के रूपांतर मात्र हैं। पंजाबी और हिंदी गीतों तथा स्त्रियों की बोलचाल में 'बाबल' पिता का सूचक है।

(१) इं. ऐं; जि० ३९, पृ० १९१।

(२) बंब. ए. सो. ज; जि० २२, पृ० १६६–६७।

(३) भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ७४–७७।

(४) इं. ऐं; जि० १६, पृ० ३४७–५१।

(तेजस्वी) और पृथ्वी का रत्न कहा है[1] ।

वि॰ सं॰ १४९६ (ई॰ स॰ १४३९) में महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के समय राणपुर (जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ इलाक़े में सादड़ी गांव के पास) के जैन मंदिर की प्रशस्ति[2] बनी, जिसके रचयिता ने मेवाड़ के राजाओं की पुरानी वंशावली रावल समरसिंह के आबू के लेख से ही उद्धृत की हो, ऐसा पाया जाता है[3] । उसने भी बप्प (बापा) को गुहिल का पिता मान लिया, जो भ्रम ही है ।

महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के बनवाए हुए कुंभलगढ़ (कुंभलमेरू) के मामादेव के मंदिर की बड़ी प्रशस्ति[4] की रचना वि॰ सं॰ १५१७ (ई॰ स॰ १४६०) में हुई, जिसके बहुत पूर्व से ही मेवाड़ के राजवंश की सम्पूर्ण औरशुद्ध वंशावली उपलब्ध नहीं थी । उसको शुद्ध करने का यत्न उस समय कितनी ही प्राचीन प्रशस्तियों के आधार पर किया गया[5] जो कुछ कुछ सफल हुआ । उसमें बापा को कहां स्थान देना इसका भी विचार हुआ होऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि

(१) *अस्मिन्नभूद्गुहिलगोत्रनरेन्द्रचन्द्रः श्रीवप्पकः क्षितिपतिः क्षितिपीठरत्नम् ।*
(बंब. ए. सो. ज; जि॰ २२, पृ॰ १६६) ।

चित्तोड़ के ही रहनेवाले चैत्रगच्छ के जैन साधु भुवनचन्द्रसूरि के शिष्य रत्नप्रभसूरि ने वि॰सं॰ १३३० (ई॰ स॰ १२७३) कार्तिक सुदि १ को रावल समरसिंह के समय की चीरवा गांव (एकलिंगजी के मंदिर से २ मील दक्षिण में) के मंदिर की प्रशस्ति रची, जिसमें वह वेदशर्मा के विरुद्ध यह लिखता है कि गुहिलोत वंश में राजा वप्पक (बापा) हुआ (*गुहिलांगजवंशजः पुरा क्षितिपालोत्र बभूव बप्पकः ।* .... ॥ ३ ॥ इससे पाया जाता है कि उस समय भी ब्राह्मण विद्वानों की अपेक्षा जैन विद्वानों में इतिहास का ज्ञान अधिक था ।

(२) भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ॰ ११४–१५ ।

(३) ऐसा मानने का कारण यह है कि उसमें शुचिवर्मा तक के नाम ठीक वे ही हैं जो आबू की प्रशस्ति में दिये हैं ।

(४) यह प्रशस्ति बड़ी बड़ी पांच शिलाओं पर खुदवाई गई थी, जिनमें से पहली, तीसरी (बिगड़ी हुई दशा में) और चौथी शिलाएं मिली हैं, जिनको मैंने कुम्भलगढ़ से उठवाकर उदयपुर के विक्टोरिया हॉल के अजायबघर में सुरक्षित की हैं । दूसरी शिला का तो एक छोटासा टुकड़ा ही मिला है ।

(५) *अतः श्रीराजवंशोत्र प्रव्यक्तः [प्रोच्यते]धुना ।*
चिरंतनप्रशस्तीनामनेकानामतःक्षणात् (? मवेक्षणात्) ॥
कुंभलगढ़ की प्रशस्ति, श्लोक १३८, अप्रकाशित,

चित्तोड़, आबू और राणपुर के मंदिर की प्रशस्तियों में बापा को गुहिल का पिता माना था, जिसको स्वीकार न कर गुहिल के पांचवें वंशधर शील (शीलादित्य) के स्थान पर बप्प[1] (बापा) का नाम धरा, परन्तु यह भी ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि शीलादित्य (शील) का वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) में विद्यमान होना निश्चित है और बापा ने वि० सं० ८१० (ई० स० ७५३) में संन्यास ग्रहण किया, ऐसा आगे बतलाया जायगा।

कर्नल जेम्स टॉड ने भी अपने 'राजस्थान' में कुंभलगढ़ की प्रशस्ति के आधार पर शील (शीलादित्य) को ही बापा मानकर उसका वि० सं० ७८४ (ई० स० ७२८) में गद्दी पर बैठना लिखा है,[2] परन्तु यदि उस समय शीलादित्य का वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) का शिलालेख मिल जाता तो सम्भव है कि कर्नल टॉड शील को बापा न मानकर उसके किसी वंशधर को बापा मानता।

महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास ने अपने 'वीरविनोद' नामक मेवाड़ के बृहत् इतिहास में लिखा है—'इन बातों का निर्णय करना ज़रूरी है, बापा किसी राजा का नाम था या ख़िताब, और ख़िताब था तो किस राजा का था, और उसने किस तरह और कब चित्तौड़ लिया ? यह निश्चय हुआ है, कि बापा किसी राजा का नाम नहीं, किन्तु ख़िताब है, जिसको कर्नेल् टॉड ने भी ख़िताब लिखकर अपराजित के पिता शील को बापा ठहराया है; लेकिन कूंडां की (कुंडेश्वर के मंदिर की) विक्रमी ७१८ की प्रशस्ति के मिलने से कर्नेल टॉड का शील को बापा मानना ग़लत साबित हुआ, क्योंकि उक्त संवत् में शील का पुत्र अपराजित राज्य करता था, और विक्रमी ७७० [हि० ६४=ई० ७१३] में मोरी कुल का मानसिंह चित्तौड़ का राजा था, जिसके पीछे विक्रमी ७६१ [हि० ११६=ई० ७३४] में बापा ने चित्तौड़ का क़िला मोरियों से लिया, जो हम आगे लिखते हैं, तो हमारी रायसे अपराजित के पुत्र अर्थात् शील के पोते महेन्द्र का ख़िताब बापा था, और वही रावल के पद से प्रसिद्ध हुआ। सिवा इसके एकलिंग माहात्म्य में बापा का पुत्र भोज और भोज का खुंमाण लिखा है, उससे भी

(१) *तस्मिन् गुहिलवंशेभूद्भोजनामावनीश्वरः।*
तस्मान्महींद्रनागाह्वो बप्पाख्यश्चापराजितः॥ वही; श्लोक १३१।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० २५१-६१।

महेन्द्र का ही खिताब बापा होना सिद्ध होता है[1], इस कथन को भी हम स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि अपराजित वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) में विद्यमान था और बापा का वि० सं० ८१० (ई० स० ७५३) में संन्यास लेना उक्त कविराजा ने स्वीकार किया है[2], ऐसी दशा में उन दोनों राजाओं के बीच अनुमान १०० वर्ष का अन्तर आता है, जो अधिक है। दूसरा कारण यह भी है कि मेवाड़ के बड़वों की ख्यात[3], राजप्रशस्ति महाकाव्य,[4] तथा नैणसी की ख्यात में बापा के पुत्र का नाम खुंमाण दिया है[5], और आटपुर (आहाड़) की प्रशस्ति में कालभोज के पुत्र का नाम खुंमाण दिया है[6], जिससे कालभोज का उपनाम ही बापा हो सकता है। एकलिंगमाहात्म्य की वंशावली अशुद्ध और अपूर्ण है और उसका भोज कालभोज का सूचक नहीं, किन्तु गुहिल के पुत्र भोज का सूचक है।

प्रोफ़ेसर देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने आटपुर (आहाड़) के शिलालेख का सम्पादन करते समय, बापा किस राजा का नाम था, इसका निश्चय करने का इस तरह यत्न किया है कि अपराजित के लेख के वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) और अल्लट के वि० सं० १०१० (ई० स० ९५३) के बीच २९२ वर्ष का अंतर है, जिसमें १२ राजा हुए, अतएव प्रत्येक राजा का राज्य-समय औसत हिसाब से २४$\frac{१}{३}$ वर्ष आया। फिर बापा का वि० सं० ८१० (ई० स० ७५३) में राज्य छोड़ना स्वीकार कर अपराजित के वि० सं० ७१८ और बापा के वि० सं० ८१० के बीच के ९२ वर्ष के अंतर के लिये भी वही औसत लगा कर अपराजित से चौथे राजा खुंमाण को बापा ठहराया[7] है; परंतु हम उस कथन को भी ठीक नहीं समझते, क्योंकि मेवाड़ में बापा का पुत्र खुंमाण होना माना जाता है जैसा कि ऊपर बत-

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० २५० ।

(२) वही; पृ० २५२ ।

(३) वही; पृ० २३४ ।

(४) *तां रावलाख्यां पदवीं दधानो बापाभिधानः स रराज राजा ॥ १९ ॥*
ततः खुमाणाभिधरावलोस्मात्.........॥ २० ॥

(राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ३)

(५) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र २, पृ० १ ।

(६) इं. ऐं; जि० ३९, पृ० १९१ ।

(७) इं. ऐं; जि० ३९, पृ० १९० ।

लाया जा चुका है। दूसरा कारण यह भी है कि जो औसत १२ राजाओं के लिये हो उसी को चार राजाओं के लिये भी मान लेना इतिहास स्वीकार नहीं करता, क्योंकि कभी कभी दो या तीन राजाओं के १०० या इससे अधिक वर्ष राज्य करने के उदाहरण भी मिल आते हैं[1]।

ऊपर के विवेचन को देखते हुए यही मानना युक्तिसंगत है कि कालभोज ही बापा नाम से प्रसिद्ध होना चाहिये।

बापा का समय

बापा के राज्य-समय का कोई शिलालेख या ताम्रपत्र अब तक नहीं मिला, जिससे उसका निश्चित समय मालूम हो सके, परंतु वि० सं० १०२८ (ई० स० ९७१) के राजा नरवाहन के समय के शिलालेख में बप्पक (बापा) का नाम होने से इतना तो निश्चित है कि उक्त संवत् से पूर्व किसी समय बापा हुआ था। महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के समय 'एकलिंगमाहात्म्य' नामक पुस्तक बनी, जिसके 'राजवर्णन' नामक अध्याय में पहले की प्रशस्तियों से कितने ही राजाओं के वर्णन के श्लोक ज्यों के त्यों उद्धृत किये हैं और बाकी नये बनाये हैं। कहीं कहीं तो 'यदुक्तं पुरातनैः कविभिः' (जैसा कि पुराने कवियों ने कहा है) लिखकर उन श्लोकों की प्रामाणिकता भी दिखलाई है। संभव है कि उक्त महाराणा को किसी प्राचीन प्रशस्ति या पुस्तक से बापा का समय ज्ञात हो गया हो, जो उक्त पुस्तक में नीचे लिखे अनुसार दिया है—

यदुक्तं पुरातनैः कविभिः—

आकाशचंद्रदिग्गजसंख्ये संवत्सरे बभूवाद्यः।
श्रीएकलिंगशंकरलब्धवरो बाप्पभूपालः॥

अर्थ—जैसा कि पुराने कवियों ने कहा है—

संवत् ८१० में श्री एकलिंग शंकर से वर पाया हुआ राजा बाप्प (बापा) पहला [प्रसिद्ध] राजा हुआ। इस श्लोक से इतना ही पाया जाता है कि बापा

(१) बूंदी के महाराव रामसिंह की गद्दीनशीनी वि० सं० १८७८ (ई० स० १८२१) में हुई। उनके पुत्र महाराव रघुवीरसिंहजी इस समय (वि० सं० १९८३) में बूंदी का शासन कर रहे हैं। इन १०५ वर्षों में वहां दूसरी पुश्त चल रही है। अकबर से शाहजहां के क़ैद होने तक के तीन बादशाहों का राज्य-समय १०२ वर्ष निश्चित ही है।

वि० सं० ८१० (ई० स० ७५३) में हुआ, किन्तु इससे यह निश्चय नहीं होता कि उस संवत् में उसकी गद्दीनशीनी हुई, अथवा उसने राज्य छोड़ा या उसकी मृत्यु हुई। निश्चित इतना ही है कि उक्त पुस्तक की रचना के समय बापा का उक्त संवत् में होना माना जाता था और वह संवत् पहले के किसी शिलालेख, ताम्रपत्र या पुस्तक से लिया गया होगा, क्योंकि उसके साथ यह स्पष्ट लिखा है कि 'पुराने कवियों ने ऐसा कहा है'।

महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के दूसरे पुत्र रायमल के राज्य-समय 'एकलिंगमाहात्म्य' नाम की दूसरी पुस्तक बनी, जिसको 'एकलिंगपुराण' भी कहते हैं; उसमें बापा के समय के सम्बन्ध में यह लेख है—

राज्यं दत्वा स्वपुत्राय आथर्वणमुपागतः ।
खचंद्रदिग्गजाख्ये च वर्षे नागहृदे मुने ॥ २१ ॥
क्षेत्रे च भुवि विख्याते स्वगुरोर्गुरुदर्शनम् ।
चकार स समित्पाणिश्चतुर्थाश्रममाचरन् ॥२२॥

(एकलिंगमाहात्म्य, अध्याय २०)

अर्थ—हे मुनि, संवत् ८१० में अपने पुत्र को राज्य दे, संन्यास ग्रहण कर, हाथ में समिध[1] लिये वह (बापा) नागहृद क्षेत्र (नागदा) में अथर्वविद्या-विशारद[2] [गुरु] के पास पहुंचा और गुरु का दर्शन किया।

इस कथन से पाया जाता है कि वि० सं० ८१०[3] (ई० स० ७५३) में बापा

---

(१) *तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्* (मुंडकोपनिषद्; १।२।१२) जिज्ञासु ज्ञान के लिये गुरु के होम की अग्नि के निमित्त समिध (लकड़ी) हाथ में लेकर गुरु के पास जाया करते थे।

(२) राजाओं के गुरु और पुरोहितों के लिये अथर्वविद्या (मंत्र, अभिचार आदि) में निपुण होना आवश्यक गुण माना जाता था (रघुवंश; १।५९; ८।४; कौटिल्य का अर्थशास्त्र; पृ० १५)

(३) बीकानेर दरबार के पुस्तकालय में फुटकर बातों के संग्रह की एक हस्तलिखित पुस्तक है, जिसमें मुहणोत नैणसी की ख्यात का एक भाग और चंद्रावतों (सीसोदियों की एक शाखा) की बात भी है, जहां राणा भावणसी (भुवनसिंह) के पुत्र चंद्रा से लेकर अमरसिंह हरिसिंहोत (हरिसिंह का पुत्र या वंशजों) तक की वंशावली दी है और अंत में दो छोटे छोटे संस्कृत काव्य हैं। इनमें से पहले में बापा से लेकर राणा प्रताप तक की

ने अपने पुत्र को राज्य देकर संन्यास ग्रहण किया। बापा के राज्य छोड़ने का यह संवत् स्वीकार योग्य है, क्योंकि प्रथम तो महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के समय के बने एकलिंगमाहात्म्य से पाया जाता है कि वह संवत् कपोलकल्पित नहीं, किन्तु प्राचीन आधार पर लिखा गया है। दूसरी बात यह है कि बापा ने मोरियों (मौर्यवंशियों) से चित्तोड़ का किला लिया[1], ऐसी पुरानी प्रसिद्धि चली

वंशावली है, जिसमें बापा का शक संवत् ६८५ (वि० सं० ८२०=ई० स० ७६३) में होना लिखा है–

बापाभिधः सम[भ]वदूवसुधाधिपोसौ ।
पंचाष्टषट्परिमितेथ स(श)केंद्रकालौ(ले) ॥

डॉ. टेसिटोरी-सम्पादित 'डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑफ़ बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल् मैनुस्क्रिप्ट्स; भाग २ (बीकानेर स्टेट) पृ० ६३। इसमें दिया हुआ बापा का समय ऊपर दिये हुए दोनों एकलिंगमाहात्म्यों के समय से १० वर्ष पीछे का है।

(१) हर हारीत पसाय सातवीसां वरतरणी ।
मंगलवार अनेक चैत वद पंचम परणी ॥
चित्रकोट कैलास आप वस परगह कीधौ ।
मोरीदल मारेव राज रायांगुर लीधौ ॥

मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र दूसरा, पृ० १।

नागहूदपुरे तिष्ठन्नेकलिंगशिवप्रभोः ।
चक्रे बाप्पोऽर्चनं चास्मै वरान् रुद्रो ददौ ततः ॥ ९ ॥
चित्रकूटपतिस्त्वं स्यास्त्वद्वंश्यचरणाद् ध्रुवम् ।
मा गच्छताचित्रकूटः संततिः स्यादखंडिता ॥ १० ॥

ततः स निर्जित्य नृपं तु मोरी–
जातीयभूपं मनुराजसंज्ञम् ।
गृहीतवांश्चित्रितचित्रकूटं
चक्रेत्र राज्यं नृपचक्रवर्ती ॥ १८ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ३।

मेवाड़ में यह प्रसिद्धि चली आती है कि बापा ने चित्तोड़ का राज्य मान मोरी से लिया; राजप्रशस्ति का 'मनुराज' राजा मान का ही सूचक है।

आती है। चित्तोड़ के क़िले के निकट पूठोली गांव के पास मानसरोवर नाम का तालाव है, जिसको लोग मोरी (मौर्यवंशी) राजा मान का बनाया हुआ बतलाते हैं। उसपर वि० सं० ७७० (ई० स० ७१३) का राजा मान का शिलालेख कर्नल टॉड के समय विद्यमान था, जिसका अंग्रेज़ी अनुवाद 'टॉड राजस्थान' में छपा है[1]। उसमें उक्त राजा मान के पूर्वजों की नामावली भी दी है। उस लेख से निश्चित है कि चित्तोड़ का क़िला वि० सं० ७७० (ई० स० ७१३) तक तो मान मोरी के अधिकार में था, जिसके पीछे किसी समय बापा ने उसे मौर्यों से लिया होगा। यह संवत् ऊपर दिये हुए बापा के राज्य छोड़ने के संवत् ८१० (ई० स० ७५३) के निकट आ जाता है। कर्नल टॉड ने वि० सं० ७८४[2] (ई० स० ७२७) में बापा का चित्तोड़ लेना माना है वह भी क़रीब क़रीब मिल जाता है। तीसरा विचारणीय विषय यह है कि, मेवाड़ में यह जनश्रुति चली आती है कि बापा ने 'संवत् एकै एकाणवै' अर्थात् संवत् १९१ में राज्य पाया; ऐसा ही राजप्रशस्ति महाकाव्य तथा ख्यातों में भी लिखा है[3]। मेरे संग्रह में संवत् १७३८ (ई० स० १६८१) भाद्रपद शुक्ला ८ गुरुवार की लिखी हुई महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के समय की बनी 'एकलिंगमाहात्म्य' की पुस्तक है, उसमें जहां बापा का समय ८१० दिया है वहां हंसपद (त्रूटक का चिह्न) देकर हाशिये पर किसी ने 'ततः शशिनंदचंद्र सं० १९१ वर्षे' लिखा है, जो उक्त जनश्रुति के अनुसार असंगत ही है।

बापा के राज्य पाने का संवत् १९१ लोगोंमें कैसे प्रसिद्ध हुआ इसका ठीक पता नहीं चल सका। कर्नल टॉड ने इस विषय में यह अनुमान किया है–

---

(१) टॉ; रा; जि० २, पृ० ९१९–२२।

(२) वही; जि० १, पृ० २६९।

(३) प्राप्येत्यादिवरान् बाष्प एकस्मिन् शतके गते।
एकाग्रनवतिसृष्टे माघे पक्षवलक्षके ॥ ११ ॥
सप्तमीदिवसे बाष्पः संपचदशवत्सरः।
एकलिंगेशहारीतप्रसादाद्भाग्यवानभूत् ॥ १२ ॥
(राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ३) और ऊपर पृ० ३९६, टिप्पण १।

मेवाड़ के बड़वों की ख्यात में भी बापा के राज्य पाने का संवत् १९१ ही दिया है (वीरविनोद; भाग १, पृ० २३४)।

'वि० सं० ५८० (ई० स० ५२३) में वलभीपुर का नाश होने पर वहां का राजवंश मेवाड़ में भाग आया, उस समय से लेकर बापा के जन्म तक १९१ वर्ष होने चाहियें;'' परन्तु यह कथन विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि वलभीपुर का नाश होने पर वहां का राजवंश मेवाड़ में नहीं आया और वलभीपुर का नाश वि० सं० ५८० (ई० स० ५२३) में नहीं किन्तु वि० सं० ८२६ (ई० स० ७६९) में होना ऊपर बतलाया जा चुका है।

यदि इस जनश्रुति का प्रचार किसी वास्तविक संवत् के आधार पर हुआ हो तो उसके लिये केवल यही कल्पना की जा सकती है कि प्राचीन लिपि में ७ का अंक पिछले समय के १ के अंक-सा[2] होता था, जिससे किसी प्राचीन पुस्तक आदि में बापा का समय ७९१ लिखा हुआ हो, जिसको पिछले समय में १९१ पढ़कर उसका उक्त संवत् में राजा होना मान लिया गया हो। कर्नल टॉड ने वि० सं० ७६९ (ई० स० ७१२-१३) में बापा का जन्म होना और १५ वर्ष की अवस्था में, वि० सं० ७८४ (ई० स० ७२७), में मोरियों से चित्तोड़ का क़िला लेना माना है[3]। यदि बापा के जन्म का यह संवत् ७६९ (ई० स० ७१२-१३) ठीक हो तो १५ वर्ष की छोटी अवस्था में चित्तोड़ का क़िला लेना (या राज्य पाना) न मानकर, २२ वर्ष की युवावस्था में उस घटना का होना मानें तो बापा का राज्य-समय वि० सं० ७९१ से ८१० (ई० स० ७३४ से ७५३) तक स्थिर होगा।

हिन्दुस्तान में प्राचीन काल से स्वतन्त्र एवं बड़े राजा अपने नाम के सोने, चांदी और तांबे के सिक्के चलाते थे। राजा गुहिल के चांदी के सिक्कों तथा राजा शील (शीलादित्य) के तांबे के सिक्के का वर्णन ऊपर किया जा चुका है, बापा का अब तक केवल एक ही सोने का

बापा का सिक्का

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० २६९।

(२) मेवाड़ के राजा शीलादित्य के समय के वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) के सामोली गांव से मिले हुए शिलालेख में—जो इस समय राजपूताना म्यूज़ियम् अजमेर में सुरक्षित है—७ का अंक वर्त्तमान १ के अंक से ठीक मिलता हुआ है, जिसको प्राचीन लिपियों से परिचय न रखनेवाला पुरुष १ का अंक ही पढ़ेगा। इस प्रकार के ७ के अंक और भी कई शिलालेखों में मिलते हैं।

(३) टॉ; रा; जि० १, पृ० २६९।

सिक्का[1] अजमेर से मिला है, जिसका तोल इस समय (घिस जाने पर भी) ६५ $\frac{3}{4}$ रत्ती (११५ ग्रेन) है। उसके दोनों ओर के चिह्न आदि[2] नीचे लिखे अनुसार हैं—

सामने की तरफ-(१) ऊपर के हिस्से से लेकर बाईं ओर लगभग आधे सिक्के के किनारे पर बिंदियों की एक वर्तुलाकार पंक्ति है, जिसको राजपूताने के लोग 'माला' कहते हैं। (२) ऊपर के हिस्से में माला के नीचे बापा के समय की लिपि में 'श्रीवोप्प' (श्री बप्प) लेख है, जो उस सिक्के को बापा का होना प्रकट करता है। (३) उक्त लेख के नीचे बाईं ओर माला के पास खड़ा हुआ त्रिशूल बना है, जो शिव (शूली) का मुख्य आयुध है। (४) त्रिशूल की दाहिनी ओर दो प्रस्तरवाली वेदी पर शिवलिंग बना है, जो बापा के इष्टदेव एकलिंगजी का सूचक है। (५) शिवलिंग की दाहिनी ओर शिव का वाहन नन्दी (बैल) बैठा हुआ है, जिसका मुख शिवलिंग की तरफ है। (६) शिवलिंग और बैल के नीचे पेट के बल लेटा हुआ एक पुरुष है, जिसका जांघों तक का भाग ही सिक्के पर आया है। यह पुरुष प्रणाम करते हुए बापा का सूचक होना चाहिये जो एकलिंगजी का परम भक्त माना जाता है।

पीछे की तरफ-(१) दाहिनी ओर के थोड़े से किनारे को छोड़कर सिक्के के अनुमान $\frac{3}{4}$ किनारे के पास बिंदियों की माला है। (२) ऊपर के हिस्से में माला के नीचे एक पंक्ति में तीन चिह्न बने हैं, जिनमें से बाईं ओर से पहला सिमटा हुआ चमर प्रतीत होता है। (३) दूसरा चिह्न सूर्य के सूचक चिह्नों में से एक है, जो बापा का सूर्यवंशी[3] होना प्रकट करता है। (४) तीसरा चिह्न छत्र है, जिसका कुछ अंश घिस गया है। (५) उक्त तीनों चिह्नों के नीचे दाहिनी ओर को मुख किये हुए गौ खड़ी है जो बापा के प्रसिद्ध गुरु लकुलीश[4] संप्रदाय के कनफड़े

---

(१) इस सिक्के के विस्तृत वर्णन के लिये देखो 'बापा रावल का सोने का सिक्का' नामक मेरा लेख (ना. प्र. प; भाग १, पृ० २४१–८५)।

(२) इन चिह्नों आदि के विस्तृत वर्णन के लिये देखो वही; पृ० २४६–५५ ।

(३) इसके विस्तृत वर्णन के लिये देखो ना. प्र. प; भाग १, पृ० २५४–६८ ।

(४) लकुलीश संप्रदाय के लिये देखो ऊपर पृष्ठ ३३७, टिप्पण १ ।

इस समय उस प्रचीन संप्रदाय को माननेवाला कोई नहीं रहा, यहां तक कि लोग बहुधा उस संप्रदाय का नाम तक भूल गये हैं; परन्तु प्राचीन काल में उसके अनुयायी बहुत थे, जिनमें मुख्य साधु (कनफड़े, नाथ) होते थे। उस संप्रदाय का विशेष वृत्तांत शिलालेखों

साधु (नाथ) हारीतराशि की कामधेनु होगी, जिसकी सेवा बापा ने की थी ऐसी कथा प्रसिद्ध है। (६) गौ के पैरों के पास बाईं ओर मुख किये गौ का दूध पीता हुआ एक बछड़ा है, जिसके गले में घंटी लटक रही है। यह अपनी पूंछ कुछ ऊंची किये हुए है और उसका स्कंध (कुकुद, कंधा) भी दीखता है। (७) बछड़े की पूंछ से कुछ ऊपर और गौ के मुख से नीचे एक पात्र बना हुआ है, जिसका कुछ अंश घिस गया है तो भी उसके नीचे के सहारे की पैंदी स्पष्ट है। (८) गौ और बछड़े के नीचे दो आड़ी लकीरें बनी हैं, जिनके बीच में थोड़ा सा अंतर है। ये लकीरें नदी के दोनों तटों को सूचित करती हैं, क्योंकि उनके दाहिने अंत से मछली निकलती हुई बताई है, जो वहां जल का होना प्रकट करता है। यदि यह अनुमान ठीक हो तो ये लकीरें एकलिंगजी के मंदिर के पास बहनेवाली कुटिला[1] नाम की छोटी नदी (नाले) की सूचक होनी चाहिये। (९) उक्त लकीरों की दाहिनी ओर तिरछी मछली बनी है, जिसका पिछला भाग लकीरों से जा लगा है।

उक्त सिक्के पर जो चिह्न बने हैं वे बापा के सम्बन्ध की प्रचलित कथाओं के सूचक ही हैं।

बापा के संबंध की कथाएं और उनकी जांच

मुहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में बापा के सम्बन्ध की एक कथा उद्धृत की है, जिसका आशय यह है–बापा ने हारीत ऋषि (हारीतराशि) की सेवा की, हारीत ने प्रसन्न हो बापा को मेवाड़ का राज्य दिया और विमान में बैठकर चलते समय बापा को बुलाया, परन्तु

तथा विष्णुपुराण, लिंगपुराण आदि में मिलता है। उसके अनुयायी लकुलीश को शिव का अवतार मानते और उसका उत्पत्तिस्थान कायावरोहण (कायारोहण, कारवान्, बड़ौदा राज्य में) बतलाते थे। लकुलीश उक्त संप्रदाय का प्रवर्तक होना चाहिये। उसके मुख्य चार शिष्यों के नाम कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य (लिंगपुराण। २४। १३१ में) मिलते हैं। एकलिंगजी के पुजारी (मठाधिपति) कुशिक की शिष्यपरम्परा से थे, जिनमें से हारीतराशि बापा का गुरु माना जाता है। इस संप्रदाय के साधु निहंग होते थे, गृहस्थ नहीं, और मूंडकर चेला बनाते थे। उनमें जाति-पांति का कोई भेद न था (ना. प्र. प; भाग १, पृ० २२६, टिप्पण ३६)।

(१) मा कुरुष्वेत्यतः कोपमित्युवाच सरिद्वरा।
तां शशापातिरोषेण कुटिलेति सरिद्भव॥ २५॥
तत्रैकलिंगसामीप्ये कुटिलेति सहस्रशः।
धाराश्च संभविष्यन्ति प्रायशो गुप्तभावतः॥ २६॥

महाराणा रायमल के समय का बना 'एकलिंगमाहात्म्य'; अध्याय ६।

वह कुछ देर से आया, उस समय विमान थोड़ा ऊंचा उठ गया था। ऋषि ने बापा का हाथ पकड़ा तो उस(बापा)का शरीर १० हाथ बढ़ गया। फिर उसके शरीर को अमर करने के लिये हारीत उसको तांबूल देता था, जो मुंह में न गिरकर पैर पर जा गिरा; तव हारीत ने कहा कि, जो यह मुंह में गिरता तो तेरा शरीर अमर हो जाता, परन्तु पैर पर गिरा है इसलिये तेरे पैरों के नीचे से मेवाड़ का राज्य न जायगा। तदनंतर हारीत ने कहा कि अमुक जगह पन्द्रह करोड़ मुहरें गड़ी हुई हैं, जिनको निकालकर सेना तैयार करना और चित्तोड़ के मोरी राजा को मार चित्तोड़ ले लेना। बापा ने वह धन निकालकर सेना एकत्र की और चित्तोड़ ले लिया[1]।

इससे मिलती हुई एक और कथा भी नैणसी ने लिखी है, जिसके प्रारंभ में इतना और लिखा है-'हारीत ने १२ वर्ष तक राठासण(राष्ट्रश्येना)देवी की आराधना की और बापा ने, जो हारीत की गौएं चराया करता था, १२ वर्ष तक हारीत की सेवा की। जब हारीत स्वर्ग को चलने लगा तब उसने बापा को कुछ देना चाहा और क्रुद्ध होकर राठासण से कहा कि मैंने १२ वर्ष तक तेरी तपस्या (भक्ति) की, परंतु तूने कभी मेरी सुध न ली। इसपर देवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा कि मांग, क्या चाहता है ? हारीत ने उत्तर दिया कि इस लड़के ने मेरी बड़ी सेवा की है, इसलिये इसको यहां का राज्य देना चाहिये। इसपर देवी ने कहा कि महादेव को प्रसन्न करो, क्योंकि उनकी सेवा के विना राज्य नहीं मिल सकता। इसपर हारीत ने महादेव का ध्यान किया, जिससे पृथ्वी फटकर एकलिंगजी का ज्योतिर्लिंग प्रकट हुआ। हारीत ने महादेव को प्रसन्न करने के लिये फिर तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर शिव ने हारीत को वर देना चाहा। उसने प्रार्थना की, कि बापा को मेवाड़ का राज्य दीजिये। फिर महादेव और राठासण ने बापा को वहां का राज्य दिया[2]'। आगे हारीत के स्वर्ग में जाते समय तांबूल का पीक थूकना आदि कथा वैसी ही है, जैसी ऊपर लिखी गई है; अंतर इतना ही है कि इस कथा में १५ करोड़ मुहरों के स्थान में ५६ करोड़ गड़ी हुई मुहरें बतलाना लिखा है।

प्राचीन इतिहास के अंधकार में प्रायः ऐसी कथाएं गढ़ ली जाती हैं, जिनमें

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र १, पृ० २।

(२) वही; पत्र ३, पृ० १।

ऐतिहासिक तत्त्व कुछ भी नहीं दीखता। बापा एकलिंगजी का पूर्ण भक्त था और वहां का मठाधिपति तपस्वी हारीतराशि एकलिंगजी का मुख्य पुजारी होने से बापा की उसपर श्रद्धा हो, यह साधारण बात है, इसी के आधार पर ये कथाएं गढ़ी गई हैं। इन कथाओं से तो यही पाया जाता है कि बापा के पास राज्य नहीं था और वह अपने गुरु की गौएं चराया करता था; परंतु ये कथाएं सर्वथा कल्पित हैं, क्योंकि हम ऊपर बतला चुके हैं कि गुहिलवंशियों का राज्य गुहिल से ही बराबर चला आता था। नागदा नगर उनकी राजधानी थी और उसी के निकट उनके इष्टदेव एकलिंगजी का मंदिर था। यदि बापा के गौ चराने की कथा में कुछ सत्यता हो तो यही अनुमान हो सकता है कि उसने पुत्र-कामना से या किसी अन्य अभिलाषा से गौ-सेवा का व्रत ग्रहण किया हो, जैसा कि राजा दिलीप ने अपने गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से किया था और जिसका उल्लेख महाकवि कालिदास ने अपने 'रघुवंश' काव्य में किया है[1]। ऐसे ही बापा के चित्तोड़ लेने की कथा के संबंध में भी यह कहा जा सकता है कि उसने अपने गुरु के बतलाये हुए गड़े द्रव्य से नहीं, किन्तु अपने बाहुबल से चित्तोड़ का क़िला मोरियों से लिया हो, और गुरुभक्ति के कारण उसे गुरु के आशीर्वाद का फल माना हो।

कर्नल टॉड ने अपने 'राजस्थान' नामक पुस्तक में एक कथा लिखी है, जिसका सारांश यह है कि, जब बापा का पिता नाग ईडर के भीलों के हमले में मारा गया, उस समय बापा की अवस्था तीन वर्ष की थी। जिस बड़नगरा (नागर) जाति की कमलावती ब्राह्मणी ने पहले गुहिल (गुहदत्त) की रक्षा की थी, उसी के वंशजों की शरण में बापा की माता भी अपने पुत्र को लेकर चली गई। वे लोग उसे पहले भांडेर के क़िले में और कुछ समय पीछे नागदा में ले आये, जहां का राजा सोलंकी राजपूत था। बापा वहां के जंगलों और झाड़ियों में घूमता तथा गौएं चराया करता था। एक दिन उसकी भेट हारीत नामक साधु से हुई जो एक झाड़ी में स्थापित एकलिंगजी की मूर्ति की पूजा किया करता था। हारीत ने अपने तपोबल से उसका राजवंशी, एवं भविष्य में प्रतापी राजा होना जानकर उसको अपने, पास रक्खा। बापा को एकलिंगजी में पूर्ण

(१) रघुवंश; सर्ग २।

भक्ति तथा अपने गुरु (हारीत) में बड़ी श्रद्धा थी। गुरु ने उसकी भक्ति से प्रसन्न हो उसके क्षत्रियोचित संस्कार किये और जब वह अपने तपोबल से विमान में बैठकर स्वर्ग में जाने लगा उस समय बापा वहां कुछ देर से पहुंचा। विमान पृथ्वी से कुछ ऊंचा उठ गया था, इतने में हारीत ने बापा को देखते ही कहा कि मुंह खोल; आगे पान थूकने की ऊपर लिखी कथा ही है। अपने गुरु से राजा होने का आशीर्वाद पाने के बाद बापा अपने माना मोरी राजा (मान) के पास चित्तोड़ में जा रहा और अंत में चित्तोड़ का राज्य उससे छीनकर मेवाड़ का स्वामी होगया। उसने 'हिन्दुआ सूरज' 'राजगुरु' (राजाओं का स्वामी) और 'चक्रवर्ती' बिरुद धारण किये[1]।

यह कथा भी प्राचीन इतिहास के अभाव में कल्पित की गई है, क्योंकि न तो बापा का पिता नाग (नागादित्य) था और न वह केवल ईडर राज्य का स्वामी था (वह तो मेवाड़ आदि प्रदेशों का राजा था)। गुहिल (गुहदत्त) के समय से ही इनका राज्य मेवाड़ आदि पर होना और लगातार चला आना ऊपर बतलाया जा चुका है। इनकी राजधानी ईडर नहीं, किन्तु बापा के पूर्व से ही नागदा थी, जहां का राजा सोलंकी नहीं था[2]। सोलंकी राजा की कथा का संबंध पहले जैनों ने गुहिल (गुहदत्त) से लगाया था और उसी को फिर बापा के साथ जोड़ दिया है। ऊपर उद्धृत की हुई दंतकथाएं और ऐसी ही दूसरी कथाएं--जिनमें बापा का देवी के सम्मुख बलिदान के समय एक ही झटके से दो भैंसों के सिर उड़ाना, बारह लाख बहत्तर हज़ार सेना रखना, चार बकरे खा जाना, पैंतीस हाथ की धोती और सोलह हाथ का दुपट्टा धारण करना, बत्तीस मन का खड्ग रखना,[3] वृद्धावस्था में खुरासान आदि देशों को जीतना, वहीं रहकर वहां की

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० २६०-६६।

(२) बापा या गुहिल के समय मेवाड़ में सोलंकियों का राज्य मानना पिछली कल्पना है; उस समय मेवाड़ पर सोलंकियों का राज्य होने का कोई प्राचीन प्रमाण अब तक नहीं मिला। राजविलास के कर्त्ता जैन लेखक मान कवि ने पहले पहल वि० सं० की १८वीं शताब्दी में यह कथा गुहिल के संबंध में लिखी थी, उसी का फिर बापा से संबंध मिलाया गया है। (देखो ना. प्र. प; भाग १, पृ० २८४)।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र २, पृ० १; राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ३, श्लोक १३-१८; भावनगर इन्स्क्रिपशन्स; पृ० १२०-५१।

अनेक स्त्रियों से विवाह करना, उनसे उसके कई पुत्रों का होना, वहीं मरना, मरने पर उसकी अंतिम क्रिया के लिये हिन्दुओं और वहांवालों में झगड़ा होना, और अंत में (कबीर की तरह) शव की जगह फूल ही रह जाना' लिखा मिलता है— अधिकांश में कल्पित हैं। बापा का देहांत नागदा में हुआ और उसका समाधि-मंदिर एकलिंगजी से एक मील पर अब तक विद्यमान है, जिसको 'बापा रावल' कहते हैं। वस्तुतः बापा का कुछ भी वास्तविक इतिहास नहीं मिलता और दंतकथाएं भी विश्वास-योग्य नहीं। बापा के इतिहास के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है, कि उसने मोरियों से चित्तोड़ का क़िला लेकर अपने राज्य में मिलाया और उसकी सुवर्ण मुद्रा से प्रकट है कि वह स्वतन्त्र, प्रतापी और एक विशाल राज्य का स्वामी था।

खुम्माण

बापा के पीछे उसका पुत्र खुम्माण (खोमाण) मेवाड़ का राजा हुआ, जिसका शुद्ध इतिहास कुछ भी नहीं मिलता, तो भी उसके नाम की बहुत कुछ ख्याति अब तक चली आती है और मेवाड़ के राजाओं को उसके नाम से अब तक कविकल्पना 'खुंमाण' कहती है।

कर्नल टॉड ने खुम्माण का वृत्तान्त विस्तार से लिखा है, जिसका सारांश यह है—'कालभोज (बापा) के पीछे खुंमाण गद्दी पर बैठा, जिसका नाम मेवाड़ के इतिहास में प्रसिद्ध है और जिसके समय में बग़दाद के ख़लीफ़ा अल्मामूं ने चित्तोड़ पर चढ़ाई की' आदि।

उक्त चढ़ाई का संबंध खुंमाण प्रथम से नहीं, किन्तु दूसरे से है, अतएव हम उसका विवेचन खुंमाण (दूसरे) के प्रसंग में करेंगे।

मत्तट, भर्तृपट्ट (भर्तृभट) और सिंह

खुंमाण के पीछे मत्तट और उसके पीछे भर्तृपट्ट, जिसको भर्तृभट भी लिखा है, राजा हुआ। भर्तृभट के अनन्तर उसका ज्येष्ठ पुत्र सिंह तो मेवाड़ का राजा हुआ और छोटा पुत्र ईशानभट तथा उसके वंशज चाटसू (जयपुर राज्य में) के

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० २६७।

आसपास के बड़े प्रदेश के स्वामी रहे, ऐसा चाटसू से मिली हुई एक प्रशस्ति से ज्ञात होता है।

उक्त प्रशस्ति का आशय यह है-'गुहिल के वंश में भर्तृपट्ट हुआ। उसका पुत्र ईशानभट और उसका उपेंद्रभट था। उस(उपेंद्रभट)से गुहिल, गुहिल से धनिक[1] और उससे आउक हुआ। आउक का पुत्र कृष्णराज और उसका पुत्र अनेक युद्धों में विजय पानेवाला शंकरगण था, जिसने भट नामक [राजा] को जीतकर गौड़ के राजा की पृथ्वी को अपने स्वामी के अधीन बनाया। उसकी शिवभक्त राणी यज्ञा से हर्षराज का जन्म हुआ, जिसने उत्तर के राजाओं को जीतकर उनके उत्तम घोड़े भोज[2] को भेट किये। उसकी राणी सिल्ला से

(१) कर्नल टॉड को धवगर्ता (धौड़-उदयपुर राज्य के जहाज़पुर ज़िले में) से एक बड़ा शिलालेख मिला था, जो बहुत ही भारी होने के कारण विलायत न ले जाया जा सका। वह मुझको उक्त कर्नल के डबोक गांव(उदयपुर से ८ मील)वाले बंगले के पीछे के खेत में पड़ा हुआ मिला, जिसको मैंने वहां से उठवाकर उदयपुर के विक्टोरिया हॉल के म्यूज़ियम् में सुरक्षित किया है, उसमें धौड़ गांव पर धनिक नामक गुहिल का अधिकार होना एवं उसका धवलप्पदेव के अधीन होना लिखा है। श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने ई० स० १६०५ में तो उक्त लेख का संवत् ८०७ विक्रमी पढ़ा (देखो ऊपर पृ० १४३ का टिप्पण ४) और ई० स० १६१३ में चाटसू के उपर्युक्त लेख का सम्पादन करते समय उसी (धौड़वाले) लेख का संवत् ४०७ पढ़ा, एवं उसको गुप्त संवत् मानकर उक्त लेख को ई० स० ७२६ का ठहराया। फिर उक्त लेख के धनिक और चाटसूवाले धनिक को एक ही पुरुष मानकर चाटसू के धनिक का ई० स० ७२५ (वि० सं० ७८२) में होना अनुमान किया (ए. इं; जि० १२, पृ० ११)। भंडारकर महाशय के पढ़े हुए उक्त लेख के दोनों प्रकार के संवत् अशुद्ध ही हैं, क्योंकि उसके शताब्दी के अंकों में न तो कहीं ८ का चिह्न है और न ४ का। उसका ठीक संवत् २०७ है, जिसको हर्ष संवत् मानने से वि० सं० ८७० (ई० स० ८१३) होता है (देखो ऊपर पृ० १४३ का टिप्पण ४)। ऐसे ही उक्त विद्वान् ने धवलप्पदेव को कोटा (कणस्वा) के वि० सं० ७६५ (ई० स० ७३८) के लेख का मौर्य राजा धवल मान लिया है; परन्तु वह भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि धौड़ का धवलप्पदेव कोटावाले धवल से ७५ वर्ष पीछे हुआ था। धवलप्पदेव किस वंश का था यह अनिश्चित ही है। उपर्युक्त नासूण गांव के लेख(देखो ऊपर पृ० ४०१)वाला ईशानभट का पिता धनिक भी संभवतः यही धनिक हो सकता है। यदि यह अनुमान ठीक हो तो उक्त ईशानभट को आउक का छोटा भाई मानना होगा।

(२) भोज कन्नौज का प्रतिहार (पड़िहार) राजा भोज (पहला) होना चाहिये, जिसके शिलालेखादि वि० सं० ६०० से ६३८ (ई० स० ८४३ से ८८१) तक के मिले हैं (देखो ऊपर पृ० १६७)। कन्नौज के प्रतिहारों का प्रबल राज्य दूर दूर तक फैला हुआ था और राजपूताने का बड़ा अंश उन्हीं के अधीन था।

गुहिल (दूसरा) पैदा हुआ। उस स्वामिभक्त गुहिल ने गौड़ के राजा को जीता, पूर्व के राजाओं से कर लिया और प्रमार(परमार) वल्लभराज की पुत्री रज्का से विवाह किया। उसका पुत्र भट्ट हुआ, जिसने दक्षिण के राजाओं को जीतकर वीरुक की पुत्री पुराशा (आशापुरा) से विवाह किया। भट्ट का पुत्र बालादित्य (बालार्क, बालभानु) था, जो चाहमान (चौहान) शिवराज की पुत्री रट्टबा का पति था। उससे तीन पुत्र वल्लभराज, विग्रहराज और देवराज हुए। रट्टबा के मरने पर उसके कल्याण के निमित्त बालादित्य ने मुरारि (विष्णु) का मंदिर बनवाया। छित्ता के पुत्र करणिक (कायस्थ ?) भानु ने उक्त प्रशस्ति की रचना की और सूत्रधार रज्जुक के बेटे भाइल ने उसे खोदा"।

इस प्रशस्ति के अंत में 'संवत्' शब्द खुदा हुआ है, परंतु अंकों का लिखना और खुदना रह गया है तो भी उसकी लिपि से उसका वि० सं० की ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास का होना अनुमान किया जा सकता है।

भर्तृपट्ट (भर्तृभट) के पीछे सिंह मेवाड़ का स्वामी हुआ।

खुंमाण (दूसरा)

प्राचीन शिलालेखों से वि० सं० ८१० और १००० के बीच मेवाड़ में खुंमाण नाम के तीन राजाओं का होना पाया जाता है, परंतु भाटों की ख्यातों में उक्त नाम का एक ही राजा होने के कारण कर्नल टॉड ने भी वैसा ही माना है। उक्त कर्नल ने खुंमाण के समय बग़दाद के ख़लीफ़ा अल्मामूं की चित्तोड़ की चढ़ाई का नीचे लिखे अनुसार वर्णन किया है। यदि उसमें कुछ भी सत्यता हो तो वह चढ़ाई खुंमाण (दूसरे) के समय होनी चाहिये।

"उक्त चढ़ाई के समय चित्तोड़ की रक्षा के निमित्त काश्मीर से सेतुबंध तक के अनेक राजाओं का--ग़ज़नी से गुहिलोतों का, आसीर से टांकों (तक्षक, नागवंशियों) का, नारलाई से चौहानों का, राहरगढ़ से चालुक्यों (सोलंकियों) का, सेतुबंध से जारखेड़ों का, मंडोर से खैरवियों का, मांगरोल से मकवानों का, जेतगढ़ से जोरियों का, तारागढ़ से रैवरों का, नरवर से कछवाहों का, सांचोर से कालमों का, जूनागढ़ से दासनोहों का, अजमेर से गौड़ों का, लोहादरगढ़ से चन्दानों का,

(१) ए. इं; जि० १२, पृ० १३-१७।

दसौंदी से डोडों (डोडियों) का, दिल्ली से तंवरों का, पाटन से चावड़ों का, जालोर से सोनगरों का, सिरोही से देवड़ों का, गागरौन से खींचियों का, जूनागढ़ से जादवों का, पाटड़ी से झालों का, कन्नौज से राठोड़ों का, चोटियाला से बालाओं का, पीरमगढ़ से गोहिलों का, जैसलगढ़ (जैसलमेर) से भट्टियों (भाटियों) का, लाहौर से बूसों का, रुणेजा से सांखलों का, खेरलीगढ़ से सेहतों का, मांडलगढ़ से निकुम्भों का, राजोर (राजोरगढ़) से बड़गूजरों का, करनगढ़ से चन्देलों का, सीकर से सीकरवालों का, उमरगढ़ से जेठवों का, पाली से बरगोतों का, कान्तारगढ़ (कन्थकोट) से जाडेजाओं का, जिरगा से खैरवों का और काश्मीर से पड़िहारों का—आना लिखा है। खुंमाण ने शत्रु को परास्त कर चित्तोड़ की रक्षा की, २४ युद्ध किये और ई० स० ८१२-८३६ (वि० सं० ८६९-८९३) तक राज्य किया। अंत में वह अपने पुत्र मंगलराज के हाथ से मारा गया[1]"।

ऊपर का सारा कथन अधिकांश में अविश्वसनीय है, क्योंकि ऊपर लिखे हुये राजपूत वंशों या उनकी शाखाओं में से कई एक (सोनगरा, देवड़ा, खीची आदि) का तो उस समय तक प्रादुर्भाव भी नहीं हुआ था, कई शहर (अजमेर, सिरोही, जैसलमेर[2] आदि) तो उस समय तक बसे भी नहीं थे और कई स्थानों में जिन जिन वंशों का राज्य होना लिखा (काश्मीर में पड़िहारों का, राहरगढ़ में चालुक्यों का, रुणेजा में सांखलों का आदि) है वहां उनके राज्य भी न थे। खुंमाण का जो राजत्व-काल दिया है वह भी खुंमाण प्रथम का है न कि द्वितीय का।

---

(१) टॉड; राज; जि० १, पृ० २८३-८६।

(२) अजमेर नगर अर्णोराज (आनल्लदेव) के पिता अजयदेव ने वि० सं० की बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बसाया था (इं. ऐं; जि. २६, पृ० १६२-६४; पृथ्वीराजविजय महाकाव्य; सर्ग ५, श्लोक १६२)। पुरानी सिरोही महाराव शिवभाण (शोभा) ने वि० सं० १४६२ (ई० स० १४०५) में बसाई, जो आबाद न हुई, जिससे उसके पुत्र सहस्रमल्ल (सैंसमल) ने उससे दो मील पर वर्तमान सिरोही नगर बसाया। इसके पहले इन देवड़ा चौहानों की राजधानी आबू के नीचे चंद्रावती नगरी थी (मेरा सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० १९३-९४)। जैसलमेर को भाटी जयसल ने वि० सं० १२१२ (ई० स० ११५५) में बसाया था।

कर्नल टॉड ने उपर्युक्त वृत्तान्त 'खुंमाण-रासे'[1] से लिया है, जो किसी खुंमाण के समय का बना हुआ नहीं, किंतु विक्रम संवत् की १७वीं शताब्दी के आसपास का लिखा हुआ होने के कारण प्रामाणिक ग्रंथ नहीं कहा जा सकता।

अब्बासिया खानदान का अल्मामूं हि० स० १६८-२१८ (वि० सं० ८७०-८९०=ई० स० ८१३-८३३) तक खलीफ़ा रहा, जो खुंमाण (दूसरे) का समकालीन था। उस समय से पूर्व खलीफ़ों के सेनापतियों ने सिंधदेश विजय कर लिया था और उधर से राजपूताना आदि देशों पर मुसलमानों की चढ़ाइयां होती रहती थीं। ऐसी दशा में टॉड का माना हुआ 'खुरासान पुत महमूद' खलीफ़ा मामूं का बोधक होना संभव है। खुंमाणरासे के कर्त्ता ने किसी प्राचीन जनश्रुति या पुस्तक के आधार पर यह वर्णन लिखा हो, तो भी यह तो निश्चित है कि जिन जिन राजाओं का चित्तोड़ की रक्षा के लिये लड़ने को आना लिखा है वह अपने ग्रंथ को रोचक बनाने के लिये लिखा गया है। खुंमाण और उसके अधीनस्थ राजाओं ने खलीफ़ा की सेना पर विजय प्राप्त की हो यह संभव है।

महायक और खुंमाण (तीसरा)

खुंमाण (दूसरे) के पीछे क्रमशः महायक और खुंमाण (तीसरा) राजा हुए, जिनका कुछ भी वृत्तान्त नहीं मिलता। खुंमाण (तीसरे) का उत्तराधिकारी भर्तृपट्ट (भर्तृभट दूसरा) हुआ।

भर्तृपट्ट (दूसरा)

आटपुर (आहाड़) से मिले हुए राजा शक्तिकुमार के समय के वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) के शिलालेख में लिखा है कि 'खोंमाण (खुंमाण) का पुत्र, तीन लोक का तिलक, भर्तृपट्ट (दूसरा) हुआ। उसकी राष्ट्रकूट (राठोड़) वंश की राणी महालक्ष्मी से अल्लट ने जन्म लिया[2]'। अल्लट की माता महालक्ष्मी कहां

(१) दौलत (दलपत) विजय-रचित 'खुंमाणरासे' की एक अपूर्ण प्रति देखने में आई, उसमें महाराणा प्रतापसिंह तक का तो वर्णन है और आगे अपूर्ण है। इससे उसकी रचना का समय वि० सं० की १७वीं शताब्दी या उससे भी पीछे माना जा सकता है।

(२) *खोम्माणमात्मजमवाप स चाथ तस्मा-*
ल्लोकत्रयैकतिलकोजनि भर्तृपट्टः ॥ ३ ॥

के राठोड़ राजा की पुत्री थी, इस विषय में कुछ भी लिखा नहीं मिलता, परन्तु मेवाड़ के निकट ही गोडवाड़ के इलाक़े (जोधपुर राज्य में) में राठोड़ों का एक राज्य था, जिसकी राजधानी हस्तिकुंडी (हथुंडी-बीजापुर के निकट) थी। वहां का राठोड़ राजा मंमट (जो वि० सं० ९९६=ई० स० ६३९ में[1] विद्यमान था) भर्तृभट (दूसरे) का समकालीन था। उस (मंमट) के पुत्र धवल ने, जब मालवे के परमार राजा मुंज (वाक्पतिराज, अमोघवर्ष) ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर आघाट (आहाड़) को तोड़ा, उस समय मेवाड़ की सहायता की थी,[2] अतएव संभव है कि महालक्ष्मी मंमट की पुत्री (या बहिन) हो।

भर्तृभट (दूसरे) के समय के अब तक दो शिलालेख उपलब्ध हुए हैं, जिनमें से पहला वि० सं० ९९९ (ई० स० ९४२) श्रावण सुदि १ का प्रतापगढ़ से मिला है। उसका आशय यह है—'खोंमाण के पुत्र महाराजाधिराज श्रीभर्तृपट्ट ने घोंटावर्षी (घोटार्सी-प्रतापगढ़ से ७ मील पूर्व में) गांव के इन्द्रराजादित्यदेव नामक सूर्य-मंदिर को पलासकूपिका (परासिया-मंदसोर से १५ मील दक्षिण में) गांव का वंव्बूलिका खेत भेट किया[3]'। दूसरा वि० सं० १००० (ई० स० ९४३) ज्येष्ठ सुदि ५ का टूटा हुआ शिलालेख आहाड़ से मिला है, जिसमें भर्तृनृप (भर्तृभट) के समय आदिवराह नामक पुरुष के द्वारा गंगोद्भेद (गंगोभेव-आहाड़ में) तीर्थ में आदिवराह का मंदिर बनाये जाने का उल्लेख है[4]।

राष्ट्रकूटकुलोद्भूता महालक्ष्मीरिति प्रिया।
अभूद्यस्याभवत्तस्यां तनयः श्रीमदल्लटः॥ ४॥

ई. ऐं; जि० ३९, पृ० १९१।

(१) ए. इं; जि० १०, पृ० २४।

(२) वही; पृ० २०।

(३) *संवत् ९९९ श्रावणसुदि १ समस्तराजावलिपूर्वमग्रे(वे)ह महाराजाधिराज-श्रीभर्तृपट्टः श्रीखोम्माणसुतः स्वमातृपित्रोरात्मनश्च धर्म्माभिवृद्धये घोएटावर्षीयेन्द्र-राजादित्यदेवाय पलासकूपिकाग्रामे वंव्बूलिको ना(ना)म कच्छ(च्छः)........* (वही; जि० १४, पृ० १८७)।

(४) राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) की ई० स० १९१३-१४ की रिपोर्ट; पृ० २।

मेवाड़ का भर्तृपुर (भटेवर गांव), जिसके नाम से जैनों का भर्तृपुरीय गच्छ प्रसिद्ध है, इस भर्तृभट (भर्तृभट) का बसाया हुआ माना जाता है।

भर्तृभट (दूसरे) का पुत्र अल्लट वि० सं० १००८ (ई० स० ९५१) में राजा था, अतएव भर्तृभट (दूसरे) का देहांत वि० सं० १००० और १००८ (ई० स० ९४३ और ९५१) के बीच किसी वर्ष में होना चाहिये।

अल्लट

अल्लट का नाम मेवाड़ की ख्यातों में आलु (आलु रावल) मिलता है। उसके समय का एक शिलालेख मिला है, जो आहाड़ के निकट सारणेश्वर नामक नवीन शिवालय के एक छबने के स्थान पर लगा हुआ है। प्रारंभ में वह लेख राजा अल्लट के समय के बने हुए आहाड़ के किसी वराह-मंदिर में लगा था। उसमें राणी महालक्ष्मी (अल्लट की माता), राजा अल्लट तथा उसके पुत्र नरवाहन के अतिरिक्त उस (वराह के) मंदिर से संबंध रखनेवाले गोष्ठिकों[1] की बड़ी नामावली दी है। उक्त लेख से पाया जाता है कि अल्लट का अमात्य (मुख्य मंत्री) मंमट, सांधिविग्रहिक[2] दुर्लभराज, अक्षपटलिक[3] मयूर और समुद्र, बंदिपति (मुख्य भाट) नाग और भिषगाधिराज (मुख्य वैद्य) रुद्रादित्य था। उस मंदिर का प्रारंभ वि० सं० १००८ (ई० स० ९५१) में उत्तम सूत्रधार अग्रट ने किया और वि० सं० १०१० (ई० स० ९५३) वैशाख सुदि ७ को उसमें वराह की मूर्त्ति स्थापित हुई। मंदिर के निर्वाह के लिये हाथी पर (हाथी को बेचने पर) एक द्रम्म,[4] घोड़े पर दो रूपक,[5] सींगवाले जानवरों पर एक द्रम्म का चालीसवां

---

(१) मंदिर आदि धर्मस्थानों को बनवाने में चन्दे आदि से सहायता देनेवालों को गोष्ठिक कहते थे।

(२) जिस राजकर्मचारी या मंत्री के अधिकार में अन्य राज्यों से संधि या युद्ध करने का कार्य रहता था, उसको 'सांधिविग्रहिक' कहते थे।

(३) राज्य के आय-व्यय का हिसाब रखनेवाले कार्यालय को 'अक्षपटल' कहते थे और उसका अधिकारी 'अक्षपटलिक' या 'अक्षपटलाधीश' कहलाता था (देखो मेरी भारतीय प्राचीन लिपिमाला; पृ० १५२, टिप्पण ७ और ८)।

(४) द्रम्म एक चांदी का सिक्का था, जिसका मूल्य चार से छः आने के क़रीब होता था।

(५) रूपक एक छोटासा ३ रत्ती का चांदी का सिक्का होता था।

अंश, लाटे[1] पर एक तुला (तकड़ी[2]) और हट्ट[3] (हाट, हटवाड़ा) से एक आढक[4] अन्न, शुक्लपक्ष की एकादशी के दिन हलवाई की प्रति दुकान से एक घड़िया दूध, जुआरी से पेटक (एक बार का जीता हुआ धन?), प्रत्येक घानी से एक एक पल[5] तेल, प्रति रंधनी[6] एक रूपक और मालियों से प्रतिदिन एक एक चौसर[7] लिये जाने की व्यवस्था राजा ने की थी। कर्णाट,[8] मध्यदेश,[9] लाट[10] और टक्क-देश[11] के व्यापारियों ने भी, जो वहां रहते थे, अपनी अपनी ओर से मंदिर को दान दिये थे।

उक्त लेख से यह अनुमान होता है कि उस समय आहाड़ एक अच्छा नगर था और दूर दूर के व्यापारी वहां रहते थे। मेवाड़ में यह भी प्रसिद्ध है कि आलु रावल (अल्लट) ने आड़ (आहाड़) बसाया था, परंतु इसमें सत्यता पाई नहीं जाती। अल्लट के पिता भर्तृभट (दूसरे) के उपर्युक्त आहाड़ के

(१) राजपूताने में बहुधा अब तक खेती के अन्न के राजकीय और किसान के हिस्से अलग किये जाते हैं, जिसको लाटा कहते हैं। मूल में 'लाट' शब्द है, जो लाटे का सूचक है।

(२) तुला का मुख्य अर्थ तराजू (तकड़ी) है, तराजू में एक वार जितना अन्न तोला जाय उसको भी तुला या तकड़ी कहते हैं; मेवाड़ में पांच सेर अन्न तकड़ी कहलाता है।

(३) राजपूताने के कई बड़े क़सबों में प्रति सप्ताह एक दिन हाट या 'हटवाड़ा' भरता है, जहां लोग अन्न आदि वस्तुएं खरीदते और बेचते हैं।

(४) आढक–अन्न के तोल या नाप का नाम है और अनुमान साढ़े तीन सेर का सूचक है।

(५) पल–चार तोले का नाप। राजपूताने में तेल आदि निकालने के लिये लोहे का डंडीदार पात्र होता है, जिसको पला या पली कहते हैं, उसमें क़रीब चार तोले तेल आता है। अब तक कई गांवों में प्रत्येक घानी से प्रतिदिन एक एक 'पला' तेल मंदिरों के निमित्त लिये जाने की प्रथा चली आती है।

(६) रंधनी–ज्ञातिभोजन के लिये बननेवाली रसोई का सूचक है।

(७) चौसर–चार लड़ की फूलों की माला (या माला)।

(८) कर्णाट–कर्णाटक देश (दक्षिण में)।

(९) हिमालय से विंध्याचल तक और कुरुक्षेत्र से प्रयाग तक का देश मध्यदेश कहलाता था।

(१०) तापी नदी के दक्षिण से मही नदी के उत्तर की सेढ़ी नदी तक का गुजरात का अंश 'लाट' कहलाता था।

(११) पंजाब का एक भाग, जिसकी राजधानी शाकल नगर थी, टक्क देश कहलाता था, जो मद्र या वाहिक देश का पर्याय माना जाता है।

लेख से ज्ञात होता है, कि उस समय भी वहां का गंगोद्भेद नामक कुंड एक तीर्थ माना जाता था, जैसा कि अब तक माना जाता है। भर्तृभट (दूसरे), अल्लट, शक्तिकुमार, शुचिवर्म आदि के समय के कई एक शिलालेख तोड़ फोड़ जाकर वहां के पिछले बने हुए मंदिरों में लगे हुए मिलते हैं, जिससे अनुमान होता है कि शायद अल्लट ने पुरानी राजधानी नागदा होने पर भी नई राजधानी आहाड़ में स्थिर की हो अथवा तीर्थस्थान होने से वहां भी वह रहा करता हो।

आहाड़ में एक जैन मंदिर की देवकुलिका[1] के छबने के स्थान पर राजा शक्तिकुमार के समय का एक शिलालेख तोड़-फोड़कर लगाया गया है, जिसमें अल्लट के वर्णन में लिखा है कि उसने अपनी भयानक गदा से अपने प्रबल शत्रु देवपाल[2] को युद्ध में मारा[3]। उक्त लेख में भी अल्लट के अक्षपटलाधीश का नाम मयूर दिया है[4]। आहाड़ से मिले हुए शक्तिकुमार के वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) के शिलालेख में अल्लट की राणी हरियदेवी का हूण राजा की पुत्री होना और उस (राणी) का हर्षपुर गांव बसाना भी लिखा मिलता है[5]।

नरवाहन

अल्लट का उत्तराधिकारी उसका पुत्र नरवाहन हुआ। शक्तिकुमार के उपर्युक्त वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) के शिलालेख में उसको 'कलाओं का

(१) कितने ही जैन मंदिरों में मुख्य मंदिर के चारों ओर जो छोटे छोटे मंदिर होते हैं, उनको 'देवकुलिका' कहते हैं।

(२) प्रबल शत्रु देवपाल कहां का राजा था यह अनिश्चित है। संभव है कि वह कन्नौज का रघुवंशी प्रतिहार राजा देवपाल हो, जो अल्लट का समकालीन था। यदि यह अनुमान ठीक हो तो यही मानना पड़ेगा कि देवपाल ने मेवाड़ को कन्नौज के राज्य में मिलाने के लिये चढ़ाई की हो और उसमें वह मारा गया हो।

(३) [दु]र्द्धरमरिं यो देवपालं व्यधात्।
चंचच्चंडगदाभिघात—
विदलद्वक्षस्थलं संयुगे
निस्त्रिंशक्षतकंध······कबंधं व्यधात्।
(आहाड़ का लेख—अप्रकाशित)।

(४) अस्याक्षपटलाधीशो मयूरो मधुरध्वनिः (वही)।

(५) इं. ऐं; जि० ३९, पृ० १९१।

आधार, धीर, विजय का निवास-स्थान, क्षत्रियों का क्षेत्र (उत्पत्ति-स्थान), शत्रुदलों को नष्ट करनेवाला, वैभव का भवन और विद्या की वेदी कहा है। उसकी राणी (नाम नहीं दिया) चाहुमान (चौहान) राजा जेजय की पुत्री थी[1]"।

नरवाहन के समय के आहाड़ के (देवकुलिका के छवनेवाले) उपर्युक्त शिलालेख में लिखा है—'अक्षपटलाधीश मयूर के पुत्र श्रीपति को नरवाहन ने अक्षपटलाधीश नियत किया[2]' ।

नरवाहन के समय का संवत्वाला एक ही शिलालेख मिला है, जो एकलिंगजी के शिवालय से कुछ ऊंचे स्थान पर के लकुलीश (लकुटीश) के मंदिर की, जिसको नाथों का मंदिर कहते हैं, वि० सं० १०२८ (ई० स० ६७१) की प्रशस्ति है। उक्त मंदिर के शिखर का बरसाती जल उस(प्रशस्ति)पर होकर बहने के कारण वह कुछ बिगड़ गई है तो भी उसका अधिकांश सुरक्षित है, जिसका सारांश नीचे लिखा जाता है—

'प्रारंभ में लकुलीश को प्रणाम किया है; फिर पहले और दूसरे श्लोकों में किसी देवता और देवी (सरस्वती) की प्रार्थना हो ऐसा पाया जाता है, परन्तु उन श्लोकों का अधिकांश नष्ट हो गया है। तीसरे और चौथे श्लोकों में नागह्रद (नागदा) नगर का वर्णन है। पांचवें में उस नगर के राजा वप्पक (बप्पक, बापा) का वर्णन है, जिसमें उसको गुहिलवंशी राजाओं में चंद्र के समान (तेजस्वी) और पृथ्वी का रत्न कहा है। छठे श्लोक में बापा के वंशज किसी राजा (संभवतः नरवाहन) के पिता अल्लट का वर्णन है, परंतु उसका नाम नष्ट हो गया है। सातवें और आठवें में राजा नरवाहन की वीरता की प्रशंसा है। श्लोक ९ से ११ में लकुलीश की उत्पत्ति का वर्णन है। बारहवें श्लोक में किसी स्त्री

(१) वही; पृ० १६१ ।

(२) *क्षीराब्धेरिव शीतदीधितिरभूत्तस्मात्सुतःश्रीपतिः ॥*

श्रीमदल्लटनराधिपात्मजो

यो व(ब)भूव नरवाहनाह्वयः ।

सोध्यतिष्ठत पितुः पदं सुधी—

श्चैनमक्षपटले न्यवेशयत् ॥

आहाड़ का लेख—अप्रकाशित ।

(पार्वती ?) के शरीर के आभूषणों का वर्णन है, परंतु वह किस प्रसंग में है, यह उक्त श्लोक के सुरक्षित न होने से स्पष्ट नहीं होता। १३वें में शरीर पर भस्म लगाने, वल्कल वस्त्र और जटाजूट धारण करने तथा पाशुपत योग का साधन करनेवाले कुशिक आदि योगियों का वर्णन है। १४ से १६ तक के श्लोकों में उन (कुशिक आदि)के पीछे होनेवाले उस संप्रदाय के साधुओं का परिचय दिया है, जिसमें वे शाप और अनुग्रह के स्थान, हिमालय से सेतु (रामसेतु) पर्यंत रघुवंश (मेवाड़ के राजवंश) की कीर्ति को फैलानेवाले, तपस्वी, एकलिंगजी की पूजा करनेवाले तथा लकुलीश के उक्त मंदिर के निर्माता कहे गये हैं। १७वें श्लोक में स्याद्वाद (जैन) और सौगत (बौद्ध) आदि को विवाद में जीतनेवाले वेदांग मुनि का विवरण है। १८वें में वेदांग मुनि के कृपापात्र (शिष्य) आम्रकवि के द्वारा, जो आदित्यनाग का पुत्र था, उस प्रशस्ति की रचना किये जाने का उल्लेख है। १९वें श्लोक में उस प्रशस्ति की राजा विक्रमादित्य के संवत् १०२८ (ई० स० ९७१) में रचना होना सूचित किया है। २०वां श्लोक किसी की प्रसिद्धि के विषय में है, जो अपूर्ण ही बचा है। आगे अनुमान पौन पंक्ति गद्य की है, जिसमें कारापक (मंदिर के बनानेवाले) श्रीसुपूजितराशि का प्रणाम करना लिखा है तथा श्रीमार्तंड, श्रीभ्रातृपुर, श्रीसद्योराशि, लैलुक, श्रीविनिश्चितराशि आदि के नाम हैं"[1]।

शालिवाहन

नरवाहन के पीछे शालिवाहन राजा हुआ, जिसने बहुत थोड़े वर्ष राज्य किया।

काठियावाड़ आदि के गोहिल

शालिवाहन के कितने ही वंशजों के अधिकार में जोधपुर राज्य का खेड़ नामक इलाक़ा था। गुजरात के सोलंकियों के अभ्युदय के समय खेड़ से कुछ गुहिलवंशी अनहिलवाड़े जाकर वहां के सोलंकियों की सेवा में रहे। गुहिलवंशी साहार का पुत्र सहजिग (सेजक) चौलुक्य (सोलंकी) राजा (संभवतः सिद्धराज जयसिंह) का अंगरक्षक नियत हुआ और उसको काठियावाड़ में प्रथम जागीर मिली, तभी से मेवाड़ के गुहिल-

(१) बंब. ए. सो. ज; जि० २२, पृ० १६६-६७। ना. प्र. प; भाग १, पृ० २५६-५९।

वंशियों की संतति का वहां प्रवेश हुआ। सहजिग (सेजक) के दो पुत्र मूलुक और सोमराज थे, जिनमें से मूलुक अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ[1]। उसके वंश में काठियावाड़ में भावनगर, पालीताना आदि राज्य और रेवाकाँठे (गुजरात में) में राजपीपला है। प्राचीन इतिहास के अंधकार में पीछे से कई राजवंशों ने अपना संबंध किसी न किसी प्रसिद्ध राजा से मिलाने का उद्योग किया, जिसके कई प्रमाण मिलते हैं। ऐसे राजवंशों में उक्त राज्यों के गोहिलों की भी गणना हो सकती है। उनको इतना तो ज्ञात था कि वे अपने मूल पुरुष गुहिल के नाम से गोहिल कहलाये और शालिवाहन के वंशज हैं। उनके पूर्वज पहले जोधपुर राज्य के खेड़ इलाक़े के स्वामी थे और उनमें सेजक (सहजिग) नामक पुरुष ने सर्वप्रथम काठियावाड़ में जागीर पाई[2]; परंतु खेड़ के गोहिल

---

(१) *कृत्वा राज्यमुपारमन्नरपतिः श्रीसिद्धराजो यदा*
दैवादुत्तमकीर्त्तिमंडितमहीपृष्ठो गरिष्ठो गुणैः ।
आचक्राम झगित्य(झटित्य)चिंत्यमहिमा तद्राज्यसिंहासनं
श्रीमानेष कुमारपालनृपतिः पुण्यप्ररूढोदयः ॥
राज्येमुष्यमहीभुजोभवदिह श्रीगूहिलस्यान्वये
श्रीसाहार इति प्रभूतगरिमाधारो धरामंडनम् ।
चौलुक्यांगनिगूहकः सहजिगः ख्यातस्तनूजस्तत—
स्तत्पुत्रा बलिनो बभूवुरवनौ सौराष्ट्ररक्षाक्षमाः ॥
एषामेकतमो वीरः सोमराज इति क्षितौ ।
विख्यातो विदधे देवं पितुर्नाम्ना महेश्वरं ॥.......
पूजार्थमस्य देवस्य भ्राता ज्येष्ठोस्य मूलुकः ।
सुराष्ट्रनायकः प्रादाच्छासनं कुलशासनं ॥

सोलंकी कुमारपाल के सामंत मूलुक का वि० सं० १२०२ और सिंह संवत् ३२ आश्विन वदि १३ का (मांगरोल की सोढली बावड़ी का) शिलालेख; भावनगर प्राचीन-शोध-संग्रह; भाग १, पृ० ४–७; भावनगर इन्स्क्रिप्शंस; पृ० १५८।

(२) देवशंकर वैकुंठजी भट्ट के भावनगर का बालबोध इतिहास (पृ०४–१०) एवं अमृतलाल गोवर्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या के 'हिंदराजस्थान' (गुजराती) (पृ० ११३–१४, १६४–२३५) में भावनगर, पालीताना और राजपीपले का इतिहास छपा है। उनमें लिखा है—"भावनगर (आदि) के महाराजा जाति के गोहेल (गोहिल) राजपूत हैं।

मेवाड़ के राजा शालिवाहन के वंशज थे, यह न जानने से ही उन्होंने अपने पूर्वज शालिवाहन को शक संवत् का प्रवर्तक, पैठण का प्रसिद्ध आंध्रवंशी शालिवाहन

वे अपने को दक्षिण के पैठण नगर में (वि० सं० १३४ में) जो शालिवाहन नामक राजा हुआ उसके वंशज मानते हैं और टॉड साहब उनको सूर्यवंशी लिखते हैं। शालिवाहन से कितनी ही पीढ़ियों के पीछे उसके वंशजों ने मारवाड़ में आकर लूणी नदी पर पुराने खेरगढ़ के भीलराजा खेड़वा का राज्य छीन लिया और २० पीढ़ियों तक वहां राज्य किया। अंतिम राजा मोहोदास पर कन्नौज के अंतिम राजपूत राजा जयचंद राठोड़ के पौत्र शिआजी (सिआजी) ने चढ़ाई की, मोहोदास को मारा और मारवाड़ में राठोड़-राज्य स्थापित किया। मोहोदास के मारे जाने पर उसके पौत्र सेजकजी (सहजिग) की अधीनता में गोहेल पहले पहल ई० स० १२५० (वि० सं० १३०६-७) के आसपास सौराष्ट्र (सोरठ) में आये। सेजकजी मोहोदास के कुंवर झांझरजी का पुत्र था। उस समय सोरठ पर महीपाल नामक राजा राज्य करता था, जिसकी राजधानी जूनागढ़ में थी। उसने तथा उसके कुंवर खेंगार ने सेजकजी को आश्रय देकर अपनी सेवा में रक्खा और उनको शापुर के आसपास के १२ गांव जागीर में दिये....... सेजकजी के राणोजी, शाहजी और सारंग नामक तीन पुत्र हुए" (हिंदराजस्थान, पृ० ११३-१४)। इस कथन का अधिकांश कल्पित ही है, क्योंकि खेड़ पर राज्य करनेवाले गोहिल (गोहेल) पैठण के शालिवाहन के वंशज नहीं, किन्तु मेवाड़ के गुहिलवंशी शालिवाहन के वंशज थे, यह निश्चित है और राजपूताने के सब इतिहास-लेखक उसे स्वीकार करते हैं। राजपीपला राज्य के भाट की पुस्तक में शालिवाहन के पीछे नरवाहन का नाम है (जेम्स एम्. केम्बैल-संगृहीत बॉम्बे गैज़ेटियर; जि० ६, पृ० १०१ का टिप्पण), जो मेवाड़ के शालिवाहन का ही पिता था। (भाट की पुस्तक में ये दोनों नाम उलट-पुलट दिये हैं)। दक्षिण के शालिवाहन (आंध्रवंशी) के वंश में न तो कोई गुहिल नाम का पुरुष हुआ और न शक्तिकुमार। ऐसे ही सेजक के पिता का नाम झांझर नहीं, किन्तु साहार था (देखो ऊपर पृ० ४३१, टिप्पण १)। सेजक ई० स० १२५० (वि० सं० १३०६-७) के आस-पास सोरठ में नहीं गया, क्योंकि वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४५) में तो उसका पुत्र मूलुक सुराष्ट्र (सोरठ) का नायक था (देखो वही टिप्पण)। सेजक ने जूनागढ़ के राजा महीपाल की सेवा में रहकर जागीर नहीं पाई, किन्तु सोलंकी राजा (सिद्धराज जयसिंह) का अंगरक्षक बनकर सोरठ की जागीर पाई थी। संभव है कि, सिद्धराज जयसिंह ने जब जूनागढ़ के चूड़ासमा (यादव) राजा खेंगार पर चढ़ाई कर उसको क़ैद किया और सोरठ को अपने राज्य में मिलाया (बंब० गै; जि० १, भाग १, पृ० १७६), उस समय सेजक को, अपना विश्वासपात्र और अंगरक्षक होने से, सोरठ का शासक बनाया हो। वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४५) में सेजक का ज्येष्ठ पुत्र मूलुक सोरठ का नायक था। सेजक के पुत्रों के नाम राणोजी, शाहाजी आदि भी कल्पित ही हैं, क्योंकि उसके पुत्र मूलुक के वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४५) के मांगरोल की सोढ़ली बावड़ी के शिलालेख में वे नाम नहीं, किन्तु मूलुक और सोमराज हैं (देखो ऊपर पृ० ४३१, टिप्पण १)।

मान लिया और चंद्रवंशी न होने पर भी उसको चंद्रवंशी ठहरा दिया[1]। यह कल्पना भी अधिक पुरानी नहीं है, क्योंकि काठियावाड़ आदि के गोहिल पहले अपने को मेवाड़ के राजाओं की नाईं सूर्यवंशी ही मानते थे[2]।

शक्तिकुमार

शालिवाहन के पीछे उसका पुत्र शक्तिकुमार राजा हुआ। उसके समय के आहाड़ से मिले हुए वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) वैशाख सुदि १ के शिला-

(१) *चद्रवंश सरदार, गोत्र गोतम बखाणुं*
शाखा माधवी सार, जेके प्रवर त्रण जाणुं।
अग्निदेव उद्धार, देव चामुंडा देवी
पांडव कुल परमाण, आद्य गोहिल मुळ एवी।
विक्रम वध करनार, नृप शालिवाहन चकवे थयो।
ते पछी ते ओलाद मां, सोरठ मां सेजक भयो॥

यह छप्पय वि० सं० १९५५ में वळा के दिवान लीलाधर भाई के पास गोहिलों के इतिहास की हस्तलिखित पुस्तक से मैंने नक़ल किया था। इसमें गोहिलों का गोत्र गौतम लिखा है। पुष्कर से मिले हुए वि० सं० १२४३ (ई० स० ११८६) के शिलालेख में गुहिलवंशी ठा० (ठाकुर) कोल्हण को गौतम गोत्र का कहा है (रा. म्यु. रि; ई० स० १९१९-२०, पृ० ३), दमोह (मध्यप्रदेश में) से मिले हुए वहां के गुहिलवंशी विजयसिंह के शिलालेख में उसको विश्वामित्र गोत्र का कहा है (रायबहादुर हीरालाल; इन्स्क्रिप्शन्स इन् सेंट्रल प्रॉविंसीज़ एण्ड बरार; पृ० ४९) और मेवाड़ के गुहिलवंशी अपना गोत्र वैजवापायन मानते हैं। क्षत्रियों का गोत्र वही माना जाता था, जो उनके पुरोहित का हो। पुरोहित के परिवर्त्तन के साथ गोत्र का भी पहले परिवर्त्तन होता हो, ऐसा पाया जाता है (देखो ना. प्र. प; भा० ५, पृ० ४३५-४३ तक छपा हुआ मेरा 'क्षत्रियों के गोत्र' शीर्षक लेख)।

(२) गंगाधर कविरचित 'मंडलीकचरित' काव्य में काठियावाड़ के गोहिलों को सूर्यवंशी और झालों को चंद्रवंशी कहा है—

रविविधूद्भवगोहिलझल्लकै-
र्व्यजनवानरभाजनधारवः।
विविधवर्तनसंवितकारवैः
ससमदैः समदैः समसेव्यत॥

मंडलीकचरित ६। २३। भावनगर के पुरातत्त्ववेत्ता विजयशंकर गौरीशंकर ओझा (स्वर्ग-

लेख में उसको तीनों शक्तियों (प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति और उत्साहशक्ति) से संपन्न कहा है और उसके निवास-स्थान आटपुर (आहाड़) को संपत्ति का घर तथा विपुल वैभव वाले अनेक वैश्यों (?) से सुशोभित बतलाया है[1]। आहाड़ के जैन मंदिर की देवकुलिकावाले उपर्युक्त शिलालेख से ज्ञात होता है, कि राजा नरवाहन के अक्षपटलिक श्रीपति के दो पुत्र मत्तट और गुंदल हुए, जो राजा शक्तिकुमार की दोनों भुजाओं के समान थे। वे सब व्यापार (राजकार्य) के करनेवाले तथा कटक (राजधानी) के भूषण थे[2]। आहाड़ के एक जैन मंदिर की सीढ़ी में लगे हुए अपूर्ण शिलालेख में, जो शक्तिकुमार के समय का है, मत्तट को अक्षपटलाधिपति कहा है और उसके निवेदन करने पर एक सूर्यमंदिर के लिये, प्रतिवर्ष १४ द्रम्म देने की उक्त राजा की आज्ञा का उल्लेख है[3]।

राजा मुंज की मेवाड़ पर चढ़ाई

मालवे के परमार राजा मुंज (वाक्पतिराज, अमोघवर्ष) ने मेवाड़ पर चढ़ाई की, जिसका कुछ भी हाल मेवाड़ या मालवे के शिलालेखादि में नहीं मिलता; परन्तु बीजापुर (जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ इलाके में) से मिले हुए हस्तिकुंडी (हथुंडी) के राष्ट्रकूट (राठोड़) राजा

स्थ) के पुस्तकालय की हस्तलिखित पुस्तक से। यह काव्य वि० सं० १४५० के आसपास बना था।

(१) इं; एँ; जि० ३९, पृ० १९१।

(२) क्षीराब्धेरिव शीतदीधितिरभूत्तस्मात्सुतः श्रीपतिः
शांताद्वाक्यपदप्रमाणविदुषस्तस्मादभून्मत्तटः ।
सत्यत्यागपरोपकारकरुणासौ(शौ)र्य्यैकस्थितिः
श्रीमान्गुंदल इत्य····· हिमा भ्रातानुजोस्याभवत् ॥
तौ गुणातिशयशालिनावुभौ
राजनीतिनिपुणौ महौ··········· ॥
सर्वव्यापारकर्तारौ तौ द्वौ कटकभूषणौ ।
राज्ञा शक्तिकुमारेण कल्पितौ स्वौ भुजाविव ॥

(आहाड़ का लेख—अप्रकाशित)।

(३) सेसिल बैंडाल; 'जर्नी इन् नेपाल'; पृ० ८२ और प्लेट। बैंडाल ने पहली पंक्ति के आरंभ में 'ऋटोक्षपटलाधिपतिः' पढ़ा है, परन्तु मूल में 'त्तटोक्षपटलाधिपति' है। प्रारंभ का 'म' अक्षर नष्ट हो गया है।

धवल और उसके पुत्र बालप्रसाद के समय के वि० सं० १०५३ (ई० स० ९९७) माघ शुक्ला १३ के शिलालेख से पाया जाता है कि जब मुंज ने मेदपाट के मदरूपी आघाट (आहाड़) को तोड़ा, उस समय धवल ने मेवाड़ के सैन्य की सहायता की थी[1]। मुंज शक्तिकुमार का समकालीन[2] था, इसलिये मुंज की चढ़ाई शक्तिकुमार के समय की घटना होना संभव है। मुंज ने केवल आहाड़ को तोड़ा हो इतना ही नहीं, किन्तु मेवाड़ का प्रसिद्ध चितोड़ का दुर्ग तथा उसके आस-पास का कुछ प्रदेश भी अपने राज्य में मिला लिया हो, ऐसा विदित होता है; क्योंकि मुंज के उत्तराधिकारी और छोटे भाई सिंधुराज (नवसाहसांक) का पुत्र भोज चित्तोड़ के क़िले में रहा करता था[3] और उसने अपने उपनाम (विरुद, ख़िताब)

---

(१) ए. इं; जि० १०, पृ० २० (श्लोक १०)।

(२) वि० सं० १०२९ (ई० स० ९७२) तक तो मुंज का पिता सीयक (श्रीहर्ष) मालवे का राजा था और उसी वर्ष उसने दक्षिण में राठोड़ों की राजधानी मान्यखेट (मालखेड़) को लूटा था (मेरा सोलंकियों का प्राचीन इतिहास; पृ० ६९)। तदुपरान्त उसका पुत्र मुंज राजा हुआ, जिसका ताम्रपत्रादि से, वि० सं० १०३१=ई० स० ९७४ (इं. एँ; जि० ६, पृ० ५१) से वि० सं० १०५० (ई० स० ९९३) तक (मेरा सोलंकियों का प्राचीन इतिहास; पृ० ७७ और टिप्पण) जीवित रहना निश्चित है। वि० सं० १०२८ (ई० स० ९७१) में मेवाड़ का राजा नरवाहन जीवित था, जिसके पीछे उसके पुत्र शालिवाहन ने थोड़े ही समय तक राज्य किया और वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) के वैशाख में शक्तिकुमार राजा था, अतएव वह मुंज का समकालीन था।

(३) आबू पर देलवाड़ा गांव के विमलशाह के मंदिर में लगे हुए वि० सं० १३७८ (ई० स० १३२१-२२) के शिलालेख में लिखा है कि, चंद्रावती का राजा धंधु (धंधुक, धंधुराज, जो आबू का ही स्वामी था) भीमदेव (गुजरात का सोलंकी राजा) के क्रुद्ध होने पर धारा के राजा भोज के पास चला गया।

चंद्रावतीपुरीशः समजनि वीराग्रणीर्धंधुः ॥ ५ ॥
श्रीभीमदेवस्य नृपस्य सेवाममन्यमानः किल धंधुराजः।
नरेशरोषाच्च ततो मनस्वी धाराधिपं भोजनृपं प्रपेदे ॥ ६ ॥

(मूललेख से)

जिनप्रभसूरि अपने 'तीर्थकल्प' में लिखता है—'जब गुर्जरेश्वर (भीमदेव) धंधुक पर क्रुद्ध हुआ तब उस (धंधुक) को चित्रकूट से वापस लाकर उसकी भक्ति से भीमदेव को प्रसन्न करानेवाले (विमलशाह) ने, वि० सं० १०८८ (ई० स० १०३१) में बड़े व्यय से विमलवसती नामक उत्तम मंदिर बनवाया'—

'त्रिभुवननारायण' की स्मृति में वहां पर 'त्रिभुवननारायण' नामक शिव मंदिर भी बनवाया था[1], जिसको इस समय मोकलजी का (समिद्धेश्वर का) मंदिर कहते हैं। भोज के पिछे चित्तोड़ का दुर्ग मालवे के परमारों के अधीन कब तक रहा, इसका

राजानकश्रीधांधूके क्रुद्धं श्रीगुर्जरेश्वरं ।
प्रसाद्य भक्त्या तं चित्रकूटादानीय तद्गिरा ॥ ३६ ॥
वैक्रमे वसुवस्वाशा १०८८ मितेऽब्दे भूरिरैव्ययात् ।
सत्प्रासादं स विमलवसत्याह्वं व्यधापयत् ॥

(तीर्थकल्प में अर्बुदकल्प)।

भीमदेव ने वि० सं० १०७८ से ११२० (ई० स० १०२१ से १०६३) तक राज्य किया था। ऊपर के दोनों प्रमाणों को मिलाने से पाया जाता है कि वि० सं० १०७८ और १०८८ (ई० स० १०२१–१०३१) के बीच भोज चित्तोड़ में रहता था।

(१) चीरवा (एकलिंगजी से अनुमान ३ मील दक्षिण में) से मिले हुए रावल समरसिंह के समय के वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) कार्तिक शुक्ला १ के शिलालेख से पाया जाता है कि टांटर (टांटेड़) जाति के रत्न का छोटा भाई मदन, राजा समरसिंह की कृपा से चित्तोड़ के किले का तलारत (कोटवाल, नगर–रक्षक) बना, जो राजा भोज के बनवाये हुए 'त्रिभुवननारायण' नामक मंदिर में शिव की सेवा किया करता था—

रत्नानुजोस्ति रुचिराचारप्रख्यातधीरसुविचारः ।
मदनः प्रसन्नवदनः सततं कृतदुष्टजनकदनः ॥ २७ ॥
श्रीचित्रकूटदुर्गे तलारतां यः पितृक्रमायातां ।
श्रीसमरसिंहराजप्रसादतः प्राप निःपापः ॥ ३० ॥
श्रीभोजराजरचितत्रिभुवननारायणाख्यदेवगृहे ।
यो विरचयति स्म सदा शिवपरिचर्यां स्वशिवलिप्सुः ॥ ३१ ॥

(मूल लेख की छाप से)।

चित्तोड़ के क़िले से मिले हुए रावल समरसिंह के समय के वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०२) माघ सुदि १० के शिलालेख में 'भोजस्वामीदेवजगती' (राजा भोज के बनाये हुए देवमंदिर) में प्रशस्ति लगाये जाने का उल्लेख है (रा. म्यू. रि; ई० स० १६२०–२१, पृ० ४)। गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल के आश्रित पंडित वर्धमान ने अपने 'गणरत्नमहोदधि' में तद्धित प्रत्ययों के उदाहरणों में, भट्टिकाव्य और द्व्याश्रय महाकाव्य की शैली पर निर्मित मालवे के परमार राजाओं के संबंध के किसी काव्य से (नाम नहीं दिया) बहुत से श्लोक उद्धृत किये हैं, उनमें उसने त्रिलोकनारायण और भोज दोनों नामों से एक ही प्रसंग में भोज का परिचय दिया है—

ठीक निश्चय अब तक नहीं हुआ, परंतु गुजरात के चौलुक्य (सोलंकी) राजा सिद्धराज जयसिंह ने १२ वर्ष तक मालवे के परमार राजा नरवर्मा और उसके पुत्र यशोवर्मा से लड़कर मालवे पर अपना अधिकार जमाया, उस समय चित्तोड़ का क़िला भी मालवे के साथ सिद्धराज जयसिंह के अधीन हुआ हो, ऐसा अनुमान होता है। उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल के दो शिलालेख चित्तोड़ से मिले हैं। कुमारपाल के पीछे चित्तोड़ पर फिर मेवाड़ के राजाओं का अधिकार हुआ।

शक्तिकुमार के राजत्वकाल के तीन शिलालेख अब तक मिले हैं, जिनका परिचय नीचे दिया जाता है—

(१) वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) वैशाख शुक्ला १ का आटपुर (आहाड़) से कर्नल टॉड को मिला। यह शिलालेख मेवाड़ के प्राचीन इतिहास के लिये बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि गुहदत्त (गुहिल) से शक्तिकुमार तक की पूरी वंशावली केवल इसी लेख में मिलती है; अब यह लेख आहाड़ में नहीं रहा[1], शायद कर्नल टॉड के साथ इंग्लैण्ड चला गया हो।

(२) आहाड़ के जैन मंदिर की देवकुलिकावाला लेख। यह लेख तोड़ फोड़कर वहां छबने के स्थान में लगाया गया है, जिसके पढ़ने से मालूम होता है कि इसमें राजा अल्लट, नरवाहन और शक्तिकुमार के अक्षपटलाधीशों का वर्णन है। अनुमान होता है कि उक्त पदाधिकारियों के बनवाये हुए किसी मंदिर का यह लेख हो। इसमें संवत्वाला अंश जाता रहा है, यह लेख अब तक कहीं नहीं छपा।

(३) यह लेख आहाड़ के एक जैन मंदिर की सीढ़ी में मामूली पत्थर के स्थान पर लगाया गया था, जहां से उठवाकर मैंने उसको उदयपुर के विक्टो-

---

प्राणायनि प्राणसमस्त्रिलोक्यास्त्रिलोकनारायणभूमिपालः।
त्वरस्व चैतायणि चाटकायन्यौदुंबरायणययमेति भोजः॥

(गणरत्नमहोदधि; पृ० २७७–७८)।

त्रिभुवननारायण और त्रिलोकनारायण दोनों पर्यायवाची नाम होने से एक दूसरे की जगह प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

(१) कर्नल टॉड के गुरु यति ज्ञानचंद्र के मांडल के उपासरे के संग्रह में मुझको इस लेख की ज्ञानचंद्र के हाथ की सुंदर अक्षरों में लिखी हुई दो प्रतियां मिली थीं। एक मूल संस्कृत और दूसरी हिन्दी अनुवाद-सहित, इन दोनों को मिलाकर मैंने उसकी नक़ल की, जो श्री० देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने (इं. एं; जि० ३९, पृ० १९१ में) प्रकाशित की है।

रिया हॉल के म्यूज़ियम में सुरक्षित किया है। इसमें संवत् नहीं है (सेसिल बैं-डाल; 'जर्नी इन् नेपाल;' पृ० ८२)।

अंबाप्रसाद

शक्तिकुमार के पीछे उसका पुत्र अंबाप्रसाद मेवाड़ का स्वामी हुआ। चित्तोड़ के क़िले से मिली हुई रावल समरसिंह के समय की वि० सं० १३३१ (ई स० १२७४)की प्रशस्ति में उसका नाम 'आम्रप्रसाद' लिखा है। आहाड़ से मिले हुए उसके समय के टूटे फूटे शिलालेख में उसकी राणी को चौलुक्य(सोलंकी) वंश[1] के किसी राजा की पुत्री बतलाया है, परन्तु लेख के दाहिनी ओर का लगभग आधा भाग नष्ट हो जाने से उस राजा का नाम जाता रहा है। प्रसिद्ध काश्मीरी पंडित जयानक-रचित 'पृथ्वीराजविजयमहाकाव्य' से जान पड़ता है, कि सांभर के चौहान राजा वाक्पतिराज(दूसरे) ने आघाट (आहाड़) के राजा अंबाप्रसाद का मुख अपनी छुरिका (छोटी तलवार) से चीरकर उसको ससैन्य यमराज के पास पहुंचाया[2] (युद्ध में मारा)।

महाराणा कुंभा के समय की वि० सं० १५१७ की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में

---

(१) स्तस्माद्राजा व(ब)भूव शक्तिकुमारः।........
प्रालेयक्ष्माधरेन्द्रादिव गगननदीशुभ्रवारिप्रवाह-
स्तस्मादंवा(बा)प्रसाद.......... ।
चौलुक्यवंश......देवी तस्य जाता तनूजा [॥]
साक्षाद्राणी पद्मयोनेरिवास्मात्
क्षीरांभोधेः श्रीरिवांभोजहस्ता ।......
प्रालेयाद्रेः पार्व्वतीवावभाति ॥
स श्री......

(आहाड़ से मिला हुआ लेख)।

यह लेख उदयपुर के महलों की पायगा (अस्तबल) के ऊपर के एक मकान में रक्खा हुआ है, जहां से मैंने इसकी छापें (प्रतिलिपि) तैयार कीं।

(२) तस्माद्वाक्पतिराजेन सम्भूतमवनीभुजा ।
कलिः कृतीकृतो येन भू[मिश्चत्रिदि]वीकृता ॥ ५८ ॥

अंबाप्रसाद के अन्य तीन भाइयों-नृवर्मा (नरवर्मा), अनन्तवर्मा और यशोवर्मा[1]-के नाम मिलते हैं, जिनमें से नृवर्मा (नरवर्मा) शुचिवर्मा के पिछे राजा हुआ हो, ऐसा अनुमान होता है।

भाटों की ख्यातों में दी हुई मेवाड़ के राजाओं की वंशावली और उनके संवत् अधिकांश में विश्वासयोग्य न होने के कारण राजा गुहिल से शक्तिकुमार तक की वंशावली एवं जिन जिन राजाओं के निश्चित संवत् शिलालेखों से ज्ञात हो सके, वे ऊपर (पृ० ३६८-६९ में) दिये गये हैं। राजा अंबाप्रसाद से रावल रत्नसिंह तक की मेवाड़ के राजाओं की जो वंशावली भाटों की ख्यातों में दी है (देखो ऊपर पृ०३६६ टिप्पण १) उसमें भी कुछ ही नाम ठीक हैं, कुछ कृत्रिम धरे हैं तथा कुछ छोड़ दिये हैं और संवत् तो सब के सब अशुद्ध हैं; अतएव भिन्न भिन्न शिलालेखों में मिलनेवाली राजा अंबाप्रसाद से रावल रत्नसिंह तक की वंशावली एवं शिलालेखादि से जिन जिन राजाओं के निश्चित संवत् ज्ञात हो सके वे आगे दिये जाते हैं—

अम्बापूसादमाघाटपतिं यस्सेनयान्वितम् ।
व्यसृजद्यशसः पश्चात्पार्श्वं दक्षिणदिक्पतेः ॥ ५९ ॥
भिन्नमंबापूसादस्य येन च्छुरिकया मुखम् ।
प्रतापजीविकासृग्भिस्सममेव व्यमुच्यत ॥ ६० ॥

(पृथ्वीराजविजय; सर्ग ५)।

(१) नृवर्म्मानंतवर्म्मा च यशोवर्मा महीपतिः ।
त्रयोप्यंबाप्रसादस्य जज्ञिरे भ्रातरोस्य च ॥ १४२ ॥

(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति—अप्रकाशित)।

संख्या	घेराघाट का लेख वि० सं० १२१२	चीरवे का लेख वि० सं० १३३०	चित्तोड़ का लेख वि० सं० १३३१	आबू का लेख वि० सं० १३४२	राणपुर का लेख वि० सं० १४९६	कुंभलगढ़ का लेख वि० सं० १५१७	शिलालेखादि से निश्चित ज्ञात संवत्
१			आम्रप्रसाद	...	...	अंबाप्रसाद	
२			शुचिवर्मा	शुचिवर्मा	शुचिवर्मा	...	
३			नरवर्मा	नरवर्मा	...	नृवर्मा	
४			...आगे की शिला (दूसरी) नष्ट हो गई है	कीर्तिवर्मा	कीर्तिवर्मा	यशोवर्मा	
५				...	योगराज	योगराज	
६				वैरट	वैरट	वैरट	
७	हंसपाल			...	वंशपाल	हंसपाल	
८	वैरिसिंह			वैरिसिंह	वैरिसिंह	वैरिसिंह	
९	विजयसिंह			विजयसिंह	वीरसिंह	वैरीसिंह	वि० सं० ११६४, ११७३
१०				अरिसिंह	अरिसिंह	अरिसिंह	
११				चोड	चोडसिंह	चोड	

संख्या	भेराघाट का लेख वि० सं० १२१२	चीरवे का लेख वि० सं० १३३०	चित्तोड़ का लेख वि० सं० १३३१	आबू का लेख वि० सं० १३४२	राणपुर का लेख वि० सं० १४९६	कुंभलगढ़ का लेख वि० सं० १५१७	शिलालेखादि से निश्चित ज्ञात संवत्
१२		बप्प (बापा) के वंश में		विक्रमसिंह	विक्रमसिंह	विक्रमकेसरी	
१३				...	रणसिंह	रणसिंह	
१४				क्षेमसिंह	खेमसिंह	क्षेमसिंह	
१५				सामन्तसिंह	सामन्तसिंह	सामंतसिंह	वि० सं० १२२८, [१२३६]
१६				कुमारसिंह	कुमारसिंह	कुमारसिंह	
१७		मथनसिंह		मथनसिंह	मथनसिंह	महणसिंह	
१८		पद्मसिंह		पद्मसिंह	पद्मसिंह	पद्मसिंह	
१९		जैत्रसिंह		जैत्रसिंह	जैत्रसिंह	जयसिंह	वि० सं० १२७०, १२७९, १२८४, १३०९
२०		तेजसिंह		तेजसिंह	तेजस्वीसिंह	तेजसिंह	वि० सं० १३१७, १३२२, १३२४
२१		समरसिंह		समरसिंह	समरसिंह	समरसिंह	वि० सं० १३३०, १३३१, १३३५, १३४२, १३४४, १३५६, १३५८
२२						रत्नसिंह	वि० सं० १३६०

शुचिवर्मा

अंबाप्रसाद के पीछे शुचिवर्मा राजा हुआ। रावल समरसिंह के वि० सं० १३४२ (ई० स० १२८५) के लेख में तथा राणा कुंभकर्ण (कुंभा) के समय के वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) के—सादड़ी (जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ ज़िले में) के निकट प्रसिद्ध राणपुर के जैन मंदिर के—शिलालेख में अंबाप्रसाद का नाम छोड़कर शक्तिकुमार के पीछे शुचिवर्मा नाम दिया है, और आहाड़ के हस्तमाता के मंदिर की सीढ़ी में लगे हुए शुचिवर्मा (या उसके पुत्र) के समय के खंडित लेख[1] की पहली पंक्ति में शुचिवर्मा को शक्तिकुमार का पुत्र, समुद्र के समान मर्यादा का पालन करनेवाला, कर्ण के सदृश दानी और शिव के तुल्य शत्रु को नष्ट करनेवाला कहा है[2], जिससे निश्चित है कि शुचिवर्मा अंबाप्रसाद का छोटा भाई था। शिलालेखादि में ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि जब बड़े भाई के पीछे छोटा भाई राजा होता है, तो कभी कभी पिता के पीछे छोटे का ही नाम लिखकर बड़े का नाम छोड़ देते हैं।

---

(१) हस्तमाता का मंदिर बना, तब उस सीढ़ी के लिये इस लेख का जितना अंश आवश्यक था उतना ही रखकर उससे सीढ़ी बना ली गई। मैंने उसको वहां से निकलवाकर उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित किया है। इस लेख में आगे चलकर किसी मंदिर बनानेवाले या अन्य पुरुष के वंश का वर्णन है, जिसमें अपने पिता के नाम से श्रीराहिलेश्वर का मंदिर बनाये जाने तथा चौलुक्य (सोलंकी) कुल के सोडुक की पुत्री का किसी की स्त्री होने का वर्णन है, परन्तु लेख अपूर्ण होने से इनका संबंध स्थिर नहीं हो सकता ('भावनगर-प्राचीन-शोधसंग्रह;' पृ० २२–२४)।

(२) मुररिपोरिव सम्व(शम्ब)रसूदनः
पुररिपोरिव व(ब)र्हिणवाहनः।
जलनिधेरिव शीतरुचिः क्रमा—
दजनि शक्तिकुमारनृपस्ततः ॥
अब्धिरिव स्थितिलंघनभीरुः
कर्ण इवार्थिवितीर्णहिरण्यः।
शंभुरिवारिपुसंकृतदाघः (हः)
श्रीशुचिवर्म्मनृ(पो)······(वही; पृ० २३)।

नरवर्मा, कीर्तिवर्मा, योगराज और वैरट

शुचिवर्मा के पीछे नरवर्मा, कीर्तिवर्मा[1], योगराज और वैरट क्रमशः राजगद्दी पर बैठे, जिनका कुछ भी वृत्तांत नहीं मिलता। कुंभलगढ़ के शिलालेख से जान पड़ता है कि योगराज के जीतेजी जिस शाखा का वह था, उसकी समाप्ति हो चुकी थी, जिससे उसके पीछे अल्लट की संतति में से वैरट उसके राज्य का स्वामी हुआ[2]।

हंसपाल

वैरट के पीछे हंसपाल राज्य का स्वामी हुआ। राणपुर के मंदिर के शिलालेख में उसका नाम वंशपाल दिया है, परन्तु भेराघाट, करणबेल और कुंभलगढ़ के लेखों में हंसपाल नाम है। भेराघाट (जबलपुर ज़िले में नर्मदा पर) से मिले हुए कलचुरि संवत् ९०७ (वि० सं० १२१२=ई० स० ११५५) के शिलालेख में प्रसंगवशात्[3] मेवाड़ के राजा हंसपाल, वैरिसिंह और विजयसिंह का वर्णन मिलता है। उक्त लेख में लिखा है कि गोभिलपुत्र (गोहिलोत) वंश में हंसपाल राजा हुआ, जिसने निज शौर्य से शत्रुओं के समुदाय को अपने आगे झुकाया[4]। हंसपाल के पीछे उसका पुत्र वैरिसिंह मेवाड़ के राज्य-सिंहासन पर बैठा।

---

(१) कीर्तिवर्मा, नृवर्मा (नरवर्मा) का भाई होना चाहिये, क्योंकि कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में नृवर्मा (नरवर्मा) के एक छोटे भाई का नाम यशोवर्मा मिलता है। 'यश' और 'कीर्ति' दोनों पर्यायवाची शब्द होने से यशोवर्मा के स्थान पर संस्कृत लेखों में कीर्तिवर्मा लिखा जाना संभव है।

(२) ततश्च योगराजोभून्मेदपाटे महीपतिः ।
अपि राज्ये स्थिते तस्मिन् तच्छा–[नो दिवं] गताः ॥ १४३ ॥
पश्चादल्लटसंताने वैरटोभून्नरेश्वरः ॥ ······ ॥ १४४ ॥
(कुंभलगढ़ का शिलालेख—अप्रकाशित)।

(३) यह लेख चेदि के कलचुरि (हैहय) वंशी राजा गयकर्णदेव की विधवा राणी अल्हणदेवी के बनवाये हुए शिवमंदिर का है। इसमें उसने अपने पिता, मेवाड़ के राजा वैरिसिंह, के वंश का भी परिचय दिया है। ऐसा ही करणबेल के लेख में भी है।

(४) अस्ति प्रसिद्धमिह गोभिलपुत्रगोत्र–
न्तत्राजनिष्ट नृपतिः किल हंसपालः ।

वैरिसिंह

भेराघाट के शिलालेख से पाया जाता है कि उस (वैरिसिंह) के चरणों में अनेक सामंत सिर झुकाते थे, उसने अपने शत्रुओं को पहाड़ों की गुफाओं में भगाया और उनके नगर छीन लिये[1]। राणा कुंभकर्ण के वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) के कुंभलगढ़ के लेख में लिखा है कि, राजाओं के अग्रणी वैरिसिंह ने आघाट (आहाड़) नगर का नया शहरपनाह (कोट) बनवाया, जो चारों दिशाओं में चार गोपुरों (दरवाज़ों) से भूषित था; उसके २२ गुणवान् पुत्र हुए[2]।

विजयसिंह

वैरिसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र विजयसिंह[3] हुआ। उसकी राणी श्यामलदेवी मालवे के परमार राजा उदयादित्य की पुत्री थी। उससे अल्हणदेवी नामक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका विवाह चेदि देश के कलचुरि (हैहय) वंशी राजा गयकर्ण-

---

शौर्यावसज्जितनिरर्गलसैन्यसंघ—
नम्रीकृताखिलमिलद्रिपुचक्रवालः [॥१७॥]
(ए. इं; जि० २, पृ० ११-१२)।

(१) तस्याभवत्तनुभवः प्रणमत्समस्त—
सामन्तशेखरशिरोमणिरञ्जितांह्रिः।
श्रीवैरिसिंहवसुधाधिपतिर्व्विशुद्ध—
बुद्धेर्न्निधिर्न्न परमार्थिजनस्य चोच्चैः॥
(वही; पृ० १२, श्लोक १८-१९)।

(२) ततः श्रीहंसपालश्च वैरिसिंहो नृपाग्रणी॥१४४॥
स्थापितोभिनवो येन श्रीमदाघाटपत्तने।
प्राकारश्च चतुर्दिक्षु चतुर्गोपुरभूषितः॥१४५[॥]
द्वाविंशतिः सुतास्तस्य बभूवुः सुगुणालयाः।
(कुंभलगढ़ का लेख-अप्रकाशित)।

(३) राणपुर के लेख में उसका नाम वीरसिंह और कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में वैरसिंह मिलता है, परन्तु रावल समरसिंह की आबू की प्रशस्ति तथा भेराघाट और करणबेल के लेखों में विजयसिंह है, वही शुद्ध है।

देव से हुआ। अल्हणदेवी के नरसिंहदेव और जयसिंहदेव नामक दो पुत्र थे[1], जो अपने पिता के पीछे क्रमशः चेदि के राजा हुए[2]। विजयसिंह के समय का एक शिलालेख उदयपुर से अनुमान चार मील उत्तर पालड़ी गांव से कुछ दूर कार्तिकस्वामी के मंदिर में, दो छबनों के स्थान पर, बाहर (संभवतः आहाड़) से लाकर लगाया गया है, जो वि० सं० ११७३ (ई० स० १११६) ज्येष्ठ वदि ३ का है[3]। विजयसिंह का दो पत्रों पर खुदा हुआ एक संस्कृत ताम्रपत्र कदमाल गांव से

---

(१) तस्मादजायत समस्तजनाभिवन्द्य–
सौन्दर्यशौर्यभरभङ्गुरिताहितश्रीः ।
पृथ्वीपतिर्विजयसिंह इति प्रवर्द्ध–
मानः सदा जगति यस्य यशःसुधांशुः [॥२०॥]
तस्याभवन्मालवमण्डलाधि–
नाथोदयादित्यसुता सुरूपा ।
शृङ्गारिणी श्यामलदेव्युदार–
चरित्रचिन्तामणिरर्चितश्रीः [॥२१॥]
मेनायामिव शंकरप्रणयिनी क्षोणीभृतान्नायका–
द्वीरिण्यामिव शुभ्रभानुवनिता दक्षात्प्रजानां सृजः ।
तस्मादल्हणदेव्यजायत जगद्रक्षाक्षमाद्भूपते–
रेतस्यान्निजदीर्घवंशविशदप्रेंखत्पताकाकृतिः [॥२२॥]
विवाहविधिमाधाय गयकर्णनरेश्वरः ।
चक्रे प्रीतिम्परामस्यां शिवायामिव शंकरः [॥२३॥]
शृङ्गारशाला कलशी कलानां लावण्यमाला गुणपण्यभूमिः ।
असूत पुत्रङ्गयकर्णभूपादसौ नरेशन्नरसिंहदेवम् [॥२४॥]
..........अस्यानुजो विजयतां जयसिंहदेवः
सौमित्रिवत्प्रथमजेद्भुतरूपसेवः ।.... [॥२६॥]
(ए. इं; जि० २, पृ० १२)।

(२) हिन्दी टॉड-राजस्थान; प्रथम खंड पर मेरे टिप्पण, पृ० ४३७।

(३) रा० म्यू० अजमेर की ई० स० १९१५–१६ की रिपोर्ट; पृ० ३, लेख सं० १।

मुझे मिला, जिसमें गुहदत्त से विजयसिंह तक की वंशावली दी है[1], परन्तु खोदनेवाले ने उसे ऐसा बुरी तरह खोदा है कि उसका ठीक ठीक पढ़ना दुष्कर है। उसमें संवत् भी दिया है, परन्तु अंकों के ऊपर भी सिर की रेखाएं लगा दी हैं, जिससे संवत् के अंक भी संदेह-रहित नहीं कहे जा सकते। उसका संवत् ११६४ (ई० स० ११०७) हो, यह मेरा अनुमान है।

अरिसिंह, चोड़सिंह और विक्रमसिंह

विजयसिंह के पीछे क्रमशः अरिसिंह, चोड़सिंह और विक्रमसिंह[2] राजा हुए, जिनका कुछ भी इतिहास नहीं मिलता।

रणसिंह (कर्णसिंह, कर्ण)

विक्रमसिंह के पीछे उसका पुत्र रणसिंह मेवाड़ का राजा हुआ[3], जिसको कर्णसिंह, करणसिंह या कर्ण भी कहते थे। आबू के शिलालेख में उसका नाम छोड़ दिया है, परन्तु राणपुर और कुंभलगढ़ के शिलालेखों में उसका नाम रण-सिंह मिलता है। राणा कुंभकर्ण (कुंभा) के समय के बने हुए 'एकलिंगमाहात्म्य' में उसका नाम कर्ण दिया है और साथ में यह भी लिखा है कि उस (कर्ण) से दो

---

(१) उक्त ताम्रपत्र में गुहदत्त से लगाकर अल्लट तक की वंशावली वही है, जो राजा शक्ति-कुमार के वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) के लेख में मिलती है और उसी लेख के श्लोक भी उसमें उद्धृत किये गये हैं। अल्लट तक के नाम मैं शक्तिकुमार के लेख के सहारे से ही निकाल सका, आगे का प्रयत्न पूर्णतया सफल न हुआ।

(२) कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में विक्रमसिंह के स्थान पर विक्रमकेसरी नाम है और उसको चोड़ का बड़ा भाई कहा है,—*चोडस्याथाग्रजो जज्ञे बंधुर्विक्रमकेसरी* (श्लोक १४८),—परन्तु रावल समरसिंह के वि० सं० १३४२ (ई० स० १२८५) के आबू के शिलालेख में उसको चोड़ का पुत्र बतलाया है, जो अधिक विश्वसनीय है।

तस्य सूनुरथ विक्रमसिंहो वैरिविक्रमकथां निरमाथीत् ॥ ३३ ॥

(इं. ऐं; जि० १६, पृ० ३४९)।

(३) *चोडस्याथाग्रजो जज्ञे बंधुर्विक्रमकेसरी ।*

तत्सुतो रणसिंहाख्यो राज्ये रंजितसत्प्रजः ॥ १४८ ॥

(कुंभलगढ़ का शिलालेख)।

शाखाएं- एक 'रावल' नाम की और दूसरी 'राणा' नाम की-फटीं। रावल शाखा में जितसिंह[1] (जैत्रसिंह), तेजसिंह, समरसिंह और रत्नसिंह तथा 'राणा' शाखा में माहप, राहप आदि हुए[2]। रावल शाखावाले मेवाड़ के स्वामी और 'राणा' शाखावाले सीसोदे के जागीरदार रहे और सीसोदे में रहने से सीसोदिये कहलाये। 'रावल' शाखा की समाप्ति अलाउद्दीन ख़िलजी के वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में रावल रत्नसिंह से चित्तोड़ छीनने पर हुई। इससे कुछ वर्ष बाद सीसोदे के राणा हंमीर (हंमीरसिंह) ने चित्तोड़ पर अपना अधिकार जमाकर मेवाड़ में सीसोदिया (राणा) शाखा का राज्य स्थापित किया। हंमीर के चित्तोड़ लेने से पूर्व का राणा शाखा का वृत्तान्त इस प्रकरण के अंत में लिखा जायगा। एकलिंगमाहात्म्य में कर्णसिंह का आहोर के पर्वत पर क़िला बनाना लिखा है[3]।

Chittor occupied by younger branch

---

(१) एकलिंगमाहात्म्य में रावल शाखावालों के नाम जितसिंह (जैत्रसिंह) से ही दिये हैं, जैत्रसिंह से पहले के ५ नाम उसमें छूट गये हैं।

(२) अथ कर्णभूमिभर्तुः शाखाद्वितीय(त)यं विभाति भूलोके।

एका राउलनाम्नी राणानाम्नी परा महती ॥ ५० ॥

अद्यापि यां (यस्यां) जितसिंहस्तेजःसिंहस्तथा समरसिंहः।

श्रीचित्रकूटदुर्गेभूवन् जितशत्रवो भूपाः ॥ ५१ ॥

(एकलिंगमाहात्म्य; राजवर्णन-अध्याय)।

आगे रत्नसिंह तक का विस्तार से वर्णन है, फिर माहप, राहप आदि का वर्णन है।

अपरस्यां शाखायां माहपराह[प]प्रमुखा महीपालाः।

यद्वंशे नरपतयो गजपतयः छत्रपतयोपि ॥ ७० ॥

श्रीकर्णे नृपतित्वं मुक्त्वा देवे इला(?)मथ प्राप्ते।

राणत्वं प्राप्तः सन् पृथ्वीपतिराहपो भूपः ॥ ७१ ॥ (वही)।

(३) पालयति स्म धरित्रीं तदंगजः कर्णभूमींद्रः ॥ ४१ ॥

यः शौर्येण च हाटकदानेन च मूर्तिनृपकर्णः।

दुर्गं कारितवान् श्रीआहोरे पर्वते रम्ये ॥ ४२ ॥ (वही)।

आगे उक्त पुस्तक में कर्ण (कर्णसिंह) के प्रताप का वर्णन किया है, जिसमें कवि को जितने देशों के नाम स्मरण थे उनसबके राजाओं का उसकी सेवा करना लिख मारा है, जो

क्षेमसिंह

रणसिंह (कर्णसिंह) का उत्तराधिकारी उसका पुत्र क्षेमसिंह[1] हुआ, जिसका कुछ भी इतिहास नहीं मिलता। क्षेमसिंह के दो पुत्रों–सामंतसिंह और कुमारसिंह– के नाम मिलते हैं।

सामंतसिंह

क्षेमसिंह के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र सामंतसिंह राजा हुआ।

गुजरात के राजा से सामंतसिंह का युद्ध

मेवाड़ या गुजरात के राजाओं के शिलालेख अथवा इतिहास की पुस्तकों में तो इस युद्ध का कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु आबू पर देलवाड़ा गांव के तेजपाल (वस्तुपाल के भाई) के बनवाये हुए लूणवसही नामक नेमिनाथ के जैन मंदिर के शिलालेख के रचयिता गुर्जरेश्वर-पुरोहित सोमेश्वर ने लिखा है–'आबू के परमार राजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रह्लादन की तीक्ष्ण तलवार ने गुजरात के राजा की उस समय रक्षा की जब कि उसका बल सामंतसिंह ने रणखेत में तोड़ डाला था[2]'। धारावर्ष गुजरात के

अतिशयोक्ति ही है; इसी से हमने उसे छोड़ दिया है। उसमें कर्ण के पिता का नाम श्रीपुंज दिया है, जो शायद विक्रमसिंह का दूसरा नाम हो।

(१) कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में क्षेमसिंह को महणसिंह का छोटा भाई कहा है।

श्रीमहणसिंहकनिष्ठभ्रातृश्रीक्षेमसिंहस्तत्सूनुः ।
सामंतसिंहनामा भूपतिर्भूतले जातः ॥१४६ ॥

(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति)।

यह महणसिंह उक्त प्रशस्ति के कथन से तो क्षेमसिंह का बड़ा भाई प्रतीत होता है। यदि ऐसा हो तो यही मानना पड़ेगा कि महणसिंह का देहांत अपने पिता के सामने हुआ हो, जिससे उसका छोटा भाई क्षेमसिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ हो।

(२) *शत्रुश्रेणीगलविदलनोन्निद्रनिस्त्रिं(स्त्रिं)शधारो*
धारावर्षः समजनि सुतस्तस्य विश्वप्रशस्यः ।······॥३६[॥]···
सामंतसिंहसमितिक्षितिविक्षतौजः–
श्रीगूर्ज्जरक्षितिपरक्षणदक्षिणासिः ।

सोलंकियों का सामंत था, अतएव उसने अपने छोटे भाई प्रह्लादन को सामंतसिंह के साथ की लड़ाई में गुजरात के राजा की सहायतार्थ भेजा होगा। उस लेख से यह नहीं पाया जाता कि सामंतसिंह ने गुजरात के किस राजा के बल को तोड़ा। अब तक सामंतसिंह के दो शिलालेख मिले हैं, जिनमें से एक डूंगरपुर की सीमा से मिले हुए मेवाड़ के छप्पन ज़िले के जगत नामक गांव में देवी के मंदिर के स्तंभ पर खुदा हुआ वि० सं० १२२८ (ई० स० ११७२) फाल्गुन सुदि ७ का[1], और दूसरा डूंगरपुर राज्य में सोलज गांव से लगभग डेढ़ मील दूर बोरेश्वर महादेव के मंदिर की दीवार में लगा हुआ वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७६) का[2] है। गुजरात की गद्दी पर वि० सं० ११६६ से १२३० (ई० स० ११४३ से ११७४) तक सोलंकी कुमारपाल था। उसके पीछे वि० सं० १२३० से १२३३ (ई० स० ११७४ से ११७७) तक उसका भतीजा अजयपाल राजा रहा; फिर वि० सं० १२३३ से १२३५ (ई० स० ११७७ से ११७६) तक उस (अजयपाल) के पुत्र मूलराज (दूसरे) ने, जिसको बाल मूलराज भी लिखा है, शासन किया और उसके पीछे वि० सं० १२३५ से १२६८ (ई० स० ११७६ से १२४२) तक उसका छोटा भाई भीमदेव दूसरा (भोलाभीम) राज्य करता रहा[3]। ये चारों सामंतसिंह के समकालीन थे। इनमें से कुमारपाल प्रतापी-राजा था और जैन धर्म का पोषक होने से कई समकालीन या पिछले जैन विद्वानों ने उसके चरित लिखे हैं, जिनमें उसके समय की बहुधा सब घटनाओं का विवेचन किया गया है, परन्तु सामंतसिंह के साथ उसके युद्ध करने का उनमें कहीं उल्लेख नहीं मिलता। मूलराज दूसरा (बाल मूलराज) और भीमदेव दूसरा (भोलाभीम), दोनों जब राजगद्दी पर बैठे, उस समय बालक होने से वे युद्ध में जाने योग्य न थे, इसलिये सामंतसिंह का युद्ध कुमारपाल के उत्तराधिकारी अजयपाल के साथ होना चाहिये। सोमेश्वर अपने 'सुरथोत्सव' काव्य के

प्रह्लादनस्तदनुजो दनुजोत्तमारि–
चारित्रमत्र पुनरुज्ज्वलयांचकार ॥ ३८ ॥

आबू की वि० सं० १२८७ की प्रशस्ति; ए. इं; जि० ८, पृ० २११।

(१) रा० म्यू० अजमेर की ई० स० १९१४-१५ की रिपोर्ट; पृ० ३, लेख संख्या ६।

(२) वही; पृ० ३, लेख संख्या ७।

(३) हिन्दी टॉड; रा. पर मेरे टिप्पण पृ० ४३४-६६।

१५वें सर्ग में अपने पूर्वजों का परिचय देता है, और उनमें से जिस जिस ने अपने यजमान---गुजरात के राजाओं--की जो जो सेवा बजाई, उसका भी उल्लेख करता है। उसने अपने पूर्वज कुमार के प्रसंग में लिखा है---'उसने कटुकेश्वर नामक शिव (अर्धनारीश्वर) की आराधना कर रणखेत में लगे हुए अजयपाल राजा के अनेक घावों की दारुण पीड़ा को शांत किया[1]।' इससे निश्चित है कि सामंतसिंह के साथ की लड़ाई में गुजरात का राजा अजयपाल बुरी तरह से घायल हुआ था। इस संग्राम का वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। यह लड़ाई किस लिये हुई, यह बात अब तक अंधकार में ही है; परन्तु संभव है कि कुमारपाल जैसे प्रबल राजा के मरने पर, सामंतसिंह ने अपने पूर्वजों का बरसों से दूसरों के अधिकार में गया हुआ चित्तोड़ का क़िला उस(कुमारपाल)के उद्धत एवं मंदबुद्धि उत्तराधिकारी अजयपाल से छीनने के लिये यह लड़ाई ठानी हो, और उसमें उसको परास्त कर सफलता प्राप्त की हो। यह घटना वि० सं० १२३१ (ई० स० ११७४) के आसपास होनी चाहिये।

सामंतसिंह से मेवाड़ का राज्य छूटना

रावल समरसिंह के वि० सं० १३४२ (ई० स० १२८५) के लेख में सामंतसिंह के विषय में लिखा है---'उस(क्षेमसिंह)से कामदेव से भी अधिक सुंदर शरीरवाला राजा सामंतसिंह उत्पन्न हुआ, जिसने अपने सामंतों का सर्वस्व छीन लिया (अर्थात् अपने सरदारों की जागीरें छीनकर उनको अप्रसन्न किया)। उसके पीछे कुमारसिंह ने इस पृथ्वी को---

(१) यः शौचसंयमपटुः कटुकेश्वराख्य-
माराध्य भूधरसुताघटितार्धदेहम् ।
तां दारुणामपि रणाङ्गणजातघात-
व्रातव्यथामजयपालनृपादपास्थत् ॥

(काव्यमाला में छपा हुआ 'सुरथोत्सव' काव्य, सर्ग १५। ३२)।

सामंतसिंहयुद्धे हि श्रीअजयपालदेवः प्रहारपीडया मृत्युकोटिमायातः कुमारनाम्ना पुरोहितेन श्रीकटुकेश्वरमाराध्य पुनः स जीवितः।

(वही; टिप्पण ९)।

परमार प्रह्लादन-रचित 'पार्थपराक्रमव्यायोग' की चिमनलाल डी० दलाल-लिखित अंग्रेज़ी भूमिका, पृ० ४ ('गायकवाड़ ओरिएण्टल् सीरीज़' में प्रकाशित)।

जिसने पहले कभी गुहिलवंश का वियोग नहीं सहा था, [परंतु] जो [उस समय] शत्रु के हाथ में चली गई थी और जिसकी शोभा खुंमाण की संतति के वियोग से फीकी पड़ गई थी—फिर छीनकर (प्राप्त कर) राजन्वती (उत्तम राजा से युक्त) बनाया[1]। इससे यही ज्ञात होता है कि कुमारसिंह के पहले किसी शत्रु राजा ने गुहिलवंशियों से मेवाड़ का राज्य छीन लिया था, परन्तु कुमारसिंह ने उस शत्रु से अपना पैतृक राज्य पीछा लिया। वह शत्रु कौन था, इस विषय में आबू का लेख कुछ नहीं बतलाता; परन्तु राणा कुंभकर्ण (कुंभा) के समय का वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) का कुंभलगढ़ का लेख इस त्रुटि की पूर्ति कर देता है, क्योंकि उसमें स्पष्ट लिखा है कि 'सामंतसिंह नामक राजा भूतल पर हुआ, उसका भाई कुमारसिंह था, जिसने अपना (पैतृक) राज्य छीननेवाले कीतू नामक शत्रु राजा को देश से निकाला, गुजरात के राजा को प्रसन्न कर आघाटपुर (आहाड़) प्राप्त किया, और स्वयं राजा बन गया[2]।' इससे स्पष्ट है कि शत्रु राजा कीतू ने सामंतसिंह से मेवाड़ का राज्य छीना था। गुजरात के राजा अजयपाल से लड़कर सामंतसिंह अवश्य निर्बल हो गया होगा और अपने सरदारों के साथ अच्छा बर्ताव न करने से—जैसा आबू के लेख से जान पड़ता है—

---

(१) सामंतसिंहनामा कामाधिकसर्वसुन्दरशरीरः।
भूपालोजनि तस्मादपहृतसामंतसर्वस्वः॥ ३६ ॥
षों(खों)माणसंततिवियोगविलक्षलक्ष्मी-
मेनामदृष्टविरहां गुहिलान्वयस्य।
राजन्वतीं वसुमतीमकरोत्कुमार-
सिंहस्ततो रिपुगतामपहृत्य भूयः ३७ ॥

आबू का शिलालेख, इं. ऐं; जि० १६, पृ० ३४६।

(२) सामंतसिंहनामा भूपतिर्भूतले जातः ॥१४९॥[॥]
भ्राता कुमारसिंहोभूत्स्वराज्यग्राहिणं परं।
देशान्निष्कासयामास कीतूसंज्ञं नृपं तु यः ॥१५०।[॥]
स्वीकृतमाघाटपुरं गूर्जरनृपतिं प्रसाद्य⋯⋯।

(कुंभलगढ़ का लेख—अप्रकाशित)।

उनकी सहायता खो बैठा हो, ऐसी स्थिति में कीतू के लिये उसका राज्य छीन-ना सुगम हो गया हो।

यह कीतू मेवाड़ का पड़ोसी और नाडौल (जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ ज़िले में) के चौहान राजा आल्हणदेव का तीसरा पुत्र था। साहसी, वीर एवं उच्चाभिलाषी होने के कारण अपने ही बाहुबल से जालोर (कांचनगिरि=सोनल-गढ़) का राज्य परमारों[1] से छीनकर वह चौहानों की सोनगरा शाखा का मूलपुरुष और स्वतंत्र राजा हुआ। सिवाणे का क़िला (जोधपुर राज्य में) भी उसने परमारों से छीनकर अपने राज्य में मिला लिया था[2]। चौहानों के शिला-लेखों और ताम्रपत्रों में कीतू का नाम कीर्तिपाल[3] मिलता है, परन्तु राजपूताने में वह कीतू नाम से प्रसिद्ध है, जैसा कि मुहणोत नैणसी की ख्यात तथा राजपूताने की अन्य ख्यातों में लिखा मिलता है। उस(कीर्तिपाल)का अब तक केवल एक ही लेख मिला है जो वि० सं० १२१८ (ई० स० ११६१) का दानपत्र है[4]। उससे विदित होता है कि उस समय उसका पिता जीवित था और उस(कीर्तिपाल)-को अपने पिता की ओर से १२ गांवों की जागीर मिली थी, जिसका मुख्य गांव नड्डूलाई (नारलाई, जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ ज़िले में, मेवाड़ की सीमा के निकट) था। उसी (कीतू) ने जालोर का राज्य अधीन करने तथा स्वतंत्र राजा बनने के पीछे मेवाड़ का राज्य छीना हो, ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि उपर्युक्त कुंभलगढ़ के लेख में उसको 'राजा कीतू' लिखा है। जालोर से मिले हुए वि० सं० १२३९ (ई० स० ११८२) के शिलालेख[5] से पाया जाता है कि उस संवत् में कीर्तिपाल (कीतू) का पुत्र समरसिंह वहां का राजा था, अत-एव कीर्तिपाल (कीतू) का उस समय से पूर्व मर जाना निश्चित है। ऐसी दशा में यह कहा जा सकता है कि कीतू ने मेवाड़ का राज्य वि० सं० १२३० और १२३६ (ई० स० ११७४ और ११७९) के बीच[6] किसी वर्ष में छीना होगा।

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ४२।

(२) वही; पत्र ४२।

(३) ए. इं; जि० ९, पृ० ६६।

(४) वही; जि० ९, पृ० ६८–७०।

(५) वही; जि० ११, पृ० ५३–५४।

(६) वि० सं० १२३० (ई० स० ११७३) में अजयपाल ने राज्य पाया और

जब सामंतसिंह से मेवाड़ का राज्य चौहान कीतू (कीर्तिपाल) ने छीन लिया, तब उसने मेवाड़ के पड़ोस के वागड़[1] इलाक़े में जाकर वहां अपना नया राज्य स्थापित किया, और वह तथा उसके वंशज वहीं रहे।

सामतसिंह का वागड़ में नया राज्य स्थापित करना

इस विषय में मुहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में यह लिखा है—"रावल समतसी (सामंतसिंह) चित्तोड़ का राजा था; उसके छोटे भाई ने उसकी बड़ी सेवा की, जिससे प्रसन्न होकर उसने कहा कि मैंने चित्तोड़ का राज्य तुझको दिया। छोटे भाई ने निवेदन किया कि चित्तोड़ का राज्य मुझे कौन देता है, उसके स्वामी तो आप हैं। तब समतसी ने फिर कहा कि, यह मेरा वचन है कि चित्तोड़ का राज्य तुम्हें दिया। इसपर छोटा भाई बोला कि यदि आप चित्तोड़ का राज्य मुझे देते हैं, तो इन राजपूतों (सरदारों) से कहला दो। समतसी ने सरदारों से कहा कि तुम ऐसा कह दो; उन्होंने निवेदन किया कि आप इस बात का फिर अच्छी तरह विचार कर लें। उसने उत्तर दिया कि मैंने प्रसन्नतापूर्वक अपना राज्य अपने छोटे भाई को दे दिया है, इसमें कोई शंका करने की बात नहीं; तब सरदारों ने उसे स्वीकार कर लिया, और उसने राणा पदवी[2] के साथ राज्य अपने छोटे भाई के सुपुर्द कर दिया और आप आहाड़ में जा रहा। कुछ दिनों बाद उसने अपने राजपूतों से कहा कि राज्य मैंने अपने भाई को दे दिया है, इसलिये मेरा यहां रहना उचित नहीं, मुझे अपने लिये दूसरा राज्य प्राप्त करना चाहिये।"

वि० सं० १२२६ (ई० स० ११६६) का बोरेश्वर के मंदिरवाला लेख ख़ास वागड़ का है, जिससे पाया जाता है कि उक्त संवत् से पूर्व ही सामंतसिंह ने वागड़ पर अपना अधिकार कर लिया था।

(१) डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों का सम्मिलित नाम वागड़ है। पहले सारे वागड़ देश पर डूंगरपुर का ही राज्य था, परन्तु वहां का रावल उदयसिंह मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) की सहायतार्थ बादशाह बाबर के साथ खानवा (भरतपुर राज्य में बयाने के निकट) की लड़ाई में मारा गया था; उसके दो पुत्र—पृथ्वीराज और जगमाल—थे, जिन्होंने आपस में लड़कर वागड़ के दो विभाग किये। पश्चिमी भाग पृथ्वीराज के अधिकार में रहा, और पूर्वी जगमाल को मिला। पृथ्वीराज की राजधानी डूंगरपुर रही और जगमाल की बांसवाड़ा हुई।

(२) जब मुहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात लिखी, उस समय राणा शाखा के सीसोदियों

"उस समय वागड़ में बड़ौदे[1] का राजा चौरसीमलक (चोरसीमल, डूंगरपुर की ख्यात में) था, जिसके अधीन ५०० भोमिये (छोटे ज़मींदार) थे; उसके यहां एक डोम रहता था, जिसकी स्त्री को उसने अपनी पासवान (उपपत्नी) बना रक्खा था। वह रात को उस डोम से गवाया करता और कहीं वह भाग न जाय, इसलिये उसपर पहरा नियत कर दिया था। एक दिन अवसर पाकर डोम बड़ौदे से भाग निकला और रावल समतसी के पास आहाड़ में पहुंचकर उसे बड़ौदा लेने के लिये उद्यत किया। समतसी किसी नये राज्य की तलाश में ही था, अतएव उसने तुरंत उसका कथन स्वीकार कर लिया और डोम से वहां का सब हाल जानकर ५०० सवारों सहित आहाड़ से चढ़कर अचानक बड़ौदे जा पहुंचा; वहां पर घोड़ों को छोड़कर उसने अपनी सेना के दो दल बनाये। एक दल को अपने साथ रक्खा और दूसरे को उसने डोम के साथ चौरसी के निवास-स्थान पर भेजा। उन लोगों ने वहां पहुंचकर पहले तो द्वारपालों का वध किया, फिर महल में घुसकर चौरसी को भी मार डाला। इस तरह समतसी ने बड़ौदे पर अधिकार जमाकर क्रमशः सारा वागड़ देश भी अपने हस्तगत कर लिया[2]।"

मुहणोत नैणसी ने यह विवरण उक्त घटना से अनुमान ५०० वर्ष पीछे लिखा, जिससे उसमें कुछ त्रुटि रह जाना स्वाभाविक है, परन्तु उसका मुख्य कथन ठीक है। शिलालेख भी उसके इस कथन की तो पुष्टि करते हैं कि राज्य छूट जाने पर मेवाड़ के राजा समतसी (सामंतसिंह) ने वागड़ की राजधानी

को मेवाड़ पर राज्य करते हुए ३०० से अधिक वर्ष हो चुके थे; ऐसी दशा में वह सामंतसिंह का अपने भाई को 'राणा' पदवी देना लिखे, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सामंतसिंह के छोटे भाई (कुमारसिंह) का ख़िताब राणा नहीं, किन्तु रावल था। राणा ख़िताब तो उस समय करणसिंह (रणसिंह) से फटी हुई मेवाड़ के राजाओं की सीसोदे की छोटी शाखा-वालों का था।

(१) वागड़ (डूंगरपुर) राज्य की पुरानी राजधानी बड़ौदा थी, पीछे से रावल डूंगरसिंह ने डूंगरपुर बसाकर वहां अपनी राजधानी स्थिर की। बड़ौदे में अब तक प्राचीन मंदिर बहुत हैं, परन्तु अब उनकी दशा वैसी नहीं रही जैसी पहले थी।

(२) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र १९। नैणसी ने समतसी (सामंतसिंह) के स्थान में समरसी (समरसिंह) लिखा है, जो अशुद्ध पाठ है। डूंगरपुर की ख्यात में समतसी लिखा है, जो शुद्ध प्रतीत होता है।

बड़ौदे पर अधिकार कर क्रमशः सारा वागड़ देश अपने अधीन कर लिया[1] था, परन्तु वे (शिलालेख) इस बात को स्वीकार नहीं करते कि सामंतसिंह ने मेवाड़ का राज्य खुशी से अपने छोटे भाई (कुमारसिंह) को दिया था; क्योंकि उनसे तो यही पाया जाता है कि, जब सामंतसिंह का राज्य चौहान कीतू (कीर्तिपाल) ने छीन लिया, तब उसके छोटे भाई कुमारसिंह ने यत्न कर कीतू को मेवाड़ से निकाला और वह वहां का राजा हो गया, जैसा कि आबू और कुंभलगढ़ के शिलालेखों से ऊपर बतलाया जा चुका है। सामंतसिंह या उसके वंशज फिर कभी मेवाड़ के स्वामी न हो सके और वे वागड़ के ही राजा रहे,[2]

---

(१) इस कथन की पुष्टि डूंगरपुर राज्य में मिले हुए शिलालेखों से होती है।

(२) रावल सामंतसिंह के मेवाड़ का राज्य खोने, और वागड़ (डूंगरपुर) के इलाक़े पर अपना नया राज्य स्थापित करने से सैकड़ों वर्षों पीछे मेवाड़ की ख्यातें तथा उनपर से इतिहास के ग्रन्थ लिखे गये। ख्यातों के लिखनेवालों को इतना तो ज्ञात था कि बड़े भाई के वंश में वागड़ (डूंगरपुर) के स्वामी हैं, और छोटे भाई के वंश में मेवाड़ (उदयपुर) के, परन्तु उनको यह मालूम न था कि वागड़ का राज्य किसने, कब और कैसी दशा में स्थापित किया; इसलिये उन्होंने इस समस्या को किसी न किसी तरह सुलझाने के लिये मनगढ़ंत कल्पनाएं कीं, जिनका सारांश नीचे दिया जाता है—

(क) 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' में, जिसकी समाप्ति वि० सं० १७३२ (ई० स० १६७५) में हुई, लिखा है कि रावल समरसिंह का पुत्र रावल करण हुआ, जिसका पुत्र रावल माहप डूंगरपुर का राजा हुआ (ना० प्र० प; भा० १ पृ० १६)।

(ख) महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास ने अपने 'वीरविनोद' नामक उदयपुर राज्य के बृहत् इतिहास में लिखा है—'हिजरी सन् ७०३ ता० ३ मुहर्रम (वि० सं० १३६० भाद्रपद शुक्ल ४–ई० स० १३०३ ता० १८ अगस्त) के दिन, ६ महीने ७ दिन तक युद्ध करने के अनन्तर, अलाउद्दीन ख़िलजी ने चित्तोड़ का क़िला फ़तह किया; रावल समरसिंह का पुत्र रावल रत्नसिंह बहादुरी के साथ लड़कर मारा गया। उक्त रावल का बड़ा पुत्र माहप आहड़ (आहाड़) में और छोटा राहप अपने आबाद किए हुए सीसोदा ग्राम में रहता था। माहप चित्तोड़ लेने से निराश होकर डूंगरपुर को चला गया' (भाग १, पृ० २८८)।

(ग) कर्नल टॉड ने लिखा है—'समरसी के कई पुत्र थे, परन्तु करण (करणसिंह, कर्ण) उसका वारिस था। करण सं० १२४६ (ई० स० ११६३) में गद्दी पर बैठा। करण के माहप और राहप नामक दो पुत्र माने जाते हैं, माहप डूंगरपुर बसाकर एक नई शाखा कायम करने को पश्चिम के जंगलों (वागड़) में चला गया (जि० १ पृ० ३०४)।

(घ) मेजर के. डी. अर्स्किन् ने अपने 'डूंगरपुर राज्य के गैज़ेटियर' में दो बातें लिखी हैं। पहली तो यह, कि ई० स० की बारहवीं शताब्दी के अंत में करणसिंह मेवाड़ का रावल था,

जैसा कि उनके कई शिलालेखों से जान पड़ता है। इस प्रकार बड़े भाई (सामंतसिंह) का वंश डूंगरपुर का, और छोटे भाई (कुमारसिंह) का मेवाड़ का स्वामी रहा, जिसको मेवाड़वाले भी स्वीकार करते हैं।

जिसके माहप और राहप नामक दो पुत्र थे। राहप की वीरता से प्रसन्न होकर करणसिंह ने उसे अपना उत्तराधिकारी नियत किया, जिससे अप्रसन्न होकर माहप अपने पिता को छोड़ कुछ समय तक अहाड़ (आहाड़) में जा रहा। वहां से दक्षिण में जाकर अपने ननिहालवालों के यहां वागड़ में रहा, फिर क्रमशः भील सरदारों को हटाकर वह तथा उसके वंशज उस देश के अधिकांश के स्वामी बन गये। दूसरा कथन यह है कि ई० स० १३०३ (वि० स० १३६०) में अलाउद्दीन ख़िलजी के चित्तोड़ के घेरे में मेवाड़ के रावल रत्नसिंह के मारे जाने पर उसके जो वंशज बच रहे, वे वागड़ को भाग गये और वहां उन्होंने पृथक् राज्य स्थापित किया (पृ० १३१–३२)

ये चारों कथन कल्पित हैं और वास्तविक इतिहास के अज्ञान में गढ़ंत किये हुए हैं। 'वीरविनोद' (भाग २, पृ० १००५) और 'डूंगरपुर राज्य के गैज़ेटियर' (टेबल संख्या २१) में डूंगरपुर (वागड़) के राजाओं का वंशक्रम इस तरह दिया है—(१) मेवाड़ का रावल करण, (२) माहप, (३) नर्बद, या नरवर्मन्, (४) भीला या भीलू, (५) केसरीसिंह, (६) सामंतसिंह, (७) सीहड़देव या सेहड़ी, (८) दूदा, देदा या देदू (देवपाल), (९) बरसिंह या वीरसिंह (वीरसिंह) आदि।

यह निर्विवाद है कि मेवाड़ का रावल रत्नसिंह वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में अलाउद्दीन ख़िलजी के साथ लड़ाई में मारा गया, अतएव उसके पुत्र (ऊपर लिखे हुए राजक्रमानुसार) करण (करणसिंह) के राज्य का प्रारंभ भी उसी वर्ष से मानना होगा। यदि प्रत्येक राजा का राजत्वकाल औसत हिसाब से २० वर्ष माना जाय, तो सामंतसिंह का वि० सं० १४६० से १४८० (ई० स० १४०३ से १४२३) तक, सीहड़ (सीहड़देव) का वि० सं० १४८० से १५०० (ई० स० १४२३ से १४४३) तक, दूदा (देवपाल) का वि० सं० १५०० से १५२० (ई० स० १४४३ से १४६३) तक और वीरसिंह का वि० सं० १५२० से १५४० (ई० स० १४६३ से १४८३) तक मानना पड़ेगा, जो सर्वथा असम्भव है; क्योंकि सामंतसिंह के वि० सं० १२२८ और १२३६ (ई० स० ११७१ और ११७९) के दो शिलालेख मिले हैं, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। सीहड़ (सीहड़देव) के दो शिलालेख वि० सं० १२७७ और १२९१ (ई० स० १२२० और १२३४) के (ना० प्र० प; भा० १, पृ० ३०–३१, टिप्पण संख्या ३०) मिल चुके हैं। वीरसिंहदेव का कोई शिलालेख अब तक नहीं मिला। उसके उत्तराधिकारी देवपाल (दूदा, देदा, देदू) का वि० सं० १३४३ (ई० स० १२८६) वैशाख सुदि १५ का दानपत्र (वही, पृ० ३१, टिप्पण ३१), जिसमें उसके पिता देवपालदेव के श्रेय के निमित्त भूमिदान करने का उल्लेख है, और एक शिलालेख वि० सं० १३४९ (ई० स० १२९२) का मिला है (वही; टिप्पण ३२)। ऐसी दशा में यह

मेवाड़ एवं समस्त राजपूताने में यह प्रसिद्धि है कि अजमेर और दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट् चौहान पृथ्वीराज (तीसरे) की बहिन पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के रावल समरसी (समरसिंह) से हुआ, जो पृथ्वीराज की सहायतार्थ शहाबुद्दीन ग़ोरी के साथ की लड़ाई में मारा गया था। यह प्रसिद्धि 'पृथ्वीराज रासे' से हुई, जिसका उल्लेख 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' में भी मिलता[1] है, परन्तु उक्त पृथ्वीराज की बहिन का विवाह रावल समरसी (समरसिंह) के साथ होना किसी प्रकार संभव नहीं हो सकता; क्योंकि पृथ्वीराज का देहांत वि० सं० १२४९ (ई० स० ११९१-९२) में हो गया था, और रावल समरसी (समरसिंह) वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०२) माघ सुदि १० तक जीवित था[2], जैसा कि आगे बतलाया जायगा। सांभर और अजमेर के चौहानों में पृथ्वीराज नामक तीन, और वीसलदेव (विग्रहराज) नामधारी चार राजा हुए[3] हैं, परंतु भाटों की ख्यातों तथा 'पृथ्वीराज रासे' में केवल एक पृथ्वीराज और एक ही वीसलदेव का नाम मिलता है, और एक ही नामवाले इन भिन्न भिन्न राजाओं की जो कुछ घटनाएं उनको ज्ञात हुईं,

पृथाबाई की कथा

कहना अनुचित न होगा कि डूंगरपुर के राजाओं के उल्लिखित वंशक्रम में केसरीसिंह तक के ९ नाम कल्पित ही हैं, जिनका कोई संबंध वागड़ (डूंगरपुर) के राज्य से न था। उसका संस्थापक वास्तव में सामंतसिंह ही हुआ, जहां से वंशावली शुद्ध है। यहां पर यह भी कह देना आवश्यक है कि उक्त वंशक्रम का करणसिंह (कर्ण) मेवाड़ के रावल समरसिंह या रत्नसिंह का पुत्र न था, जैसा कि माना गया है; परन्तु उनसे कई पुश्त पहलेवाला कर्ण या करणसिंह होना चाहिये, जिसको कुंभलगढ़ और राणपुर के शिलालेखों में रणसिंह कहा है, और जिससे रावल और राणा शाखाओं का निकलना ऊपर लिखा गया है। यह सारी गड़बड़ वास्तविक इतिहास के अज्ञान में ख्यातों के लिखनेवालों ने की है। यह विषय हमने यहां बहुत ही संक्षेप से लिखा है; जिनको विशेष जानने की आकांक्षा हो, वे मेरे लिखे हुए 'डूंगरपुर राज्य की स्थापना' नामक लेख को देखें (ना. प्र. प; भा० १, पृ० १९-३६)।

(१) ततः समरसिंहाख्यः पृथ्वीराजस्य भूपतेः।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दतः ॥ २४ ॥
भाषारासापुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः ॥ २७ ॥
(राजप्रशस्ति, सर्ग ३)।

(२) ना. प्र. प; भाग १, पृ० ४१३, और टिप्पण ४७; पृ० ४४६।

(३) हिं. टॉ. रा; पृ० ३९८-४०१।

उन सबको उन्होंने उसी एक के नाम पर अंकित कर दिया। पृथ्वीराज (दूसरे) के, जिसका नाम पृथ्वीभट भी मिलता है, शिलालेख वि० सं० १२२४, १२२५, और १२२६[1] (ई० स० ११६७, ११६८ और ११६९) के, और मेवाड़ के सामंतसिंह (समतसी) के वि० सं० १२२८ और १२३६ (ई०स० ११७१ और ११७९) के मिले हैं[2]; ऐसी दशा में उन दोनों का कुछ समय के लिये समकालीन होना सिद्ध है। मेवाड़ की ख्यातों में सामंतसिंह को समतसी और समरसिंह को समरसी लिखा है। समतसी और समरसी नाम परस्पर बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं, और समरसी का नाम पृथ्वीराज रासा बनने के अनन्तर अधिक प्रसिद्धि में आ जाने के कारण--इतिहास के अंधकार की दशा में--एक के स्थान पर दूसरे का व्यवहार हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अतएव यदि पृथाबाई की ऊपर लिखी हुई कथा किसी वास्तविक घटना से संबंध रखती हो, तो यही माना जा सकता है कि अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीभट) की बहिन पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के रावल समतसी (सामंतसिंह) से हुआ होगा। डूंगरपुर की ख्यात में पृथाबाई का संबंध समतसी से बतलाया भी गया है।

कुमारसिंह

मेवाड़ का राज्य खोने पर निराश होकर जब सामंतसिंह वागड़ को चला गया और वहीं उसने नया राज्य स्थापित किया, तब उसके भाई कुमारसिंह ने गुजरात के राजा से फिर मेल कर उसकी सहायता से चौहान कीतू को मेवाड़ से निकाला, और वह अपने कुलपरंपरागत राज्य का स्वामी बन गया[3]।

मथनसिंह

कुमारसिंह के पीछे उसका पुत्र मथनसिंह राजा हुआ, जिसका नाम कुंभ-

(१) ना. प्र. प; भाग १, पृ० ३९८। पृथ्वीराज (दूसरे) का देहांत वि० सं० १२२६ (ई० स० ११६९) में हो चुका था (वही, पृ० ३९८), इसलिये पृथाबाई का विवाह उक्त संवत् से पूर्व होना चाहिये।

(२) देखो ऊपर पृ० ४४१।

(३) देखो ऊपर पृ० ४५१ और टिप्पण २।

लगढ़ के शिलालेख में महणसिंह लिखा है। रावल समरसिंह के समय के वि० सं० १३३० (ई०स० १२७३) के चीरवा गांव (उदयपुर से १० मील उत्तर में) के शिलालेख में लिखा है कि राजा मथनसिंह ने टांटरड (टांटेड़) जाति के उद्धरण को, जो दुष्टों को शिक्षा देने और शिष्टों का रक्षण करने में कुशल था, नागद्रह (नागदा) नगर का तलारक्ष[1] (कोतवाल, नगर-रक्षक) बनाया[2]।

पद्मसिंह

मथनसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र पद्मसिंह हुआ, जिसने उपर्युक्त उद्धरण के आठ पुत्रों में से सबसे बड़े योगराज को नागदे की तलारता (कोतवाली) दी;[3] उस(पद्मसिंह)के पीछे उसका पुत्र जैत्रसिंह मेवाड़ का राजा हुआ।

---

(१) प्राचीन शिलालेखों तथा पुस्तकों में तलारक्ष और तलार शब्द नगर-रक्षक अधिकारी (कोतवाल) के अर्थ में प्रयुक्त किये जाते थे। सोड्ढल-रचित 'उदयसुंदरीकथा' में एक राक्षस का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'घृणा उत्पन्न करानेवाले उसके रूप के कारण वह नरक नगर के तलार के समान था' (*घृणावद्रूपतया तलारमिव नरकनगरस्य*—पृ० ७५)। इससे ज्ञात होता है कि तलार या तलारक्ष का संबंध नगर की रक्षा से था। अंचलगच्छ के माणिक्यसुंदरसूरि ने वि० सं० १४७८ में 'पृथ्वीचंद्रचरित्र' लिखा, जिसमें एक स्थल पर राज्य के अधिकारियों की नामावली दी है। उसमें तलवर और तलवर्ग नाम भी दिये हैं ('प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह', पृ० ९७—गायकवाड़ ओरिएण्टल् सीरीज़ में प्रकाशित)। ये नाम भी संभवतः तलार या तलारक्ष के सूचक हों; गुजराती भाषा में तलारत या तलार का अपभ्रंश 'तलाटी' मिलता है, जो अब पटवारी का सूचक हो गया है। तलार या तलारक्ष के अधिक परिचय के लिये देखो ना. प्र. प.; भाग ३, पृ० २ का टिप्पण १।

(२) *जातष्टांटरडज्ञातौ पूर्वमुद्धरणाभिधः ।*
पुमानुमाप्रियोपास्तिसंपन्नशुभवैभवः ॥ ९ [॥]
यं दुष्टशिष्टशिक्षणरक्षणादक्षत्वतस्तलारक्षं ।
श्रीमथनसिंहनृपतिश्चकार नागद्रहद्रंगे ॥ १० ॥

(चीरवे का शिलालेख); अब टांटरड (टांटेड़) जाति नष्ट हो गई है।

(३) *अष्टावस्य विशिष्टाः पुत्रा अभवन्विवेकसुपवित्राः ।*
तेषु व(ब)भूव प्रथमः प्रथितयशा योगराज इति ॥ ११ [॥]
श्रीपद्मसिंहभूपालाद्योगराजस्तलारतां ।
नागहृदपुरे प्राप पौरप्रीतिप्रदायकः ॥ १२ ॥ (वही)।

जैत्रसिंह

जैत्रसिंह के स्थान पर जयतल, जयसल, जयसिंह, जयंतसिंह और जितसिंह नाम भी मिलते हैं। वह राजा बड़ा ही रणरसिक था, और अपने पड़ोसी राजाओं तथा मुसलमान सुलतानों से कई लड़ाइयां लड़ा था। चीरवे के उक्त लेख में लिखा है--'जैत्रसिंह शत्रु राजाओं के लिये प्रलयमारुत के सदृश था, उसको देखते ही किसका चित्त न कांपता? मालवावाले, गुजरातवाले, मारव-निवासी (मारवाड़ का राजा) और जांगल देशवाले, तथा म्लेच्छों का अधिपति (सुलतान) भी उसका मानमर्दन न कर सका[1]।' उसी (जैत्रसिंह) के प्रतिपक्षी धोलका (गुजरात) के बघेलवंशी राणा वीरधवल के मंत्रियों (वस्तुपाल-तेजपाल) का कृपापात्र जयसिंहसूरि अपने 'हंमीरमदमर्दन' नाटक में वीरधवल से कहलाता है कि, शत्रु राजाओं के आयुष्यरूपी पवन का पान करने के लिये चलती हुई कृष्ण सर्प जैसी तलवार के अभिमान के कारण मेदपाट (मेवाड़) के राजा जयतल (जैत्रसिंह) ने हमारे साथ मेल न किया[2]।

---

(१) *श्रीजैत्रसिंहस्तनुजोस्य जातोभिजातिभूभृत्मलयानिलाभः।*
सर्व्वत्र येन स्फुरता न केषां चित्तानि कंपं गमितानि सद्यः ॥ ५ ॥
न मालवीयेन न गौर्जरेण न मारवेशेन न जांगलेन।
म्लेच्छाधिनाथेन कदापि मानो म्लानिं न निन्येवनिपस्य यस्य ॥ ६ ॥

चीरवे का शिलालेख—मूल लेख की छाप से।

घाघसा गांव (चित्तोड़ के निकट) की टूटी हुई बावड़ी के—जैत्रसिंह के पुत्र तेजसिंह के समय के—वि० सं० १३२२ (ई० स० १२६५) कार्तिक सुदि १ के शिलालेख में इसी आशय के दो श्लोक हैं। *श्रीजैत्रसिंहस्तनुजोस्यजातः*—यह श्लोक वही है, जो चीरवे के लेख में है, ये दोनों लेख एक ही पुरुष के रचे हुए हैं ॥५[॥]

श्रीमद्गुर्ज्जरमालवतुरुष्कशाकंभरीश्वरैर्यस्य।
चक्रे न मानभंगः स स्व:स्थो जयतु जैत्रसिंहनृपः ॥ ६ ॥

(घाघसे का शिलालेख-अप्रकाशित)।

इस लेख के शाकंभरीश्वर से अभिप्राय नाडौल के चौहानों से है। चौहानमात्र अपनी मूल राजधानी शाकंभरी (सांभर) से 'शाकंभरीश्वर' या 'संभरी नरेश' कहलाते हैं।

(२) *प्रतिपार्थिवायुर्वायुकवलनप्रसर्पदसितसर्पायमाण—*

चीरवे के उक्त लेख से पाया जाता है कि नागदा के तलारक्ष योगराज के चार पुत्र—पमराज, महेंद्र, चंपक और क्षेम—हुए। महेंद्र का पुत्र बालाक कोट्टडक (कोटड़ा) लेने में राणक (राणा) त्रिभुवन के साथ के युद्ध में राजा जैत्रसिंह के आगे लड़कर मारा गया, और उसकी स्त्री भोली उसके साथ सती[1] हुई। त्रिभुवन (त्रिभुवनपाल) गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरे, भोलाभीम) का उत्तराधिकारी था। भीमदेव (दूसरे) ने वि० सं० १२३५ से १२९८ (ई० स० ११७८ से १२४१-२) तक राज्य किया[2]। त्रिभुवनपाल का वि० सं० १२९९ (ई० स० १२४२-३) का एक दानपत्र मिला है, और उसने बहुत ही थोड़े समय राज्य किया था[3]। इसलिये त्रिभुवनपाल के साथ की जैत्रसिंह की लड़ाई वि० सं० १२९९ (ई० स० १२४२-३) के आसपास होनी चाहिये। चीरवे के लेख में गुजरातवालों से लड़ने का जो उल्लेख है, वह इसी लड़ाई से संबंध रखता है।

गुजरात के राजा त्रिभुवनपाल से लड़ाई

रावल समरसिंह के आबू के शिलालेख में लिखा है—'जैत्रसिंह ने नडूल (नाडौल, जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ ज़िले में) को जड़ से उखाड़ डाला[4]'। नाडौल के चौहानों के वंशज कीतू (कीर्तिपाल) ने मेवाड़ को थोड़े समय के लिये ले लिया था, जिसका बदला लेने

नाडौल के चौहानों से युद्ध

कृपाणादर्पस्मितमस्मदमिलितं मेदपाटपृथिवीललाटमण्डलं जयतलं······

(हंमीरमदमर्दन, पृ० २७)।

(१) योगराजस्य चत्वारश्चतुरा जज्ञिरेंगजाः।
पमराजो महेंद्रोथ चंपकः क्षेम इत्यमी ॥१५[॥]······
बालाकः कोट्टडकग्रहणे श्रीजैत्रसिंहनृपपुरतः।
त्रिभुवनराणकयुद्धे जगाम युद्ध्वापरं लोकं ॥१६[॥]
तद्विरहमसहमाना भोल्यपि नाम्नादिमा विदग्धानां।
दग्ध्वा दहने देहं तद्भार्यार्या तमन्वगमत् ॥ २० ॥
(चीरवे का शिलालेख)।

(२) हिं. टॉ. रा; पृ० ३३३।

(३) वही; पृ० ३३६-३७।

(४) नडूलमूलंकष(ष)बाहुलक्ष्मी-
स्तुरुष्कसैन्यार्णवकुंभयोनिः।

को जैत्रसिंह ने नाडौल पर चढ़ाई की हो। जैत्रसिंह के समय नाडौल और जालोर के राज्य मिलकर एक हो गये थे, और उक्त कीतू का पौत्र उदयसिंह सारे राज्य का स्वामी एवं जैत्रसिंह का समकालीन[1] था, इसलिये यह लड़ाई उदयसिंह के साथ हुई होगी। उदयसिंह की पौत्री और चाचिगदेव की पुत्री रूपादेवी का विवाह जैत्रसिंह के पुत्र तेजसिंह के साथ हुआ, जिससे सम्भव है कि उदयसिंह ने अपनी पौत्री का विवाह कर मेवाड़वालों के साथ अपना प्राचीन वैर मिटाया हो। चीरवे के लेख में मारव (मारवाड़) के राजा से लड़ने का जो उल्लेख है, वह इसी युद्ध का सूचक है।

मालवे के परमारों से युद्ध

चीरवे के लेख से पाया जाता है—'राजा जैत्रसिंह ने तलारक्ष योगराज के चौथे पुत्र क्षेम को चित्तोड़ की तलारता (कोतवाली) दी थी। उसकी स्त्री हीरू से रत्न का जन्म हुआ। रत्न के छोटे भाई मदन ने उत्थूणक (अर्थूणा, बांसवाड़ा राज्य में) के रणखेत में श्रीजेसल (जैत्रसिंह) के लिये पंचलगुडिक[2] जैत्रमल्ल से लड़कर अपना बल प्रकट किया[3]'। अर्थूणा पहले मालवे के परमारों की एक छोटी शाखा के अधिकार में था,

अस्मिन् सुराधीशसहासनस्थे
ररक्ष भूमीमथ जैत्रसिंहः ॥ ४२ ॥

(आबू का शिलालेख; इं. ऐं; जि० १६, पृ० ३४६)।

(१) जैत्रसिंह का समय शिलालेखों तथा उसके राजत्वकाल की लिखी हुई पुस्तकों से वि० सं० १२७० से १३०६ (ई० स० १२१३ से १२५२) तक तो निश्चित है (हिं. टॉ. रा; पृ० ३२३। ए. इं; जि० ११, पृ० ७४)। नाडौल के राजा उदयसिंह के शिलालेख वि० सं० १२६२ से १३०६ (ई० स० १२०५ से १२४६) तक के मिल चुके हैं (ए. इं; जि० ११, पृ० ७८ के पास का वंशवृक्ष)।

(२) 'पंचलगुडिक' संभवतः जैत्रमल्ल का ख़िताब होगा।

(३) क्षेमस्तु निर्म्मितक्षेमश्चित्रकूटे तलारतां।
राज्ञः श्रीजैत्रसिंहस्य प्रसादादापदुत्तमात् ॥२२[॥]
हीरूरिति प्रसिद्धा प्रतिषिद्धार्त्तार्त्तिदुर्मतिरभूच्च।
जाया तस्यामायाजायत तनुजस्तयो रत्नः ॥२३[॥]..........॥
रत्नानुजोस्ति रुचिराचारप्रख्यातधीरसुविचारः।
मदनः प्रसन्नवदनः सततं कृतदुष्टजनकदनः ॥२७[॥]

और वहां के परमार मालवे के परमारों की सेना में रहकर लड़ते रहे, जिसके उदाहरण उनके शिलालेखों में मिलते हैं[1]। गुहिलवंशी सामंतसिंह के वंशजों ने अर्थूणा का ठिकाना परमारों से ही छीनकर अपने वागड़ के राज्य में मिलाया था। जैत्रमल्ल मालवे के परमार राजा देवपाल का पुत्र जयतुगिदेव होना चाहिये, जिसको जयसिंह (दूसरा) भी कहते थे[2] और जो मेवाड़ के जैत्रसिंह का समकालीन था[3]। चीरवे के उक्त लेख में मालवावालों से जैत्रसिंह के लड़ने का जो उल्लेख है, उसका अभिप्राय इसी लड़ाई से होना चाहिये।

मुसलमानों के साथ की लड़ाइयां

चीरवे के शिलालेख में लिखा है कि तलारक्ष योगराज का ज्येष्ठ पुत्र पमराज नागदा नगर टूटा, उस समय भूताला[4] की लड़ाई में सुरत्राण (सुलतान) की सेना से लड़कर मारा गया[5]। 'हंमीरमदमर्दन' नाटक का तीसरा अंक इसी लड़ाई के सम्बन्ध में है; उसमें इस युद्ध का मेवाड़ के राजा जयतल (जैत्रसिंह) के साथ होना लिखा है। उक्त पुस्तक में सुलतान को कहीं 'तुरुष्क', कहीं 'सुरत्राण' (सुलतान), कहीं 'हंमीर' (अमीर) और कहीं उसका नाम 'मीलच्छीकार' लिखा है। इस युद्ध-सम्बन्धी उक्त पुस्तक का सारांश उद्धृत करने से पूर्व गुजरात के राज्य की उस समय की दशा का कुछ परिचय यहां दे देना इसलिये आवश्यक है, कि पक्षपात और अतिशयोक्ति से लिखे हुए उस वर्णन का वास्तविक

यः श्रीजेसलकार्येभवदुत्थूणाकरणांगणे प्रहरन् ।
पंचलगुडिकेन समं पूकटव(ब)लो जैत्रमल्लेन ॥ २८ ॥
(चीरवे का शिलालेख)।

(१) हिं. टॉ. रा; पृ० ३६२।

(२) कप्तान लूअर्ड और काशिनाथ कृष्ण लेले; 'परमार्स ऑफ़ धार एंड मालवा,' पृ० ४०।

(३) जयतुगिदेव (जयसिंह) के समय के लिये देखो वही, पृ० ४०।

(४) भूताला गांव मेवाड़ की पुरानी राजधानी नागदा (नागहृद, नागद्रह) के निकट है।

(५) *नागद्रहपुरभंगे समं सुरत्राणसैनिकैर्युद्ध्वा ।*
भूतालाहटकूटे पमराजः पंचतां प्राप ॥ १९ ॥
चीरवे का शिलालेख।

रूप पाठकों को विदित हो सके। जिस समय यह लड़ाई होने वाली थी, तब गुजरात में सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरा) राज्य करता था, जिसको 'भोला भीम' भी कहते थे। गद्दी पर बैठने के समय वह बालक था और पीछे भी निर्बल ही निकला, जिससे उसके मंत्री और मांडलिक (सामंत, सरदार) उसका बहुतसा राज्य दबाकर[1] स्वतंत्र-से बन बैठे, अतएव वह नाममात्र का राजा रह गया। उसके सरदारों में धोलका का बघेल (सोलंकियों की एक शाखा) राणा लवणप्रसाद था, जिसका युवराज वीरधवल था। गुजरात के राज्य की बागडोर इन्हीं पिता-पुत्र के हाथ में थी; युवराज वीरधवल का मंत्री वस्तुपाल एवं उसका भाई तेजपाल चाणक्य के समान नीतिनिपुण थे। वीरधवल और उसके इन मंत्रियों की प्रशंसा के लिये ही उक्त नाटक की रचना हुई है। उससे पाया जाता है कि, मंत्रियों को यह सूचना मिली कि सुलतान की सेना (मेवाड़ में होती हुई) गुजरात पर आने वाली है। उसी समय दक्षिण (देवगिरि) के यादव राजा सिंघण ने भी गुजरात पर चढ़ाई कर दी। वस्तुतः गुजरात के लिये यह समय बड़ा ही विकट था। वीरधवल के उक्त मंत्रियों ने सोमसिंह, उदयसिंह और धारावर्ष नामक मारवाड़ के राजाओं को—जो स्वतंत्र बन बैठे थे—फिर अपना सहायक बनाया[2]। इसी प्रकार गुजरात आदि के सामंतों को भी अपने पक्ष में लेकर मेवाड़ के राजा जयतल (जैत्रसिंह) से भी मैत्री जोड़नी चाही, परंतु उसने अपनी वीरता के गर्व में वीरधवल से मैत्री न की। बढ़ते हुए सिंघण को रोकने के लिये उसने कूटनीति का प्रयोग कर अपने गुप्त दूतों द्वारा उसकी सेना में फूट डलवाई, इतना ही नहीं, किन्तु उसको यह बात भी जँचा दी कि

---

(१) सोमेश्वर-रचित 'कीर्तिकौमुदी,' २। ६१।

(२) *श्रीसोमसिंहोदयसिंहधारा-*
वर्षैरमीभिर्मरुदेशनाथैः ॥

हंमीरमदमर्दन, पृ० ११।

सोमसिंह कहां का राजा था, यह निश्चय नहीं हो सका। उदयसिंह जालोर का चौहान (सोनगरा) राजा था, जिसके समय के वि० सं० १२६२ से १३०६ (ई० स० १२०५ से १२४९) तक के शिलालेख मिले हैं (ए. इं; जि० ११, पृ० ७८ के पास का वंशवृक्ष)। धारावर्ष आबू का परमार राजा था, जिसके समय के शिलालेखादि वि० सं० १२२० से १२७६ (ई० स० ११६३ से १२१९) तक के मिले हैं (मेरा 'सिरोही राज्य इतिहास;' पृ० १५२)।

वीरधवल सुलतान से लड़नेवाला ही है, इसलिये उस लड़ाई से कमज़ोर हो जाने पर उसको जीतना सहज हो जायगा। इस तरह उधर तो सिंघण को रोका और इधर सुलतान के सैन्य के साथ की मेवाड़ के राजा की लड़ाई का हाल अपने गुप्तचरों से मंगवाया जाता था[1]। उसका वर्णन तीसरे अंक में दिया है, जिसका सारांश नीचे लिखा जाता है—

'कमलक नामक दूत ने आकर निवेदन किया कि सुलतान की फ़ौज ने मेवाड़ को जला दिया, उसकी राजधानी (नागदा) के निवासियों को तलवार के घाट उतारा, जयतल (जैत्रसिंह) कुछ न कर सका, लोगों में त्राहि-त्राहि मच गई और जब मुसलमान बच्चों को निर्दयता से मार रहे थे, तब उनकी चिल्लाहट सुनकर मुसलमान का भेष धारण किये हुए मैंने पुकारा कि भागो भागो! वीरधवल आ रहा है। यह सुनते ही तुरुष्कों (तुर्कों) की सेना भाग निकली और लोग वीरधवल को देखने के लिये आतुर होकर पूछने लगे कि वीरधवल कहां है। तब मैंने मुसलमान का भेष छोड़कर उनसे कहा कि वीरधवल आ रहा है, इससे उनको हिम्मत बँध गई और उन्होंने भागते हुए शत्रु का पीछा किया'[2]।

इस वर्णन में जयसिंहसूरि का पक्षपात झलक रहा है, क्योंकि वीरधवल और उसके मंत्रियों का उत्कर्ष एवं जैत्रसिंह की निर्बलता बतलाने की इसमें चेष्टा की गई है; अर्थात् दूत का यह कहना, कि जैत्रसिंह से तो कुछ न बन पड़ा परन्तु मेरे इतना कहते ही कि 'वीरधवल' आता है, भागो भागो! सारा वीर मुसलिम सैन्य एक दम भाग निकला। यह सारा कथन सर्वथा विश्वासयोग्य नहीं है; संभव तो यह है कि नागदा तोड़ने के पीछे सुलतान और जैत्रसिंह की मुठभेड़ हुई हो, जिसमें हारकर मुसलमान सेना भाग निकली हो। चीरवे तथा घाघसे के शिलालेखों में लिखा है कि म्लेच्छों का स्वामी भी जैत्रसिंह का मानमर्दन न कर सका[3], और रावल समरसिंह के आबू के शिलालेख में उसको तुरुष्करूपी समुद्र का पान करने के लिये अगस्त्य के समान बतलाया[4] है, जो अधिक विश्वास-योग्य है।

(१) हंमीरमदमर्दन, अंक १-२।

(२) वही; अंक ३, पृ० २५-२६।

(३) देखो ऊपर पृ० ४६० टिप्पण १।

(४) देखो ऊपर पृ० ४६१ और टिप्पण ४।

जयसिंहसूरि की उक्त पुस्तक का नाम 'हंमीरमदमर्दन' रखने का मुख्य आधार सुलतान की सेना का मेवाड़ से पराजित होकर भागना ही है; इससे वीरधवल का कुछ भी संबंध न था, तो भी उस विजय का यश उक्त सूरि ने जैत्रसिंह को न देकर वीरधवल के नाम पर अंकित किया और उसके लिये उसके मंत्रियों की खूब प्रशंसा की, जिसके दो कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम तो जयसिंहसूरि भड़ौच के मुनिसुव्रत के जैन मंदिर का आचार्य था; और वस्तुपाल-तेजपाल ने जैन धर्म के उत्कर्ष के लिये मंदिरादि बनवाने में करोड़ों रुपये व्यय किये थे[1], जिसके लिये एक जैनाचार्य उनकी प्रशंसा करे, यह स्वभाविक बात है। दूसरा मुख्य कारण यह था, कि जब तेजपाल यात्रा के लिये भड़ौच गया, तब जयसिंह-सूरि ने उसकी प्रशंसा के श्लोक उसे सुनाकर यह प्रार्थना की—'शकुनिका विहार की २५ देवकुलिकाओं पर बांस के दंड हैं, जिनके स्थान में सुवर्ण के दंड चढ़ा दीजिये'। तेजपाल ने अपने बड़े भाई वस्तुपाल की अनुमति से उसे स्वीकार कर २५ सुवर्ण दंड उनपर चढ़वा दिये[2]। इसपर उक्त सूरि ने उन दोनों भाइयों की प्रशंसा का 'वस्तुपालप्रशस्ति' नामक विस्तीर्ण शिलालेख बनाकर उक्त मंदिर में लगवाया। 'हंमीरमदमर्दन' की रचना भी उसी उपकार का बदला देने की इच्छा से की गई हो, यह संभव है। गुजरात के डूबते हुए राज्य का सरदार वीरधवल जैत्रसिंह जैसे प्रबल राजा के सामने तुच्छ था; वास्तव में जैत्रसिंह ने ही सुलतान की फ़ौज को भगाकर गुजरात को नष्ट होने से बचाया, परंतु जयसिंहसूरि को अपने राजा और उसके मंत्रियों का उत्कर्ष बतलाना था, इसलिये उसने वास्तविक घटना को दूसरा ही रूप दे दिया। ऐसे ही उक्त नाटक के चौथे अंक में हंमीर के विषय में जो कुछ लिखा है, वह भी सारा कपोलकल्पित ही है[3]।

---

(१) मेरा सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० ६४।

(२) 'वस्तुपाल-प्रशस्ति,' श्लोक ६५–६६।

(३) उस वर्णन का सारांश यह है कि तेजपाल का भेजा हुआ गुप्त दूत 'शीघ्रक' अपने को खप्परखान (ख़लीफ़ा का मुख्य सरदार या सेनापति हो) का दूत प्रगट कर मुसलमानों के मालिक ख़लीफ़ा के पास बग़दाद पहुंचा, और उससे यह निवेदन किया कि मीलच्छ्रीकार (हिन्दुस्तान का सुलतान) आपकी आज्ञा को भी नहीं मानता है; इसपर क्रुद्ध होकर ख़लीफ़ा ने लिखित हुक्म दिया कि उस (सुलतान) को क़ैद कर मेरे पास भेज दो। यह हुक्म लेकर ख़लीफ़ा का दूत बना हुआ वह खप्परखान के पास पहुंचा। उस हुक्म को देखते

जिस सुलतान ने मेवाड़ पर यह चढ़ाई की, उसका नाम शिलालेखों में नहीं दिया। 'हंमीरमदमर्दन' में उसका नाम 'मीलच्छीकार' लिखा है, परन्तु हिन्दुस्तान में इस नाम का कोई सुलतान नहीं हुआ; यह नाम 'अमीरशिकार' का संस्कृत शैली का रूप प्रतीत होता है। 'अमीरशिकार' का ख़िताब क़ुतबुद्दीन ऐबक़ ने अपने ग़ुलाम अल्तमश को दिया था[1]। क़ुतबुद्दीन ऐबक़ के पीछे उसका बेटा आरामशाह दिल्ली के तख़्त पर बैठा, जिसको निकालकर अल्तमश वहां का सुलतान हुआ और शम्सुद्दीन खिताब धारण कर हिजरी सन् ६०७ से ६३३ (वि० सं० १२६७ से १२९३=ई० स० १२१० से १२३६) तक राज्य किया। शम्सुद्दीन अल्तमश की यह चढ़ाई वि० सं० १२७९ और १२८६ (ई० स० १२२२ और १२२९) के बीच[2] किसी वर्ष होनी चाहिये। उसने राजपूताने पर कई चढ़ाइयां[3] की थीं, जिनका वर्णन फ़ारसी तवारीख़ों में मिलता है, परन्तु

ही उसने सुलतान पर चढ़ाई कर दी। जब वह मथुरा तक पहुंच गया, तब सुलतान घबराया और उसने अपने कादी और रादी नामक दो गुरुओं को ख़लीफ़ा के पास उसका क्रोध शांत करने को भेजा। जब सुलतान ने अपने प्रधान (प्रधान मंत्री) गोरी ईसप की सम्मति ली, तो उसने बिना लड़े पीछे हटने की सलाह दी, जिसको उस (सुलतान) ने न माना। इतने में वीरधवल भी सुलतान पर चढ़ आया, जिससे वह तथा उसका प्रधान मंत्री दोनों भाग गये ('हंमीरमदमर्दन' अंक ४)। यह सारी कथा कृत्रिम ही है, ऐतिहासिक नहीं।

(१) कर्नल रावर्टी-कृत तबक़ाते नासिरी का अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ६०३। इलियट; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० २, पृ० ३२२।

(२) शम्सुद्दीन अल्तमश के साथ जैत्रसिंह की लड़ाई का यह समय मानने का कारण यह है कि वि० सं० १२७६ (ई० स० १२१९) में वस्तुपाल धोलके के सरदार का मंत्री बना, और वि० सं० १२८६ (ई० स० १२२९) में 'हंमीरमदमर्दन' की जैसलमेर के भंडारवाली ताड़पत्र की पुस्तक लिखी गई या बनी (*संवत् १२८६ वर्षे आषाढवदि ९ शनौ हंमीरमदमर्दनं नाम नाटकं*—हंमीरमदमर्दन का अंत); और रावल जैत्रसिंह के नांदेसमा गांव के सूर्यमंदिर के वि० सं० १२७९ (ई० स० १२२२) के शिलालेख से पाया जाता है कि उस समय तक नागदा टूटा न था और जैत्रसिंह वहां पर राज्य करता था, इसलिये वह घटना उक्त दोनों संवतों के बीच होनी चाहिये।

(३) शम्सुद्दीन ने हिजरी सन् ६१२ (वि० सं० १२७२=ई० स० १२१५) के आसपास जालोर के चौहान राजा उदयसिंह पर (ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० १, पृ० २०७), हि० स० ६२३ (वि० सं० १२८३=ई० स० १२२६) में रणथंभोर पर (कर्नल रावर्टी; 'तबक़ाते नासिरी का अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ६११। इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० २,

जैत्रसिंह के साथ की इस लड़ाई का वर्णन उनमें कहीं नहीं मिलता, जिसका कारण उसकी हार होना ही कहा जा सकता है।

कर्नल टॉड ने अपने 'राजस्थान' में लिखा है—"राहप ने सं० १२५७ (ई० स० १२०१) में चित्तोड़ का राज्य पाया और कुछ समय के अनन्तर उस-पर शम्सुद्दीन का हमला हुआ, जिसको उस (राहप) ने नागोर के पास की लड़ाई में हराया"[1]। उक्त कर्नल ने राहप को रावल समरसिंह का पौत्र और करण का पुत्र मानकर उसका चित्तोड़ के राज्यसिंहासन पर बैठना लिखा है, परन्तु न तो वह रावल समरसिंह का, जिसके वि० सं० १३३० से १३५८ तक के कई शिलालेख मिले हैं, पौत्र था और न वह कभी चित्तोड़ का राजा हुआ। वह तो सीसोदे की जागीर का स्वामी था और समरसिंह से बहुत पहले हुआ था, अतएव शम्सुद्दीन को हरानेवाला राहप नहीं, किंतु जैत्रसिंह था। ऐसे ही शम्सुद्दीन के साथ का युद्ध नागोर के पास नहीं, किंतु नागदे के पास हुआ था, जैसा कि चीरवे के शिलालेख से बतलाया जा चुका है। इसी तरह टॉड का दिया हुआ उक्त लड़ाई का संवत् भी अशुद्ध ही है[2]।

रावल समरसिंह के आबू के लेख में जैत्रसिंह का तुरुष्क (सुलतान की) सेना नष्ट करने के अतिरिक्त सिंध की सेना से युद्ध होने का उल्लेख इस तरह है—'सिंधुकों (सिंधवालों) की सेना का रुधिर पीकर मत्त बनी हुई पिशाचियों के आलिंगन के आनन्द से मग्न होकर पिशाच लोग रणखेत में अब तक श्रीजैत्रसिंह के भुजबल की

सिंध की सेना से लड़ाई

पृ० ३२४), हि० स० ६२४ (वि० सं० १२८४= ई० स० १२२७) में मंडोर पर (कर्नल रावर्टी; 'तबकाते नासिरी का अंग्रेज़ी अनुवाद'; पृ० ६११) और हि० स० ६२५ (वि० सं० १२८५=ई० स० १२२८) में सवालक (स्वालक, सपादलक्ष), अजमेर, लावा और सांभर पर चढ़ाई की (कर्नल रावर्टी; तबकाते नासिरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ७२८)।

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३०५।

(२) कर्नल टॉड ने राहप को रावल समरसिंह का पौत्र और करण का पुत्र माना है, परन्तु करण (कर्णसिंह, रणसिंह) समरसिंह के पीछे नहीं किन्तु पहले हुआ था (देखो ऊपर रणसिंह (कर्ण) का वृत्तान्त, पृ० ४४६-४७)। रावल समरसिंह वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०२) माघ सुदि १० तक जीवित था।

प्रशंसा करते हैं[1]। इसका आशय यही है कि जैत्रसिंह ने सिंध की किसी सेना को नष्ट किया था। अब यह जानना आवश्यक है कि यह सेना किसकी थी, और मेवाड़ की तरफ़ कब आई। फ़ारसी तवारीख़ों से पता लगता है कि शहाबुद्दीन ग़ोरी का गुलाम नासिरुद्दीन कुबाच, जो कुतुबुद्दीन ऐबक़ का दामाद था, कुतुबुद्दीन के मरने पर सिंध को दबा बैठा। मुग़ल चंगेज़खां ने ख़्वार्ज़म् के सुलतान मुहम्मद (कुतुबुद्दीन) पर चढ़ाई कर उसके मुल्क को बरबाद कर दिया। मुहम्मद के पीछे उसका पुत्र जलालुद्दीन (मंगबर्नी) ख़्वार्ज़मी, चंगेज़खां से लड़ा और हारने पर सिंध की ओर चला गया। फिर नासिरुद्दीन कुबाच को उच्छ की लड़ाई में हराकर ठट्ठा नगर (देवल) पर अपना अधिकार कर लिया। ठट्ठे का राजा, जो सुमरा जाति का था और जिसका नाम जेयसी (जयसिंह) था, भागकर सिंधु के एक टापू में जा रहा। जलालुद्दीन ने वहां के मंदिरों को तोड़ा और उनके स्थान पर मसजिदें बनवाईं; फिर हि० स० ६२० (वि० सं० १२८०=ई० स० १२२३) में ख़वासख़ां की मातहती में नहरवाले (अनहिलवाड़े) पर सेना भेजी, जो बड़ी लूट के साथ लौटी[2]। सम्भव है कि जैत्रसिंह ने सिंध की इसी सेना से अनहिलवाड़े (गुजरात की राजधानी) जाते या वहां से लौटते समय लड़ाई की हो।

सुलतान नासिरुद्दीन महमूद की मेवाड़ पर चढ़ाई

तारीख़ फ़िरिश्ता में लिखा है—'दिल्ली के सुलतान नासिरुद्दीन महमूद ने अपने भाई जलालुद्दीन को हि० स० ६४६ (वि० सं० १३०५=ई० स० १२४८) में कन्नौज से दिल्ली बुलाया; परन्तु उसे अपने प्राणों का भय होने से वह सब साथियों सहित चित्तोड़ की पहाड़ियों में भाग गया। सुलतान ने उसका पीछा किया,

(१) अद्यापि सिंधुकचमूरुधिरासवमत्त–
संघूर्णमानरमणीपरिरंभणेन।
आनंदमंदमनसः समरे पिशाचाः
श्रीजैत्रसिंहभुजविक्रममुद्गृणंति ॥ ४३ ॥

इं. ऐं; जि० १६, पृ० ३४६–५० । 'भावनगर प्राचीनशोधसंग्रह,' पृ० २५ ।

(२) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ४१३–२० । मेबेल डफ़; क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इंडिया; पृ० १७६–८० । कर्नल रावर्टी-कृत तबक़ाते नासिरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० २६४ का टिप्पण ।

परन्तु आठ महीनों के बाद जब उसे यह ज्ञात हुआ कि वह उसके हाथ नहीं आ सकता, तब वह दिल्ली को लौट गया"[1]। उक्त सन् में मेवाड़ का राजा जैत्रसिंह था।

दिल्ली के गुलाम सुलतानों के समय मेवाड़ के राजाओं में सबसे प्रतापी और बलवान राजा जैत्रसिंह ही हुआ, जिसकी वीरता की प्रशंसा उसके विपक्षियों ने भी की है। जैत्रसिंह के समय सुलतान शम्सुद्दीन अल्तमश ने नागदा तोड़ा, तब से मेवाड़ की राजधानी स्थिर रूप से चित्तोड़ हुई। उसके पहले नागदा और आहाड़ दोनों राजधानियां थीं।

जैत्रसिंह के समय के शिलालेखादि

अब तक जैत्रसिंह के समय के दो शिलालेख और दो हस्तलिखित पुस्तकें मिली हैं। सबसे पहला शिलालेख वि० सं० १२७० (ई० स० १२१३) का एकलिंगजी के मंदिर के चौक में नंदी के निकट खड़ी हुई एक छोटीसी स्मारक-शिला पर खुदा है[2]। दूसरा शिलालेख वि० सं० १२७६ (ई० स० १२२२) वैशाख सुदि १३ का नादेसमा गांव में चारभुजा के मंदिर के पासवाले टूटे हुए सूर्य के मंदिर में एक स्तंभ पर खुदा हुआ है[3], जिसमें जैत्रसिंह की राजधानी (निवासस्थान) नागद्रह (नागदा) होना, तथा उसके श्रीकरण ('श्री' के चिह्नवाली मुख्य मुद्रा या मोहर करनेवाले मंत्री) का नाम डूंगरसिंह लिखा है। उसके राज्य-समय वि० सं० १२८४ (ई० स० १२२८) फाल्गुन वदि अमावास्या के दिन 'ओघनिर्युक्ति' नामक जैन पुस्तक ताड़पत्रों पर आघाटपुर (आहाड़) में लिखी गई थी, जो इस समय खंभात नगर (गुजरात में) के शांतिनाथ के मंदिर में विद्यमान है। उक्त पुस्तक में उसके महामात्य (मुख्य

---

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० १, पृ० २३८।

(२) *संवत् १२७० वर्षे महाराजाधिराजश्रीजैत्रसिंहदेवेषु.........* (भावनगर प्राचीनशोधसंग्रह; पृ० ४७, टिप्पण। भावनगर इन्स्क्रिप्शंस, पृ० ६३, टिप्पण)।

(३) *ओं संवत् १२७६ वर्षे वैशाख सुदि १३ सु(शु)क्रे अद्येह श्रीनागद्रहे महाराजाधिराजश्रीजयतसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये तन्नि[युक्त]श्रीश्रीकरणे महं [डुं]गरसीहप्रतिपत्तौ..........* (नादेसमा का शिलालेख, अप्रकाशित)। इस लेख से यह भी पाया जाता है कि उक्त संवत् तक तो मेवाड़ की राजधानी—नागदा नगर—टूटी न थी।

मंत्री) का नाम जगत्सिंह लिखा है[1]। रावल जयतसिंह (जैत्रसिंह) और उसके आश्रित जयसिंह के समय ठ० (ठकुर=ठाकुर) वयजल ने वि० सं० १३०६ (ई० स० १२५३) माघ वदि १४ को 'पाक्षिकवृत्ति' नामक पुस्तक आघाट (आहाड़) में लिखी, जिसमें जयसिंह (जैत्रसिंह) को दक्षिण और उत्तर के राजाओं का मान-मर्दन करनेवाला महाराजाधिराज कहा है, और उसके श्रीकरणाधिकारी का नाम महं० (महत्तर-महत्तम-मेहत्ता) तल्हण दिया है[2]। यह पुस्तक भी खंभात के उक्त मंदिर में रक्खी हुई है।

इन शिलालेखों तथा पुस्तकों से निश्चित है कि वि० सं० १२७० से १३०६ (ई० स० १२१३ से १२५३) तक तो जैत्रसिंह मेवाड़ का राजा था और उसके पीछे भी कुछ समय तक उसने राज्य किया हो, यह संभव है। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी तेजसिंह के समय की वि० सं० १३१७ (ई० स० १२६१) माघ सुदि ४ की आघाट-दुर्ग (आहाड़) में लिखी हुई 'श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णि' नामक पुस्तक[3] मिली है, जिससे जैत्रसिंह का देहान्त वि० सं० १३०६ और १३१७ (ई० स० १२५३ और १२६१) के बीच किसी वर्ष होना चाहिये।

तेजसिंह

जैत्रसिंह के पीछे उसका पुत्र तेजसिंह मेवाड़ का स्वामी हुआ, जिसके विरुद

---

(१) *संवत् ११८४ वर्षे फाल्गुनामावास्यां सोमे अद्येह श्रीमदाघाटदुर्गे समस्तराजावलीसमलंकृतमहाराजाधिराजश्रीजैत्रसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये तन्नियुक्तमहामात्यश्रीजगतसिंहे समस्तमुद्राव्यापारान् परिपंथयतीत्येवं काले प्रवर्त्तमाने सा० उद्धरसूनुना ....सा० हेमचन्द्रेण दशवैकालिकपाक्षिकसूत्रऔघनिर्युक्ति(ओघनिर्युक्ति)-सूत्रपुस्तिका लेखिता* (पीटर्सन की तीसरी रिपोर्ट; पृ० ५२)।

(२) *संवत् १३०६ वर्षे माघ वदि १४ सोमे स्वस्ति श्रीमदाघाटे महाराजाधिराजभगवन्नारायणदक्षिणउत्तराधीशमानमर्दनश्रीजयतसिंहदेवतत्पट्टविभूषणराजाश्रिते जयसिंघविजयराज्ये तत्पादपद्मोपजीविनिमहं०श्रीतल्हणप्रतिपत्तौ श्रीश्रीकरणादिसमस्तव्यापारान्परिपंथयतीत्येवं काले प्रवर्त्तमाने ठ० वयजलेन पाक्षिकवृत्तिर्लिखितेति ॥*

(वही; पृ० १३०)।

(३) इस पुस्तक के अंत का अवतरण तेजसिंह के वृत्तान्त के साथ दिया जायगा।

'परम भट्टारक' 'महाराजाधिराज' और 'परमेश्वर' मिलते हैं। जैत्रसिंह की जीवित दशा में गुजरात के राजा भीमदेव (दूसरे, भोलाभीम) का देहान्त वि० सं० १२९८ (ई० स० १२४२) में हुआ था[1]। उसके पीछे त्रिभुवनपाल गुजरात[2] की गद्दी पर बैठा। वि० सं० १२९४ (ई० स० १२३८) में धोलका के बघेल राणा वीरधवल का देहान्त होने पर मन्त्री वस्तुपाल ने उसके छोटे पुत्र वीसलदेव का पक्ष लेकर उसको धोलका का राणा बनाया[3]; उसने वि० सं० १३०० (ई० स० १२४३-४४) के आसपास त्रिभुवनपाल से गुजरात का राज्य छीन लिया[4]। उसके वि० सं० १३१७ (ई० स० १२६०-६१) के दानपत्र में उसको 'मेदपाटक' (मेवाड़) देशरूपी कलुष (दुष्ट) राज्यलता की जड़ उखाड़ने के लिये कुद्दाल के समान बतलाया है[5]। इससे अनुमान होता है कि उसने मेवाड़ पर (संभवतः तेजसिंह के समय[6]) चढ़ाई की हो। चीरवे के शिलालेख में जैत्रसिंह के नियत किये हुए चित्तोड़ के तलारक्ष क्षेम के पुत्र रत्न के विषय में लिखा है कि वह शत्रुओं का संहार करता हुआ चित्रकूट (चित्तोड़) की तलहटी में श्रीभीमसिंह (प्रधान[7]) सहित काम आया। चित्तोड़ की तलहटी

(१) हिं. टॉ; रा; पर मेरे टिप्पण पृ० ४३६।

(२) वही; पृ० ४३८।

(३) वही; पृ० ४३९।

(४) वही; पृ० ४३९।

(५) *मेदपाटकदेशकलुषराज्यवल्लीकंदोच्छेदनकुद्दालकल्प.........।*

(इं० ऐं; जि० ६, पृ० २१०)।

(६) तेजसिंह और वीसलदेव दोनों समकालीन थे। चीरवे के शिलालेख का रचयिता चैत्रगच्छ का आचार्य रत्नप्रभसूरि अपने को विश्वलदेव (वीसलदेव) और तेजसिंह से सम्मानित बतलाता है—

श्रीमद्विश्वलदेवश्रीतेजसिंहराजकृतपूजः।

स इमां प्रशस्तिमकरोदिह चित्रकूटस्थः ॥ ४८ ॥

(चीरवे का शिलालेख)।

(७) भीमसिंह को मेवाड़ का प्रधान मानने का कारण यह है, कि चीरवे के शिलालेख में चित्तोड़ के तलारक्ष क्षेम के दूसरे पुत्र (रत्न के छोटे भाई) मदन के लिये यह लिखा है कि 'श्रीभीमसिंह का पुत्र राजसिंह प्रधान का पद पाने पर पहले के कामों का स्मरण कर उसको बहुत मानता था—

(क़िले के नीचे का नगर) की यह लड़ाई तेजसिंह और वीसलदेव के बीच होना प्रतीत होता है, जिसका संकेत वीसलदेव के दानपत्र में मिलता है।

तेजसिंह की राणी जयतल्लदेवी ने, जो समरसिंह की माता[1] थी, चित्तोड़ पर श्यामपार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया[2] था। बुड़तरे की बावड़ी के शिलालेख से अनुमान होता है कि तेजसिंह की दूसरी राणी रूपादेवी होगी, जो जालोर के चौहान राजा चाचिकदेव और उसकी राणी लक्ष्मीदेवी की पुत्री थी। उसने अपने भाई सामंतसिंह के राज्य-समय वि० सं० १३४० (ई० स० १२८३) में बुड़तरा गांव (जोधपुर राज्य) में बावड़ी बनवाई; उसी से कुंवर क्षेत्रसिंह का जन्म हुआ था[3]।

तेजसिंह के राज्य-समय वि० सं० १३१७ (ई० स० १२६१) माघ सुदि ४ को 'श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णि' नामक पुस्तक आघाटदुर्ग (आहाड़) में ताड़पत्र पर लिखी गई थी[4], जो इस समय पाटण (अनहिलवाड़े) में सुरक्षित

श्रीभीमसिंहपुत्रः प्राधान्यं प्राप्य राजसिंहोयं।

बहुमेने नैकर्म्यं प्राकूप्रतिपन्नं दधद्हृदये ॥ २९ ॥

भीमसिंह के लड़ाई में मारे जाने पर उसका पुत्र राजसिंह अपने पिता के पद पर नियत हुआ होगा।

विक्रांतरत्नं समरेथ रत्नः सपत्नसंहारकृतप्रयत्नः।

श्रीचित्रकूटस्य तलाट्टिकायां श्रीभीमसिंहेन समं ममार ॥ २६ ॥

(चीरवे का शिलालेख)।

(१) जयतल्लदेवी समरसिंह की माता थी, यह चित्तोड़ की तलहटी के दरवाज़े के बाहर बहनेवाली गंभीरी नदी के पुल के १०वें महराब में लगे हुए रावल समरसिंह के समय के एक टूटे शिलालेख से जान पड़ता है।

(२) *श्रीचित्रकूटमेदपाटाधिपतिश्रीतेजःसिंहराज्ञ्या श्रीजयतल्लदेव्या श्रीश्याम-पार्श्वनाथवसही स्वश्रेयसे कारिता* (रावल समरसिंह के समय का वि० सं० १३३५ वैशाख सुदि ५ का चित्तोड़ का शिलालेख—बंगा० ए० सो० ज; जि० ५५, भाग १, पृ० ४८)। यह शिलालेख मैंने चित्तोड़ से उठवाकर उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित किया है।

(३) बुड़तरे की बावड़ी का शिलालेख (ए० इं; जि० ४, पृ० ३१३-१४)।

(४) *संवत् १३१७ वर्षे माह(घ) सुदि ४ आदित्यदिने श्रीमदाघाटदुर्गे महाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकउमापतिवरलब्धप्रौढप्रतापसमलंकृतश्रीतेजसिंहदेव-*

है। उसमें तेजसिंह के महामात्य (बड़े मंत्री) का नाम समुद्धर दिया है।

तेजसिंह के राजत्वकाल के दो शिलालेख अब तक मिले हैं, जिनमें से पहला—घाघसा गांव (चित्तोड़ के निकट) की बावड़ी का—वि० सं० १३२२ (ई० स० १२६५) कार्तिक [सु]दि १ रविवार का है[१]। उसमें पद्मसिंह से लगाकर तेजसिंह तक मेवाड़ के राजाओं की नामावली देकर उस बावड़ी के बनवानेवाले डींडू जाति (गोत्र) के महाजन रत्न के पूर्वपुरुषों का वर्णन किया गया है। उस प्रशस्ति की रचना चैत्रगच्छ के आचार्य भुवनचंद्र के शिष्य रत्नप्रभसूरि ने की थी।

तेजसिंह के समय का वि० सं० १३२४ (ई० स० १२६७) का दूसरा शिलालेख गंभीरी नदी के पुल के नवें 'कोठे' (महराब) में लगा है, जिसमें चैत्रगच्छ के आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से महाराज श्रीतेजसिंह के समय उसके प्रधान—राजपुत्र कांगा के पुत्र—द्वारा कुछ बनवाए जाने का उल्लेख है[२]।

तेजसिंह के पुत्र समरसिंह का सबसे पहला शिलालेख वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) का मिला है, अतः तेजसिंह का देहान्त वि० सं० १३२४ और १३३० (ई० स० १२६७ और १२७३) के बीच[३] किसी वर्ष हुआ होगा।

कल्याणविजयराज्ये तत्पादपद्मोपजीविनि महामात्यश्रीसमुद्धरे मुद्राव्यापारान् परिपंथयति श्रीमदाघाटवास्तव्यपं०रामचन्द्रशिष्येण कमलचन्द्रेण पुस्तिका व्यालेखि।

(पीटर्सन की पांचवीं रिपोर्ट, पृ० २३)।

महामात्य और प्रधान—यह दोनों भिन्न भिन्न अधिकारियों के सूचक हों, ऐसा प्रतीत होता है।

(१) यह लेख कुछ बिगड़ गया है। मैंने इसको वहां से हटाकर उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में रखवाया है।

(२) बंगा० ए० सो० ज; जिल्द ५५, भाग १, पृ० ४६–४७।

(३) कर्नल टॉड ने लिखा है—'हम यह कहकर संतोष करेंगे कि अजमेर के चौहान और चित्तोड़ के गुहिलोत बारी बारी से शत्रु और मित्र रहे। दुर्लभ चौहान को कँवारिया की लड़ाई में वैरसी रावल ने मारा। इसी से चौहानों के इतिहास में लिखा है कि उस समय चौहान राजा इतने प्रबल हो गये थे, कि वे चित्तोड़ के स्वामी का सामना करने लग गये। फिर एक पीढ़ी के बाद मुसलमानों की चढ़ाई रोकने के लिये दुर्लभ के प्रसिद्ध पुत्र बीसलदेव का रावल तेजसिंह से मिल जाने का उल्लेख शिलालेखों तथा इतिहास-ग्रन्थों में मिलता है' (टॉ. रा; जि० १, पृ० २१७)। टॉड का यह कथन ऐतिहासिक नहीं, किन्तु भाटों की ख्यातों के आधार पर लिखा हुआ प्रतीत होता है; और यदि इसमें सत्य का कुछ अंश है भी, तो बहुत

समरसिंह

रावल तेजसिंह के पीछे उसका पुत्र समरसिंह राजा हुआ। उसके समय के आबू के शिलालेख में लिखा है कि 'समरसिंह ने तुरुष्क (मुसलमान) रूपी समुद्र में गहरे डूबे हुए गुजरात देश का उद्धार किया'', अर्थात् मुसलमानों से गुजरात की रक्षा की। वह लेख वि० सं० १३४२ (ई० स० १२८५) का है, अतएव उस घटना का उक्त संवत् से पहले होना निश्चित है। हि० स० ६६४ से ६८६

क्रम। चौहानों में तीन दुर्लभ और चार वीसलदेव (विग्रहराज) हुए, परन्तु भाटों की ख्यातों, पृथ्वीराज रासे तथा टॉड राजस्थान में एक ही दुर्लभ और एक ही वीसलदेव का होना लिखा है। दुर्लभ (तीसरे) के पौत्र और वीसलदेव (तीसरे) के पुत्र पृथ्वीराज (पहले) के समय का वि० सं० ११६२ (ई० स० ११०५) का शिलालेख जीणमाता के मंदिर (जयपुर राज्य के शेखावाटी ज़िले में) के एक स्तंभ पर खुदा हुआ है (प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ़ दी आर्कियॉलॉजिकल् सर्वे ऑफ़ इंडिया, वेस्टर्न सर्कल; ई० स० १६०६-१०, पृ० ५२), जिससे चौहान दुर्लभ (तीसरे) और वीसलदेव (तीसरे) की मृत्यु उक्त संवत् से पहले होना निश्चित है। वीसलदेव (चौथे) का देहान्त वि० सं० १२२० और १२२४ (ई० स० ११६३ और ११६७) के बीच किसी वर्ष हुआ (ना० प्र० प; भाग १, पृ० ३१७)। तदुपरांत अजमेर के चौहानों में वीसलदेव नामक कोई राजा ही नहीं हुआ। रावल तेजसिंह का स्वर्गवास वि० सं० १३२४ और १३३० (ई० स० १२६७ और १२७३) के बीच होना ऊपर बतलाया जा चुका है, जिससे अनुमानतः ८० वर्ष पूर्व अजमेर के चौहानों का राज्य मुसलमानों के हाथ में जा चुका था। ऐसी दशा में किसी वीसलदेव चौहान का तेजसिंह का समकालीन होना असंभव है। दुर्लभ (तीसरे) को वैरसी (वैरिसिंह) ने मारा हो, यह अलबत्ता संभव हो सकता है, क्योंकि दुर्लभ चौहान का पौत्र पृथ्वीराज (पहला) वि० सं० ११६२ (ई० स० ११०५) में जीवित था और वैरसी (वैरिसिंह) का पुत्र विजयसिंह वि० सं० ११७३ (ई० स० ११११६) में विद्यमान था (देखो ऊपर वैरिसिंह का वृत्तांत)। यदि वैरिसिंह ने दुर्लभ को मारा हो, तो संभव है कि दुर्लभ के पूर्वज वाक्पतिराज (दूसरे) ने वैरिसिंह के पूर्वज अंबाप्रसाद को मारा था, जिसका बदला वैरिसिंह ने लिया हो, परन्तु हमको इसका उल्लेख मेवाड़ के राजाओं और अजमेर के चौहानों के शिलालेखादि में नहीं मिला।

(१) आद्यक्रोडवपुःकृपाणविलसद्दंष्ट्रांकुरो यः क्षणा-
न्मग्नामुद्धरति स्म गूर्जरमहीमुच्चैस्तुरुष्कार्णवात्।
तेजःसिंहसुतः स एष समरःक्षोणीश्वरग्रामणी-
राधत्तेबलिकर्णयोर्धुरमिलागोले वदान्योऽधुना ॥ ४६ ॥

(आबू का शिलालेख-इं. ऐं; जि० १६, पृ० ३५०)।

(वि० सं० १३२३ से १३४४=ई० स० १२६६ से १२८७) तक ग़यासुद्दीन बलबन दिल्ली का सुलतान था, इसलिये गुजरात की यह चढ़ाई उसके किसी सेनापति द्वारा होनी चाहिये। फ़ारसी तवारीख़ों में इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु आबू के शिलालेख के रचयिता की जीवित दशा में होने से इस घटना की सत्यता में कोई संदेह नहीं है। दिल्ली के गुलाम सुलतानों की तवारीख़ें मुग़ल बादशाहों जैसी विस्तार से लिखी हुई नहीं मिलतीं, इसलिये उनमें कई बातों की त्रुटि रह जाना संभव है।

चीरवे के लेख में समरसिंह को 'शत्रुओं का संहार करने में सिंह के सदृश, अत्यन्त शूर, चंद्रिका-सी [उज्ज्वल] कीर्तिवाला, अपने हितोचित कर्म करनेवाला और सद्धर्म का मर्मज्ञ'' कहा है। उस लेख से यह भी जान पड़ता है कि उपर्युक्त तलारक्ष क्षेम के पुत्र मदन को समरसिंह ने चित्तोड़ का तलारक्ष बनाया था[२]।

जिनप्रभसूरि ने अपने 'तीर्थकल्प' में उलग़ख़ां की गुजरात-विजय का वर्णन करते हुए लिखा है—'विक्रम संवत् १३५६ (ई० स० १२९९) में सुलतान अल्लावदीण (अलाउद्दीन ख़िलजी) का सबसे छोटा भाई उलूख़ान (उलग़ख़ां), [कर्णदेव के] मंत्री माधव की प्रेरणा से, ढिल्ली (दिल्ली) नगर से गुजरात को चला। चित्तकूड़ (चित्रकूट-चित्तोड़) के स्वामी समरसिंह ने उसे दंड देकर मेवाड़ देश की रक्षा कर ली। फिर हंमीर (अमीर=सुलतान) का युवराज वग्गड़ देश (वागड़) और मोड़ासा आदि नगरों को नष्ट करता हुआ

---

(१) तदनु च तनुजन्मा तस्य कल्याणजन्मा
जयति समरसिंहः शत्रुसंहारसिंहः ।
क्षितिपतिरतिशूरश्चंद्ररुक्कीर्तिपूरः
स्वहितविहितकर्म्मा बु(बु)द्धसद्धर्म्ममर्म्मा ॥ ८ ॥
(चीरवे का शिलालेख) ।

(२) मदनः प्रसन्नवदनः सततं कृतदुष्टजनकदनः ॥२७[॥]······॥
श्रीचित्रकूटदुर्गे तलारतां यः पितृक्रमायातां ।
श्रीसमरसिंहराजप्रसादतः प्राप निःपापः ॥३०॥
(चीरवे का शिलालेख) ।

आसावल्ली[1] में पहुंचा। राजा कर्णदेव (गुजरात का राजा करणघेला) भाग गया[2]'। उलगखां को समरसिंह के दंड देने का हाल भी फ़ारसी तवारीखों में नहीं है, और गुजरात की इस विजय के जो सन् उनमें दिये हैं, वे भी परस्पर नहीं मिलते[3], अतएव जिनप्रभसूरि का, जो समरसिंह और उलगखां दोनों का समकालीन था, कथन फ़ारसी तवारीखों से अधिक विश्वास के योग्य है।

अंचलगच्छ की पट्टावली से पाया जाता है कि 'उक्त गच्छ के आचार्य अमितसिंहसूरि के उपदेश से रावल समरसिंह ने अपने राज्य में जीवहिंसा रोक दी थी[4]।' समरसिंह की माता जयतल्लदेवी को जैन धर्म पर श्रद्धा थी अतः उसके आग्रह से या उक्त सूरि के उपदेश से उसने ऐसा किया हो, यह संभव है। हिन्दू राजा अपनी प्रजा के सब धर्मों के सहायक होते ही थे।

रावल समरसिंह के राजत्वकाल के शिलालेख नीचे लिखे अनुसार मिले हैं—

(१) चीरवे का शिलालेख—यह वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) कार्तिक सुदि १ का है, जो उस गांव (उदयपुर से ८ मील उत्तर में) के नये मंदिर की

---

(१) आसावल्ली या आसावल गांव अहमदाबाद के पास था। गुजरात के सोलंकी राजा कर्ण (सिद्धराज जयसिंह के पिता) ने आसावल के भील राजा आसा को जीतकर अपने नाम से वहां पर कर्णावती नगरी बसाई थी, ऐसा प्रसिद्ध है।

(२) *अह तेरसयछप्पन्नविक्कमवरिसे अल्लावदीणसुरताणस्स कणिट्ठो भाया उलूखाननामधिज्जो ढिल्लीपुराओ मंतिमाहवपेरिओ गुज्जरधरं पट्ठिओ। चित्तकूडाहिवई समरसीहेणं दंडं दाउं मेवाडदेसो तया रक्खिओ। तओ हम्मीरजुवराओ बग्गडदेसं मुहडासयाइं नयराणि य भंजिय आसावल्लीए पत्तो। कण्णदेवराओ अनट्ठो॥*

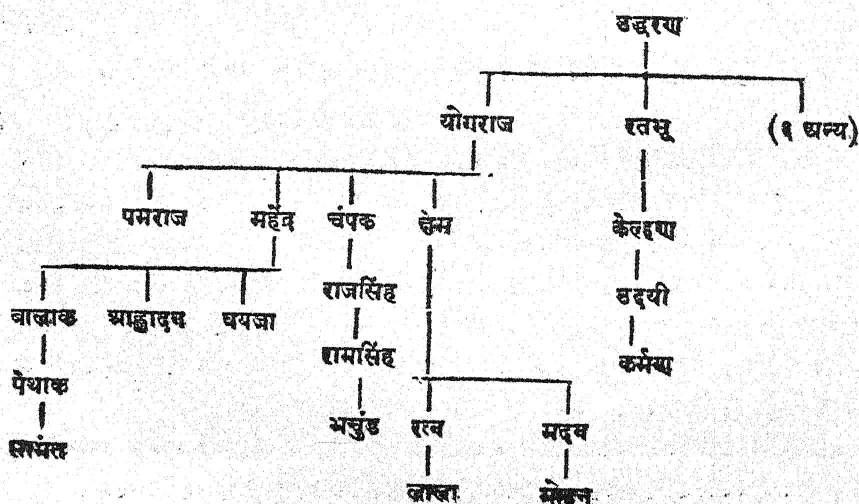
('तीर्थकल्प' में सत्यपुरकल्प, पृ० ९५)।

(३) 'मिराते अहमदी' में हि० स० ६९६ (वि० सं० १३५३-५४=ई० स० १२९६-९७) में (बेले; गुजरात, पृ० ३७), 'ताज़ियतुल अम्सार' में ज़िलहिज्ज हि० स० ६९८ (वि० सं० १३५६ भाद्रपद-आसोज=ई० स० १२९९ सितम्बर) में (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ३, पृ० ४२-४३), 'तारीख़े अलाई' और 'तारीख़े फ़ीरोज़शाही' में हि० स० ६९८ (वि० सं० १३५६=ई० स० १२९९-महीना नहीं दिया) में (वही; पृ० ७४, १६३), और 'तारीख़ फ़िरिश्ता' में हि० स० ६९७ (वि० सं० १३५४-५५=ई० स० १२९७-९८) में (ब्रिग्ज़ फ़िरिश्ता; जि० १, पृ० ३२७) गुजरात पर चढ़ाई होना लिखा है।

(४) पीटर्सन की पांचवीं रिपोर्ट; ग्रंथकर्ताओं का अंग्रेज़ी में विवरण, पृ० २। उसी की तीसरी रिपोर्ट, विवरण, पृ० ९; और 'विधिपक्षगच्छीयप्रतिक्रमणसूत्र,' पृ० ५०४-१६।

दीवार में बाहर की तरफ़ लगा है। इसमें गुहिलवंशी बप्पक (बापा) के वंशधर पद्मसिंह, जैत्रसिंह, तेजसिंह और समरसिंह का वर्णन कर उन चारों राजाओं के समय के नागदा या चित्तोड़ के, टांटरड (टांटेड़) जाति के तलारक्षों के वंश का विस्तृत वर्णन किया है, जिसके आधार पर उनका वंशवृक्ष नीचे टिप्पण में दिया है[1]। उनमें से जिस-जिसने जिस-जिस राजा की सेवा की, उसका हाल तो उन राजाओं के वर्णन में लिखा जा चुका है; शेष इस तरह मिलता है, कि विप्र का वेष धारण करनेवाले योगराज ने गुहिलवंशी राजा पद्मसिंह की सेवा में रहकर उसकी कृपा से नागह्रद (नागदा) के निकट बड़ी आयवाला चीरकूप (चीरवा) गांव पहले पहल पाया। समृद्धिशाली योगराज ने योगेश्वर (शिव) और योगेश्वरी (देवी) के मंदिर वहां बनवाए। वहीं उद्धरण ने 'उद्धरणस्वामी' नामक विष्णु-मंदिर का निर्माण किया। तलारता के बड़े पाप का विचार कर मदन ने अपना चित्त शिवपूजनादि में लगाया। उसने अपने पूर्वज योगराज के बनवाए हुए शिव और देवी के मंदिरों का उद्धार (जीर्णोद्धार) किया, और कालेलाय (कालेला) सरोवर के पीछे गोचर में से दो दो खेत शिव और देवी के नैवेद्य के लिये भेट किये। जब वह चित्तोड़ में रहता था, उस समय उक्त मंदिरों का अधिष्ठाता एकलिंगजी की आराधना करनेवाला, पाशुपत योगियों का अग्रणी और धर्मनिष्ठ शिवराशि था। अंत में प्रशस्तिकार आदि का हाल इस प्रकार दिया है—

(१) टांटरड जाति के तलारक्षों का वंशवृक्ष—



"चैत्रगच्छ में भद्रेश्वरसूरि के पीछे क्रमशः देवभद्रसूरि, सिद्धसेनसूरि, जिनेश्वरसूरि, विजयसिंहसूरि और भुवनसिंहसूरि हुए। भुवनसिंहसूरि के शिष्य रत्नप्रभसूरि ने चित्तोड़ में रहते समय उस प्रशस्ति (शिलालेख) की रचना की और उनके मुख्य शिष्य विद्वान् पार्श्वचंद्र ने उसको सुंदर लिपि में लिखा। पद्मसिंह के पुत्र केलिसिंह ने उसे खोदा और शिल्पी देल्हण ने तत्संबंधी अन्य कार्य (दीवार में लगाना आदि) किया"[1]। इस लेख में ५१ श्लोक हैं और अंतिम पंक्ति में संवत् गद्य में दिया है।

(२) चित्तोड़ का शिलालेख—यह लेख चित्तोड़ पर महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के बनवाये हुए कीर्तिस्तंभ के निकट महासतियों (श्मशानभूमि) के अहाते के[2] भीतर आमने-सामने लगी हुई दो बड़ी शिलाओं पर खुदा था; अब वहां केवल पहली शिला ही बची है और दूसरी किसी ने वहां से निकाल ली या तोड़ डाली, जिसका कोई पता नहीं चला[3]। पहली शिला की अंतिम पंक्ति में उसके खोदे जाने का संवत्, तथा पहले उसके रचयिता का नाम होने से ही पता चल सका कि यह शिलालेख रावल समरसिंह के राजत्वकाल का है। पहली शिला में बप्प से नरवर्मा तक की वंशावली तथा किसी किसी का कुछ हाल भी दिया है। यह लेख वि० सं० १३३१ (ई० स० १२७४) आषाढ सुदि ३ शुक्रवार का है[4]।

(३) चित्तोड़ का शिलालेख—यह शिलालेख किसी मंदिर के द्वार के एक

---

(१) यह शिलालेख मेरी तैयार की हुई छाप के आधार पर छप चुका है ('विएना ओरिएंटल् जर्नल, जि० २१, पृ० १५५–१६२)।

(२) इस बड़े द्वार के ऊपर के हिस्से में एक छत्री बनी है, जिसको लोग रसिया की छत्री कहते हैं।

(३) दूसरी शिला का स्थान (ताक) विद्यमान है, जिसमें अब शिला नहीं है; उसके ६१वें श्लोक में वेदशर्म्मा कवि के द्वारा उसकी रचना किये जाने का वर्णन है। उससे पहले लिखा है कि 'आगे का वंश-वर्णन दूसरी प्रशस्ति (शिला) से जानना'।

अनंतरवंशवर्णनं द्वितीयप्रशस्तौ वेदितव्यं ॥

भावनगर इन्स्क्रिप्शंस, पृ० ७७।

(४) भावनगर इन्स्क्रिप्शंस, पृ० ७४-७७। क; आ० स. रि; जि० २३, प्लेट २१। इस लेख में तथा आबू के वि० सं० १३४२ (ई० स० १२८५) के शिलालेख में, जो दोनों एक ही कवि के बनाये हुए हैं, प्रथम गुहिल के वंश की प्रशंसा की है, फिर बापा का वर्णन कर उसका पुत्र गुहिल होना बतलाया है, जो उक्त कवि का प्राचीन इतिहास-संबंधी अज्ञान प्रगट करता है।

छबने पर खुदा था, और चित्तोड़ के पुराने महलों के चौक में गड़ा हुआ मिला, जहां से उठवाकर उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में रखवाया गया है। यह वि० सं० १३३५ (ई० स० १२७८) वैशाख सुदि ५ गुरुवार का है। इसमें भर्तृपुरीय (भटेवर) गच्छ के जैनाचार्य के उपदेश से मेवाड़ के राजा तेजसिंह की राणी जयतल्लदेवी के द्वारा श्यामपार्श्वनाथ का मंदिर बनवाने, तथा उस वसही (मंदिर) के पिछले हिस्से में उसी गच्छ के आचार्य प्रद्युम्नसूरि को महाराजकुल (महारावल) समरसिंह की ओर से मठ के लिये भूमि दिये जाने, एवं चित्तोड़ की तलहटी, आघाट (आहाड़), खोहर और सज्जनपुर की मंडपिकाओं (मांडवियों, सायर के महकमों) से उस(वसही)के लिये कई एक द्रम्म, घी, तेल आदि के मिलने की व्यवस्था का उल्लेख है। जिस छबने पर यह लेख खुदा है उसके मध्य में बैठी हुई जिनमूर्त्ति (पार्श्वनाथ की) बनी है, जिससे अनुमान होता है कि वह छबना जयतल्लदेवी के बनवाए हुए श्यामपार्श्वनाथ के मंदिर के द्वार का हो।

(४) आबू का शिलालेख—यह शिलालेख आबू पर अचलेश्वर के मंदिर के पास के मठ में लगा है और वि० सं० १३४२ (ई० स० १२८५) मार्गशीर्ष सुदि १ का है। इसमें बप्प या बप्पक (बापा) से लगाकर समरसिंह तक के मेवाड़ के राजाओं की वंशावली और उनमें से किसी किसी का कुछ वर्णन भी दिया है। फिर आबू का वर्णन करने के उपरान्त लिखा है, कि समरसिंह ने वहां (अचलेश्वर के मंदिर) के मठाधिपति भावशंकर की आज्ञा से उक्त मठ का जीर्णोद्धार करवाया, अचलेश्वर के मंदिर पर सुवर्ण का दंड (ध्वजादंड) चढ़ाया और वहां रहनेवाले तपस्वियों (साधुओं) के भोजन की व्यवस्था की। अंत में उसके रचयिता के विषय में लिखा है कि चित्रकूट(चित्तोड़)-निवासी नागर जाति के ब्राह्मण प्रियपटु के पुत्र उसी वेदशर्मा ने, इस (अचलेश्वर के मठ की) प्रशस्ति की रचना की, जिसने एकलिंग, त्रिभुवन आदि नाम से प्रसिद्ध समाधीश्वर (शिव)

राजा शक्तिकुमार के समय के आटपुर (आहाड़) के वि० सं० १०२८ के शिलालेख में (ना. प्र. प; भाग १, पृ० २४८, टि. १०) तथा रावल समरसिंह के समय के वि० सं० १३३० के चीरवे के शिलालेख में (वही, पृ० २४८, टि. १०) बापा को गुहिल का वंशज कहा है, वही विश्वास के योग्य है। इसी तरह वहीं कवि मेवाड़ के राजाओं की वंशावली में भी कई नाम छोड़ गया है।

और चक्रस्वामी (विष्णु) के मंदिर-समूह की प्रशस्ति[1] बनाई थी। शुभचंद्र ने उसे लिखा और सूत्रधार (शिल्पी) कर्मसिंह ने उसे खोदा[2]। इसमें ६२ श्लोक हैं और अंत में संवत् गद्य में दिया है।

(५) चित्तोड़ का शिलालेख—यह चित्तोड़ से मिले हुए एक स्तंभ पर खुदा है, और इस समय उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में रक्खा हुआ है। इसमें महारावल समरसिंह के समय वि० सं० १३४४ (ई० स० १२८७) वैशाख सुदि ३ के दिन चित्रांग तड़ाग (चित्रांग मोरी के तालाब) पर के वैद्यनाथ के मंदिर को कुछ द्रम्म देने का तथा कायस्थ सांग के पुत्र वीजड़ द्वारा कुछ बनवाये जाने का उल्लेख है[3]। इस स्तंभ में लेख के ऊपरी भाग में शिवलिंग बना है, जो वैद्यनाथ के मंदिर का शिवालय होना प्रकट करता है।

(६) 'कांकरोली रोड़' स्टेशन से अनुमान ८ मील दूर दरीबा गांव की खान के पासवाले माता (मातृकाओं) के मंदिर के एक स्तंभ पर का लेख[4]—इसका आशय यह है कि वि० सं० १३५६ ज्येष्ठ वदि १० के दिन—जब कि समस्त राजावली से अलंकृत महाराजकुल (महारावल) श्रीसमरसिंहदेव मेवाड़ पर राज्य कर रहा था और उसका महामात्य (मुख्य मंत्री) श्री [निम्बा] था—करण और सोहड़ ने उक्त देवी के मंदिर को १६ द्र० (द्रम्म) भेट किये[5]।

---

(१) यह प्रशस्ति चित्तोड़ की महासती के द्वार में लगी है। महासती के अहाते के भीतर कई मंदिर हैं, जिनमें मुख्य समाधीश्वर (समिद्धेश्वर) का प्राचीन और सबसे बड़ा शिवालय है, जो परमार राजा भोज का बनवाया हुआ 'त्रिभुवननारायण' नामक शिवालय ही है। समाधीश्वर (समिद्धेश्वर) नाम पीछे से प्रसिद्ध हुआ। अब लोग उसे मोकलजी का मंदिर कहते हैं, क्योंकि उसका जीर्णोद्धार महाराणा मोकल ने कराया था।

(२) इं० ऐं; जि० १६, पृ० ३४७–५१।

(३) यह लेख अब तक अप्रकाशित है।

(४) इस लेख की छाप ता० १६–८–२६ को राणावत महेंद्रसिंह द्वारा मुझे उदयपुर में प्राप्त हुई।

(५) संवत् १३५६ वर्षे जे(ज्ये)ष्ठ वदि १० शनावद्येह श्रीमेदपाटभूमंडले समस्तराजावलीसमलंकृतमहाराजकुलश्रीसमरसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये.........

(मूल लेख की छाप से)।

(७) चित्तोड़ का शिलालेख—यह चित्तोड़ के किले के रामपोल दरवाज़े के बाहर नीम के वृक्षवाले चबूतरे पर पड़ा हुआ वि० सं० १९७८ में मुझे मिला। इसकी दाहिनी ओर का कुछ अंश टूट जाने से प्रत्येक पंक्ति के अंत में कहीं एक और कहीं दो अक्षर जाते रहे हैं। इसका आशय यह है—'वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०२) माघ सुदि १० के दिन महाराजाधिराज श्रीसमरसिंहदेव के राज्य-समय प्रतिहार (पड़िहार) वंशी महारावत राज० श्री ········ राज० पाता के बेटे राज० (राजपुत्र) धारसिंह ने श्रीभोजस्वामीदेवजगती (राजा भोज के बनवाये हुए मंदिर) में प्रशस्ति-पट्टिका सहित········बनवाया'[1]। यह लेख बिगड़ी हुई दशा में है और कुछ अक्षर भी जाते रहे हैं।

(८) चित्तोड़ का शिलालेख—यह गंभीरी नदी के पुल के १०वें कोठे (महराब) में लगा है और टूटी-फूटी दशा में है। इसमें संवत्‌वाला अंश जाता रहा है। इसका आशय यह है—'रावल समरसिंह ने अपनी माता जयतल्लदेवी के श्रेय के निमित्त श्रीभर्तृपुरीय गच्छ के आचार्यों की पोषधशाला के लिये कुछ भूमि दी। अपनी माता के [बनवाये हुए] मंदिर के लिये उसने कुछ हाट (दुकानें) और बाग़ की भूमि दान की तथा चित्तोड़ की तलहटी एवं सज्जनपुर आदि की मंडपिकाओं (सायर के महकमों) से कुछ द्रम्म दिये जाने की आज्ञा दी। वहीं के सिंहनाद क्षेत्रपाल तथा पद्मावती के लिये भी ऐसे ही दान की व्यवस्था की'[2]।

इन शिलालेखों से इतना तो स्पष्ट है कि वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) से १३५८ (ई० स० १३०२) माघ सुदि १० तक तो रावल समरसिंह जीवित था और इसके पीछे कुछ समय और भी जीवित रहा हो। उसके पीछे उसका

---

(१) ओं ॥ संवत् १३५८ वर्षे माघ शुदि १० दशम्यां·········· महाराजाधिराजश्रीसमरसिंहदे[वक]ल्याणविजयराज्ये तत्पादोपि(प)जीविनि दे······ ······म्मी······ समस्तराज्यधुरां धारय·········प्रतीहारवंशे महारावतराजश्री ········राशाखीय राज० पातासुतराज० धारसिंहेन श्रीभोजस्वामिदेवजगत्यां···· केलिनिर्म्मितप्रशस्तिपट्टिकासहिता ······श्रेयसे कारापिता।

(चित्तोड़ का शिलालेख—अप्रकाशित)।

इस समय यह शिलालेख उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित है।

(२) बंगा० ए० सो० ज; जिल्द ५५, भाग १, पृ० ४७। छपा हुआ बहुत अशुद्ध होने से मैंने उसका सारांश लिखने में मूल पाषाण से सहायता ली है।

पुत्र रत्नसिंह राजा हुआ, जो अलाउद्दीन खिलजी के साथ की चित्तोड़ की लड़ाई में वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में मारा गया, इसलिये समरसिंह का देहान्त वि० सं० १३५९ में होना चाहिये[1]।

समरसिंह के दूसरे पुत्र कुंभकर्ण के वंश में नेपाल के राजाओं का होना माना जाता है (देखो ऊपर पृ० ३९१-९२)।

रत्नसिंह

रावल समरसिंह के पीछे उसका पुत्र रत्नसिंह चित्तोड़ की गद्दी पर बैठा। उसको शासन करते थोड़े ही महीने हुए थे, इतने में दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तोड़ पर आक्रमण कर दिया और ६ महीने से अधिक लड़ने के अनन्तर उसने क़िला ले लिया। मेवाड़ की कुछ ख्यातों, राजप्रशस्ति महाकाव्य और कर्नल टॉड के राजस्थान में तो रत्नसिंह का नाम तक नहीं दिया। समरसिंह के बाद करणसिंह का राजा होना लिखा है[2], परन्तु करणसिंह (कर्ण, रणसिंह) समरसिंह के पीछे नहीं, किन्तु उससे ८ पीढ़ी पहले हुआ था, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। मुहणोत नैणसी अपनी ख्यात में लिखता है कि

(१) कर्नल टॉड ने वि० सं० १२०६ (ई० स० ११४९) में समरसी (समरसिंह) का जन्म, प्रसिद्ध चौहान पृथ्वीराज की बहिन (पृथा) से उसका विवाह, तथा अपने साले पृथ्वीराज की सहायतार्थ वि० सं० १२४९ (ई० स० ११९२) में शहाबुद्दीन ग़ोरी के साथ की लड़ाई में मारा जाना लिखा है (टॉ; रा; जि० १, पृ० २९७-३०४), जो सर्वथा असंभव है; क्योंकि पृथ्वीराज वि० सं० १२४९ (ई० स० ११९२) में मारा गया, और समरसिंह का देहान्त वि० सं० १३५९ (ई० स० १३०२) में हुआ—ये दोनों बातें निश्चित हैं। कर्नल टॉड ने पृथ्वीराज रासे के आधार पर समरसिंह का हाल लिखा और पृथ्वीराज की मृत्यु के ठीक संवत् को समरसिंह की मृत्यु का संवत् मान लिया, परन्तु पृथ्वीराज रासा वि० सं० १६०० के आसपास का बना हुआ होने एवं इतिहास के लिये सर्वथा निरुपयोगी होने के कारण, उसके आधार पर लिखा हुआ कर्नल टॉड का समरसिंह की मृत्यु का समय किसी प्रकार मान्य नहीं हो सकता। पृथाबाई के साथ मेवाड़ के किसी राजा के विवाह होने की कथा की यदि कोई जड़ हो, तो यही माना जा सकता है कि अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीभट, न कि प्रसिद्ध पृथ्वीराज तीसरे) की बहिन पृथा के साथ मेवाड़ के राजा समतसी (सामंतसिंह, न कि समरसी=समरसिंह) का विवाह हुआ हो, जैसा ऊपर लिखा गया है (देखो, ऊपर पृ० ४५७-५८)।

(२) ना. प्र. प; भाग १, पृ० १६। टॉ; रा; जि० १, पृ ३०४।

'रतनसी' (रत्नसिंह) पद्मणी (पद्मिनी) के मामले में अलाउद्दीन से लड़कर काम आया[1]; परन्तु वह रत्नसिंह को एक जगह तो समरसी (समरसिंह) का पुत्र और दूसरी जगह अजैसी (अजयसिंह) का पुत्र और भड़लखमसी (लक्ष्मसिंह) का भाई बतलाता है, जिनमें से पिछला कथन विश्वास-योग्य नहीं है, क्योंकि लखमसी अजैसी का पुत्र नहीं, किन्तु पिता और सीसोदे का सरदार था। इस प्रकार रत्नसिंह लखमसी का भाई नहीं, किन्तु मेवाड़ का स्वामी और समरसिंह का पुत्र था, जैसा कि राणा कुंभकर्ण के समय के वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) के कुंभलगढ़ के शिलालेख और एकलिंगमाहात्म्य से पाया जाता है। इन दोनों में यह भी लिखा है कि समरसिंह के पीछे उसका पुत्र रत्नसिंह राजा हुआ। उसके मारे जाने पर लक्ष्मसिंह चित्तोड़ की रक्षार्थ म्लेच्छों (मुसलमानों) का संहार करता हुआ अपने सात पुत्रों सहित मारा गया[2]।

---

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ३, पृ० २।

(२) मुहणोत नैणसी लखमसी का अपने ११ पुत्रों सहित अलाउद्दीन के साथ की लड़ाई में मारा जाना लिखता है (वही; पत्र ३, पृ० २), परंतु कुंभलगढ़ की प्रशस्ति और एकलिंगमाहात्म्य दोनों नैणसी से अनुमान २०० वर्ष पूर्व के होने से अधिक विश्वास के योग्य हैं।

स (=समरसिंहः) रत्नसिंहं तनयं नियुज्य
स्वचित्रकूटाचलरक्षणाय ।
महेशपूजाहतकल्मषौघः
इलापतिस्स्वर्गपतिर्बभूव ॥१७६॥
षुं(खुं)माणवंशः(श्यः) खलु लक्ष्मसिंह-
स्तस्मिन् गते दुर्गवरं ररक्ष ।
कुलस्थितिं कापुरुषैर्विमुक्तां
न जातु धीराः पुरुषास्त्यजंति ॥ १७७ ॥······॥१७८॥
इत्थं म्लेच्छक्षयं कृत्वा संख्ये······नृपः ।
चित्रकूटाचलं रक्षन् शस्त्रपूतो दिवं ययौ ॥१७९॥
अर्चिभिः किमु सप्तभिः परिवृतः सप्तार्चिरत्रागतः
किं वा सप्तभिरेव सप्तिभिरि[हायात्स]प्तसप्तिर्दिवं ।

उदयपुर राज्य से प्राप्त प्राचीन सामग्री से तो, कुंभलगढ़ के लेख से जो अवतरण दिया है उससे अधिक इस लड़ाई का कुछ भी वृत्तान्त नहीं मिलता, इसलिये फ़ारसी तवारीख़ों से इसका विवरण नीचे उद्धृत किया जाता है—

अमीर ख़ुसरो, जो इस लड़ाई में सुलतान के साथ था, अपनी 'तारीख़-इ-अलाई' में लिखता है—'सोमवार ता० ८ जमादि-उस्सानी हि० स० ७०२ (वि० सं० १३५९ माघ सुदि ९=ता० २८ जनवरी ई० स० १३०३) को सुलतान अलाउद्दीन चित्तोड़ लेने के लिये दिल्ली से रवाना हुआ। ग्रन्थकर्ता (अमीर ख़ुसरो) भी इस चढ़ाई में साथ था। सोमवार ता० ११ मुहर्रम हि० स० ७०३ (वि० सं० १३६० भाद्रपद सुदि १४=ता० २६ अगस्त ई० स० १३०३) को क़िला फ़तह हुआ। राय (राजा) भाग गया, परन्तु पीछे से स्वयं शरण में आया, और तलवार की बिजली से बच गया। हिन्दू कहते हैं कि जहां पीतल का बरतन होता है वहीं बिजली गिरती है, और राय (राजा) का चेहरा डर के मारे पीतल-सा पीला पड़ गया था'।

'तीस हज़ार हिन्दुओं को क़त्ल करने की आज्ञा देने के पश्चात् उस (सुलतान)ने चित्तोड़ का राज्य अपने पुत्र खिज़रख़ां को दिया और उस(चित्तोड़)का नाम खिज़राबाद रक्खा। सुलतान ने उस(खिज़रख़ां)को लाल छत्र, ज़रदोज़ी ख़िलअत और दो झंडे—एक हरा और दूसरा काला—दिये और उसपर लाल तथा पन्ने न्यौछावर किये; फिर वह दिल्ली को लौटा। ईश्वर का धन्यवाद है कि सुलतान ने हिन्द के जो राजा (या सरदार) इस्लाम को नहीं मानते थे, उन सबको अपनी काफ़िरों (विधर्मियों) को क़त्ल करनेवाली तलवार से मार डालने का हुक्म दिया। यदि कोई अन्य मतावलंबी अपने लिये जीने का दावा करता, तो भी सच्चे सुन्नी ईश्वर के इस ख़लीफ़ा के नाम की शपथ खाकर यही

इत्थं सप्तभिरन्वितः सुतवरैस्तै(स्तैः) शस्त्रपूतै(तैः) सह
प्राप्ते बुद्धिरभूत्सुपर्वनृपतेः श्रीलक्ष्मसिंहे नृपे ॥१८०॥

(कुंभलगढ़ का शिलालेख—अप्रकाशित)।

ये श्लोक 'एकलिंगमाहात्म्य' में भी उद्धृत किये हुए हैं-(राजवर्णन अध्याय, श्लोक ६१ और ७७-८०)। कुंभलगढ़ के शिलालेख का कुछ अंश नष्ट हो गया है, जिससे नष्ट हुए अक्षरों की पूर्ति 'एकलिंगमाहात्म्य' से की गई है।

कहते कि विधर्मी को ज़िन्दा रहने का हक्क नहीं है"[1]।

ज़िया बर्नी अपनी 'तारीख़े फ़ीरोज़शाही' में लिखता है—'सुलतान अलाउद्दीन ने चित्तोड़ को घेरा और थोड़े ही अर्से में उसे अधीन कर लिया। घेरे के समय चातुर्मास में सुलतान की फ़ौज को बड़ी हानि पहुँची"[2]।

'तारीख़ फ़िरिश्ता' में लिखा है—'सुलतान अलाउद्दीन चित्तोड़ को रवाना हुआ, इस क़िले पर पहले मुसलमानों की फ़ौज का हमला कभी नहीं हुआ था। छः महीने तक घेरा रहने के बाद हि० स० ७०३ (वि० सं० १३६०=ई० स० १३०३) में क़िला फ़तह हुआ। सुलतान ने वहां का राज्य अपने सबसे बड़े बेटे खिज़्र-ख़ां को दिया, जिसके नाम से वह (क़िला) खिज़्राबाद कहलाया। साथ ही सुलतान ने राज्य-चिह्न देकर उसको अपना युवराज (उत्तराधिकारी) नियत किया[3]'। फ़िरिश्ता का यह कथन 'तारीख़े अलाई' से उद्धृत किया हुआ प्रतीत होता है।

पद्मिनी की कथा

रत्नसिंह की मुख्य राणी पद्मिनी थी, जिसके सुविशाल प्राचीन महल चित्तोड़गढ़ में एक तालाब के तट पर बड़े ही रमणीय स्थान में बने हुए हैं। एक छोटासा दुमंज़िला महल उक्त तालाब के भीतर भी बना है। ये महल बहुत ही जीर्ण हो गये थे, जिससे महाराणा सज्जनसिंह ने इनका जीर्णोद्धार करवाया। ये महल अब तक लोगों में 'पदमणी' के नाम से प्रसिद्ध हैं, और वह तालाब अब तक 'पदमणी (पद्मिनी) का तालाब' कहलाता है। मलिक मुहम्मद जायसी ने—दिल्ली के सुलतान शेरशाह सूर के समय—हि० स० ६४७[4] (वि० सं० १५६७=ई० स० १५४०) में 'पदमावत' नामक हिन्दी

(१) इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ३, पृ० ७६–७७।

(२) वही; जि० ३, पृ० १८६।

(३) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० १, पृ० ३५३–५४।

(४) लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस की छपी हुई 'पद्मावत' में उसके बनने का समय हि० स० ६२७ (वि० सं० १५७८=ई० स० १५२१) छपा है (*सन नवसै सत्ताईस अहै*, पृ० ११), जो अशुद्ध है; क्योंकि उसमें उस समय दिल्ली का सुलतान शेरशाह होना लिखा है (*शेरशाह देहली सुलतानू चारहु खंड तपै जस भानू*—पृ० ६), और शेरशाह ता० १० मुहर्रम हि० स० ६४७ (वि० सं० १५६७ ज्येष्ठ सुदि १२=ता० १७ मई ई० स० १५४०) के दिन कन्नौज की लड़ाई में हुमायूं बादशाह को हराकर दिल्ली की सल्तनत का मालिक हुआ

काव्य की रचना की, जिसका आशय यह है—'सिंहल द्वीप (लंका) में गंध्रवसेन (गंधर्वसेन) नामक राजा था। उसकी पटरानी चंपावती से पद्मिनी या पद्मावती नामक अत्यंत रूपवती एवं गुणवती कन्या उत्पन्न हुई; उसके पास हीरामन नाम का एक सुशिक्षित और चतुर तोता था। एक दिन वह पिंजरे से उड़ गया और एक व्याध ने उसे पकड़ कर किसी ब्राह्मण के हाथ बेचा। उस समय चित्तोड़ में राजा चित्रसेन का पुत्र रतनसेन (रत्नसिंह) राज्य करता था, जिसको वह तोता ब्राह्मण ने एक लाख रुपये में बेच दिया। रतनसेन की पटरानी नागमती ने एक बार शृंगार किया और अपने रूप के घमंड में आकर तोते से पूछा, क्या मेरे जैसी सुंदरी जगत् में कोई है? इसपर तोते ने हँसकर कहा कि जिस सरोवर में हंस नहीं आया, वहां बगुला भी हंस कहलाता है। फिर तोते के मुख से पद्मिनी के रूप-गुण आदि का वर्णन सुनने पर राजा रतनसेन उसपर इतना आसक्त हो गया, कि उसके लिये योगी बनकर सिंहल को चला। अनेक राजकुमार भी चेले बनकर उसके साथ हो लिये और उसने तोते को भी अपने साथ रख लिया। विविध संकट सहता हुआ प्रेममुग्ध राजा सिंहल में पहुंचा। तोते ने पद्मावती के पास जाकर अपने पकड़े जाने तथा राजा रतनसेन के यहां बिकने का सारा वृत्तान्त कहते हुए चित्तोड़ के राजवंश के बड़े महत्त्व एवं राजा रतनसेन के रूप, कुल, ऐश्वर्य, तेज आदि की बहुत कुछ प्रशंसा करके कहा कि तुम्हारे लिये सब प्रकार से योग्य वर वही है और तुम्हारे प्रेम में योगी होकर वह यहां आ पहुंचा है। रूप आदि का वर्णन सुनने से पद्मिनी उसपर मोहित हो गई। वसंतपंचमी के दिन बन-ठनकर विश्वेश्वर की पूजा के लिये वह अपनी सखियों सहित शिवमंदिर में गई, जहां उसने योगी का भेष धारण किये हुए रतनसेन को देखा। इस प्रकार दोनों में चार आँखें होते ही रतनसेन मूर्छित होकर गिर पड़ा और पद्मिनी ने उसी को अपना पति ठान लिया। दोनों एक दूसरे से मिलने को आतुर थे, परंतु उसके लिये कोई साधन न था। एक दिन रतनसेन सेंध लगाकर किले में पहुंच गया और

था। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी के पद्मावत के कलकत्ता-वाले संस्करण में हि० सन् ६४७ छपा है (*सन नउ सइँतालिस अहे, कथा अरंभ बयन कवि कहे*—पृ० ३९), वही ठीक है। उक्त पुस्तक में पाठांतरों के विवेचन में यह भी लिखा है कि अधिक प्रतियों में सन् ६४७ ही मिलता है।

वहां पकड़ा जाने पर उसे सूली पर चढ़ाने की आज्ञा हुई; परंतु जब राजा गंधर्व-सेन को सारा हाल मालूम हुआ, तब उसने अपनी कुमारी का विवाह बड़ी धूमधाम से रतनसेन के साथ कर दिया। रतनसेन पद्मिनी के प्रेम से वशीभूत होकर कुछ काल तक वहीं भोगविलास में लिप्त रहा।

चित्तोड़ में पटरानी नागमती उसके वियोग से दुखी हो रही थी; जब उसने अपनी विरह-व्यथा का सन्देश एक पक्षी के द्वारा रतनसेन के पास पहुंचाया, तब उसको चित्तोड़ का स्मरण हुआ। फिर वह वहां से बिदा होकर अपनी रानी सहित चला और समुद्र के भयंकर तूफ़ान आदि आपत्तियां उठाता हुआ अपनी राजधानी को लौटा। राघवचेतन नामक एक विद्वान् ब्राह्मण, जो जादू-टोने में कुशल था, राजा के पास आ रहा। एक दिन उसकी जादूगरी का भेद खुल जाने पर राजा ने उसे अपने देश से निकालने की आज्ञा दी। एक विद्वान् के लिये ऐसी आज्ञा का होना पद्मिनी को अच्छा न लगा अतः उसने राघव को कुछ दक्षिणा देने की इच्छा से अपने महल के नीचे बुलाया और झरोखे से अपने हाथ का एक कंगन निकालकर नीचे डाल दिया। पद्मिनी का रूप देखते ही राघव वहीं मूर्छित हो गया और चेतना आने पर सीधा देहली (दिल्ली) पहुंचा। उसने सुलतान अलाउद्दीन के पास जाकर पद्मिनी के अलौकिक सौंदर्य की प्रशंसा की, जिससे प्रसन्न होकर उस लंपट सुलतान ने उसको बहुत कुछ इनाम दिया। उसी क्षण से सुलतान का चित्त पद्मिनी के लिये व्याकुल होने लगा, और उसने सुरजा नामक दूत के द्वारा रतनसेन के नाम पत्र भेजकर लिखा कि पद्मिनी हमें दे दो। उसे देखते ही राजा को प्रचंड क्रोध हुआ और दूत को वहां से निकाल दिया। इसपर सुलतान ने विशाल सैन्य सहित चित्तोड़ पर चढ़ाई कर दी। उधर रतनसेन ने भी अपने अनेक राजवंशी सामंतों को बुलाकर लड़ने की तैयारी की। सुलतान ने चित्तोड़ को घेरा और आठ बरस तक लड़ने पर भी क़िला हाथ न आया। इतने में दिल्ली से लिखित सूचना आई कि शत्रु ने पश्चिम से हमला कर थाने उठा दिये हैं और राज्य जाने वाला है[1]। यह खबर पाकर सुलतान की चिंता और भी बढ़ी, जिससे उसने कपटपूर्वक राजा से कहलाया कि हम आपसे मेल

(१) यह चढ़ाई मुग़लों की थी। तारीख़े फ़ीरोज़शाही से पाया जाता है कि 'तर्घी नामक मुग़ल तीस-चालीस हज़ार सवारों के साथ लूटमार करता हुआ आया और जमना के किनारे उसने डेरा डाला। ऐसे समय में सुलतान चित्तोड़ से लौटा और चित्तोड़ के घेरे में फ़ौज की जो बड़ी बरबादी

कर लौटना चाहते हैं, पद्मिनी नहीं मांगते। इसपर विश्वास कर राजा ने उसका चित्तोड़ में आतिथ्य किया। सुलतान चित्तोड़ की अनुपम शोभा, समृद्धि तथा जलाशय के मध्य बने हुए पद्मिनी के महल आदि को देखकर स्तब्ध-सा हो गया। गोरा और बादल नामक दो वीर सामंतों ने राजा को सचेत किया कि सुलतान ने छल पर कमर कसी है, परंतु उसको उनके कथन पर विश्वास न आया। राजमंदिर की असंख्य रूपवती दासियों को देखकर सुलतान ने राघव से पूछा कि इनमें पद्मिनी कौनसी है। राघव ने उत्तर दिया कि ये तो पद्मिनी की सेवा करनेवाली दासियां हैं। भोजन से निवृत्त होकर सुलतान और राजा दोनों शतरंज खेलने लगे। सुलतान के सामने एक दर्पण रक्खा हुआ था, जिसमें एक झरोखे में आई हुई पद्मिनी का प्रतिबिंब देखते ही सुलतान खेलना तो भूल गया और उसकी दशा कुछ और ही हो गई; रात भर वह वहीं रहा। दूसरे दिन राजा के प्रति अत्यन्त स्नेह बतलाकर वह वहां से बिदा हुआ, तो राजा भी उसे पहुंचाने को चला। प्रत्येक पोल (द्वार) पर सुलतान राजा को भेंटें देता गया, इस प्रकार सातवीं पोल के बाहर निकलते ही उसने अचानक राजा को पकड़ लिया। फिर उसके पैरों में बेड़ी, हाथों में हथकड़ी और गले में जंजीर डालकर वह उसको देहली ले गया और कहा कि क़ैद से छूटना चाहते हो, तो पद्मिनी को दे दो; राजा ने इसका कुछ भी उत्तर न दिया। उस समय कुंभलनेर (कुंभलगढ़) के राजा देवपाल ने, जो रतनसेन का शत्रु था,—रतनसेन के क़ैद होने के समाचार सुनने पर उससे अपने वैर का बदला लेने की इच्छा से,—एक वृद्ध ब्राह्मणी दूती को पद्मिनी के पास भेजकर, उसके सतीत्व को नष्ट करने के लिये उसे अपने यहां बुलवाने का उद्योग किया। उसने पद्मिनी के पास जाकर उसकी दीन दशा पर खेद प्रकट किया। फिर वह उससे स्नेह बढ़ाती गई, परंतु अपना स्वार्थ सिद्ध करने की कुछ चेष्टा करते ही पद्मिनी ने उसका आंतरिक अभिप्राय जान लिया, जिससे नाक-कान कटवाकर उसका काला मुंह कराया और गधे पर बिठलाकर उसे वहां से निकलवा दिया। उधर सुलतान ने भी जब पद्मिनी को प्राप्त करने का कोई उपाय न देखा, तब एक अत्यन्त रूपवती एवं

हुई थी उसको ठीक करने का समय भी नहीं रहा था' (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ३, पृ० १८६)।

प्राप्तयौवना वेश्या के द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध करने का उपाय सोचा। वह (वेश्या) बदन पर कंथा और विभूति, सिर पर जटा, कंधे पर मृगछाला, गले में माला, कानों में मुद्रा, हाथ में त्रिशूल और पैरों में खड़ाऊँ धारण कर खासी योगिन बन गई और सिंगी-नाद करती हुई चित्तोड़ पहुंची। पद्मिनी ने उसका वर्णन सुनकर उसे अपने पास बुलवाया और पूछा कि इस तरुण अवस्था में यह भेष क्यों धारण करना पड़ा। उसने उत्तर दिया कि मेरा पति मुझे छोड़कर विदेश को चला गया है, जिसके वियोग में योग धारण कर उसी की तलाश में जगह जगह भटक रही हूं। मैंने ६४ तीर्थों में भी उसको हेरा, उसी के लिये देहली भी गई, जहां राजा रतनसेन को क़ैदखाने में धूप से दुःख पाता हुआ भी देखा, परंतु मेरा पति कहीं न मिला। राजा के दुःख की बात सुनते ही पद्मिनी ने उस योगिन का अनुकरण करना विचारा, और गोरा तथा बादल नाम के अपने दो वीर सामंतों को बुलाकर अपना अभिप्राय उनसे प्रकट किया, जिसपर उन्होंने यह सम्मति दी कि जैसे सुलतान ने छल से राजा को पकड़ा है, वैसे ही छल से उसे छुड़ाना चाहिये। फिर उन्होंने १६०० डोलियों में पद्मिनी की सहेलियों के भेष में वीर राजकुमारों को बिठलाया और पद्मिनी सहित वे दलबल के साथ देहली को चले। वहां पहुंचते ही सुलतान के पास खबर पहुंचाई कि पद्मिनी यहां आ गई है, और आपसे अर्ज़ कराती है कि एक घड़ी के लिये आज्ञा हो जाय, तो चित्तोड़ के ख़ज़ाने आदि की कुंजियां राजा को सम्हलाकर हाज़िर होती हूं। सुलतान ने खुशी से इसे स्वीकार किया। रानी के साथ के लोहार ने राजा की बेड़ियां काट दीं। राजा तुरंत घोड़े पर सवार हुआ और रानी अपने दलबल सहित बलपूर्वक नगर के बाहर निकल गई। सुलतान ने इस तरह दग़ा होने के समाचार पाते ही उनको पकड़ने के लिये अपनी सेना भेजी। बादल ने राजा और रानी के साथ चित्तोड़ की राह ली और गोरा पीछा करनेवाली सुलतान की सेना को रोकने के लिये कई वीरों सहित मार्ग में ठहर गया। सुलतान की सेना के वहां पहुंचते ही दोनों के बीच घोर युद्ध हुआ, जिसमें कई योद्धे हताहत हुए और गोरा भी वीरगति को प्राप्त हुआ। बादल ने राजा और रानी के साथ चित्तोड़ में प्रवेश किया, जहां इस हर्ष का बड़ा उत्सव मनाया गया। फिर रानी के मुख से देवपाल की दुष्टता का हाल सुनने पर राजा ने कुंभलनेर (कुंभलगढ़) पर चढ़ाई कर दी। वहां देवपाल से युद्ध हुआ, जिसमें

देवपाल मारा गया और रतनसेन उसके हाथ की सांग से घायल होकर चित्तोड़ को लौटा, जहां बादल पर क़िले की रक्षा का भार छोड़ स्वर्ग को सिधारा। पद्मिनी और नागमती दोनों राजा के साथ सती हुईं। इतने में सुलतान भी चित्तोड़ आ पहुंचा; बादल उससे लड़ा, परंतु अंत में क़िला बादशाह के हाथ आया और वहां पर इस्लाम का झंडा खड़ा हुआ[1]।

कथा की समाप्ति में जायसी ने इस सारी कथा को एक रूपक बतलाकर लिखा है—'इस कथा में चित्तोड़ शरीर का, राजा (रतनसेन) मन का, सिंहल द्वीप हृदय का, पद्मिनी बुद्धि की, तोता मार्गदर्शक गुरु का, नागमती संसार के कामों की, राघव शैतान का और सुलतान अलाउद्दीन माया का सूचक है; जो इस प्रेम-कथा को समझ सकें, वे इसे इसी दृष्टि से देखें''।

इतिहास के अभाव में लोगों ने 'पद्मावत' को ऐतिहासिक पुस्तक मान लिया, परन्तु वास्तव में वह आजकल के ऐतिहासिक उपन्यासों की-सी कविताबद्ध कथा है, जिसका कलेवर इन ऐतिहासिक बातों पर रचा गया है कि रतनसेन (रत्नसिंह) चित्तोड़ का राजा, पद्मिनी या पद्मावती उसकी राणी और अलाउद्दीन दिल्ली का सुलतान था, जिसने रतनसेन (रत्नसिंह) से लड़कर चित्तोड़ का क़िला छीना था। बहुधा अन्य सब बातें कथा को रोचक बनाने के लिये कल्पित खड़ी की गई हैं; क्योंकि रत्नसिंह एक बरस भी राज्य करने नहीं पाया, ऐसी दशा में योगी बनकर उसका सिंहल द्वीप (लंका) तक जाना और वहां की राजकुमारी को ब्याह लाना कैसे संभव हो सकता है? उसके समय सिंहल द्वीप का राजा गंधर्वसेन नहीं, किन्तु राजा कीर्तिनिश्शंकदेव पराक्रमबाहु (चौथा) या भुवनेकबाहु (तीसरा) होना चाहिये[2]। सिंहल द्वीप में गंधर्वसेन नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ[3]। उस समय तक कुंभलनेर (कुंभलगढ़) आबाद भी नहीं हुआ था, तो देवपाल वहां का राजा कैसे माना जाय? अलाउद्दीन ८ बरस तक चित्तोड़ के लिये लड़ने के बाद निराश होकर दिल्ली को नहीं लौटा, किन्तु अनुमान

---

(१) पद्मावत की कथा बहुत ही रोचक और विस्तृत है, और प्रत्येक बात का वर्णन कवि ने बड़ी खूबी के साथ विस्तारपूर्वक किया है। ऊपर उसका सारांशमात्र लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस की छपी हुई पुस्तक से उद्धृत किया गया है।

(२) डफ़; क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इंडिया; पृ० ३२१।

(३) वही; पृ० ३१८–२२।

छः महीने लड़कर उसने चित्तोड़ ले लिया था; वह एक ही बार चित्तोड़ पर चढ़ा था, इसलिये दूसरी बार आने की कथा कल्पित ही है।

'पद्मावत' बनने के ७० वर्ष पीछे मुहम्मद क़ासिम फ़िरिश्ता ने अपनी पुस्तक 'तारीख़ फ़िरिश्ता' लिखी। उस समय पद्मावत की कथा लोगों में प्रसिद्धि पा चुकी थी। फ़िरिश्ता ने उससे भी कुछ हाल लिया हो, ऐसा अनुमान होता है; क्योंकि चित्तोड़ की चढ़ाई का जो हाल ऊपर फ़िरिश्ता से उद्धृत किया गया है, उसमें तो रतनसेन (रत्नसिंह) का नाम तक नहीं है। फिर और कई घटनाओं का वर्णन करने के बाद हि० स० ७०४ (वि० सं० १३६१=ई० स० १३०४) के प्रसंग में वह लिखता है—'इस समय चित्तोड़ का राजा राय रतन-सेन—जो, सुलतान ने उसका किला छीना तब से क़ैद था—अद्भुत रीति से भाग गया। अलाउद्दीन ने उसकी एक लड़की के अलौकिक सौंदर्य और गुणों का हाल सुनकर उससे कहा कि यदि तू अपनी लड़की मुझे सौंप दे, तो तू बंधन से मुक्त हो सकता है। राजा ने, जिसके साथ क़ैदख़ाने में सख़्ती की जाती थी, इस कथन को स्वीकार कर अपनी राजकुमारी को सुलतान को सौंपने के लिये बुलाया। राजा के कुटुंबियों ने इस अपमानसूचक प्रस्ताव को सुनते ही अपने वंश के गौरव की रक्षा के लिये राजकुमारी को विष देने का विचार किया, परन्तु उस राजकुमारी ने ऐसी युक्ति निकाली, जिससे वह अपने पिता को छुड़ाने तथा अपने सतीत्व की रक्षा करने को समर्थ हो सकती थी। तदनंतर उसने अपने पिता को लिखा, कि आप ऐसा प्रसिद्ध कर दें कि मेरी राजकुमारी अपने सेवकों सहित आ रही है और अमुक दिन दिल्ली पहुंच जायगी। इसके साथ उसने राजा को अपनी युक्ति से भी परिचित कर दिया। उसकी युक्ति यह थी, कि अपने वंश के राजपूतों में से कई एक को चुनकर डोलियों में सुसज्जित बिठला दिया, और राजवंश की स्त्रियों की रक्षा के योग्य सवारों तथा पैदलों के दलबल के साथ वह चली। उसने अपने पिता के द्वारा सुलतान की आज्ञा भी प्राप्त कर ली थी, जिससे उसकी सवारी बिना रोक-टोक के मंज़िल-दरमंज़िल दिल्ली पहुंची। उस समय रात पड़ गई थी, सुलतान की ख़ास परवानगी से उसके साथ की डोलियां क़ैदख़ाने में पहुंचीं और वहां के रक्षक बाहर निकल आये। भीतर पहुंचते ही राजपूतों ने डोलियों से निकल अपनी तलवारें सम्हालीं और सुलतान के सेवकों को मारने के पश्चात् राजा सहित वे तैयार रक्खे हुए

घोड़ों पर सवार होकर भाग निकले। सुलतान की सेना आने न पाई, उसके पहले ही राजा अपने साथियों सहित शहर से बाहर निकल गया और भागता हुआ अपने पहाड़ी प्रदेश में पहुंच गया, जहां उसके कुटुंबी छिपे हुए थे। इस प्रकार अपनी चतुर राजकुमारी की युक्ति से राजा ने क़ैद से छुटकारा पाया, और उसी दिन से वह मुसलमानों के हाथ में रहे हुए [अपने] मुल्क को उजाड़ने लगा। अंत में सुलतान ने चित्तोड़ को अपने अधिकार में रखना निरर्थक समझ खिज़रखां को हुक्म दिया कि क़िले को खाली कर उसे राजा के भानजे (मालदेव सोनगरा) के सुपुर्द कर दे"।

ऊपर लिखी हुई पद्मावत की कथा से फ़िरिश्ता के इस कथन की तुलना करने पर स्पष्ट हो जायगा कि इसका मुख्य आधार वही कथा है। फ़िरिश्ता ने उसमें कुछ कुछ घटाबढ़ी कर ऐतिहासिक रूप में उसे रख दिया है और पद्मिनी को राणी न कहकर बेटी बतलाया है। फ़िरिश्ता का यह लेख हमें तो प्रामाणिक मालूम नहीं होता। प्रथम तो पद्मिनी के दिल्ली जाने की बात ही निर्मूल है; दूसरी बात यह भी है कि अलाउद्दीन जैसे प्रबल सुलतान की राजधानी की क़ैद से भागा हुआ रत्नसिंह बच जाय तथा मुल्क को उजाड़ता रहे, और सुलतान उसको सहन कर अपने पुत्र को चित्तोड़ खाली करने की आज्ञा दे दे, यह असंभव प्रतीत होता है। हि० स० ७०४ (वि० सं० १३६१=ई० स० १३०४) में खिज़रखां के क़िला छोड़ने और मालदेव को देने की बात भी निर्मूल है, जैसा कि हम आगे बतलावेंगे।

कर्नल टॉड ने पद्मिनी के संबंध में जो लिखा है उसका सारांश यह है—'वि० सं० १३३१ (ई० स० १२७४) में लखमसी (लक्ष्मणसिंह) चित्तोड़ की गद्दी पर बैठा। उसके बालक होने के कारण उसका चाचा भीमसी (भीमसिंह) उसका रक्षक बना। भीमसी ने सिंहल द्वीप (सीलोन, लंका) के राजा हमीरसिंह चौहान की पुत्री पद्मिनी से विवाह किया जो बड़ी ही रूपवती और गुणवती थी। अलाउद्दीन ने उसके लिये चित्तोड़ पर चढ़ाई कर दी, परंतु उसमें सफल न होने से उसने केवल पद्मिनी का मुख देखकर लौटना चाहा और अंत में दर्पण में पड़ा हुआ उसका प्रतिबिंब देखकर लौट जाना तक स्वीकार कर लिया।

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० १, पृ० ३६२–६३।

राजपूतों के कथन पर सुलतान को विश्वास होने से वह थोड़े से सिपाहियों के साथ क़िले में चला आया और पद्मिनी के मुख का प्रतिबिंब देखकर लौट गया। राजपूत उसको पहुंचाने के लिये क़िले के नीचे तक गये, जहां मुसलमानों ने छल करके भीमसी को पकड़ लिया और पद्मिनी को सौंपने पर उसको छोड़ना चाहा। यह समाचार सुनकर पद्मिनी ने अपने चाचा गोरा और उसके पुत्र बादल की सम्मति से एक ऐसी युक्ति निकाली कि जिससे उसका पति बंधन से मुक्त हो जाय और अपने सतीत्व की रक्षा भी हो सके। फिर सुलतान को यह खबर दी कि तुम्हारे यहां से लौटते समय पद्मिनी अपनी सखियों तथा दासियों आदि सहित दिल्ली चलने के लिये तुम्हारे साथ हो जायगी। फिर परदेवाली ७०० डोलियां तैयार की गईं, जिनमें से प्रत्येक में एक एक वीर राजपूत सशस्त्र बैठ गया और कहारों का भेष धारण किये शस्त्रयुक्त छः छः राजपूतों ने प्रत्येक डोली को उठाया। इस प्रकार राजपूतों का एक दल सुलतान के डेरों में पहुंच गया। पद्मिनी को अपने पति से अंतिम मुलाक़ात करने के लिये आधा घंटा दिया गया। कहारों के भेष में रहे हुए कई एक राजपूत भीमसिंह को डोली में बिठलाकर वहां से चल धरे। जब सुलतान अधीर होकर पद्मिनी के पास गया, तो पद्मिनी के बदले डोलियों में से वीर राजपूत निकल आये और उन्होंने लड़ाई आरंभ कर दी। अलाउद्दीन ने फिर चित्तोड़ को घेरा, परंतु अंत में अपनी सेना की दुर्दशा होने से उसे लौटना पड़ा। कुछ समय के अनन्तर वह नई सेना के साथ चित्तोड़ के लिये दूसरी बार चढ़ आया और राजपूतों ने भी वीरता से उसका सामना किया। अंत में जब उन्होंने यह देखा कि क़िला छोड़ना ही पड़ेगा, तब जौहर करके राणियों तथा अन्य राजपूत स्त्रियों को अग्नि के मुख में अर्पण कर दिया। फिर क़िले के द्वार खोलकर वे मुसलमानों पर टूट पड़े और लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। अलाउद्दीन ने चित्तोड़ को अधीन कर लिया, परंतु जिस पद्मिनी के लिये उसने इतना कष्ट उठाया था, उसकी तो चिता की अग्नि ही उसके नज़र आई"[1]।

कर्नल टॉड ने यह कथा विशेषकर मेवाड़ के भाटों के आधार पर लिखी है और भाटों ने उसको 'पद्मावत' से लिया है। भाटों की पुस्तकों में समरसिंह

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३०७-११।

के पीछे रत्नसिंह का नाम न होने से टॉड ने पद्मिनी का संबंध भीमसिंह से मिलाया और उसे लखमसी (लक्ष्मणसिंह) के समय की घटना मान ली। ऐसे ही भाटों के कथनानुसार टॉड ने लखमसी का बालक और मेवाड़ का राजा होना भी लिख दिया, परन्तु लखमसी न तो मेवाड़ का कभी राजा हुआ और न बालक था; किन्तु सीसोदे का सामन्त (सरदार) था और उस समय वृद्धावस्था को पहुंच चुका था, क्योंकि वह अपने सात पुत्रों सहित अपना नमक अदा करने के लिये रत्नसिंह की सेना का मुखिया बनकर अलाउद्दीन के साथ की लड़ाई में लड़ते हुए मारा गया था, जैसा कि वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) के कुंभलगढ़ के शिलालेख से ऊपर बतलाया गया है[1]। इसी तरह भीमसी (भीमसिंह) लखमसी (लक्ष्मणसिंह) का चाचा नहीं, किन्तु दादा था, जैसा कि राणा कुंभकर्ण के समय के 'एकलिंगमाहात्म्य' से पाया जाता है[2]। ऐसी दशा में टॉड का कथन भी विश्वास के योग्य नहीं हो सकता। 'पद्मावत', 'तारीख़ फ़िरिश्ता' और टॉड के राजस्थान के लेखों की यदि कोई जड़ है, तो केवल यही कि अलाउद्दीन ने चित्तोड़ पर चढ़ाई कर छः मास के घेरे के अनन्तर उसे विजय किया; वहां का राजा रत्नसिंह इस लड़ाई में लक्ष्मणसिंह आदि कई सामंतों सहित मारा गया, उसकी राणी पद्मिनी ने कई स्त्रियों सहित जौहर की अग्नि में प्राणाहुति दी; इस प्रकार चित्तोड़ पर थोड़े-से समय के लिये मुसलमानों का अधिकार हो गया। बाकी की बहुधा सब बातें कल्पना से खड़ी की गई हैं।

महारावल रत्नसिंह के समय का अब तक एक ही शिलालेख मिला है, जो वि० सं० १३५९ माघ सुदि ५ बुधवार का है। यह लेख दरीबे की खान के पासवाले माता (मातृकाओं) के मन्दिर के एक स्तम्भ पर खुदा हुआ है[3]।

---

(१) देखो ऊपर पृ० ४८४ और टि. २।

(२) तज्जोथ भुवनसिंहस्तदात्मजो भीमसिंहनृपः ॥ ७५ ॥
तत्तनुजो जयसिंहस्तदंगजो लक्ष्म्यसिंहनामासीत् ।
सप्तभिरप्यात्मजैः सह भित्त्वा रविमंडलं दिवं यातः ॥ ७६ ॥
(एकलिंगमाहात्म्य, राजवर्णन अध्याय)।

(३) संवत् १३५९ वर्षे मा[घ]सुदि ५ बुधदिने अद्येह श्रीमेदपाटमंडले

फ़िरिश्ता लिखता है कि हि० स० ७०४ (वि० सं० १३६१=ई० स० १३०४) में सुलतान अलाउद्दीन ने खिज़रखां को हुक्म भेजा कि चित्तोड़ का क़िला खाली कर राजा (रत्नसिंह) के भानजे (मालदेव सोनगरा) के सुपुर्द कर देवे[1]; परन्तु फ़िरिश्ता का दिया हुआ यह संवत् विश्वास-योग्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि यदि ऐसा हुआ होता तो खिज़रखां चित्तोड़ का शासन एक वर्ष से अधिक करने न पाता, पर नीचे लिखे हुए प्रमाणों से जान पड़ता है कि वह हि० स० ७१३ (वि० सं० १३७०=ई० स० १३१३) के आसपास तक चित्तोड़ की हुकूमत कर रहा था।

चित्तोड़ पर खिज़रखां का अधिकार

(१) खिज़रखां ने चित्तोड़ में रहते समय वहां की गंभीरी नदी पर एक सुंदर और सुदृढ़ पुल बनवाया,[2] जिसके बनने में कम से कम दो वर्ष लगे होंगे।

(२) चित्तोड़ की तलहटी के बाहर एक मक़बरे में हि० स० ७०६ ता० १० ज़िलहिज्ज (वि० सं० १३६७ ज्येष्ठ सुदि १२=ता० ११ मई ई० स० १३१०) का फ़ारसी लिपि का एक शिलालेख लगा हुआ है, जिसमें बुल मुज़फ़्फ़र मुहम्मदशाह सिकंदरसानी (दूसरा सिकंदर) अर्थात् अलाउद्दीन ख़िलजी को

समस्तराजावलिसमलंकृतमहाराजकुलश्रीरतन(रत्न)सिंहदेवकल्याणविजयराज्ये तन्नियुक्तमहं०श्रीमहणसीहसमस्तमुद्राव्यापारान्परिपंथयति•• •••।

(दरीबे का लेख—अप्रकाशित)।

इस लेख की छाप मुझे ता० ११–८–२६ को राणावत महेन्द्रसिंह द्वारा उदयपुर में प्राप्त हुई।

(१) देखो ऊपर पृ० ४६३।

(२) इस १० कोठोंवाले बड़े पुल के बनाये जाने में दो मत हैं। कोई तो कहते हैं कि खिज़रखां ने उसे बनवाया और कोई उसे राणा लखमसी के पुत्र अरिसिंह का बनवाया हुआ मानते हैं ('चितोर ऐंड दी मेवार फ़ैमिली', पृ० ६७); परंतु यह पुल खिज़रखां का बनवाया हुआ ही प्रतीत होता है, क्योंकि यह मुसलमानी तर्ज़ का बना हुआ है और कई मंदिरों को तोड़कर उनके पत्थर आदि इसमें लगाये गये हैं। अरिसिंह सीसोदे के सामंत का पुत्र था और चित्तोड़ का राजा कभी नहीं हुआ। यह विशाल पुल ऐसा दृढ़ बना है कि अब तक उसका कुछ नहीं बिगड़ा, केवल दोनों किनारों का थोड़ा थोड़ा हिस्सा ४० वर्ष से अधिक समय हुआ बह गया, जो अब तक भी पीछा पक्का नहीं बन सका।

दुनिया का बादशाह, उस समय का सूर्य, ईश्वर की छाया और संसार का रक्षक कहकर आशीर्वाद दिया है कि जब तक काबा (मक्के का पवित्र स्थान) दुनिया के लिये किब्ला (गौरवयुक्त) रहे, तब तक उसका राज्य मनुष्यमात्र पर रहे[1]। इससे अनुमान होता है कि उस संवत् तक तो चित्तोड़ मालदेव को नहीं मिला था।

(३) हि० स० ७११ (वि० सं० १३६८-६९=ई० स० १३११-१२) के प्रसंग में फ़िरिश्ता लिखता है—'अब सुलतान के राजरूपी सूर्य का तेज मंद होने लगा था, क्योंकि उसने राज्य की लगाम मलिक काफ़ूर के हाथ में रख छोड़ी थी, जिससे दूसरे उमराव उससे अप्रसन्न हो रहे थे। खिज़रखां को छोटी उम्र में ही चित्तोड़ का शासक बना दिया था, परंतु उसको सलाह देने या उसकी चालचलन को दुरुस्त रखने के लिये कोई बुद्धिमान् पुरुष उसके पास नहीं रक्खा गया। इसी समय तिलिंगाने के राजा ने कुछ भेट और २० हाथी भेजे और लिखा कि मलिक काफ़ूर के द्वारा जो ख़िराज मुक़र्रर हुआ है, वह तैयार है। इसपर मलिक काफ़ूर ने देवगढ़ (देवगिरि, दौलताबाद) आदि के दक्षिण के राजाओं को सुलतान के अधीन करने तथा तिलिंगाने का ख़िराज वसूल करने की बात कहकर उधर जाने की आज्ञा चाही। खिज़रखां के अधीनस्थ इलाक़े (चित्तोड़) से दक्षिण की इस चढ़ाई के लिये सुबीता होने पर भी मलिक काफ़ूर ने वहां स्वयं जाना चाहा, जिसका कारण वलीअहद (युवराज) खिज़रखां से उसका द्वेष रखना ही था। सुलतान से आज्ञा पाने पर हि० स० ७१२ (वि० सं० १३६९-७०= ई० स० १३१२-१३) में मलिक काफ़ूर ने दक्षिण पर चढ़ाई करके देवगढ़ के राजा को पकड़ कर निर्दयता से मार डाला, और महाराष्ट्र तथा कानड़ा (कन्नड़) देशों को उजाड़ दिया[2]'। इससे निश्चित है कि उस समय तक तो खिज़रखां चित्तोड़ का शासन कर रहा था।

---

(१) شهر یارجهان محمد شاه آفتاب زمان وظل اِله
بو المظفر سکندر ثاني شد مسلم برو جهانباني
عشر ذوالحجه موسم قربان سال بد هفصدو نه از هجران
تا بود کعبه قبله عالم باد ملک شه بني آدم

(चित्तोड़ के मक़बरे का शिलालेख)।

(२) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० १, पृ० ३७८-७९।

(४) मुहणोत नैणसी के कथनानुसार वि० सं० १३६८ वैशाख सुदि ५ (ई० स० १३११) को[1], और फ़िरिश्ता के लेखानुसार हि० स० ७०६ (वि० सं० १३६६=ई० स० १३०६) में[2] सुलतान अलाउद्दीन के सेनापति कमालुद्दीन ने जालोर का क़िला छीनकर वहां के चौहान-राज्य की समाप्ति की। इस लड़ाई में वहां का राजा रावल कान्हड़देव और उसका कुंवर वीरमदेव दोनों मारे गये। कान्हड़देव का भाई मालदेव बचा, जो बादशाही मुल्क में उपद्रव करता था और शाही सेना उसका पीछा किया करती थी। अंत में सुलतान ने उसको चित्तोड़ का इलाक़ा देकर अपने अधीन किया। इसलिये मालदेव को चित्तोड़ वि० सं० १३६८ (ई० स० १३११) से भी कुछ वर्ष बाद मिला होगा।

(५) मलिक काफ़ूर के दक्षिण में जाने के बाद सुलतान अलाउद्दीन बीमार हुआ। उस समय से लगाकर उसकी मृत्यु तक की घटनाओं का जो वर्णन फ़िरिश्ता ने किया है, उसका सारांश यह है—'अधिक शराब पीने से सुलतान की तंदुरुस्ती बिगड़ गई और वह सख़्त बीमार हो गया। उसकी बेगम मलिकजहां और पुत्र खिज़रख़ां ने उसकी कुछ भी सुध न ली, जिससे उसने मलिक काफ़ूर को दक्षिण से और अलफ़ख़ां को गुजरात से बुला लिया और खानगी में अपनी बेगम तथा बेटे की उनसे शिकायत की। इसपर मलिक काफ़ूर ने, जो बहुत दिनों से सुलतान बनने का उद्योग कर रहा था, सुलतान के कुटुम्ब को नष्ट करने का प्रपंच रचा। उसने सुलतान को यह समझाया कि खिज़रख़ां, बेगम और अलफ़ख़ां आपको मार डालने के उद्योग में हैं। इसपर सुलतान को संदेह हुआ, जिससे उसने खिज़रख़ां को अल्मोड़े बुला लिया और अपने नीरोग होने तक वहीं रहने की आज्ञा दी। सुलतान का स्वास्थ्य ठीक होने पर वह उससे मिलने को चला, उस समय काफ़ूर ने सुलतान के चित्त पर यह जँचाना चाहा कि वह उमरावों से मिलकर विद्रोह करना चाहता है; परंतु सुलतान को उसके कथन पर विश्वास न हुआ और जब खिज़रख़ां अपने पिता से मिलकर रोने लगा, तब सुलतान का संदेह दूर हो गया। अब काफ़ूर ने सुलतान के खानगी नौकरों

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ४६, पृ० २।

(२) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० १, पृ० ३७१। मुहणोत नैणसी वि० सं० १३६८ (ई० स० १३११) में और फ़िरिश्ता हि० स० ७०६ (वि० सं० १३६६=ई० स० १३०६) में जालोर फ़तह होना बतलाता है। इन दोनों में से नैणसी का कथन ठीक प्रतीत होता है।

को अपने पक्ष में मिलाकर खिज़रख़ां की बुराइयां कराना शुरू किया, और कई प्रपंच रचकर उसके दोनों पुत्रों (खिज़रख़ां और शादीख़ां) को क़ैद करने की आज्ञा लिखवाकर उनको ग्वालियर के क़िले में भेज दिया। इन्हीं दिनों राज्य भर में विद्रोह की आग भड़कने की ख़बरें आने लगीं। चित्तोड़ के राजपूतों ने मुसलमान अफ़सरों को क़िले की दीवारों पर से नीचे पटक दिया और वे स्वतंत्र बन गये। रामदेव के दामाद हरपालदेव[1] ने दक्षिण में विद्रोह कर बहुतसी मुसलमान सेना को वहां से निकाल दिया। ये समाचार सुनकर सुलतान क्रोध के मारे अपना ही मांस काटने लगा। शोक और क्रोध के कारण उसकी बीमारी बढ़ गई और ता० ६ शव्वाल हि० स० ७१६ (वि० सं० १३७३ पौष सुदि ७=ई० स० १३१६ ता० २२ दिसंबर) को उसका देहांत हुआ, जिसके विषय में मलिक काफ़ूर पर विष देने का संदेह किया गया[2]"।

ऊपर लिखी हुई बातों पर विचार करते हुए यही पाया जाता है कि हि० स० ७१३ और ७१६ (वि० सं० १३७० और १३७३=ई० स० १३१३ और १३१६) के बीच किसी समय खिज़रख़ां चित्तोड़ से चला होगा, अर्थात् उसने अनुमान १० वर्ष चित्तोड़ का शासन किया हो। संभव है, खिज़रख़ां के चले जाने पर मेवाड़ के राजपूतों ने अपनी राजधानी पर पीछा अधिकार जमाने का उद्योग किया हो, जिससे सुलतान या उसके सलाहकारों ने मालदेव को—जो जालोर का पैतृक राज्य मुसलमानों के अधिकार में चले जाने के कारण मुल्क में बिगाड़ किया करता था—चित्तोड़ का राज्य देकर अपना मातहत बनाया हो।

चित्तोड़ पर चौहान मालदेव का अधिकार

(१) फ़िरिश्ता चित्तोड़ के प्रसंग में मालदेव का नाम न देकर लिखता है—'अंत में सुलतान अलाउद्दीन ने चित्तोड़ को अपने अधिकार में रखना निरर्थक समझ खिज़रख़ां को हुक्म दिया कि क़िला खाली कर राजा (रत्नसिंह) के भानजे के सुपुर्द कर देवे। सुलतान

(१) हरपालदेव देवगिरि (दौलताबाद) के यादव राजा रामचन्द्र (रामदेव) का जमाई था। रामचंद्र के देहांत के बाद उसका पुत्र शंकर देवगिरि का राजा हुआ। उसके समय हरपालदेव ने बग़ावत कर कई इलाक़े मुसलमानों से छीन लिये, जिसपर दिल्ली के सुलतान मुबारकशाह खिलजी ने वि० सं० १३७५ (ई० स० १३१८) में दक्षिण पर चढ़ाई की और हरपालदेव को क़ैद कर उसकी खाल खिंचवाई (हिं. टॉ; रा; पृ० ३३३)।

(२) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० १, पृ० ३७६-८१।

की अधीनता में इस हिंदू राजा ने थोड़े ही दिनों में चित्तोड़ के राज्य को पहले की दशा पर पहुंचा दिया। वह सालाना कीमती भेट के अतिरिक्त बहुत से रुपये भी भेजता था और लड़ाई के समय ५००० सवार तथा १०००० पैदलों के साथ सुलतान के लिये हाज़िर रहता था"[1]।

(२) अलाउद्दीन के चित्तोड़ लेने के बाद के विवरण में कर्नल टॉड ने लिखा है कि उसने चित्तोड़ का क़िला जालोर के मालदेव को, जिसको सुलतान ने हराकर अपने अधीन किया था, दिया[2]। फ़िरिश्ता के उपर्युक्त कथन को इससे मिलाने पर स्पष्ट हो जाता है कि जिसको वह चित्तोड़ के राजा (रत्नसिंह) का भानजा बतलाता है, उसी को टॉड जालोर का मालदेव कहता है।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात से पाया जाता है—'वि० सं० १३६८ (ई० स० १३११) में सुलतान अलाउद्दीन ने जालोर का क़िला सोनगरे कानड़दे (कान्हड़देव) से छीना, इस लड़ाई में कानड़दे मारा गया। तीन दिन पीछे उसका कुंवर वीरमदेव भी लड़ता हुआ मारा गया; रावल कानड़दे ने वंश की रक्षा के लिये अपने भाई मालदेव को पहले ही गढ़ से निकाल दिया था। वह (मालदेव) बहुत कुछ नुकसान करता रहा और उसके पीछे सुलतान की फ़ौज लगी रही। फिर वह दिल्ली जाकर बादशाह से मिला, बादशाह ने चित्तोड़ का

---

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० १, पृ० ३६३।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३१२। कर्नल टॉड ने मेवाड़ के रावल समरसिंह के पुत्र कर्ण (?) की मृत्यु के प्रसंग में लिखा है—'जालोर के सोनगरे राजा ने कर्ण की पुत्री से शादी की, जिससे रणधवल उत्पन्न हुआ था। उस सोनगरे ने मुख्य मुख्य गुहिलोतों को छल से मारकर अपने पुत्र रणधवल को चित्तोड़ की गद्दी पर बिठा दिया था' (वही; जि० १, पृ० ३०४-५)। समरसिंह का पुत्र और उत्तराधिकारी कर्ण नहीं किन्तु रत्नसिंह था, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। रणधवल नाम का कोई पुरुष मालदेव के वंश में नहीं हुआ, अलबत्ता मालदेव के तीसरे पुत्र रणवीर का बेटा रणधीर था, परंतु उसके चित्तोड़ की गद्दी पर बैठने का प्रमाण नहीं मिलता। 'तारीख़े फ़ीरोज़शाही' से पाया जाता है कि हि० स० ७२० (वि० सं० १३७७=ई० स० १३२०) में जब दिल्ली के सुलतान कुतुबुद्दीन मुबारकशाह को उसके गुलाम मलिक खुसरो ने—जो हिंदू से मुसलमान हो गया था—मारा, उस समय उस (खुसरो) का मामा रणधवल जाहरिया उसका सहायक था। उसको खुसरो ने दिल्ली की गद्दी पर बैठते ही 'रायरायां' का ख़िताब दिया था (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ३, पृ० २२२-२४), परंतु उसका मालदेव के वंश से कोई संबंध न था।

किला उसको दिया; सात बरस तक चित्तोड़ का राज्य करने के पश्चात् उसका देहान्त चित्तोड़ ही में हुआ। उसके तीन पुत्र जेसा, कीतपाल (कीर्तिपाल) और वणवीर थे[1]"।

इन प्रमाणों से निश्चय होता है कि मालदेव सोनगरे को चित्तोड़ का राज्य वि० सं० १३७० और १३७२ (ई० स० १३१३ और १३१५) के बीच किसी वर्ष मिला होगा। मुहणोत नैणसी का यह कथन कि 'वह सात वर्ष राज्य कर चित्तोड़ में मरा', ठीक हो, तो उसकी मृत्यु वि० सं० १३७८ (ई० स० १३२१) के आसपास दिल्ली के सुलतान ग़यासुद्दीन तुग़लकशाह के समय होना मानना पड़ेगा। उक्त सुलतान के समय का एक फ़ारसी शिलालेख चित्तोड़ से मिला, जिसमें तीन पंक्तियों में तीन शेर खुदे थे, परंतु उसके प्रारंभ का (दाहिनी ओर का) चौथा हिस्सा टूट जाने के कारण प्रत्येक शेर का प्रथम चरण जाता रहा है। बचे हुए अंश का आशय यह है—'………तुग़लक शाह बादशाह सुलैमान के समान मुल्क का स्वामी, ताज़ और तख़्त का मालिक, दुनिया को प्रकाशित करनेवाले सूर्य और ईश्वर की छाया के समान, बादशाहों में सबसे बड़ा और अपने वक़्त का एक ही है…………बादशाह का फ़रमान उसकी राय से सुशोभित रहे। असदुद्दीन अर्सलां दाताओं का दाता तथा देश की रक्षा करनेवाला है और उससे न्याय तथा इन्साफ़ की नींव दृढ़ है…………ता० ३ जमादिउल्अव्वल। परमेश्वर इस शुभ कार्य को स्वीकार करे और इस एक नेक काम के बदले में उसे हज़ार गुना देवे[2]"।

इस शिलालेख में सन् का अंक नष्ट हो गया है, परंतु सुलतान तुग़लक

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ४४, पृ० २ से पत्र ४५, पृ० १।

(२) ……………… خداے ملک سلیمان و تاج و تخت و نگین

چو آفتاب جهانتاب بلکه ظل اله یگانه ختم سلاطین عصر تغلق شاه

……………… سواد مملکت از راے او مزین باد

ملاذ ملک اسد الدین ارسلان جواد که گشت محکم از و عدل و داد رابنیاد

……………… سه از جمادی الاولے گذشته بالا یام

خدا بفضل مرین خیر راقبول کناد جزاے حسن عمل را یکے هزار دهاد

यह शिलालेख मैंने चित्तोड़ से लाकर उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित किया है।

शाह (ग़यासुद्दीन तुग़लक) ने ई० स० १३२० से १३२५ (वि०सं० १३७७ से १३८२) तक[1] राज्य किया था; इसलिये उन संवतों के बीच के किसी वर्ष का यह शिलालेख होना चाहिये। 'तारीख़े फ़ीरोज़शाही' से जान पड़ता है कि 'सुलतान तुग़लकशाह (ग़यासुद्दीन) ने गद्दी पर बैठते ही अपने भतीजे असदुद्दीन को नायब बार्बक (वज़ीर) बनाया था[2]'। चित्तोड़ का वह शिलालेख सुलतान और उसी असदुद्दीन की प्रशंसा करता है; जिस स्थान (संभवतः मसजिद) में वह शिलालेख लगा था; वह असदुद्दीन का बनवाया हुआ या उसकी आज्ञा से बना हो, यह संभव है। उक्त लेख से यह भी निश्चित है कि उस समय तक चित्तोड़ का क़िला मुसलमानों की अधीनता (जालोर के चौहानों के अधिकार) में था। मालदेव की मृत्यु का हमारा अनुमान किया हुआ संवत् उक्त शिलालेख के समय से मिलता हुआ है, अतएव वि० सं० १३८२ (ई० स० १३२५) के आसपास तक चित्तोड़ के राज्य पर जालोर के सोनगरे चौहानों का अधिकार रहना निश्चित है।

सुलतान अलाउद्दीन ने चित्तोड़ का राज्य मालदेव सोनगरे को दिया, उससे अनुमान ७५० वर्ष पूर्व से मेवाड़ के गुहिलवंशियों का राज्य उस देश पर चला आता था। वे अपने पड़ोसी गुजरात के सोलंकियों, मालवे के परमारों, सांभर और नाडौल के चौहानों आदि से लड़ते रहने पर भी निर्बल नहीं हुए थे। अलाउद्दीन ख़िलजी चित्तोड़ के क़िले को छः मास से कुछ अधिक समय तक घेरे रहा, जिसमें उसकी फ़ौज की बड़ी बरबादी हुई (देखो ऊपर पृ० ४८८, टिप्पण १)। भोजन-सामग्री खतम हो जाने से ही क़िला राजपूतों ने छोड़ा था। अलाउद्दीन के अधीन मेवाड़ का बहुतसा अंश था, तो भी उसका पुत्र खिज़रख़ां सुख से वहां राज्य करने न पाता था। खिज़रख़ां के चले जाते ही मेवाड़वालों ने अपना पैतृक दुर्ग पीछा लेने का उद्योग किया और मुसलमान अफ़सरों को बांधकर क़िले की दीवारों पर से नीचे पटक दिया[3]। जब सुलतान को इतनी दूर का क़िला अपने अधिकार में

चित्तोड़ के राज्य पर फिर गुहिलवंशियों का अधिकार

(१) डफ़; क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इंडिया; पृ० २१२ और २१७, थॉमस; क्रॉनिकल्स ऑफ़ दी पठान किंग्ज़ ऑफ़ देहली, पृ० ७।

(२) इलियट; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ३, पृ० २३०।

(३) देखो ऊपर पृ० ४११ में फ़िरिश्ता का कथन।

रखने में आपत्ति रही, तभी उसने मालदेव को सौंपा था। मालदेव को चित्तोड़ का राज्य मिलते ही सीसोदे के राणा हंमीर ने उस (मालदेव) के अधीनस्थ प्रदेश को उजाड़ना शुरू किया। इधर सुलतान अलाउद्दीन के जीतेजी दिल्ली की सल्तनत ऐसी कमज़ोर हो गई कि उसके अलग अलग इलाकों में बग़ावतें होने लगीं। मलिक काफ़ूर जो चाहता वही कर बैठता, जिससे मुसलमान उमराव भी उसके विरोधी हो गये; सुलतान के मरते ही सल्तनत की दशा और बिगड़ गई[1]। ऐसी दशा में मालदेव को दिल्ली से कोई सहायता मिलने की आशा ही न रही। मालदेव ने सीसोदे के राणा हंमीर से हिलमिल-कर रहने की इच्छा से अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करने, और मेवाड़ की ख्यातों आदि के कथनानुसार मेवाड़ के ८ ज़िले—मगरा, सेरानला, गिरवा, गोड़वाड़, बाराठ, श्यालपट्टी, मेरवाड़ा और घाटे का चोखला—[2] दहेज में देने की बात हंमीर से कहलाई, जिसको उसने स्वीकार किया और हंमीर का विवाह उसकी पुत्री के साथ हो गया।

कर्नल टॉड ने लिखा है—'मालदेव की विधवा पुत्री से हंमीर की शादी हुई

(१) अलाउद्दीन ख़िलजी के मरने पर मलिक काफ़ूर ने उसके छोटे बेटे शहाबुद्दीन उमर को, जो छः वर्ष का था, दिल्ली के सिंहासन पर नाममात्र को बिठलाया, परंतु राज्य का सारा कार्य वही अपनी इच्छानुसार करता रहा। इस प्रकार ३५ दिन बीते, इतने में मलिक काफ़ूर मारा गया। फिर सुलतान अलाउद्दीन का एक शाहज़ादा मुबारकख़ां, जिसको मलिक काफ़ूर ने क़ैद कर रक्खा था, प्रथम तो अपने बालक भाई का वज़ीर बना, परंतु दो महीने बाद अपने भाई को पदभ्रष्ट कर स्वयं सुलतान बन बैठा। वह भी चार बरस राज्य करने पाया, इतने में उसके गुलाम वज़ीर खुसरो ने, जो हिन्दू से मुसलमान बना था, उसको मार डाला और वह 'नासिरुद्दीन खुसरोशाह' ख़िताब धारण कर दिल्ली के राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। इस घटना को हुए चार महीने बीते, इतने में पंजाब के हाकिम ग़ाजी मलिक तुग़लक ने दिल्ली पर चढ़ाई कर दी और नासिरुद्दीन खुसरो को परास्त कर मार डाला। फिर 'ग़यासुद्दीन तुग़लकशाह' के नाम से ई० स० १३२० से १३२५ (वि० सं० १३७७ से १३८२) तक उसने राज्य किया।

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० २९५। इन आठ परगनों के हंमीर को दिये जाने के ख्यातों आदि के कथन पर हमें विश्वास नहीं होता, क्योंकि सेरानला और श्यालपट्टी के ज़िले तो उस समय सीसोदे की जागीर के अंतर्गत होने से हंमीर के ही थे, और गोड़वाड़ पर उस समय तक मेवाड़वालों का अधिकार होना पाया नहीं जाता। वि० सं० १३६८ (ई० स० १३११) के आसपास तक वह ज़िला जालोर के चौहानों के अधिकार में था, ऐसा उनके शिलालेखों से ज्ञात होता है।

थी। उस लड़की का पहला विवाह एक भट्टि (भाटी) सरदार के साथ इतनी छोटी अवस्था में हुआ था, कि उसको अपने पति का स्मरण तक न था[१]"। टॉड का यह कथन सर्वथा निर्मूल है, क्योंकि उस समय राजपूतों में ऐसी छोटी अवस्थावाली लड़कियों का विवाह होता ही नहीं था और विधवा का विवाह तो सर्वथा नहीं। राजपूताने की किसी भी ख्यात में टॉड के उक्त कथन का उल्लेख नहीं पाया जाता। राजपूताने में प्राचीन राजवंशों के कई घराने ऐसे रह गये हैं कि जिनके पास कुछ भी जागीर नहीं रही, अतएव वे केवल खेती द्वारा अपना निर्वाह करते हैं और किसानों जैसे हो गये हैं। उनमें नाता (नात्रा=विधवाविवाह) होता है, जिससे वे नात्रात (नात्रायत) राजपूत कहलाते हैं। मेवाड़ में कुंभलगढ़ की तरफ़ के इलाक़ों में ऐसे राजपूत अधिक हैं और वे भिन्न भिन्न वंशों के हैं। अनुमान होता है कि अपने यहां नाते की रीति को पुरानी बतलाने के लिये उन्होंने हंमीर का मालदेव की विधवा पुत्री से नाता होने की यह कथा गढ़ ली हो। संभव है, टॉड ने उनसे यह कथा सुनी हो और उसपर विश्वास कर अपने 'राजस्थान' में उसे स्थान दिया हो। उक्त पुस्तक में ऐसी प्रमाण-शून्य कई बातें मिलती हैं, जो विश्वास के योग्य नहीं हैं। प्राचीन काल में उच्च कुल के राजपूतों में नाता होने का एक भी उदाहरण नहीं मिलता, तो भी कभी कभी ऐसे उदाहरण मिल आते हैं कि शत्रुता आदि कारणों से वे अपने शत्रु की स्त्री को उससे छीनकर अपने घर में डाल लेते थे[२]।

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३१८।

(२) जिस समय राठोड़ सत्ता मंडोवर का स्वामी था, उस समय रूंग्रा के सांखले सीहड़ ने अपनी पुत्री सुपियारदे का सम्बन्ध (सगाई) राव सत्ता के पुत्र नरवद के साथ किया था; परन्तु जब महाराणा मोकल ने सत्ता से मंडोवर का राज्य छीनकर रणमल को दिलाया, तब सांखले सीहड़ ने अपनी पुत्री का विवाह जैतारण के सिंधल नरसिंह के साथ कर दिया। एक दिन नरवद ने महाराणा के सामने लम्बी आह भरी, जिसपर महाराणा ने पूछा, क्या मंडोवर के लिये यह आह भरी है? इसके उत्तर में उसने निवेदन किया कि मंडोवर तो मेरे घर में ही है, परन्तु मेरी 'मांग' (सम्बन्ध की हुई लड़की) जैतारण के नरसिंह को ब्याह दी, जिसका मुझे बड़ा दुःख है। यह सुनकर महाराणा ने सांखले सीहड़ से कहलाया कि नरवद को इसका बदला देना चाहिये; तब सांखले ने अर्ज़ कराई कि सुपियारदे का विवाह तो हो चुका, अब मैं अपनी छोटी पुत्री का विवाह नरवद के साथ कर दूंगा। महाराणा ने यह हाल नरवद से कहा, जिसपर उसने निवेदन किया कि यदि सुपियारदे विवाह के

समय मेरी आरती करे, तो मुझे यह स्वीकार है। महाराणा की आज्ञा से यह शर्त सीहड़ ने स्वीकार कर ली। जिस समय यह बात महाराणा के दरबार में हुई, उस समय नरसिंह भी वहां विद्यमान था। फिर वह वहां से सवार होकर जैतारण (जोधपुर राज्य में) को गया। उधर से सांखले भी सुपियारदे को लेने के लिये आये, नरसिंह ने उसको इस शर्त पर पीहर जाने की आज्ञा दी कि वह नरवद की आरती न करे। विवाह के समय जब नरवद की आरती करने के लिये सुपियारदे से कहा गया, तो वह नट गई। सांखलों के विशेष अनुरोध से यह कहने पर कि 'यहां कौन देखता है', उसने नरवद की आरती कर दी। उस समय नरसिंह का एक नाई वहां मौजूद था, जिसने जाकर यह सारा हाल नरसिंह से कह दिया। इसपर उसको बड़ा क्रोध आया। जब सुपियारदे पीछी अपने सुसराल आई तब नरसिंह ने उसके साथ बुरा बरताव किया और उसकी छाती पर अपने पलंग का पाया रखकर उसपर वह सो गया। सुपियारदे ने बहुत कुछ अनुनय की, परंतु उसने उसकी एक न सुनी; जब यह ख़बर सुपियारदे की सास को मिली तब वह आकर उसे छुड़ा ले गई। सुपियारदे ने यह सारा हाल नरवद को लिख भेजा, जिसपर वह मज़बूत बैलों का एक रथ लेकर जैतारण को चला। जिस समय वह वहां पहुंचा, उस समय सिंधल लोग एक तमाशा देखने गये हुए थे; यह सुअवसर पाकर उसने एक मर्दानी पोशाक सुपियारदे के पास भेजी, जिसको पहनकर वह नरवद के पास चली आई। वह उसे रथ में बिठलाकर ले गया। यह ख़बर पाते ही सिंधलों ने सवार होकर उसका पीछा किया। मार्ग में पूरे वेग से बहती हुई एक नदी आई, जिसे देखते ही सुपियारदे ने नरवद से कहा कि सिंधलों के हाथ में पड़ने से तो नदी में डूबकर मरना ही अच्छा है। यह सुनकर नरवद ने बैलों को नदी में डाल दिया; बैल बड़े तेज़ और ज़ोरदार थे, जिससे तुरन्त ही रथ को लेकर पार निकल गये। सिंधलों ने भी अपने घोड़े उसके पीछे नदी में डाले, परन्तु नरवद कायलाणे के निकट पहुंच गया और उसका भतीजा आसकरण, जो ख़बर लेने के लिये आया था, मार्ग में नरवद से मिला। नरवद ने उससे कहा कि तू सुपियारदे को लेकर चला जा, मैं सिंधलों से लड़कर यहीं मरूंगा; इसपर आसकरण ने कहा कि नहीं, आप सुपियारदे को लेकर घर जाइये, मैं सिंधलों से लड़ूंगा। वह वीर सिंधलों से अकेला लड़ता हुआ वहीं काम आया (मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र १७९-८०। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३१३-१४)। जब यह बात महाराणा को मालूम हुई, तब उन्होंने नरवद को कायलाणे से चित्तोड़ बुला लिया और सिंधलों को धमकाया, कि यह तुम्हारी औरत को ले गया और तुमने इसके भतीजे को मार डाला, अब फ़साद नहीं करना चाहिये (वीरविनोद; भा० १, पृ० ३१४)। मंडोवर की गद्दी से ख़ारिज होने के कारण नरवद की मांग (सगाई की हुई लड़की) सांखलों ने दूसरों को ब्याह दी, जिसपर तो इतना बखेड़ा हुआ; ऐसी दशा में मालदेव का अपनी विधवा लड़की का विवाह हंमीर से करना कैसे संभव हो सकता है? प्रथम तो मालदेव अपने कुल के महत्त्व के विचार से ऐसा कभी न करता और महाराणा

हंमीर ने छल से' या बल से चित्तोड़ पर अपना अधिकार जमा लिया। फिर उसने सारा देश अपने अधीन कर मेवाड़ पर गुहिलवंशियों का राज्य फिर से स्थिर किया, जो अब तक चला आता है।

इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व, रावल वंश के साथ राणा शाखा की शृंखला मिलाने के लिये हंमीर के पूर्वजों का, जो मेवाड़ के राजाओं के सामंत और सीसोदे के राणा थे, संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

सीसोदे के इन सरदारों की जो नामावलियां भिन्न भिन्न शिलालेखों एवं पुस्तकों आदि में मिलती हैं वे परस्पर ठीक नहीं मिलतीं, जैसा कि इसके साथ दिये हुए नक़्शे से जान पड़ता है।

जैसा सर्वोच्च घराने का राजा उसे स्वीकार न करता। दूसरी बात यह है कि यदि ऐसा हुआ होता, तो अनेक राजपूत अपने प्राणों का बलिदान कर देते, और सीसोदिये तथा सोनगरों के साथ भाटियों का वंशपरंपरा का वैर हो जाता।

(१) 'वीरविनोद' में दिये हुए हंमीर के चित्तोड़ लेने के वृत्तान्त का आशय यह है—'मालदेव जालोर में रहा करता था और उसके राजपूत चित्तोड़ में रहते थे, जिनकी भोजन-सामग्री भी जालोर से आया करती थी। राणा हंमीर की शादी मालदेव की पुत्री से जालोर में हुई, उस समय हंमीर ने अपनी राणी के कथनानुसार मालदेव के कामदार मौजीराम मेहता (टॉड ने उसका नाम जाल मेहता लिखा है जो शुद्ध है, उसके वंशज अब तक मेवाड़ में प्रतिष्ठित पदों पर नियुक्त रहते आ रहे हैं) को अपने लिये मांग लिया। वह चित्तोड़ के क़िले में रहनेवाली उसकी सेना का वेतन चुकाने को जाया करता था। हंमीर ने छल से चित्तोड़ छीनने का विचार कर मौजीराम को अपना सहायक बना लिया। संकेत के अनुसार वह रात को क़िले के दरवाज़े पर पहुंचा और वहां के राजपूतों ने उसको मालदेव का विश्वासपात्र समझकर दरवाज़े खोल दिये, जिससे हंमीर अपनी सेना सहित क़िले में पहुंच गया, फिर वहां के राजपूतों को मारकर उसने क़िला ले लिया' (वीरविनोद; भाग १, पृ० २६४-६६)। उपर्युक्त विवरण में मालदेव का उस समय जालोर में रहना और राणा हंमीर की शादी जालोर में होना—ये दोनों कथन अविश्वसनीय हैं, क्योंकि जालोर तो वि० सं० १३६८ (ई० स० १३११) में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने कान्हड़देव सोनगरे से छीन लिया था (देखो ऊपर पृ० २००) और वहां सुलतान का हाकिम रहता था। फ़िरिश्ता से पता लगता है कि पहले वहां का हाकिम निज़ामखां (अलफ़खां का भाई) था। मलिक काफूर ने अलफ़खां के द्वेष के कारण कमालखां से उसको मरवा डाला। फिर कमालखां वहां का हाकिम बना था (ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता जि० १, पृ० ३८१)। मालदेव के पास कोई जागीर न रहने से वह मुल्क में बिगाड़ किया करता था, जिससे सुलतान ने खिज़रखां को वहां से बुलाकर चित्तोड़ का इलाक़ा उसको दियां; तब से वह वहीं रहता था, और सात बरस बाद वहीं उसका देहांत होना मुहणोत नैणसी लिखता है। यदि नैणसी का कथन ठीक हो, तो मालदेव की मृत्यु के बाद उसके पुत्र जेसा से हंमीर ने चाहे छल से चाहे बल से चित्तोड़ लिया होगा।

संख्या	राणपुर का लेख वि० सं० १४९६	राणा कुंभा के समय का एकलिंगमाहात्म्य	कुंभलगढ़ का लेख वि० सं० १५१७	जगदीश के मंदिर का लेख वि० सं० १७०८	एकलिंगजी का लेख वि० सं० १७०९	राजप्रशस्ति महाकाव्य वि० सं० १७३२	मुहणोत नैणसी की ख्यात	वीरविनोद[1]
१	...	माहप	...	...	...	माहप	माहप	...
२	...	राहप	...	राहप	राहप	राहप	राहप	राहप
३	...	...	...	...	...	...	देदू	...
४	...	हरसू	...	नरपति	नरपति	नरपति	नरू	नरपति
५	...	बबरू	...	दिनकर्ण	दिनकर	...	हरसू	दिनकरण
६	...	यशःकरण	...	जसकर्ण	जसकर्ण	जसकर्ण	जसकरण	जशकरण
७	...	नागपाल	...	नागपाल	नागपाल	नागपाल	नागपाल	नागपाल
८	...	पूर्णपाल	...	पूर्णपाल	कर्णपाल	पुण्यपाल	पुणपाल	पूर्णपाल
९	...	फेखर	...	पृथ्वीमल्ल	...	पृथ्वीमल्ल	पेथड़	पृथ्वीपाल
१०	भुवनसिंह	भुवनसिंह	...	भुवनसिंह	भुवनसिंह	भुवनसिंह	भवणसी	भुवनसिंह
११	...	भीमसिंह	...	भीमसिंह	भीमसिंह	भीमसिंह	भीमसी	भीमसिंह
१२	जयसिंह	जयसिंह	...	जयसिंह	जयसिंह	जयसिंह	अजयसी	जयसिंह
१३	लक्ष्मसिंह	लक्ष्मसिंह	लक्ष्मसिंह	लक्ष्मसिंह	लक्ष्मसिंह	लक्ष्मसिंह	भड़ लखमसी	लक्ष्मणसिंह
१४	अजयसिंह	...	...	...	...	अजेसी	...	अजयसिंह
१५	अरिसिंह	अरसी	अरिसिंह	अरिसिंह	अरसी	अरसी	अड़सी	अरिसिंह
१६	हम्मीर	हम्मीर	हम्मीर	हम्मीर	हम्मीर	हम्मीर	हम्मीर	हमीरसिंह

(१) भाटों की ख्यातों में मिलनेवाली राणा राहप से हम्मीर तक की वंशावली पहले दे दी गई है (देखो ऊपर पृ० ३१६, टिप्पण १)।

ऊपर दिये हुए नक्शे में जिन जिन सरदारों के नाम हैं वे सब सीसोदे की जागीर के स्वामी थे। उनमें से हम्मीर को—जो पहले सीसोदे का ही सरदार था और पीछे से मेवाड़ का स्वामी हुआ—छोड़कर एक भी मेवाड़ का राजा नहीं होने पाया। लक्ष्मसिंह और अरिसिंह भी अलाउद्दीन के साथ की रत्नसिंह की लड़ाई के समय वीरता से लड़कर मारे गये थे; वे भी मेवाड़ के स्वामी नहीं हुए। हम ऊपर बतला चुके हैं कि रणसिंह (करणसिंह) से दो शाखाएं फटीं, जिनमें से बड़ी शाखावाले मेवाड़ के स्वामी और छोटी शाखावाले सीसोदे के सरदार रहे, जो राणा कहलाये। बड़ी अर्थात् रावल शाखा की समाप्ति रत्नसिंह के साथ हुई, तब से चित्तोड़ खिज़रखां के अधिकार में रहा; इसके पीछे चौहान मालदेव को मिला, जिसकी मृत्यु के अनंतर संभवतः उसके पुत्र जेसा से चित्तोड़ का राज्य हम्मीर ने लिया।

बापा रावल का राज्याभिषेक वि० सं० ७९१ में हुआ, परन्तु भाटों ने अपनी पुस्तकों में १९१ लिख दिया। इस ६०० वर्ष के अंतर को निकालने के लिये बापा से रत्नसिंह तक के सब राजाओं के मनमाने झूठे संवत् उन्होंने धरे; इसपर भी जब संवतों का क्रम ठीक न हुआ, तब उन्होंने रत्नसिंह के पीछे करणसिंह से—जहां से दो शाखाएं फटी थीं—लगाकर हम्मीर तक के सीसोदे के सब सरदारों के नाम मेवाड़ के राजाओं की नामवली में दर्ज कर उस अंतर को मिटाने का यत्न किया, परन्तु यह प्रयत्न भी पूर्ण रूप से सफल न हुआ। यदि ये सब सरदार मेवाड़ के स्वामी हुए होते, तो कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में, जो विशेष अनुसन्धान से तैयार की गई थी, उन सब के नाम दर्ज होने चाहिये थे; परन्तु वैसा नहीं हुआ, जिसका कारण यही है कि वे मेवाड़ के स्वामी नहीं थे। उक्त प्रशस्ति में हम्मीर से पूर्व लक्ष्मसिंह और अरिसिंह के जो नाम दिये हैं, वे केवल यही बतलाने के लिये कि हम्मीर किसका पौत्र और किसका पुत्र था।

पिछले शिलालेखों तथा वीरविनोद में रत्नसिंह के पीछे कर्णसिंह से लेकर हम्मीर तक के नाम मेवाड़ के राजाओं में दर्ज किये गये हैं, जो भाटों की ख्यातों की नकल ही है।

माहप और राहप[1] दोनों भाई थे, और कर्णसिंह से निकली हुई सीसोदे की

(१) कर्नल टॉड ने राहप को कर्णसिंह का पुत्र नहीं, किंतु रावल समरसी (समरसिंह)

राणा शाखा का पहला सरदार माहप हुआ,[1] परंतु भाटों ने जब अपनी ख्यातें

माहप और राहप

लिखीं उस समय सामंतसिंह के द्वारा वागड़ (डूंगरपुर) का राज्य स्थापित हुए (देखो ऊपर पृ० ४५३-५६) सैंकड़ों वर्ष बीत चुके थे, जिससे वागड़ का राज्य किसने, कब और किस स्थिति में स्थापित किया, इसका उनको ज्ञान न होने के कारण उन्होंने नीचे लिखी हुई कथा गढ़ ली—

'कर्णसिंह के दो पुत्र—माहप और राहप—हुए। उस समय मंडोवर (मंडोर-जोधपुर राज्य में) का राणा मोकल पड़िहार (प्रतिहार) कर्णसिंह के कुटुम्बियों पर आक्रमण किया करता था, जिससे कर्णसिंह ने अपने बड़े पुत्र माहप को उसे पकड़ लाने को भेजा, परंतु जब वह उसे पकड़ न सका, तब उस (कर्णसिंह) ने राहप को भेजा, जो उसको पकड़कर अपने पिता के पास ले आया। इसपर कर्णसिंह ने मोकल से राणा का ख़िताब छीनकर राहप को दिया और उसी को अपना उत्तराधिकारी बनाया। इससे अप्रसन्न होकर उसका ज्येष्ठ पुत्र माहप वागड़ की तरफ़ अपने ननिहालवाले चौहानों के यहां चला गया। फिर उसने वागड़ का इलाक़ा छीनकर वहां अपना नया राज्य स्थापित किया[2] और कर्णसिंह के बाद राहप मेवाड़ का स्वामी हुआ'।

यह सारा कथन अधिकांश में कल्पित है, क्योंकि न तो माहप वागड़ (डूंगरपुर) के राज्य का संस्थापक था और न कभी राहप मेवाड़ का राजा हुआ। ये दोनों भाई एक दूसर के बाद सीसोदे के सामंत रहे। कर्णसिंह के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र क्षेमसिंह मेवाड़ का राजा हुआ, जिसके वंश में रत्नसिंह तक मेवाड़ का राज्य रहा (देखो ऊपर पृ० ४४८-६५)। मोकल से राणा का ख़िताब

के भाई सूरजमल के पुत्र भरत का बेटा माना है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३०४), जो एकलिंगमाहात्म्य आदि के विरुद्ध है और उसको स्वीकार करने के लिये कोई प्रमाण भी नहीं है।

(१) मुहणोत नैणसी ने लिखा है कि 'रावल करण का पुत्र मैहपा (माहप) राणा हुआ और सीसोदे गांव में रहने से सिसोदिया कहलाया। करण से दो शाखाएं—राणा और रावल—हुई और राणा शाखावाले सीसोदे के स्वामी हुए' (नैणसी की ख्यात; पत्र १६, पृ० २)।

(२) भाटों ने और उनके आधार पर पिछले इतिहास-लेखकों ने माहप का डूंगरपुर जाना मानकर उसका नाम सीसोदे के सरदारों में से निकाल दिया है, जो भूल ही है। माहप डूंगरपुर का राजा कभी नहीं हुआ, वह तो सीसोदे का पहला सरदार था, जैसा कि 'एकलिंगमाहात्म्य' और 'नैणसी की ख्यात' से पाया जाता है।

छीनकर राहप को देने की बात भी निर्मूल ही है, क्योंकि जैसे इस समय मेवाड़ के महाराणाओं के सबसे निकट के कुटुंबी—बागोर, करजाली और शिवरतीवाले—'महाराज' या 'बाबा' कहलाते हैं, वैसे ही उस समय केवल मेवाड़ के ही नहीं, किंतु कई एक अन्य पड़ोसी राज्यों में राजा के निकट के कुटुम्बी (छोटी शाखावाले) भी 'राणा' कहलाते थे। आबू के परमार राजा 'रावल,' और उनके निकट के कुटुम्बी, जिनके वंश में दांतावाले हैं, 'राणा' कहलाये। ऐसे ही गुजरात के सोलंकी शासक 'राजा,' और उनकी छोटी शाखावाले बघेले 'राणा' कहलाते रहे।

राहप के विषय में यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि वह कभी सीसोदे में और कभी केलवाड़े में रहा करता था। एक दिन आखेट करते समय उसने एक सूअर पर तीर चलाया, जो दैवयोग से कपिलदेव नामक तपस्वी ब्राह्मण के जा लगा, जिससे वह वहीं मर गया। इसका राहप को बहुत कुछ पश्चात्ताप हुआ और उस प्रायश्चित्त की निवृत्ति के लिये उसने केलवाड़े के निकट कपिलकुंड बनवाया[1]।

ऐसा कहते हैं कि राहप को कुष्ठ रोग हो गया था, जिसका इलाज नांडे-राव (जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ इलाक़े में) के जती (यति) ने किया, तब से उसका तथा उसकी शिष्य-परंपरा का सम्मान सीसोदे के राणाओं तथा मेवाड़ के महाराणाओं में होता रहा। उक्त जती के आग्रह से उसके एक शिष्य सर-सल को, जो पल्लीवाल जाति के ब्राह्मण का पुत्र था, राहप ने अपना पुरोहित बनाया; तब से मेवाड़ के राणाओं के पुरोहित पल्लीवाल ब्राह्मण चले आते हैं, जिसके पूर्व चौबीसे ब्राह्मण थे, जो अब तक डूंगरपुर और बांसवाड़े के राजाओं के पुरोहित हैं।

राहप के वंशज

राहप के पीछे क्रमशः नरपति (हरसू, नरू), दिनकर (दिनकर्ण, बबरू, हरसू), जसकर्ण, (यशःकरण, जसकरण), नागपाल, पूर्णपाल (पुण्यपाल, पुणपाल और कर्णपाल), और पृथ्वीमल्ल (पेथड़, फेखर, पृथ्वीपाल) सीसोदे के स्वामी हुए, जिनका कुछ भी लिखित वृत्तान्त नहीं मिलता। पृथ्वीमल्ल के पीछे उसके पुत्र

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० २८८-८६।

भुवनसिंह[1] ने सीसोदे की जागीर पाई। राणपुर के मन्दिर के वि० सं० १४९६ के लेख में उसको चाहमान (चौहान) राजा कीतुक (कीतू, कीर्तिपाल) तथा सुरत्राण अल्लावदीन (सुलतान अलाउद्दीन खिलजी) को जीतनेवाला कहा है;[2] परन्तु ये दोनों बातें विश्वास के योग्य नहीं हैं, क्योंकि चौहान कीतू तो मेवाड़ के राजा सामंतसिंह और कुमारसिंह का समकालीन था[3], और अलाउद्दीन रावल रत्नसिंह और राणा लखमसी का। अनुमान होता है कि शिलालेख तैयार करनेवाले को प्राचीन इतिहास का यथेष्ट ज्ञान न होने से उसने सुनी हुई बातों पर ही विश्वास कर एक के समय की घटना को अन्य के साथ लगा दी हो, तो भी अलाउद्दीन को जीतने की बात तो निर्मूल है। भुवनसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र भीमसिंह हुआ, जिसकी स्त्री पद्मिनी होना कर्नल टॉड ने लिखा है, जो भ्रम ही है (देखो ऊपर पृ० ४९३-९४)। भीमसिंह के पीछे क्रमशः जयसिंह और लक्ष्मणसिंह या लक्ष्मसिंह (लखमसी) सीसोदे के राणा हुए। उपर्युक्त राणपुर के शिलालेख में लक्ष्मसिंह (लखमसी) को मालवे के राजा गोगादेव[4]

---

(१) भुवनसिंह के एक पुत्र चन्द्रा के वंशज चन्द्रावत कहलाये, जिनके अधीन रामपुरे का इलाक़ा था। चन्द्रावतों का वृत्तान्त उदयपुर राज्य के इतिहास के अंत में दिया जायगा।

(२) चाहुमानश्रीकीतुकनृपश्रीअल्लावदीनसुरत्राण—जैत्रबप्पवंश्यश्रीभुवन—
सिंह.....................

(भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ११४)।

(३) सामन्तसिंह के भाई कुमारसिंह ने चौहान कीतू को मेवाड़ से निकाला, उस समय सीसोदे का सरदार—राहप का उत्तराधिकारी—नरपति होना चाहिये, क्योंकि माहप खेमसिंह का समकालीन था।

(नागरी प्रचारिणी पत्रिका; भा० १, पृ० ३६ में दिया हुआ वंशवृक्ष)।

(४) गोगादेव (गोगा) के नाम का मालवे से अब तक कोई शिलालेख नहीं मिला, परन्तु फ़िरिश्ता लिखता है—'अलाउद्दीन खिलजी ने हि० स० ७०४ (वि० सं० १३६१ = ई० स० १३०४) में ऐनुल्मुल्क मुलतानी को सेना सहित मालवा विजय करने को भेजा। मालवे के राजा कोका (गोगा) ने ४०००० राजपूत सवार तथा १०००० पैदलों सहित उसका सामना किया। ऐनुल्मुल्क ने उसपर विजय प्राप्त कर उज्जैन, मांडू, धार और चंदेरी पर अधिकार कर लिया' (ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० १, पृ० ३६१)।

तारीख़े अलाई से पाया जाता है—'मालवे के राजा महलकदेव और उसके प्रधान कोका (गोगा) की अधीनता में ३०-४० हज़ार सवार एवं असंख्य पैदल सेना होने से वे बड़े

को जीतनेवाला कहा है[1]। यदि यह कथन ठीक है, तो यही मानना होगा कि रावल समरसिंह के समय मेवाड़ और मालवावालों में कोई लड़ाई हुई होगी, जिसमें लक्ष्मसिंह (लखमसी) मेवाड़ की सेना में रहकर लड़ा होगा। लक्ष्मसिंह अलाउद्दीन ख़िलजी के साथ की चित्तोड़ की चढ़ाई के समय वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में अपने सात पुत्रों[2] सहित लड़कर मारा गया (देखो ऊपर पृ० ४८४)। इसी युद्ध में उसका ज्येष्ठ पुत्र अरिसिंह (अरसी) भी वीरोचित गति को प्राप्त[2] हुआ[3]। अरसी का पुत्र हंमीर था; केवल कनिष्ठ पुत्र अजयसिंह घायल होकर जीता घर गया और अपने पिता की जगह सीसोदे का राणा हुआ।

घमंडी हो गये थे। ऐनुल्मुल्क मालवे पर भेजा गया, जिसकी चुनी हुई सेना ने एकदम उनपर हमला कर दिया। कोका मारा गया और उसका सिर सुलतान के पास भेजा गया। ऐनुल्मुल्क मालवे का हाकिम नियत हुआ और मांडू की लड़ाई में महलकदेव भी मारा गया' (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ३, पृ० ७६)। तज़िअतुल् अम्सार का कर्ता अब्दुल्ला वस्साफ़ लिखता है कि 'मेरे ग्रंथ के प्रारंभ—हि० स० ६६६ (वि० स० १३५७=ई० स० १३००)—से ३० वर्ष पूर्व मालवे के राजा के मरने पर उसके बेटे और प्रधान में अनबन होने से अंत में उन्होंने मुल्क आपस में बांट लिया' (वही; पृ० ३१)। संभव है, यह कथन महलकदेव और उसके प्रधान गोगा से संबंध रखता हो। उस समय तक मालवा परमारों के अधीन था, अतएव महलकदेव का परमार होना संभव है।

(१) *मालवेशगोगादेवजैत्रलक्ष्मसिंहः..................*

(राणपुर का शिलालेख—भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ११४)।

(२) मेवाड़ की ख्यातों में लक्ष्मसिंह का नाम 'गढ़ लखमसी' और नैणसी की ख्यात में 'भड़ लखमसी' लिखा मिलता है। गढ़ लखमसी का कोई स्पष्ट अर्थ नहीं है, परंतु भड़ (भट) लखमसी का अर्थ 'वीर लखमसी' होता है, जो शुद्ध पाठ होना चाहिये। लखमसी के ६ पुत्रों के नाम मालूम हुए हैं जो ये हैं—अरिसिंह, अभयसिंह (जिससे कुंभावत हुए), नरसिंह, कुक्कड़, माकड़, ओझड़, पेथड़ (जिसके भाखरोत हुए), अजयसी और अनतसी। उनमें से ७ तो अलाउद्दीन के साथ की लड़ाई में मारे गये, अजयसी घायल होकर बचा और अनतसी—जिसका विवाह जालोर में हुआ था—जालोर की लड़ाई के समय कान्हड़देव के साथ रहकर, अलाउद्दीन की सेना से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। जहां उसका शरीर पड़ा, वह स्थान अब तक 'अनत डूंगरी' नाम से प्रसिद्ध है। नैणसी ने लखमसी का १२ पुत्रों के साथ मारा जाना लिखा है, जो ठीक नहीं है (ख्यात; पत्र ४, पृ० १)।

(३) *तदंगजोरसीराणो रसिको रणभूमिषु।*

राणा लक्ष्मसिंह का ज्येष्ठ कुंवर अरिसिंह अपनी मृत्यु से कुछ वर्ष पूर्व एक दिन शिकार को गया हुआ था, जहां उसके हाथ से घायल होकर एक सूअर जवार के खेत में जा घुसा। अरिसिंह भी अपने घोड़े को उसके पीछे उसी खेत में ले जानां चाहता था, इतने में उस खेतवाले की लड़की ने आकर निवेदन किया कि आप खेत में घोड़ा डालकर जवार को न बिगाड़ें, मैं सूअर को खेत में से निकाल देती हूं। तदनन्तर उसने लाठी से सूअर को तुरंत खेत से बाहर कर दिया। उसकी इस हिम्मत को देखकर कुंवर को आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर के बाद—जब वे शिकारी उस खेत से कुछ दूर एक वृक्ष की छाया में विश्राम कर रहे थे—उसी लड़की ने अपने खेत पर से पक्षियों को उड़ाने के लिये गोफन चलाया, जिसका पत्थर उन शिकारियों के घोड़ों में से एक के जा लगा और उसका पैर टूट गया। फिर वह लड़की सिर पर दूध की मटकी रक्खे और भैंस के दो बच्चों को अपने साथ लिये घर जाती हुई दिखाई दी। उसके बल तथा साहस को देखकर कुंवर बड़ा ही चकित हुआ। फिर उसने वह किस जाति की है, यह दर्याफ़्त कराया, तो मालूम हुआ कि वह एक चंदाणे[1] राजपूत की लड़की थी। इसपर उसके मन में यह तरंग उठी कि यदि ऐसी बलवती कन्या से कोई पुत्र उत्पन्न हो, तो वह अवश्य बड़ा ही पराक्रमी होगा। इसी विचार से उसने उसके साथ व्याह करना चाहा, जिसको उस लड़की के पिता ने प्रसन्न होकर स्वीकार किया। कुंवर ने अपने पिता की सम्मति लिये बिना ही उसके साथ विवाह तो कर लिया, परन्तु पिता की अप्रसन्नता का भय

चित्रकूटे—श्रेण्यां त्रिदिवं प्राप्तवान् प्रभुः॥ ८३ ॥

(राणा कुंभकर्ण के समय का एकलिंगमाहात्म्य; राजवर्णन अध्याय)।

अभून्नृसिंहप्रतिमोरिसिंहस्तदन्वये भव्यपरंपराढ्ये ।

बिभेद यो वैरिगजेन्द्रकुंभस्थलीमनूनां नखखड्गघातैः ॥ १८२ ॥

(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति)।

(१) चंदाणा चौहानों की एक शाखा है। मुहणोत नैणसी ने हंमीर की माता का नाम 'देवी' लिखा है और उसको सोनगरे राजपूत की पुत्री कहा है (मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ४, पृ० १)।

रहने से वह अपनी स्त्री को अपने घर ले जाने का साहस न कर सका, जिससे वह उसके पिता के यहां ऊनवा गांव में ही रही, जहां वह शिकार के बहाने से जाकर रहा करता था। उस स्त्री से हंमीर का जन्म हुआ, जो अपने ननिहाल में ही रहता था। अरिसिंह के मारे जाने के पश्चात् जब अजयसिंह को हंमीर के ननिहाल में रहने का हाल मालूम हुआ, तब उसने उसको अपने पास बुला लिया। उन दिनों गोड़वाड़ ज़िले (जोधपुर राज्य में) का रहनेवाला मूंजा नामक बालेचा राजपूत अपने पड़ोस के मेवाड़ के इलाक़े में लूटमार करने लगा, जिससे अजयसिंह ने अपने दोनों पुत्रों—सज्जनसिंह और क्षेमसिंह—को आज्ञा दी कि वे उसको सज़ा देवें, परंतु उनसे वह काम न हो सका। इसपर अप्रसन्न होकर उसने अपने भतीजे हंमीर को, जिसकी अवस्था तो उस समय कम थी परंतु जो साहसी और वीर प्रकृति का था, वह काम सौंपा। हंमीर को यह सूचना मिली कि मूंजा गोड़वाड़ के सामेरी गांव में किसी जलसे में गया हुआ है। इसपर उसने वहां जाकर मूंजा को मार डाला[1] और उसका सिर काटकर अपने चाचा के सामने ला रक्खा। हंमीर की इस वीरता को देखकर अजयसिंह बहुत प्रसन्न हुआ, और 'बड़े भाई का पुत्र होने के कारण अपने ठिकाने का वास्तविक अधिकारी भी वही है,' यह सोचकर उसने मूंजा के रुधिर से तिलक कर उसी को अपना उत्तराधिकारी स्थिर किया। इसपर उस(अजयसिंह)के दोनों पुत्र—सज्जनसिंह और क्षेमसिंह—अप्रसन्न होकर दक्षिण को चले गये। मेवाड़ की ख्यातों के कथनानुसार इसी सज्जनसिंह के वंश में मरहटों का राज्य स्थापित करनेवाले प्रसिद्ध शिवाजी उत्पन्न हुए।

अजयसिंह का देहांत होने पर हंमीर सीसोदे की जागीर का स्वामी हुआ। फिर अपने पूर्वजों की राजधानी चित्तोड़ तथा मेवाड़ का सारा राज्य हस्तगत करने का उद्योग कर उसने चौहानों के मेवाड़ के इलाक़ों को उजाड़ना शुरू किया। उससे मेल करने के विचार से मालदेव ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करके मेवाड़ के कुछ इलाक़े उसको दहेज में दे दिये (देखो ऊपर पृ० ५०३), परन्तु इससे उसको

(१) *बलीयांसं बली मुंजनामानं मेदिनीपतिः ।*
हंमीरदेवो हतवान् अर्ज्जयन् कीर्त्तिमुत्तमां ॥ ९० ॥
(कुंभकर्ण के समय का एकलिंगमाहात्म्य; राजवर्णन अध्याय)।

संतोष न हुआ। अंत में वह चौहानों के हाथ में गया हुआ अपने पूर्वजों का सारा राज्य लेकर चित्तोड़ की गद्दी पर बैठा। तब से अब तक उसके वंश में मेवाड़ का राज्य चला आता है।

राजपूताने के अन्य राज्यों के समान उदयपुर राज्य का प्राचीन इतिहास भी अब तक अंधकार में ही है। कर्नल टॉड आदि विद्वानों ने गुहिल से लगाकर समरसिंह या रत्नसिंह तक का जो कुछ वृत्तान्त लिखा है, वह नहीं-सा है और विशेषकर भाटों की ख्यातों के आधार पर लिखा हुआ होने के कारण अधिक प्रामाणिक नहीं है। उदयपुर राज्य में प्राचीन शोध का कार्य अब तक कम ही हुआ है और मुझे भी राज्य-भर में घूमकर अनुसन्धान करने का अवसर थोड़ा ही मिला; अतएव इस प्रकरण में जो कुछ लिखा गया है उसे भी अधूरा ही समझना चाहिये, तो भी भविष्य में विशेष अनुसन्धान से उदयपुर राज्य का प्राचीन इतिहास लिखनेवालों के लिये वह कुछ सहायक तो अवश्य होगा।



परिशिष्ट—संख्या १

मेवाड़ के राजाओं की वंशावली में अशुद्धि

राजपूताने के भिन्न भिन्न पुरातन राजवंशों का कोई प्रामाणिक इतिहास पहले उपलब्ध न होने से भाटों की लिखी हुई पुस्तकें ही इतिहास का भंडार समझी जाती थीं; परंतु ज्यों-ज्यों प्राचीन शोध के कार्य में उन्नति हुई, त्यों-त्यों अनेक शिलालेख, दानपत्र, सिक्के एवं प्राचीन ऐतिहासिक संस्कृत ग्रंथ प्रसिद्धि में आने लगे। गवेषणा के फलस्वरूप अनेक प्राचीन इतिवृत्त प्रकट होने के कारण भाटों की ख्यातों पर से विद्वानों का विश्वास शनैः शनैः उठता गया। आधुनिक अनुसन्धान से अनुमान होता है कि भाटों की उपलब्ध ख्यातें वि० सं० की १६वीं शताब्दी से पीछे लिखी जाने लगीं, और जो कुछ प्राचीन नाम जनश्रुति से सुने जाते थे, वे तथा कई अन्य कृत्रिम नाम उनमें लिख दिये गये। पुराने राजाओं के निश्चित संवतों का तो उनको ज्ञान था ही नहीं, जिससे उन्होंने कल्पना के आधार पर उनके मनमाने संवत् स्थिर किये, जिनके सत्यासत्य के निर्णय का कोई उपयुक्त साधन उस समय उपस्थित न होने के कारण जो कुछ उन्होंने लिखा, वही पीछे से प्रमाणभूत माना जाने लगा। वि० सं० १६०० के आसपास पृथ्वीराज रासा बना, जिसको—प्राचीन इतिहास के लिये सर्वथा निरुपयोगी होने पर भी—उन्होंने आधारभूत मानकर उसी के अनुसार कुछ राजाओं के संवत् और वृत्तान्त भी लिखे।

पृथ्वीराज रासे में मेवाड़ के रावल समरसिंह का विवाह प्रसिद्ध चौहान पृथ्वीराज (तीसरे) की बहिन पृथाबाई के साथ होना (देखो ऊपर पृ० ४५७-५८) तथा समरसिंह का पृथ्वीराज की सहायतार्थ शहाबुद्दीन गोरी से लड़कर मारा जाना लिखा है, जिसको सत्य मानकर भाटों ने अपनी ख्यातों में पृथ्वीराज की मृत्यु के कल्पित संवत् ११५८[1] (ई० स० ११०१) में समरसिंह की मृत्यु होना भी मान

(१) पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या (स्वर्गवासी) ने पृथ्वीराज रासे में दिये हुए झूठे संवतों को 'अनंद विक्रम संवत्' कहकर उनमें ९१ मिलाने से शुद्ध संवत् हो जाने की कल्पना की, परंतु प्राचीन शोध की कसौटी पर जांच करने से वह निर्मूल सिद्ध हुई (देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० ३७७-४५४ में प्रकाशित 'अनंद विक्रम संवत् की कल्पना' शीर्षक मेरा लेख)।

लिया। उनको महाराणा हंमीर की मृत्यु का संवत् १४२१ (ई० स० १३६४) भी ज्ञात था। इन दोनों संवतों के बीच २६३ वर्ष का अंतर था, जिसको किसी तरह पूरा करने के लिये उन्होंने समरसिंह के पीछे एक वर्ष रत्नसिंह का राज्य करना तथा उसके पीछे उसके पुत्र कर्णसिंह (रणसिंह) का चित्तोड़ का राजा होना लिख दिया। फिर कर्णसिंह के पुत्र माहप को, जो वास्तव में सीसोदे का पहला सामंत हुआ, डूंगरपुर के राज्य का संस्थापक मानकर उसके छोटे भाई राहप तथा उसके १२ वंशजों (अर्थात् नरपति से लगाकर अजयसिंह तक) का भी चित्तोड़ के राजा होना लिखकर संवतों की संगति मिलाने का यत्न किया, परन्तु इसमें भी वे सफल न हो सके। इसी तरह बापा (रावल) का राज्याभिषेक वि० सं० १९१ में और समरसी की मृत्यु ११५८ में होना मानकर बापा से समरसिंह तक के राजाओं के संवत् भी मनमाने लिख दिये (देखो ऊपर पृ० ३९६, टि० १), परंतु उनके माने हुए संवतों में से एक भी शुद्ध नहीं है। कर्णसिंह रत्नसिंह का पुत्र नहीं, किंतु उसका दसवां पूर्वपुरुष था। कर्णसिंह का १३वां वंशधर सीसोदे का लक्ष्मसिंह (लखमसी) चित्तोड़ के रावल रत्नसिंह का समकालीन था, और वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में अलाउद्दीन के साथ की चित्तोड़ की लड़ाई में रत्नसिंह के साथ मारा गया था। ऐसी दशा में कर्णसिंह रत्नसिंह का पुत्र किसी प्रकार नहीं हो सकता। माहप और राहप से अजयसिंह तक के सब वंशज सीसोदे के सामंत रहे, न कि चित्तोड़ के राजा। चित्तोड़ का गया हुआ राज्य तो अजयसिंह के भतीजे (अरिसिंह के पुत्र) हंमीर ने पीछा लिया था।

जब भाटों ने सीसोदे के सामंतों की पूरी नामावली को मेवाड़ के राजाओं की वंशावली में स्थान देकर संवतों की संगति मिला दी, तो पिछले लेखकों ने भी बहुधा उसी का अनुकरण किया। 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' के कर्त्ता ने भी समरसिंह के पीछे उसके पुत्र कर्ण का मेवाड़ का राजा होना, उसके ज्येष्ठ पुत्र माहप का डूंगरपुर जाना और छोटे पुत्र राहप तथा हंमीर तक के उसके सब वंशजों का मेवाड़ के स्वामी होना लिख दिया[1]। उसने किसी के राज्याभिषेक का संवत् तो दिया ही नहीं, इसलिये उसको भाटों का अनुकरण करने में कोई आपत्ति न रही।

(१) राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ३, श्लोक २४ से सर्ग ४, श्लोक ७ तक।

कर्नल टॉड को पृथ्वीराज चौहान के मारे जाने का ठीक संवत् मालूम हो गया था, जिससे उक्त कर्नल ने 'पृथ्वीराज रासे' में दिये हुए उस घटना के संवत् ११५८ (ई० स० ११०१) को शुद्ध न मानकर वि० सं० १२४६ (ई० स० ११९२) में समरसिंह का देहांत होना माना, और भाटों के दिये हुए चौहान राजाओं के संवतों में लगभग १०० वर्ष का अन्तर बतलाया;[१] परंतु उसके बाद के वृत्तान्त के लिये तो भाटों की पुस्तकों की शरण लेनी ही पड़ी, जिससे समरसिंह के पीछे कर्ण (कर्णसिंह) का चित्तोड़ की गद्दी पर बैठना, उसके पुत्र माहप का डूंगरपुर जाना तथा राहप और उसके वंशजों का चित्तोड़ का राजा होना लिख दिया[२]।

वीरविनोद लिखते समय महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास ने ऐतिहासिक शोध में और भी उन्नति की; और जब रावल समरसिंह के वि० सं० १३३५, १३४२ और १३४४ (ई० स० १२७८, १२८५ और १२८७) के शिलालेख मिल गये, तब उनका प्रमाण देकर पृथ्वीराज चौहान के साथ समरसिंह के मारे जाने की बात को निर्मूल बतलाते हुए उसका वि० सं० १३४४ (ई० स० १२८७) तक जीवित रहना प्रकट किया। फिर फ़ारसी तवारीख़ों के आधार पर समरसिंह के पुत्र रत्नसिंह का वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में मारा जाना भी लिखा[३], परंतु खोज का कार्य इससे आगे न बढ़ने के कारण राणा शाखा कब और कहां से पृथक् हुई, यह उस समय तक ज्ञात न हो सका। तब भाटों की पुस्तकों, राजप्रशस्ति महाकाव्य तथा कर्नल टॉड के 'राजस्थान' पर ही निर्भर रहकर रत्नसिंह के पीछे उसके पुत्र करणसिंह (कर्ण) का राजा होना, उसके ज्येष्ठ पुत्र माहप का डूंगरपुर लेना तथा छोटे राहप का मेवाड़ का राज्य पाना मानकर राहप के वंशजों की पूरी नामावली मेवाड़ के राजाओं में मिला दी गई। कविराजा को यह भी ज्ञात था कि रत्नसिंह का देहांत वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में तथा हंमीर का वि० सं० १४२१ (ई० स० १३६४) में हुआ; इन दोनों घटनाओं के बीच केवल ६१ वर्ष का अंतर है, जो करणसिंह से लेकर

(१) टॉ; रा; जि० २, पृ० १४६१, टिप्पण ३।

(२) वही; जि० १, पृ० २६७-३१६।

(३) वीरविनोद; भाग १, पृ० २६६-८८।

हंमीर तक की १२ पीढ़ियों (पुश्तों) के लिये बहुत ही कम है। अतएव यही मानना पड़ा कि ये सब राजा चित्तोड़ लेने के उद्योग में थोड़े ही समय में लड़कर मारे गये,[1] जो माना नहीं जा सकता।

परिशिष्ट-संख्या २

महाराणा कुंभा के शिलालेख और सीसोदे की पीढ़ियां।

वि० सं० १७०८ के जगदीश के मन्दिर और वि० सं० १७०६ के एकलिंगजी के मन्दिर से मिले हुए शिलालेखों में तथा वि० सं० १७३२ के बने हुए 'राज-प्रशस्ति महाकाव्य' में भाटों की ख्यातों के अनुसार सीसोदे के राणाओं की सब पीढ़ियां मेवाड़ के राजाओं की नामावली में मिला दी गई हैं, परंतु वि० सं० १४९६ के महाराणा कुंभकर्ण के समय के राणपुर के शिलालेख में राहप से पृथ्वीमल्ल तक के सात नाम छोड़कर पिछले छः नाम--भुवनसिंह, जयसिंह, लक्ष्मसिंह, अजयसिंह, उसका भाई अरिसिंह और हम्मीर--ही दर्ज किये गये हैं[2]। इसी तरह उक्त महाराणा के समय के वि० सं० १५१७ के कुंभलगढ़ के शिलालेख में (जो विशेष अनुसंधान से तैयार किया गया था), रत्नसिंह के पीछे क्रमशः लक्ष्मसिंह, अरिसिंह और हम्मीर—ये तीन नाम ही दिये हैं,[3] शेष सब छोड़ दिये गये हैं। महाराणा कुंभा के समय के उक्त दोनों शिलालेख तैयार करनेवालों को मेवाड़ के राजाओं और सीसोदे के सरदारों की वंशावलियों का ज्ञान अवश्य था, जिससे उन्होंने न तो समरसिंह या रत्नसिंह के पीछे कर्णसिंह का नाम दिया, और न माहप-राहप आदि सीसोदे के सरदारों के प्रारंभ के नाम मेवाड़ के राजाओं की नामावली में जोड़े[4]। राणपुर के शिलालेख में भुवनसिंह से अजयसिंह तक

---

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० २८४-८५।

(२) भावनगर-प्राचीन-शोध-संग्रह; भाग १, पृ० ९६।

(३) कुंभलगढ़ का शिलालेख, श्लोक १७७-१८९।

(४) इन शिलालेखों से जान पड़ता है कि वि० सं० १३१७ तक तो सीसोदे के सरदारों के नाम मेवाड़ के राजाओं की नामावली में नहीं मिलाये गये थे, जिसके बाद और जग-

के नाम मेवाड़ के राजाओं तथा सीसोदे के सामंतों का संबंध बतलाने के लिये ही लिखे गये हैं, उनमें से एक भी मेवाड़ का राजा नहीं हुआ। लक्ष्मसिंह (लखमसी) के पीछे अजयसिंह का नाम लिखने का कारण यही है कि लक्ष्मसिंह के पीछे सीसोदे की जागीर का स्वामी वही हुआ था। हंमीर अरिसिंह का पुत्र था, यह स्पष्ट करने के लिये ही अजयसिंह के पीछे अरिसिंह का नाम लिखा गया। अरिसिंह कुंवरपदे में ही चित्तोड़ की लड़ाई में मारा गया था और सीसोदे का स्वामी भी न होने पाया था, परंतु उसका नाम छोड़कर अजयसिंह के पीछे हंमीर का नाम देने में उक्त शिलालेख से यह भ्रम होने की संभावना हो सकती थी कि हंमीर अजयसिंह का पुत्र हो। इसी तरह कुंभलगढ़ के शिलालेख में रत्नसिंह के पीछे क्रमशः लक्ष्मसिंह (लखमसी), अरिसिंह और हंमीर के नाम भी यह स्पष्ट करने के लिये दिये गये हैं कि हंमीर रत्नसिंह का वंशज नहीं, किंतु सीसोदे के लक्ष्मसिंह (लखमसी) का पौत्र और अरिसिंह का पुत्र था।

उक्त दोनों शिलालेखों में सीसोदे के सरदारों के उन नामों को देखकर कोई कोई यह अनुमान करते हैं कि वे रत्नसिंह के पीछे कुछ दिनों के लिये चित्तोड़ के राजा बनकर लड़ते हुए मारे गये हों, जिससे उनके नाम उक्त शिलालेखों की राजावली में दिये गये हों; परंतु ऐसा मानना भ्रम ही है, क्योंकि राणपुर के शिलालेख में दी हुई उनकी नामावली में से भुवनसिंह और अजयसिंह तो रत्नसिंह की गद्दीनशीनी से पहले ही मर चुके थे, जिससे उनका एक दिन के लिये भी चित्तोड़ का राजा होना संभव नहीं हो सकता। इसी प्रकार लक्ष्मसिंह (लखमसी) अपने सात पुत्रों (अरिसिंह आदि) सहित रत्नसिंह के समय अलाउद्दीन के साथ की लड़ाई में मारा गया और अजयसिंह, जो घायल होकर बचा, सीसोदे की जागीर का स्वामी हुआ। यही कुंभलगढ़ के शिलालेख के नामों के लिये भी समझना चाहिये।

दीश के मन्दिर के वि० सं० १७०८ के शिलालेख की रचना के बीच के समय में भाटों ने अपनी ख्यातें लिखी हों, ऐसा अनुमान होता है।

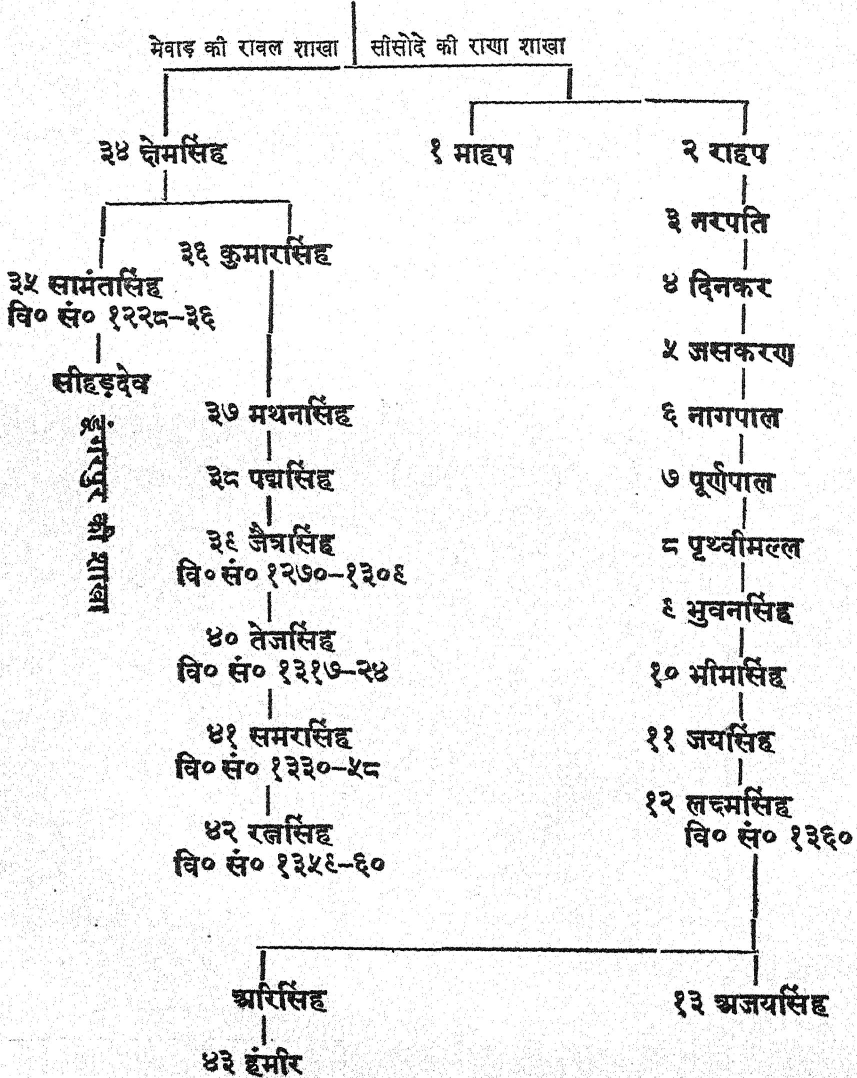
परिशिष्ट-संख्या ३

गुहिल से राणा हंमीर तक की मेवाड़ के राजाओं की वंशावली[1]

१ गुहिल (गुहदत्त)
२ भोज
३ महेन्द्र
४ नाग (नागादित्य)
५ शीलादित्य (शील) वि० सं० ७०३
६ अपराजित वि० सं० ७१८
७ महेन्द्र (दूसरा)
८ कालभोज (बापा) वि० सं० ७९१-८१०
९ खुम्माण वि० सं० ८१०
१० मत्तट
११ भर्तृभट (भर्तृपट्ट)
१२ सिंह
१३ खुंमाण (दूसरा)
१४ महायक
१५ खुंमाण (तीसरा)
१६ भर्तृभट (दूसरा) वि० सं० ९९९, १०००
१७ अल्लट वि० सं० १००८, १०१०
१८ नरवाहन वि० सं० १०२८
१९ शालिवाहन
२० शक्तिकुमार वि० सं० १०३४
२१ अंबाप्रसाद
२२ शुचिवर्मा
२३ नरवर्मा
२४ कीर्तिवर्मा
२५ योगराज
२६ वैरट

(१) इस वंशावली में जिन जिन राजाओं के नामों के साथ जो जो संवत् दिये हैं, वे शिलालेखादि से प्राप्त उनके निश्चित संवत् हैं ।

२७ हंसपाल
२८ वैरिसिंह
२९ विजयसिंह वि सं० ११६४, ११७३
३० अरिसिंह
३१ चोड़सिंह
३२ विक्रमसिंह
३३ रणसिंह (कर्णसिंह)



परिशिष्ट-संख्या ४

क्षत्रियों के गोत्र

ब्राह्मणों के गौतम, भारद्वाज, वत्स आदि अनेक गोत्र (ऋषिगोत्र) मिलते हैं, जो उन(ब्राह्मणों)का उक्त ऋषियों के वंशज होना प्रकट करते हैं। ब्राह्मणों के समान क्षत्रियों के भी अनेक गोत्र उनके शिलालेखादि में मिलते हैं, जैसे कि चालुक्यों (सोलंकियों) का मानव्य, चौहानों का वत्स, परमारों का वसिष्ठ, वाकाटकों का विष्णुवर्द्धन आदि। क्षत्रियों के गोत्र किस बात के सूचक हैं, इस विषय में मैंने हिन्दी टॉड-राजस्थान के सातवें प्रकरण पर टिप्पण करते समय प्रसंगवशात् वाकाटक वंश का परिचय देते हुए लिखा था—"वाकाटक-वंशियों के दानपत्रों में उनका विष्णुवर्द्धन गोत्र में होना लिखा है। बौद्धायन-प्रणीत 'गोत्र-प्रवर-निर्णय' के अनुसार विष्णुवर्द्धन गोत्रवालों का महर्षि भरद्वाज के वंश में होना पाया जाता है, परंतु प्राचीन काल में राजाओं का गोत्र वही माना जाता था, जो उनके पुरोहित का होता था। अतएव विष्णुवर्द्धन गोत्र से अभिप्राय इतना ही होना चाहिये कि उस वंश के राजाओं के पुरोहित विष्णुवर्द्धन गोत्र के ब्राह्मण थे[1]"। कई वर्षों तक मेरे उक्त कथन के विरुद्ध किसी ने कुछ भी नहीं लिखा, परंतु अब उस विषय की चर्चा खड़ी हुई है, जिससे उसका स्पष्टीकरण करना आवश्यक प्रतीत होता है।

श्रीयुत चिंतामणि विनायक वैद्य एम्० ए०, एल्-एल्० बी० के नाम और उनकी 'महाभारत-मीमांसा' पुस्तक से हिंदी-प्रेमी परिचित ही हैं। वैद्य महाशय इतिहास के भी प्रेमी हैं। उन्होंने ई० सन् १९२३ में 'मध्ययुगीन भारत, भाग दूसरा' नाम की मराठी पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें हिन्दू राज्यों का उत्कर्ष अर्थात् राजपूतों का प्रारंभिक (अनुमानतः ई० सन् ७५० से १००० तक का) इतिहास लिखने का यत्न किया है। वैद्य महाशय ने उक्त पुस्तक में 'राजपूतों के गोत्र' तथा 'गोत्र और प्रवर,' इन दो लेखों में यह बतलाने का यत्न किया है कि क्षत्रियों के गोत्र वास्तव में उनके मूलपुरुषों के सूचक हैं, पुरोहितों के नहीं, और पहले

---

(१) खड्गविलास प्रेस (बाँकीपुर) का छपा 'हिन्दी टॉड-राजस्थान,' खंड १, पृ० २३०-३१।

क्षत्रिय लोग ऐसा ही मानते थे (पृ० ६१); अर्थात् भिन्न भिन्न क्षत्रिय वास्तव में उन ब्राह्मणों की संतति हैं, जिनके गोत्र वे धारण करते हैं।

अब इस विषय की जाँच करना आवश्यक है कि क्षत्रियों के गोत्र वास्तव में उनके मूलपुरुषों के सूचक हैं अथवा उनके पुरोहितों के, जो उनके संस्कार करते और उनको वेदादि शास्त्रों का अध्ययन कराते थे।

याज्ञवल्क्य-स्मृति के आचाराध्याय के विवाह-प्रकरण में, कैसी कन्या के साथ विवाह करना चाहिये, यह बतलाने के लिये नीचे लिखा हुआ श्लोक है—

अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजां।
पंचमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥ ५३ ॥

आशय— जो कन्या अरोगिणी, भाईवाली, भिन्न ऋषि-गोत्र की हो और (वर का) माता की तरफ़ से पांच पीढ़ी तक तथा पिता की तरफ़ से सात पीढ़ी तक का जिससे संबंध न हो, उससे विवाह करना चाहिये।

वि० सं० ११३३ (ई० स० १०७६) और ११८३ (ई० स० ११२६) के बीच दक्षिण (कल्याण) के चालुक्य (सोलंकी) राजा विक्रमादित्य (छठे) के दरबार के पंडित विज्ञानेश्वर ने 'याज्ञवल्क्यस्मृति' पर 'मिताक्षरा' नाम की विस्तृत टीका लिखी, जिसका अब तक विद्वानों में बड़ा सम्मान है और जो सरकारी न्यायालयों में भी प्रमाणरूप मानी जाती है। उक्त टीका में, ऊपर उद्धृत किये हुए श्लोक के 'असमानार्षगोत्रजां' चरण का अर्थ बतलाते हुए, विज्ञानेश्वर ने लिखा है कि 'राजन्य (क्षत्रिय) और वैश्यों में अपने गोत्र (ऋषिगोत्र) और प्रवरों का अभाव होने के कारण उनके गोत्र और प्रवर पुरोहितों के गोत्र और प्रवर'[1]

---

(१) प्रत्येक ऋषिगोत्र के साथ बहुधा तीन या पांच प्रवर होते हैं, जो उक्त गोत्र (वंश) में होनेवाले प्रवर (परम प्रसिद्ध) पुरुषों के सूचक होते हैं। कश्मीरी पण्डित जयानक अपने 'पृथ्वीराजविजय महाकाव्य' में लिखता है—

काकुत्स्थमिक्ष्वाकुरघूंश्च यद्दधत्पुराभवत्त्रिप्रवरं रघोः कुलम्।
कलावपि प्राप्य स चाहमानतां प्ररूढतुर्यप्रवरं बभूव तत् ॥ २।७१ ॥

आशय—रघु का वंश (सूर्यवंश) जो पहले (कृतयुग में) काकुत्स्थ, इक्ष्वाकु और रघु—इन तीन प्रवरोंवाला था, वह कलियुग में चाहमान (चौहान) को पाकर चार प्रवरवाला हो गया।

समझने चाहियें" । साथ ही उक्त कथन की पुष्टि में आश्वलायन का मत उद्धृत करके बतलाया है कि राजाओं और वैश्यों के गोत्र वही मानने चाहियें, जो उनके पुरोहितों के हों[2]। मिताक्षरा के उक्त अर्थ के विषय में श्रीयुत वैद्य का कथन है कि 'मिताक्षराकार ने यहां गलती की है, इसमें हमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है (पृ० ६०)। मिताक्षरा के बनने से पूर्व क्षत्रियों के स्वतः के गोत्र थे' (पृ० ६१)। इस कथन का आशय यही है कि मिताक्षरा के बनने के पीछे क्षत्रियों के गोत्र उनके पुरोहितों के गोत्रों के सूचक हुए हैं, ऐसा माना जाने लगा; पहले ऐसा नहीं था।

अब हमें यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि मिताक्षरा के बनने से पूर्व क्षत्रियों के गोत्रों के विषय में क्या माना जाता था। वि० सं० की दूसरी शताब्दी के प्रारंभ में अश्वघोष नामक प्रसिद्ध विद्वान् और कवि हुआ, जो पहले ब्राह्मण था, परंतु पीछे से बौद्ध हो गया था। वह कुशनवंशी राजा कनिष्क का धर्मसंबंधी सलाहकार था, ऐसा माना जाता है। उसके 'बुद्धचरित' और 'सौंदरनंद' काव्य कविता की दृष्टि से बड़े ही उत्कृष्ट समझे जाते हैं। उसकी प्रभावोत्पादिनी कविता सरलता और सरसता में कवि-शिरोमणि कालिदास की कविता के जैसी ही है। यदि कालिदास की समता का पद किसी कवि को दिया जाय, तो उसके लिये अश्वघोष ही उपयुक्त पात्र हो सकता है। उसका ब्राह्मणों के

---

(१) *राजन्यविशां प्रातिस्विकगोत्राभावात् प्रवराभावस्तथापि पुरोहितगोत्रप्रवरौ वेदितव्यौ।* (मिताक्षरा; पृ० १४)।

(२) *तथा च यजमानस्यार्षेयान् प्रवृणीत इत्युक्त्वा पौरोहित्यान् राजविशां प्रवृणीते इत्याश्वलायनः।* (वही; पृ० १४)।

यही मत बौधायन, आपस्तंब और लौगाक्षी का है (पुरोहितप्रवरो राज्ञाम्)—देखो 'गोत्रप्रवरनिबंधकदंबम्'; पृ० ४०।

बुंदेले राजा वीरसिंहदेव (बरसिंहदेव) के समय मित्रमिश्र ने 'वीरमित्रोदय' नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें भी क्षत्रियों के गोत्र उनके पुरोहितों के गोत्रों के सूचक माने हैं—

तत्र द्विविधाः क्षत्रियाः केचिद्विद्यमानमंत्रदृशः। केचिदविद्यमानमंत्रदृशः। तत्र विद्यमानमंत्रदृशः स्वीयानेव प्रवरान्प्रवृणीरन्। येत्वविद्यमानमंत्रदृशस्ते पुरोहितप्रवरान् प्रवृणीरन्। स्वीयप्रवरत्वेपि स्वस्य पुरोहितगोत्रप्रवरपक्ष एव मिताक्षराकारमेधातिथिप्रभृतिभिराश्रितः। 'वीरमित्रोदय;' संस्कारप्रकाश, पृ० ६२१।

शास्त्रों तथा पुराणों का ज्ञान भी अनुपम था, जैसा कि उसके उक्त काव्यों से पाया जाता है। सौंदरनंद काव्य के प्रथम सर्ग में उसने क्षत्रियों के गोत्रों के संबंध में जो विस्तृत विवेचन किया है, उसका सारांश नीचे लिखा जाता है—

"गौतम गोत्री कपिल नामक तपस्वी मुनि अपने माहात्म्य के कारण दीर्घ-तपस् के समान और अपनी बुद्धि के कारण काव्य (शुक्र) तथा अंगिरस के समान था। उसका आश्रम हिमालय के पार्श्व में था। कई इक्ष्वाकु-वंशी राज-पुत्र मातृद्वेष के कारण और अपने पिता के सत्य की रक्षा के निमित्त राजलक्ष्मी का परित्याग कर उस आश्रम में जा रहे। कपिल उनका उपाध्याय (गुरु) हुआ, जिससे वे राजकुमार, जो पहले कौत्स-गोत्री थे, अब अपने गुरु के गोत्र के अनुसार गौतम-गोत्री कहलाये। एक ही पिता के पुत्र भिन्न भिन्न गुरुओं के कारण भिन्न भिन्न गोत्र के हो जाते हैं, जैसे कि राम (बलराम) का गोत्र 'गार्ग्य' और वासुभद्र (कृष्ण) का 'गौतम' हुआ। जिस आश्रम में उन राजपुत्रों ने निवास किया, वह 'शाक' नामक वृक्षों से आच्छादित होने के कारण वे इक्ष्वाकुवंशी 'शाक्य' नाम से प्रसिद्ध हुए। गौतमगोत्री कपिल ने अपने वंश की प्रथा के अनुसार उन राजपुत्रों के संस्कार किये और उक्त मुनि तथा उन क्षत्रिय-पुंगव राजपुत्रों के कारण उस आश्रम ने एक साथ 'ब्रह्मक्षत्र' की शोभा धारण की[1]"।

---

[1] गोतमः कपिलो नाम मुनिर्धर्म्मभृतां वरः ।
बभूव तपसि श्रान्तः कक्षीवानिव गौतमः ॥ १ ॥
माहात्म्यात् दीर्घतपसो यो द्वितीय इवाभवत् ।
तृतीय इव यश्चाभूत् काव्याङ्गिरसयोर्द्धिया ॥ ४ ॥
तस्य विस्तीर्णतपसः पार्श्वे हिमवतः शुभे ।
क्षेत्रं चायतनञ्चैव तपसामाश्रयोऽभवत् ॥ ५ ॥
अथ तेजस्विसदनं तपःक्षेत्रं तमाश्रमम् ।
केचिदिक्ष्वाकवो जग्मू राजपुत्रा विवत्सवः ॥ १८ ॥
मातृशुल्कादुपगतां ते श्रियं न विषेहिरे ।
ररक्षुश्च पितुः सत्यं यस्माच्छिश्रियिरे वनम् ॥ २१ ॥
तेषां मुनिरुपाध्यायो गोतमः कपिलोऽभवत् ।
गुरोर्गोत्रादतः कौत्सास्ते भवन्ति स्म गौतमाः ॥ २२ ॥

अश्वघोष का यह कथन मिताक्षरा के बनने से १००० वर्ष से भी अधिक पूर्व का है; अतएव श्रीयुत वैद्य के ये कथन कि 'मिताक्षराकार ने गलती की है,' और 'मिताक्षरा के पूर्व क्षत्रियों के स्वत: के गोत्र थे', सर्वथा मानने योग्य नहीं हैं, और क्षत्रियों के गोत्रों को देखकर यह मानना कि ये क्षत्रिय उन ऋषियों (ब्राह्मणों) के वंशधर हैं, जिनके गोत्र वे धारण करते हैं, सरासर भ्रम ही है। पुराणों से यह तो पाया जाता है कि अनेक क्षत्रिय ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए और उनसे कुछ ब्राह्मणों के गोत्र चले[1], परन्तु उनमें यह कहीं लिखा नहीं मिलता कि क्षत्रिय ब्राह्मणों के वंशधर हैं।

एकपित्रोर्यथा भ्रात्रोः पृथग्गुरुपरिग्रहात्।
राम एवाभवत् गार्ग्यो वासुभद्रोऽपि गोतमः॥ २३॥
शाकवृक्षप्रतिच्छन्नं वासं यस्माच्च चक्रिरे।
तस्मादिक्ष्वाकुवंश्यास्ते भुवि शाक्या इति स्मृताः॥ २४॥
स तेषां गोतमश्चक्रे स्ववंशसदृशीः क्रियाः।... ॥ २५॥
तद्वनं मुनिना तेन तैश्च क्षत्रियपुङ्गवैः।
शान्तां गुप्ताञ्च युगपद् ब्रह्मक्षत्रश्रियं दधे॥ २७॥

(सौंदरनंद काव्य; सर्ग १)।

(१) सूर्यवंशी राजा मांधाता के तीन पुत्र—पुरुकुत्स, अंबरीष और मुचकुंद—थे। अंबरीष का पुत्र युवनाश्व और उसका हरित हुआ, जिसके वंशज आंगिरस हारित कहलाए और हारित-गोत्री ब्राह्मण हुए।

तस्यामुत्पादयामास मांधाता त्रीन्सुतान्प्रभुः॥ ७१॥
पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुंदं च विश्रुतम्।
अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः॥ ७२॥
हरिती युवनाश्वस्य हारिताः शूरयः स्मृताः।
एते ह्यङ्गिरसः पुत्राः क्षात्रोपेता द्विजातयः॥ ७३॥

(वायुपुराण; अध्याय ८८)।

अंबरीषस्य मांधातुस्तनयस्य युवनाश्वः पुत्रोभूत्। तस्माद्धरितो यतोंऽगिरसो हारिताः॥ ५॥ (विष्णुपुराण; अंश ४, अध्याय ३)।

यदि क्षत्रियों के गोत्र उनके पुरोहितों (गुरुओं) के सूचक न होकर उनके मूलपुरुषों के सूचक होते, जैसा कि श्रीयुत वैद्य का मानना है, तो ब्राह्मणों के समान उनके गोत्र सदा वे के वे ही बने रहते और कभी न बदलते, परन्तु प्राचीन शिलालेखादि से ऐसे प्रमाण मिल आते हैं, जिनसे एक ही कुल या वंश के क्षत्रियों के समय समय पर भिन्न भिन्न गोत्रों का होना पाया जाता है। ऐसे थोड़ेसे उदाहरण नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

मेवाड़ (उदयपुर) के गुहिलवंशियों (गुहिलोतों, गोभिलों, सीसोदियों) का गोत्र वैजवाप है। पुष्कर के अष्टोत्तरशत-लिंगवाले मंदिर में एक सती का स्तंभ खड़ा है, जिसपर के लेख से पाया जाता है कि वि० सं० १२४३ (ई० स० ११८७) माघ सुदि ११ को ठ० (ठकुरानी) हीरवदेवी, ठा० (ठाकुर) कोल्हण की स्त्री, सती हुई। उक्त लेख में ठा० कोल्हण को गुहिलवंशी और गौतमगोत्री[1] लिखा है। काठियावाड़ के गोहिल भी, जो मारवाड़ के खेड़ इलाक़े से वहां गये हैं और जो मेवाड़ के राजा शालिवाहन के वंशज हैं, अपने को गौतम-गोत्री मानते हैं। मध्यप्रदेश के दमोह ज़िले के मुख्य स्थान दमोह से गुहिल-वंशी विजयसिंह का एक शिलालेख मिला है, जो इस समय नागपुर म्यूज़ियम् में सुरक्षित है। वह लेख छंदोबद्ध डिंगल भाषा में खुदा है और उसके अंत का थोड़ासा अंश संस्कृत में भी है। पत्थर का कुछ अंश टूट जाने के कारण संवत् जाता रहा है। उसमें गुहिल वंश के चार राजवंशियों के नाम क्रमशः विजयपाल, भुवनपाल, हर्षराज और विजयसिंह दिये हैं, जिनको विश्वामित्र-गोत्री[2] और गुहिलोत[3] (गुहिलवंशी) बतलाया है। ये मेवाड़ से ही उधर

अंबरीषस्य युवनाश्वः प्रपितामहसनामा यतो हरिताद्धारिता अंगिरसा द्विजा हरितगोत्रप्रवराः । विष्णुपुराण की टीका (पत्र ६)।

चंद्रवंशी राजा गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने ब्रह्मत्व प्राप्त किया और उसके वंशज ब्राह्मण हुए, जो कौशिकगोत्री कहलाते हैं। पुराणों में ऐसे बहुतसे उदाहरण मिलते हैं।

(१) राजपूताना म्यूज़ियम् की ई० सन् १९२०–२१ की रिपोर्ट; पृ० ३, लेख-संख्या ५।

(२) *विसामित्त गोत्त उत्तिम चरित विमल पवित्तो०* (पंक्ति ६, डिंगल भाग में) *विस्वा(श्वा)मित्र सु(शु)भे गोत्रे* (पंक्ति २६, संस्कृत अंश में)।

(३) *विजयसीहु धुर चरणो चाई सूरोऽसुभधो सेल खनकग्र कुशलो गुहिलौतो सव्व गुणो*······(पं० १३–१५, डिंगल भाग में)।

गये हुए प्रतीत होते हैं; क्योंकि विजयसिंह के विषय में लिखा है कि वह चित्तोड़ की लड़ाई में लड़ा और उसने दिल्ली की सेना को परास्त किया[1]। इस प्रकार मेवाड़ के गुहिलवंशियों के तीन भिन्न भिन्न गोत्रों का पता चलता है।

इसी तरह चालुक्यों (सोलंकियों) का मूल-गोत्र मानव्य था, और मद्रास अहाते के विज़ागापट्टम् (विशाखपट्टन) ज़िले के जयपुर राज्य (ज़मींदारी) के अंतर्गत गुणपुर और मोड़गुला के ठिकाने अब तक सोलंकियों के ही हैं और उनका गोत्र मानव्य[2] ही है, परन्तु लूंणावाड़ा, पीथापुर और रीवाँ आदि के सोलंकियों (बघेलों) का गोत्र भारद्वाज होना वैद्य महाशय ने बतलाया है (पृ० ६४)।

इस प्रकार एक ही वंश के राजाओं के भिन्न भिन्न गोत्र होने का कारण यही जान पड़ता है कि राजपूतों के गोत्र उनके पुरोहितों के गोत्रों के ही सूचक हैं; और जब वे अलग अलग जगह जा बसे, तब वहां जिसको पुरोहित माना, उसी का गोत्र वे धारण करते रहे।

राजपूतों के गोत्र उनके वंशकर्ता के सूचक न होने तथा उनके पुरोहितों के गोत्रों के सूचक होने के कारण पीछे से उनमें गोत्र का महत्त्व कुछ भी रहा हो, ऐसा पाया नहीं जाता। प्राचीन रीति के अनुसार संकल्प, श्राद्ध आदि में उसका उच्चारण होता रहा है। सोलंकियों का प्राचीन गोत्र मानव्य था और अब तक भी कहीं कहीं वही माना जाता है। गुजरात के मूलराज आदि सोलंकी राजाओं का गोत्र क्या माना जाता था, इसका कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नहीं मिलता, तो भी संभव है कि या तो मानव्य या भारद्वाज हो। उनके पुरोहितों का गोत्र वसिष्ठ[3] था, ऐसा गुर्जरेश्वर-पुरोहित सोमेश्वरदेव के 'सुरथोत्सव' काव्य से निश्चित है। आज भी राजपूताना आदि में राजपूत राजाओं के गोत्र उनके पुरोहितों के गोत्रों से बहुधा भिन्न ही हैं।

ऐसी दशा में यही कहा जा सकता है कि राजपूतों के गोत्र सर्वथा उनके

---

(१) *जो चित्तोडहुँ जुज्झिअउ जिण ढिलीदल जित्तु*। (पं० २१)।

(२) सोलंकियों का प्राचीन इतिहास; भाग १, पृ० २७४।

(३) नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); भाग ४, पृ० २।

वंशकर्ताओं के सूचक नहीं, किंतु पुरोहितों के गोत्रों के सूचक होते थे, और कभी कभी पुरोहितों के बदलने पर गोत्र बदल जाया करते थे, कभी नहीं भी। यह रीति उनमें उसी समय तक बनी रही, जब तक कि पुरोहितों के द्वारा उनके वैदिक संस्कार होकर प्राचीन शैली के अनुसार वेदादि-पठन-पाठन का क्रम उनमें प्रचलित रहा। पीछे तो वे गोत्र नाममात्र के रह गये; केवल प्राचीन प्रणाली को लिये हुए संकल्प, श्राद्ध आदि में गोत्रोच्चार करने के अतिरिक्त उनका महत्त्व कुछ भी न रहा और न वह प्रथा रही, कि पुरोहित का जो गोत्र हो वही राजा का भी हो[1]।

(१) नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण), भाग ४, पृष्ठ ४३९–४४३ में मैंने 'क्षत्रियों के गोत्र'-शीर्षक यही लेख प्रकाशित किया, जिसके पीछे श्री० वैद्य ने 'हिस्ट्री ऑफ़ मेडिएवल हिन्दू इंडिया' नामक अपने अंग्रेज़ी इतिहास की तीसरी जिल्द प्रकाशित की, जिसमें क्षत्रियों के गोत्रों के आधार पर उनके भिन्न भिन्न ऋषियों (ब्राह्मणों) की सन्तान होने की बात फिर दुहराई है और मेरे उद्धृत किये हुए अश्वघोष के कथन को बौद्धों का कथन कहकर निर्मूल बतलाया है, जो हठधर्मी ही है। पुराणों का वर्त्तमान स्थिति में नया संस्कार होने से बहुत पूर्व होनेवाले अश्वघोष जैसे बड़े विद्वान् ने बुद्धदेव के पूर्व के इक्ष्वाकुवंशी (सूर्यवंशी) क्षत्रियों की गोत्र-परिपाटी का विशद परिचय दिया है; और बुद्धदेव, गौतम क्यों कहलाये तथा इक्ष्वाकुवंशी राजपुत्र, जिनका गोत्र पहले कौत्स था, परन्तु पीछे से उनके उपाध्याय (गुरु) के गोत्र के अनुसार उनका गोत्र गौतम कैसे हुआ, इसका यथेष्ट विवेचन किया है, जो श्री० वैद्य के कथन से अधिक प्रामाणिक है। श्री० वैद्य का यह कथन, कि "मिताक्षराकार ने भूल की है और उसके पीछे क्षत्रियों के गोत्र पुरोहितों के गोत्र माने जाने लगे हैं", किसी प्रकार स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि विज्ञानेश्वर ने अपना मत प्रकट नहीं किया, किन्तु अपने से पूर्व होनेवाले आश्वलायन का भी वही मत होना बतलाया है। केवल आश्वलायन का ही नहीं, किन्तु बौधायन, आपस्तंब और लौगाक्षी आदि आचार्यों का मत भी ठीक वैसा ही है, जैसा कि मिताक्षराकार का। हमने उनके मत भी उद्धृत किये थे, परंतु श्री० वैद्य उनके विषय में तो मौन धारण कर गये, और अपना वही पुराना गीत गाते रहे कि तमाम क्षत्रिय ब्राह्मणों की सन्तान हैं। पुरोहित के पलटने के साथ कभी कभी क्षत्रियों के गोत्र भी बदलते रहे, जिससे शिलालेखादि से एक ही वंश में दो या अधिक गोत्रों का होना जो हमने बतलाया, उस विषय में भी उन्होंने अपना मत प्रकाशित नहीं किया, परंतु अपने कथन की पुष्टि के लिये जयपुर के दो पंडितों की लिखित सम्मतियां छापी हैं। उनमें से पहली द्रविड़ वीरेश्वर शास्त्री की संस्कृत में है (पृ० ४७८), जिसमें श्री० वैद्य के कथन को स्वीकार किया है, परंतु उसकी पुष्टि में एक भी प्रमाण नहीं दिया। ऐसे प्रमाणशून्य बाबावाक्य को इस समय कोई नहीं मानता, अब तो लोग पग पग पर प्रमाण मांगते हैं। दूसरी सम्मति—पंडित मधुसूदन शास्त्री की—श्री० वैद्य और द्रविड़ शास्त्री के कथन के विरुद्ध इस प्रकार है—

परिशिष्ट-संख्या ५

क्षत्रियों के नामान्त में 'सिंह' पद का प्रचार

यह जानना भी आवश्यक है कि क्षत्रियों (राजपूतों) के नामों के अंत में 'सिंह' पद कब से लगने लगा, क्योंकि पिछली कुछ शताब्दियों से राजपूतों में इसका प्रचार विशेष रूप से होने लगा है। पुराणों और महाभारत में जहां सूर्य-चंद्र-वंशी आदि क्षत्रिय राजाओं की वंशावलियां दी हैं, उनमें तो किसी राजा के नाम के अन्त में 'सिंह' पद न होने से निश्चित है कि प्राचीन काल में सिंहान्त नाम नहीं होते थे। प्रसिद्ध शाक्यवंशी राजा शुद्धोदन के पुत्र सिद्धार्थ (बुद्धदेव) के नाम के अनेक पर्यायों में से एक 'शाक्यसिंह'[1] भी अमरकोषादि में मिलता है, परन्तु वह वास्तविक नाम नहीं है। उसका अर्थ यही है कि शाक्य जाति के क्षत्रियों (शाक्यों) में श्रेष्ठ (सिंह के समान)। प्राचीनकाल में 'सिंह,' 'शार्दूल' 'पुंगव' आदि शब्द श्रेष्ठत्व प्रदर्शित करने के लिये शब्दों के अंत में जोड़े जाते थे, जैसे—'क्षत्रियपुंगव' (क्षत्रियों में श्रेष्ठ), 'राजशार्दूल' (राजाओं में श्रेष्ठ), 'नरसिंह' (पुरुषों में सिंह के सदृश) आदि। ऐसा ही शाक्यसिंह शब्द भी है, न कि मूल नाम। यह पद नाम के अन्त में पहले पहल गुजरात, काठियावाड़, राजपूताना, मालवा, दक्षिण आदि देशों पर राज्य करनेवाले शक जाति के क्षत्रप-

---

"क्षत्रियोंका उत्पत्तिदृष्ट्या गोत्र मनु है और वैश्योंका भलन्दन है. क्षत्रियोंके जो भारद्वाजवत्सादि गोत्र प्रसिद्ध हैं वे पूर्वकालमें उनके प्राचीन पुरोहितोंसे प्राप्त हुवे हैं. वे अब बदल नही सकते. क्यौंके नया पुरोहित करना मना हैं. हालमें पुरोहितोंका गोत्र इसी सबबसे भिन्न हैं. यह पुराणे पीढियोंसे चला हुवा गोत्र एकतन्हेसे [?] प्रातिस्विक गोत्र होगया हैं क्यौंके वुह [?] बदल नही सकता." (पृ० ४७८)—नकल हूबहू।

श्री० वैद्य महाशय एक भी प्रमाण देकर यह नहीं बतला सके कि क्षत्रिय ब्राह्मणों के वंशज हैं। शिलालेखों में क्षत्रियों के गोत्रों के जो नाम मिलते हैं, वे प्राचीन प्रणाली के अनुसार उनके संस्कार करनेवाले पुरोहितों के ही गोत्रों के सूचक हैं, न कि उनके मूलपुरुषों के।

(१) स शाक्यसिंहः सर्वार्थसिद्धः शौद्धोदनिश्च सः।
गौतमश्चार्कबंधुश्च मायादेवीसुतश्च सः॥

(अमरकोष, स्वर्गवर्ग)।

वंशी महाप्रतापी राजा रुद्रदाम[1] के दूसरे पुत्र रुद्रसिंह के नाम में मिलता है[1]। रुद्रदामा के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र दामघ्सद (दामजदश्री) और उसके बाद उसका छोटा भाई वही रुद्रसिंह क्षत्रप-राज्य का स्वामी हुआ। यही सिंहान्त नाम का पहला उदाहरण है। रुद्रसिंह के सिक्के शक संवत् १०३-११८ (वि० सं० २३८-२५३=ई० स० १८१-१९६) तक के मिले हैं[2]। उसी वंश में रुद्रसेन (दूसरा) भी राजा हुआ, जिसके शक संवत् १७८-१९६ (वि० सं० ३१३-३३१=ई० स० २५६-२७४) तक के सिक्के मिले हैं[3]; उसके दो पुत्रों में से ज्येष्ठ का नाम विश्वसिंह था। यह उक्त शैली के नाम का दूसरा उदाहरण है। फिर उसी वंश में रुद्रसिंह, सत्यसिंह (स्वामिसत्यसिंह) और रुद्रसिंह (स्वामिरुद्रसिंह) के नाम मिलते हैं,[4] जिनमें से अंतिम रुद्रसिंह शक संवत् ३१० (वि० सं ४४५=ई० स० ३८८) में जीवित था, जैसा कि उसके सिक्कों से पाया जाता है[5]। इस प्रकार उक्त वंश में सिंहान्त पदवाले ५ नाम हैं। तत्पश्चात् इस प्रकार के नाम रखने की शैली अन्य राजघरानों में भी प्रचलित हुई। दक्षिण के सोलंकियों में जयसिंह नामधारी राजा वि० सं० ५६४ के आसपास हुआ[6], फिर उसी वंशमें वि० सं० ११०० के आसपास जयसिंह दूसरा हुआ[7]। उसी वंश की वेंगी की शाखा में जयसिंह नाम के दो राजा हुए, जिनमें से पहले ने वि० सं० ६९० से ७१९ (ई० स० ६३३-६६३) तक और जयसिंह दूसरे ने वि० सं० ७५४-७६७ (ई० स० ६९७-७१०) तक वेंगी देश पर शासन किया[8]। मेवाड़ के गुहिलवंशियों में ऐसे नामों का प्रचार वि० सं० की बारहवीं शताब्दी से हुआ। तब से वैरिसिंह, विजयसिंह, अरिसिंह[9] आदि नाम

(१) देखो ऊपर पृ० १०५, १०६, ११०।

(२) ऊपर पृ० ११०।

(३) ऊपर पृ० १०६, ११०।

(४) ऊपर पृ० १०९-१०।

(५) ऊपर पृ० ११०।

(६) मेरा 'सोलंकियों का प्राचीन इतिहास;' प्रथम भाग, पृष्ठ १५-१६ और ९८।

(७) वही; पृ० ८६-९१।

(८) वही; पृ० १४१-४२ और १४६-४७ तथा १९५।

(९) देखो ऊपर पृ० ४४०-४१।

रक्खे जाने लगे और अब तक बहुधा इसी शैली से नाम रक्खे जाते हैं। मारवाड़ के राठोड़ों में, विशेषकर वि० सं० की १७वीं शताब्दी में, रायसिंह से इस शैली के नामों का प्रचार हुआ[1]। तब से अब तक वही शैली प्रचलित है। कछवाहों में पहले पहल वि० सं० की बारहवीं शताब्दी में नरवरवालों ने इस शैली को अपनाया और वि० सं० ११७७ के शिलालेख में गगनसिंह, शरदसिंह और वीरसिंह के नाम मिलते हैं[2]। चौहानों में सबसे पहले जालोर के राजा समरसिंह[3] का नाम वि० सं० की तेरहवीं शताब्दी में मिलता है, जिसके पीछे उदयसिंह, सामंतसिंह आदि हुए। मालवे के परमारों में वि० सं० की दसवीं शताब्दी के आसपास वैरिसिंह[4] नाम का प्रयोग हुआ। इस प्रकार शिलालेखादि से पता लगता है कि इस तरह के नाम सबसे पहले क्षत्रपवंशी राजाओं, दक्षिण के सोलंकियों, मालवे के परमारों, मेवाड़ के गुहिलवंशियों, नरवर के कछवाहों, जालोर के चौहानों आदि में रक्खे जाने लगे, फिर तो इस शैली के नामों का राजपूतों में विशेष रूप से प्रचार हुआ।



(१) रायसिंह से पूर्व जालणसी नाम ख्यातों में मिलता है, परंतु अब तक किसी शिलालेख में उसका शुद्ध नाम नहीं मिला, जिससे यह निश्चय नहीं होता कि उसका नाम जालण (जाल्हण, जल्हण) था या जालणसिंह। रायसिंह से पीछे अब तक मारवाड़ के सब राजाओं के नामों के अंत में 'सिंह' पद लगता रहा है।

(२) हिं. टॉ. रा; (प्रथम खंड) पृ० ३७९।

(३) वही; पृ० ४०६।

(४) ऊपर पृ० १८४ और २०६।

परिशिष्ट-संख्या ६

इस इतिहास में प्रसंग प्रसंग पर दिल्ली, गुजरात और मालवे के सुलतानों तथा दिल्ली के बादशाहों के संबंध की घटनाएं आती रहेंगी, अतएव पाठकों के सुबीते के लिये गद्दीनशीनी के संवत् सहित उनकी नामावली नीचे दी जाती है—

दिल्ली के सुलतान

तुर्क वंश

		ई० स०	वि० सं०
१	शहाबुद्दीन ग़ोरी	११६२	१२४६

ग़ुलाम वंश

		ई० स०	वि० सं०
१	कुतुबुद्दीन ऐबक	१२०६	१२६३
२	आरामशाह	१२१०	१२६७
३	शम्सुद्दीन अल्तमश	१२१०	१२६७
४	रुक्नुद्दीन फ़ीरोज़शाह	१२३६	१२९३
५	रज़िया (बेगम)	१२३६	१२९३
६	मुइज़ुद्दीन बहरामशाह	१२४०	१२९७
७	अलाउद्दीन मसूदशाह	१२४२	१२९९
८	नासिरुद्दीन महमूदशाह	१२४६	१३०३
९	ग़यासुद्दीन बलबन	१२६६	१३२२
१०	मुइज़ुद्दीन कैकूबाद	१२८७	१३४४

ख़िलजी वंश

		ई० स०	वि० सं०
१	जलालुद्दीन फ़ीरोज़शाह	१२९०	१३४६
२	रुक्नुद्दीन इब्राहीमशाह ...	१२९६	१३५३
३	अलाउद्दीन मुहम्मदशाह ...	१२९६	१३५३
४	शहाबुद्दीन उमरशाह	१३१६	१३७२
५	कुतुबुद्दीन मुबारकशाह	१३१६	१३७२
६	नासिरुद्दीन खुसरोशाह	१३२०	१३७७

तुग़लक वंश

		ई० स०	वि० सं०
१	ग़यासुद्दीन तुग़लकशाह ...	१३२०	१३७७
२	मुहम्मद तुग़लक	१३२५	१३८१
३	फ़ीरोज़शाह	१३५१	१४०८
४	तुग़लकशाह (दूसरा)	१३८८	१४४५
५	अबूबक्रशाह	१३८९	१४४५

				ई० स०	वि० सं०
६	मुहम्मदशाह	...	...	१३८६	१४४६
७	सिकंदरशाह	...	...	१३६४	१४५०
८	महमूदशाह	...	...	१३६४	१४५१
९	नसरतशाह	...	...	१३६५	१४५१
	महमूदशाह (दूसरी बार)		...	१३९९	१४५६
१०	दौलतखां लोदी	...	...	१४१२	१४६९

सैयद वंश

१	खिज़रखां	...	...	१४१४	१४७१
२	मुइज़ुद्दीन मुबारकशाह	...	...	१४२१	१४७८
३	मुहम्मदशाह	...	...	१४३४	१४९०
४	आलिमशाह	...	...	१४४३	१५००

अफ़ग़ान वंश (लोदी वंश)

१	बहलोल लोदी	...	...	१४५१	१५०८
२	सिकंदर लोदी	...	...	१४८९	१५४६
३	इब्राहीम लोदी	...	...	१५१७	१५७४

मुग़ल वंश के बादशाह

१	बाबर बादशाह	...	...	१५२६	१५८३
२	हुमायूं ,,	...	...	१५३०	१५८७

सूर वंश

१	शेरशाह	...	...	१५३९	१५९६
२	इस्लामशाह	...	...	१५४५	१६०२
३	मुहम्मद आदिलशाह	...	...	१५५२	१६०९
४	इब्राहीम सूर	...	...	१५५३	१६१०
५	सिकंदरशाह	...	...	१५५५	१६१२

मुग़ल वंश (दूसरी बार)

१	हुमायूं (दूसरी बार)	...	...	१५५५	१६१२
२	अकबर बादशाह	...	...	१५५६	१६१२
३	जहांगीर ,,	...	...	१६०५	१६६२
४	शाहजहां ,,	...	...	१६२८	१६८४
५	औरंगज़ेब (आलमगीर)		...	१६५८	१७१५
६	बहादुरशाह (शाह आलम)		...	१७०७	१७६४
७	जहांदारशाह	...	...	१७१२	१७६९
८	फ़र्रुख़सियर	...	...	१७१३	१७६९

				ई० स०	वि० सं०
९	रफ़िउद्दरजात	...	...	१७१९	१७७५
१०	रफ़िउद्दौला	...	...	१७१९	१७७६
११	मुहम्मदशाह	...	...	१७१९	१७७६
१२	अहमदशाह	...	...	१७४८	१८०५
१३	आलमगीर (दूसरा)	...	...	१७५४	१८११
१४	शाहजहां (दूसरा)	...	...	१७५९	१८१६
१५	शाह आलम (दूसरा)	...	...	१७५९	१८१६
१६	अकबर (दूसरा)	...	...	१८०६	१८६३
१७	बहादुरशाह (दूसरा)	...	...	१८३७	१८९४

गुजरात (अहमदाबाद) के सुलतान

१	मुज़फ़्फ़रशाह	...	...	१३९६	१४५३
२	अहमदशाह	...	...	१४११	१४६८
३	मुहम्मद करीमशाह	...	...	१४४२	१४९९
४	कुतुबुद्दीन	...	...	१४५१	१५०७
५	दाऊदशाह	...	...	१४५९	१५१६
६	महमूदशाह (बेगड़ा)	...	...	१४५९	१५१६
७	मुज़फ़्फ़रशाह (दूसरा)		...	१५११	१५६८
८	सिकंदरशाह	...	...	१५२६	१५८२
९	नासिरख़ां महमूद (दूसरा)		...	१५२६	१५८३
१०	बहादुरशाह	...	...	१५२६	१५८३
११	मीरां मुहम्मदशाह (फ़ारुक़ी)		...	१५३७	१५९३
१२	महमूदशाह (तीसरा)	...	...	१५३७	१५९४
१३	अहमदशाह (दूसरा)	...	...	१५५४	१६१०
१४	मुज़फ़्फ़रशाह (तीसरा)		...	१५६१	१६१८

मालवे (मांडू) के सुलतान

ग़ोरी वंश

१	दिलावरख़ां (अमीशाह)		...	१३७३(?)	१४३०(?)
२	हुशंग (अलपख़ां)	...	...	१४०५	१४६२
३	मुहम्मद (ग़ज़नीख़ां)	...	...	१४३४	१४९१

ख़िलजी वंश

१	महमूदशाह ख़िलजी	...	...	१४३६	१४९३
२	ग़यासशाह ख़िलजी	...	...	१४७५	१५३२
३	नासिरशाह ख़िलजी	...	...	१५००	१५५७
४	महमूदशाह (दूसरा)	...	...	१५११-३०	१५६८-८७

चौथा अध्याय



महाराणा हंमीर से महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) तक



मेवाड़ के राज्य पर गुहिलवंशियों की सीसोदिया शाखा का आधिपत्य



हंमीर

हंमीर (हंमीरसिंह) सीसोदे की एक छोटी जागीर का स्वामी होने पर भी बड़ा वीर, साहसी, निर्भीक और अपने कुल-गौरव का अभिमान रखनेवाला युवा पुरुष था। अपने वंश का परंपरागत राज्य पहले मुसलमानों और उनके पीछे सोनगरों के हाथ में चला गया, जो उसको बहुत ही खटकता था। दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन के पिछले समय में उसके राज्य की दशा ख़राब होने लगी और उसके मरते ही तो उसकी और भी दुर्दशा हुई। दिल्ली की सल्तनत की यह दशा देखकर हंमीर के चित्त में अपना पैतृक राज्य पीछा लेने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई, जिससे उसने मालदेव के जीतेजी उसके इलाक़े छीनकर अपनी जागीर में मिलाना आरंभ किया और उसके मरने पर उसके पुत्र जेसा के समय उसने गुहिलवंशियों की राजधानी चित्तोड़ को वि० सं० १३८३ (ई० स० १३२६) के आसपास[1] अपने हस्तगत कर लिया। तदनन्तर सारे मेवाड़ पर

(१) हंमीर के चित्तोड़ की गद्दी पर बैठने के निश्चित संवत् का अब तक पता नहीं लगा। भाटों की ख्यातों तथा कर्नल टॉड के 'राजस्थान' में उसकी गद्दीनशीनी का संवत्

अपना प्रभुत्व जमाया। इस प्रकार गुहिल वंश की सीसोदिया शाखा का राज्य वहां पर स्थापित कर उसने चित्तोड़ में अपने राज्याभिषेक का उत्सव मनाया और 'महाराणा' पद धारण किया। तब से लेकर आज तक मेवाड़ पर सीसोदियों का राज्य चला आ रहा है।

मुहम्मद तुग़लक की सेना से लड़ाई

इस प्रकार चौहानों के अधिकार से चित्तोड़ का दुर्ग और मेवाड़ का राज्य छूट जाने पर राव मालदेव का पुत्र जेसा सुलतान मुहम्मद तुग़लक के पास दिल्ली पहुंचकर सुलतान की सेना को महाराणा हंमीर पर चढ़ा लाया। इस विषय में मेवाड़ की ख्यातों तथा कर्नल टॉड के 'राजस्थान' आदि पिछले इतिहासों में लिखा है—'चित्तोड़ के छिन जाने पर मालदेव सुलतान मुहम्मद ख़िलजी के पास' दिल्ली गया और सुलतान को मेवाड़ पर चढ़ा लाया। सिंगोली गांव के पास लड़ाई हुई, जिसमें हंमीर ने सुलतान को हराकर क़ैद किया और बनबीर के भाई हरिसिंह को लड़ाई में मारा; सुलतान तीन मास तक चित्तोड़ में क़ैद रहा और अंत में अजमेर, रणथंभोर, नागोर और शोपुर के इलाक़े, ५० लाख रुपये तथा

१३५७ (ई० स० १३००) लिखा मिलता है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३१५), जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि उस संवत् में तो चित्तोड़ का राजा समरसिंह था (देखो ऊपर पृ० ४८१-८२ और उनके टिप्पण)। उसके पीछे एक वर्ष रत्नसिंह ने वहां पर राज्य किया। वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में अलाउद्दीन ख़िलजी ने रत्नसिंह से चित्तोड़ लेकर अपने शाहज़ादे ख़िज़रख़ां को दिया। ६ वर्ष तक वहां उसका अधिकार रहा, फिर अलाउद्दीन ने वह क़िला मालदेव सोनगरे को दिया, जिसने सात वर्ष तक वहां राज्य किया। उसके देहांत के अनन्तर उसके पुत्र जेसा (जैतसी) से हंमीर ने यह दुर्ग छीन लिया। उस समय दिल्ली का सुलतान मुहम्मद तुग़लक था, जो वि० सं० १३८१ (ई० स० १३२५) में राज्यसिंहासन पर आरूढ हुआ था, इसलिये हंमीर ने वि० सं० १३८३ के आस-पास चित्तोड़ लिया होगा। इसी तरह वि० सं० १३५७ (ई० स० १३००) में हंमीर का सीसोदे की जागीर पाने का संवत् भी हम मान नहीं सकते, क्योंकि वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में अलाउद्दीन के साथ की लड़ाई में हंमीर का पितामह लक्ष्मसिंह (लखमसी) और पिता अरिसिंह दोनों मारे गये, जिसके पीछे कुछ वर्ष तक अजयसिंह सीसोदे का स्वामी रहा, जिसके बाद हंमीर ने वहां की जागीर पाई थी।

(१) अलाउद्दीन के पीछे ख़िलजी वंश में मुहम्मद नामक कोई सुलतान ही नहीं हुआ, मुहम्मद तुग़लक के स्थान पर टॉड ने भ्रम से मुहम्मद ख़िलजी लिखा हो।

१०० हाथी देकर महाराणा की क़ैद से मुक्त हुआ"[1]।

यह कथन अतिशयोक्ति और भ्रम से खाली नहीं है। नैणसी के कथनानुसार अलाउद्दीन से चित्तोड़ का राज्य पाने के पीछे मालदेव केवल ७ वर्ष जीवित रहा और चित्तोड़ में ही उसका शरीरांत हुआ था। अलाउद्दीन ख़िलजी का देहांत ई० स० १३१६ (वि० सं० १३७२) में हुआ, जिससे ६ वर्ष पीछे ई० स० १३२५ (वि० सं० १३८१) में मुहम्मद तुग़लक दिल्ली का सुलतान हुआ, उस समय मालदेव का जीवित होना संभव नहीं। मालदेव का ज्येष्ठ पुत्र जेसा सुलतान के पास जाकर उसको या उसकी सेना को मेवाड़ पर चढ़ा लाया हो, यह संभव है।

महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) के समय के चित्तोड़-स्थित महावीर स्वामी के मंदिर वाले वि० सं० १४९५ (ई० स० १४३८) के शिलालेख में हंमीर को असंख्य मुसलमानों को रणखेत में मारकर कीर्ति-संपादन करनेवाला कहा है[2]; अतएव जिस यवन सेना को हंमीर ने नष्ट किया, वह जेसा[3] की लाई हुई दिल्ली की सेना

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३१८–१९।

(२) वंशे तत्र पवित्रचित्रचरितस्तेजस्विनामग्रणीः
श्रीहंमीरमहीपतिः स्म तपति क्ष्मापालवास्तोष्पतिः।
तौरुष्कामितमुण्डमण्डलमिथः संघट्टवाचालिता
यस्याद्यापि वदन्ति कीर्तिमभितः संग्रामसीमाभुवः ॥ ९ ॥

(बंब. ए. सो. ज; जि० २३, पृ० ५०)

उक्त मंदिर का अब थोड़ासा अंश ही विद्यमान है और वह शिलालेख भी नष्ट हो गया है; परन्तु उसकी एक प्रतिलिपि, जो वि० सं० १५०८ में देवगिरि (दौलताबाद) में लिखी गई थी, मिल चुकी है। उसमें १०४ श्लोक तथा अंत में थोड़ा-सा गद्य है।

(३) रामनाथ रत्नू ने अपने 'इतिहास राजस्थान' में मालदेव के पुत्र हरिसिंह का दिल्ली जाकर सुलतान को ले आना और उसी (हरिसिंह) का हंमीर के हाथ से मारा जाना लिखा है (पृ० ११), परंतु मालदेव के हरिसिंह नाम का कोई पुत्र न था। उसका ज्येष्ठ पुत्र जेसा था। मालदेव के वंश की पूरी वंशावली नैणसी ने दी है, जिसमें मालदेव के पुत्र या पौत्रों में हरिसिंह का नाम नहीं है। कर्नल टॉड ने हरिसिंह को बनबीर (वणवीर) का भाई अर्थात् मालदेव का पुत्र (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३१९) और वीरविनोद में उसको मालदेव का पोता माना है (भाग १ पृ० २९७), परंतु ये दोनों कथन भी स्वीकार-योग्य नहीं हैं। मालदेव के वंशजों की जो पूरी नामावली नैणसी ने दी है, वही विश्वसनीय है।

होनी चाहिये, जो हारकर लौट गई और मेवाड़ पर हंमीर का अधिकार बना रहा। सुलतान के क़ैद होने तथा अजमेर आदि ज़िलों के दिये जाने के कथन में अतिशयोक्ति ही पाई जाती है, क्योंकि अजमेर, नागोर आदि इलाक़े महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) ने छीने थे।

चित्तोड़ का राज्य छूट जाने के पश्चात् मालदेव के सबसे छोटे (तीसरे) पुत्र वणवीर ने महाराणा की सेवा स्वीकार की हो, ऐसा प्रतीत होता है; क्योंकि ख्यातों आदि में यह लिखा मिलता है कि उसने मुसलमानों की सेवा में रहना पसंद न कर महाराणा की सेवा को स्वीकार किया, जिसपर महाराणा ने उसको रतनपुर, खैराड़ आदि इलाक़े जागीर में दिये। उसने भैंसरोड़ पर हमला कर उसको मेवाड़ के अधीन किया[1]; परन्तु कोट सोलंकियान (गोड़वाड़ में) से वणवीर का वि० सं० १३९४[2] (ई० स० १३३७) का एक शिलालेख और उसके पुत्र रणवीर का वि० सं० १४४३[3] (ई० स० १३८६) का नारलाई (गोड़वाड़ में) से मिला है; इनसे तो यही पाया जाता है कि वणवीर और रणवीर के अधिकार में गोड़वाड़ का कुछ अंश था, तो भी यह संभव हो सकता है कि उसके अतिरिक्त ऊपर लिखे हुए दूर के ज़िले भी उसकी जागीर के अंतर्गत हों। अब भी मेवाड़ के कुछ सरदारों की जागीरें एकत्र नहीं, किंतु उनके अंश अलग अलग ज़िलों में हैं।

जीलवाड़े को जीतना और पालनपुर को जलाना

महाराणा मोकल के वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८) के 'शृंगी-ऋषि' नामक स्थान (एकलिंगजी से ५ मील पर) के शिलालेख में लिखा है कि हंमीर ने चेलाव्यपुर (जीलवाड़े[4]) को छीना, अपने शत्रु पहाड़ी भीलों के दल को युद्ध में मारा और दूर के

---

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० २९७–९८। टॉ; रा; जि० १, पृ० ३१९।

(२) ए. इं; जि० ११, पृ० ६३।

(३) वही; जि० ११, पृ० ६३–६४।

(४) एकलिंगजी के मंदिर के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में, जो वि० सं० १५४५ की है, हंमीर का केलिवाट (केलवाड़े) से जाकर चेलवाट (जीलवाड़ा) लेना लिखा है (श्लो० २२)। जीलवाड़ा गोड़वाड़ के निकट मेवाड़ का ऊंचा पहाड़ी स्थान है। गोड़वाड़ की तरफ़ से मेवाड़ पर होनेवाले हमले को रोकने के लिये यह मोर्चे के अच्छे स्थानों में से एक है। पहले गोड़वाड़

पाह्लणपुर (पाह्लनपुर) को क्रोध के मारे जला दिया[1]। एकलिंगमाहात्म्य में भी चेलवाट (जीलवाड़े) के स्वामी राघव को, जो बड़ा अहंकारी था, चुल्लू कर जाना (मर्दन करना) तथा प्रह्लादनपुर (पालनपुर[2]) को नष्ट करना लिखा है;[3] परन्तु उससे यह नहीं पाया जाता कि ये घटनाएं हंमीर के चित्तोड़ लेने से पीछे की हैं, अथवा पहले की।

ईडर के राजा जैत्रकर्ण को जीतना

शृंगी ऋषि के उक्त लेख से यह भी जान पड़ता है कि 'हंमीर ने अपने शत्रु जैत्रेश्वर (राजा जैत्र) को मारा[4]'। एकलिंग-माहात्म्य में लिखा है कि उस श्रेष्ठ राजा (हंमीर) ने इलादुर्ग (ईडर[5])

का कुछ अंश इस ठिकाने के अधीन था; संभव है, कि इसके साथ हंमीर ने गोड़वाड़ पर भी अपना अधिकार जमाया हो। महाराणा रायमल के समय से यह स्थान सोलंकी सरदार की जागीर में चला आता है, हंमीर के समय में शायद यह चौहानों के अधिकार में हो।

(१) *चेलाख्यं पुरमग्रहीदरिगणान्भिल्लान्गुहागोहका—*
न्भित्वा तानखिलान्निहत्य च बलात्ख्यातासिना संगरे।
यो.......................समवधीज्जैत्रेश्वरं वैरिणं
यो दूरस्थितपाह्लणापुरमपि क्रोधाकुलो दग्धवान्॥ ४॥
(शृंगी ऋषि का शिलालेख, अप्रकाशित)।

भीलों को मारने से अभिप्राय मेवाड़ के ज़िले मगरा या वागड़ के इलाक़े को अपने अधीन करना है।

(२) आबू के परमार राजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रह्लादनदेव (पाह्लणसी) ने इसे बसाया था, इसी से इसका नाम प्रह्लादनपुर या पाह्लणपुर हुआ। पहले यह आबू के परमार-राज्य के अंतर्गत था और अब पालनपुर नामक राज्य की राजधानी है।

(३) *राघवं चेलवाटेशमहंकारमहोदधिं।*
निस्त्रिंशचुलुकैः सम्यक् शोषयामास यो नृपः॥ ८८॥
प्रह्लादनपुरं हत्वा॥ ८९॥
(एकलिंगमाहात्म्य, राजवर्णन अध्याय)।

(४) *समवधीज्जैत्रेश्वरं वैरिणं* (देखो ऊपर टिप्पण १, श्लोक ४)।

(५) संस्कृत के पंडित अपनी कृतियों में बहुधा लौकिक नामों का अपनी इच्छा के अनुसार संस्कृत शैली में परिवर्तन कर देते हैं; जैसे अमीर को 'हंमीर', सुलतान को 'सुरत्राण,' देलवाड़े को 'देवकुलपाटक' आदि। संस्कृत में 'र' और 'ड' के स्थान में 'ल' लिखने की प्रथा प्राचीन है, तदनुसार यहां ईडर के क़िले के लिये 'इलादुर्ग' शब्द बनाया है। उपर्युक्त

के स्वामी जितकर्ण को जीता[1]। महाराणा रायमल के समय की वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) की एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में लिखा है—'पृथ्वीपति हंमीर ने चलती हुई सेनारूपी चंचल जलवाले, अश्व-रूपी नक्रों (घड़ियालों, मगरों) से भरे हुए, विशाल हाथी रूप पर्वतोंवाले, अनेक वीर-रत्नों की खान, इला (ईडर) रूपी पर्वत (या पृथ्वी) से उत्पन्न हुए जैत्रकर्णरूपी समुद्र को युद्ध में सुखा दिया[2]। उक्त तीनों कथनों से स्पष्ट है कि हंमीर ने ईडर के राजा जैत्रकर्ण (जैत्रेश्वर, जितकर्ण अर्थात् जैतकरण) को युद्ध में जीता या मारा था। जैत्रकर्ण (जैतकरण) ईडर के राठोड़ राव रणमल्ल का पिता और लूंणकरण का पुत्र था[3]।

दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में महाराणा खेत्रसिंह (खेता) का ईडर के राजा रणमल्ल को क़ैद करने का वर्णन करते हुए ईडर के क़िले को 'ऐल प्राकार' कहा है (*प्राकारमैलमभिभूय०*—श्लोक ३०)। 'ऐल' भी 'इल' से बना है, जिसका अर्थ 'ईडर का' होता है। कई जैन लेखकों ने भी वैसा ही किया है। वि० सं० १५२४ में पं० प्रतिष्ठासोम ने सोमसुंदर सूरि का चरित-ग्रन्थ 'सोमसौभाग्य काव्य' लिखा, जिसमें उसने प्रसंगवशात् ईडर नगर, वहां के 'कुमार-पाल—विहार' नामक जैनमंदिर के जीर्णोद्धार एवं वहां के राजा रणमल्ल और पुंज (पूंजा) के वर्णन में ईडर को 'इलदुर्गनगर' कहा है (*पृथ्वीतलप्रथितनामगुणाभिरामं विश्रामधाम कमलं कमलायताक्ष्याः। अस्तीलदुर्गनगरं०*—सर्ग ७)। हेमविजय-कृत 'विजयप्रशस्ति काव्य' में, जिसकी टीका गुणविजयगणि ने वि० सं० १६८८ में बनाई थी, ईडर को 'इलादुर्गपुरी' लिखा है (*आसीदिलादुर्गपुरी वरीयसी भोगावती वातुलभोगिभासुरा॥ १०। ४६*)।

(१) *प्रह्लादनपुरं हत्वा तथेलादुर्गनायकं*
जितवान् जितकर्णं यो ज्येष्ठं श्रेष्ठो महीभृतां॥ ८६॥
(एकलिंगमाहात्म्य, राजवर्णन अध्याय)।

(२) *चलद्बलवलज्जलं तुरगनक्रचक्राकुलं*
महागजगिरिव्रजं प्रचुरवीररत्नस्रजं।
इलाचलसमुद्भवं समितिजैत्रकर्णार्णवं
शुशोष मुनिपुंगवः किल हमीरभूमीधवः॥ २५॥
भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ११६।

(३) ईडर राज्य का अब तक कोई शुद्ध इतिहास प्रकट नहीं हुआ। गुजराती और अंग्रेज़ी की 'हिंद राजस्थान' नामक पुस्तकों में ईडर का जो इतिहास छपा है, उसमें जैत्रकर्ण (जैतकरण) के स्थान में 'कनहत' नाम दिया है, जो अशुद्ध है।

मुहणोत नैणसी ने लिखा है—'बांगा (बंगदेव) का पुत्र देवा (देवीसिंह हाड़ा) भैंसरोड़ में रहता था, जिसके निकट उसकी बसी[1] थी। देवा ने अपनी पुत्री का संबंध राणा लखमसी (लक्ष्मसिंह) के पुत्र राणा अरसी से किया। अरसी विशाल सैन्य के साथ विवाह करने गया। विवाह हो जाने के पीछे अरसी ने देवा से उसका हाल पूछा और उसका उत्तर सुनकर कहा कि यहां क्यों रहते हो, हमारे यहां चले आओ। इसपर देवा ने एकांत में कहा कि इधर की उपजाऊ भूमि मीनों के अधिकार में है, वे निर्बल हैं और सदा शराब में मस्त रहते हैं। यदि आप सहायता करें तो मीनों को मारकर मैं यह मुल्क ले लूं और 'दीवाण[2]' (आप) की चाकरी करूं। इसपर राणा ने अपनी सेना देवा को दी, उसने रात के समय बूंदी के मीनों पर हमला कर उनको मार डाला और बूंदी पर अपना अधिकार कर लिया। फिर वह राणा के पास आया, तो प्रसन्न होकर राणा ने कहा कि और कोई बात चाहो तो कहो। इसके उत्तर में उसने कहा कि दीवाण की सहायता से सब ठीक हो गया है, परन्तु चार मास के लिये ५०० सवार फिर मिल जावें तो अच्छा हो। राणा ५०० सवार देकर चित्तोड़ को बिदा हुआ। देवा ने उन सवारों की सहायता से वहां के भोमियों (छोटे ज़मींदारों) में से बहुतों को मार डाला और शेष भाग गये। इसके बाद देवा ने अपने भाई-बन्धुओं को बुलाकर वहीं अपनी बसी रक्खी, अपनी जमीयत (सेना, फ़ौज) बना ली और राणा के सवारों को सीख दी। फिर दशहरे पर बड़ी फ़ौज के साथ देवा राणा को मुजरा करने गया और मेवाड़ की चाकरी करने लगा[3]'।

हाड़ा देवीसिंह को बूंदी का राज्य दिलाना

नैणसी ने पिछले इतिहास-लेखकों के समान अरसी (अरिसिंह) को राणा और चित्तोड़ का स्वामी लिखा है, जो भूल ही है; क्योंकि वह तो युवराजावस्था में

(१) बसी (वसती, वसही, वसी) निवास-स्थान का सूचक है। बहुतसे जैन मन्दिरों को बसी (वसती, वसही) कहते हैं, जैसे 'विमलवसही' आदि। देवमूर्त्तियों के निवास के स्थान होने से ही मन्दिरों को वसही (वसती, वसी) कहने लगे हैं। राजपूतों की बसी जागीर के उस गांव का सूचक है, जहां राजपूत सरदार अपने परिवार और सेवकों सहित रहता हो।

(२) उदयपुर राज्य के स्वामी एकलिंगजी, और उनके दीवान मेवाड़ के महाराणा माने जाते हैं। इसी से मेवाड़ के महाराणा 'दीवाण' कहलाते हैं।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र २३, पृ० १।

ही लड़कर मारा गया था। वह न तो कभी सीसोदे का राणा हुआ और न चित्तोड़ का स्वामी। वास्तव में यह घटना अरसी के समय की नहीं, किन्तु महाराणा हंमीर के समय की है, क्योंकि हाड़ा देवीसिंह (देवासिंह) महाराणा हंमीर का समकालीन था। भाटों की ख्यात के अनुसार 'वंशभास्कर' तथा उसके सारांश-रूप 'वंशप्रकाश' में वि० सं० १२६८ में मीनों से देवीसिंह का बूंदी लेना लिखा है, जो सर्वथा कल्पित है[1]। कर्नल टॉड ने देवा के बूंदी लेने का संवत् १३६८ (ई०

(१) बूंदी की ख्यात में तथा 'वंशभास्कर' में वहां के राजाओं के पूर्वजों की जो पुरानी वंशावली दी है वह बिलकुल ही रद्दी है, क्योंकि उसमें वि० सं० १३०० से पूर्व के तो बहुधा सब नाम कृत्रिम ही हैं। चौहानों के प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र और पृथ्वीराजविजय तथा हम्मीर महाकाव्य आदि से उक्त वंशावली का शुद्ध होना सिद्ध नहीं होता। अब तक उनका इतिहास लिखनेवालों में से किसी ने उनके पूर्वजों के प्राचीन शिलालेख, पुस्तक आदि की ओर दृष्टिपात तक नहीं किया और यह निश्चय करने का यत्न तक भी नहीं किया कि चौहानों की हाड़ा शाखा कब और किससे चली। वास्तव में बूंदी के हाड़े नाडौल के चौहान राजा आसराज के छोटे पुत्र माणिकराज (माणिक्यराज) के वंशज हैं, जैसा कि मुहणोत नैणसी की ख्यात और मैनाल से मिले हुए बंबावदे के हाड़ों के वि० सं० १४४६ (ई० स० १३८९) के शिलालेख से जान पड़ता है। बूंदी के हाड़े अपने मूलपुरुष हरराज (हाड़ा) से हाड़ा कहलाये हैं, परन्तु इस बात का ज्ञान न होने के कारण भाटों ने हाड़ा शब्द को हाड (हड्डी) से निकला हुआ अनुमान कर हड्डी के संस्कृत रूप 'अस्थि' से अस्थिपाल नाम गढ़न्त कर अस्थिपाल से हाड़ा नाम की उत्पत्ति होना मान लिया है। यदि वास्तव में उस पुरुष का नाम अस्थिपाल होता, तो उसके वंशधर हाड़ा कभी नहीं कहलाते। भाटों ने हरराज (हाड़ा) का नाम तक छोड़ दिया है, परंतु मैनाल के शिलालेख और नैणसी की ख्यात में उसका नाम मिलता है। शिलालेख उसका नाम 'हरराज' बतलाता है और नैणसी 'हाड़ा'। नाडौल के आसराज का ज्येष्ठ पुत्र आल्हन वि० सं० १२०९ से १२१८ (ई० स० ११५२ से ११६१) तक नाडौल का राजा था (ए. इं; जि० ११, पृ० ७८ के पास का वंशवृक्ष), अतएव आल्हन के छोटे भाई माणिकराज का नवां या दसवां वंशधर देवीसिंह वि० सं० १२९८ में बूंदी ले सके, यह संभव नहीं। कर्नल टॉड का दिया हुआ समय ही विश्वास-योग्य है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी देवीप्रसाद ने भी ख्यातों के अनुसार (राज्याभिषेक के संवतों सहित) बूंदी के राजाओं की वंशावली देते समय टिप्पण में राव देवा से भांडा तक का समय अशुद्ध होना बतलाया है (ना० प्र० प; भाग ११, पृ० १, टिप्पण १—ई० स० १९१६, सितम्बर, संख्या १)। वंशप्रकाश आदि में दिये हुए राव देवीसिंह से भांडा तक के राजाओं के संवत् और घटनाएं बहुधा कल्पित हैं; इतना ही नहीं, किन्तु राव सूरजमल की गद्दीनशीनी तक के संवत् भी कल्पित हैं। वंशप्रकाश में सूरजमल की गद्दीनशीनी का संवत् १५८४ दिया है, जो सर्वथा अविश्वसनीय है, क्योंकि बूंदी राज्य के खजूरी गांव से मिले हुए वि० सं० १५९३ (ई० स०

स० १३४१) दिया है[1] जो ठीक है, क्योंकि उस समय चित्तोड़ का स्वामी हंमीर ही था। नैणसी ने यह भी लिखा है कि हाड़ा बांगा (बंगदेव) के बेटे देवा (देवीसिंह) के दूसरे पुत्र जीतमल (जैतमाल) की पुत्री जसमादे हाड़ी, राव जोधा (मारवाड़ का) की पटराणी थी और उसी से राव सूजा का जन्म हुआ था[2], परंतु जोधपुर की ख्यात में लिखा है कि राव जोधा की पहली राणी (पटराणी) हाड़ी जसमादे, हाड़ा जैतमाल के पुत्र देवीदास की पुत्री थी, उससे तीन कुंवर—सांतल, सूजा और नींबा—उत्पन्न हुए[3]; अतएव संभव है कि भूल से नैणसी ने पोती को बेटी लिख दिया हो। सूजा का जन्म वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) भाद्रपद वदि ८ को हुआ था[4]। अतः देवा का वि० सं० १२९८ में बूंदी लेना सर्वथा असंभव है।

१५०६) के शिलालेख से निश्चित है कि उक्त संवत् में वृन्दावती (बूंदी) का स्वामी सूर्य्यमल्ल (सूरजमल) था।

गजेन्द्रगिरिसंश्रयं श्रयति धुंधुमारं यकः
स षट्पुरनराधिपो नमति नर्मदो यं सदा।
कुमार इह भक्तिभिर्भजति चन्द्रसेनः पुनः
स वृन्दावतिकाविभुः श्रयति सूर्यमल्लोपि च ॥ ६ ॥
विक्रमार्कस्य समये ख्याते पंचदशे शते।
त्रिषष्ट्या सहितेब्दानां मासे तपसि सुन्दरे ॥ १४ ॥

(खजूरी गांव का शिलालेख)।

उपर्युक्त शिलालेख को बृटिश म्यूज़ियम् (लन्दन) के भारतवर्षीय पुरातत्त्व के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉक्टर एल्. डी. बार्नेट ने प्रकाशित किया है।

सूर्यमल्ल का वि० सं० १५६३ में बूंदी का स्वामी होना तो निश्चित है। महाराणा सांगा (संग्रामसिंह, वि० सं० १५६५–१५८४) का सरदार होने के कारण वह उक्त महाराणा के दरबार में सेवार्थ चित्तोड़ में रहा करता था, जिसका सविस्तर वृत्तान्त मुहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात (पत्र २५–२६ और २७, पृ० १) में लिखा है।

(१) टॉ; रा; जि० ३, पृ० १८०२, टिप्पण ६।

(२) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र २४, पृ० २।

(३) मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात; जि० १, पृ० ४६।

(४) हमारे मित्र ब्यावर-निवासी मीठालाल व्यास के द्वारा हमें प्रसिद्ध ज्योतिषी चंडू के वंशजों के यहां का एक पुराना गुटका मिला है, जिसमें ज्योतिष की कई एक पुस्तकें आदि

चित्तोड़ पर मोकलजी के मंदिर के वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२६) माघ सुदि ३ के बड़े शिलालेख में हंमीर का सुवर्ण-कलश सहित एक मंदिर और एक सर (जलाशय) बनवाना लिखा है[1]। वह मंदिर चित्तोड़ पर का अन्नपूर्णा का मंदिर होना चाहिये, जो उक्त महाराणा का बनवाया हुआ माना जाता है। यह जलाशय संभवतः उक्त मंदिर के निकट का कुंड हो।

हंमीर के पुण्यकार्य आदि

हंमीर बड़ा ही वीर राजा हुआ, महाराणा कुंभा(कुंभकर्ण)-निर्मित गीतगोविंद की 'रसिकप्रिया' नाम की टीका में तथा उक्त महाराणा के कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में हंमीर को 'विषम-धाटी-पंचानन' (विकट आक्रमणों में सिंह के सदृश) कहा है[2], जो उसके वीर कार्यों का सूचक है। उसने रावल रत्नसिंह के समय से अवनति को पहुंचे हुए मेवाड़ को फिर उन्नत किया और उसी के समय से मेवाड़ के उदय का सितारा फिर चमका। कर्नल टॉड ने लिखा है—'हिन्दुस्तान

हैं, जिनके मध्य में दिल्ली के बादशाहों, उनके शाहज़ादों, अमीरों तथा राजा एवं राजवंशियों में राठोड़ों, कछवाहों, मेवाड़ के राणाओं, देवड़ों, भाटियों, गौड़ों, हाड़ों, गूजरों एवं मुहणोतों, सिंघियों, भंडारियों, पंचोलियों, ब्राह्मणों और राणियों आदि की अनुमान ५४० जन्मपत्रियों का संग्रह है। यह गुटका ज्योतिषी चंडू के वंशधर पुरोहित शिवराम ने वि० सं० १७३२–३७ तक लिखा था, जैसा कि उसमें जगह जगह दिये हुए संवतों से मालूम होता है। जन्मपत्रियों का इतने पुराने समय का लिखा हुआ इतना बड़ा अन्य कोई संग्रह मेरे देखने में नहीं आया। उक्त संग्रह में राव जोधा के पुत्र राव सूजा का जन्म संवत् १४९६ भाद्रपद वदि ८ गुरुवार को होना लिखा है। मुंशी देवीप्रसाद के यहां की जन्मपत्रियों की पुरानी हस्तलिखित पुस्तक में भी वही संवत् मिलता है।

(नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग १, पृ० ११४)।

(१) भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ९७ (श्लोक १६)।

(२) पंचाननो विषमधाडिषु यः प्रसिद्ध—

श्चक्रे मृधान्यखिलशत्रुभयावहानि ॥ ८ ॥

(निर्णयसागर प्रेस, बंबई का छपा हुआ गीतगोविन्द,रसिकप्रिया टीका सहित; पृ० २)

अहह विषमधाटीप्रौढपंचाननोसा—

वरिपुरमतिदुर्गं चेलवाटं विजिग्ये ॥ १८ ॥

क; आ. स. रि; जि० २३, प्लेट २०।

तथा उक्त प्रशस्ति की वि० सं० १७३५ फाल्गुन वदि ७ की हस्तलिखित प्रति से।

में हंमीर ही एक प्रबल हिन्दू राजा रह गया था; सब प्राचीन राजवंश नष्ट हो चुके थे। मारवाड़ और जयपुर के वर्तमान राजाओं के पूर्वज चित्तोड़ के उक्त राजा की सेवा में अपनी सेना ले जाते, उसको पूज्य मानते और उसकी आज्ञा का वैसा ही पालन करते थे जैसा कि बूंदी, ग्वालियर, चंदेरी, रायसेन, सीकरी, कालपी और आबू के राजा करते थे'[1]; परन्तु उक्त कथन को मैं अतिशयोक्ति-रहित नहीं समझता, क्योंकि बूंदी और ईडर के सिवा मेवाड़ के बाहर के राजाओं में से कौन २ हंमीर के अधीन थे, इस विषय में निश्चित रूप से अब तक कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ है।

हंमीर का देहान्त[2] वि० सं० १४२१ (ई० स० १३६४) में होना माना जाता है। उसके चार पुत्र[3]—खेता (क्षेत्रसिंह), लूंणा, खंगार और बैरसल[4] (बैरी-साल)—थे। लूंणा के वंशज लूंणावत सीसोदिये हैं।

क्षेत्रसिंह (खेता)

महाराणा हंमीर के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र क्षेत्रसिंह, जो लोगों में 'खेता'

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३१६–२०।

(२) ख्यातों में हंमीर की मृत्यु वि०सं० १४२१ (ई० स० १३६४) में होना लिखा मिलता है और टॉड आदि पिछले इतिहास-लेखकों ने उसे स्वीकार भी किया है। ख्यातों में वि० सं० १४०० के पीछे के राजाओं की गद्दीनशीनी तथा मृत्यु के संवत् बहुधा शुद्ध दिये हैं, जिससे हमने भी उसे स्वीकार किया है। उसकी जाँच के लिये दूसरा साधन नहीं है, क्योंकि हंमीर के समय का कोई शिलालेख अब तक नहीं मिला; वि० सं० १४०० से पीछे के उसके केवल एक संस्कृत दानपत्र की प्रतिलिपि एक मुक़द्दमे की मिसल में देखी गई। मूल ताम्रपत्र देखने का बहुत कुछ उद्योग किया, परन्तु उसमें सफलता न हुई।

(३) हंमीर के चार पुत्रों के ये नाम मुहणोत नैणसी की ख्यात से उद्धृत किये गये हैं (पत्र ४, पृ० १)। बड़वा देवीदान के यहां की ख्यात में केवल दो नाम—खेता और बैरी-साल—दिये हैं।

(४) बैरीसाल के पौत्र सिंहराज का वि० सं० १४६९ माघ सुदि १५ का एक शिलालेख कांडोल पट्टे के गांव 'लाखा के गुड़े' के मंदिर में, जिसे सिंहराज ने बनवाया था, लगा हुआ है; उसमें हंमीर से सिंहराज तक की नामावली इस क्रम से दी है—हंमीर, वैरिशल्य (वैरी-साल), तेजसिंह और सिंहराज। इससे अनुमान होता है कि बैरीसाल को कांडोल की तरफ़ जागीर मिली होगी।

(खेतल या खेतसी) नाम से प्रसिद्ध है, मेवाड़ का स्वामी हुआ। यह बड़ा वीर प्रकृति का राजा था और कई लड़ाइयां लड़ा था।

हाड़ोती को अधीन करना और मांडलगढ़ को तोड़ना

महाराणा हंमीरसिंह की जीवित दशा में हाड़ों के साथ का संबंध अनुकूल रहा, परन्तु उक्त महाराणा के पीछे उनके साथ वैरभाव उत्पन्न हो गया, जिससे क्षेत्रसिंह ने उनपर चढ़ाई कर सब को पूर्णतया अपने अधीन किया। कुंभलगढ़ के वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) के बड़े शिलालेख में लिखा है कि क्षेत्रसिंह ने हाडावटी (हाड़ौती[1]) के स्वामियों को जीतकर उनका मंडल (देश) अपने अधीन किया और उनके 'करान्तमंडल[2]' मंडलकर (मांडलगढ़[3])

(१) हाडावटी (हाड़ौती) उस देश का नाम है; जो हाड़ों (चौहानों की एक शाखा) के अधीन है, जिसमें कोटा और बूंदी के राज्यों का समावेश होता है। हाड़ा शाखा के चौहान नाडौल के चौहान राजा आसराज (अश्वराज, आशाराज) के छोटे पुत्र माणकराव के वंशज हैं (मु. नै; ख्यां; पत्र २४, पृ० २)। पहले ये लोग नाडौल से मेवाड़ के पूर्वी हिस्से में आ रहे थे, फिर उनका अधिकार बंबावदे पर हुआ। वहां की छोटी शाखा के वंशज देवा (देवीसिंह) ने महाराणा हंमीर की सहायता से मीनों से बूंदी ली (देखो ऊपर पृ० ५५१-५२), तब से इनकी विशेष उन्नति हुई।

(२) 'कर-पदान्त मंडल' अर्थात् 'मंडलकर' (मांडलगढ़ का क़िला)। संस्कृत के पंडित अपनी कविता में जहां पूरा नाम एक साथ नहीं जम सकता वहां उसके दो टुकड़े कर उनको उलट-पुलट भी लिखते हैं। जहां वे ऐसा करते हैं, तब बतला देते हैं कि अमुक टुकड़ा अंत का या प्रारंभ का है, जैसे 'मंडलकर' को 'करांतमंडल' कहने से यह बतलाया कि 'कर' अंश अंत का है। ऐसे ही 'मल्लोरणादि' (देखो आगे इसी प्रसंग में) लिखने से स्पष्ट कर दिया है कि 'रण' प्रारंभ का अंश है, अर्थात् पूरा नाम रणमल्ल है।

(३) मांडलगढ़ से लगाकर मेवाड़ का सारा पूर्वी विभाग चौहान पृथ्वीराज के समय तक अजमेर के चौहानों के अधीन होने से उनके राज्य—अर्थात् सपादलक्ष देश—के अन्तर्गत था, जहां उनके शिलालेख विद्यमान हैं। जब शहाबुद्दीन ग़ोरी ने चौहानों से अजमेर का राज्य छीना, तब से वह प्रदेश भी मुसलमानों के अधीन हुआ (*श्रीमानस्ति सपादलक्षविषयः शाकंभरीभूषणस्तत्र श्रीरतिधाममंडलकरं नामास्ति दुर्गं महत्*... ॥ १ ॥......॥ *म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षतित्रासाद्* ० ॥ ५ ॥ पंडित आशाधर-रचित 'धर्मामृतशास्त्र' के अंत की प्रशस्ति)। सुलतान अलाउद्दीन ख़िलजी के अंतिम समय में या उसके पीछे दिल्ली के राज्य की अव्यवस्था में, जब कि चित्तोड़ का राज्य गुहिलवंशियों से छूटकर मुसलमानों तथा उनकी अधीनता में सोनगरों के हाथ में था, बंबावदे के हाड़ों ने मांडलगढ़

को तोड़ा[1]"। एकलिंगजी के दक्षिण द्वार के शिलालेख से, जो वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) का है, पाया जाता है कि 'क्षेत्रसिंह ने मंडलकर (मांडलगढ़) के प्राचीर (क़िले) को तोड़कर उसके भीतर के योद्धाओं को मारा, तथा युद्ध में हाड़ों के मंडल (समूह) को नष्ट कर उनकी भूमि को अपने अधीन किया[2]"। वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८) के शृंगीऋषि के उपर्युक्त शिलालेख में मांडलगढ़ के विषय में लिखा है—'राजा क्षेत्र (क्षेत्रसिंह) ने अपने भुजबल से शत्रुओं को मारकर प्रसिद्ध मंडलाकृतिगढ़ (मांडलगढ़) को तोड़ा, जिसे बलवान् दिल्लीपति अदावदी (अलाउद्दीन) स्पर्श भी करने न पाया था[3]"। इन प्रमाणों से यही पाया जाता है कि क्षेत्रसिंह ने मांडलगढ़ के क़िले को तोड़ा (लिया नहीं) और हाड़ौती के हाड़ों को अपने मातहत बनाया। इस कथन की पुष्टि स्वयं हाड़ों के शिलालेख से भी होती है, जैसा कि मैनाल (मेवाड़ के पूर्वी हिस्से में) से मिले हुए बंबावदे के हाड़ा महादेव के वि० सं० १४४६ (ई० स०

तक का मुल्क अपने अधीन कर लिया था। जब महाराणा हंमीर ने सोनगरों से चित्तोड़ लेकर मेवाड़ पर पीछा गुहिलवंशियों का राज्य स्थापित किया, तब तक तो हाड़ों से वैर नहीं हुआ था, किन्तु उनकी सहायता ही की जाती थी (ऊपर पृ० ५५१-५५२); परन्तु हंमीर के पुत्र क्षेत्रसिंह ने मांडलगढ़ को तोड़ा और बंबावदे आदि के हाड़ों को अपने अधीन किया।

(१) हाडावटीदेशपतीन् स जित्वा तन्मंडलं चात्मवशीचकार । तदत्र चित्रं खलु यत्करांतं तदेव तेषामिह यो बभंज ॥ १९८ ॥ (कुंभलगढ़ का शिलालेख)। यही 'एकलिंगमाहात्म्य' के राजवर्णन अध्याय का १०३रा श्लोक है।

(२) दंडाखंडितचंडमंडलकरप्राचीरमाचूर्णयत्
तन्मध्योद्धतधीरयोधनिधनं निर्म्माय निर्म्मायधीः ।
हाडामंडलमुंडखंडनधृतस्फूर्ज्जत्कबंधोद्धुरं
कृत्वा संगरमात्मसाद्वसुमतीं श्रीखेतसिंहो व्यधात् ॥ ३१ ॥
(भावनगर इन्स्क्रिप्शंस; पृ० ११६)।

(३) ढिल्लीचारुपुरेश्वरेण व(ब)लिना स्पृष्टोपि नो पाणिना
राज्ञा श्रीमददावदीति विलसन्नाम्ना गजस्वामिना ।
सोपि क्षेत्रमहीभुजा निजभुजप्रौढप्रतापाद्दहो
भग्नो विश्रुतमंडलाकृतिगढो जित्वा समस्तानरीन् ॥ ७ ॥
(शृंगीऋषि का शिलालेख, अप्रकाशित)।

१३८६) के शिलालेख में उस(महादेव)के विषय में लिखा है कि 'उसकी तलवार शत्रुओं की आंखों में चकाचौंध उत्पन्न कर देती थी, उसने अमीशाह (दिलावरख़ां ग़ोरी) पर अपनी तलवार उठाकर मेदपाट (मेवाड़) के स्वामी खेता (क्षेत्रसिंह) की रक्षा की और सुलतान की सेना को अपने पैरों तले कुचलकर नरेंद्र खेता को विजय दिलाई[1]। इससे स्पष्ट है कि अमीशाह के साथ की क्षेत्रसिंह की लड़ाई से पूर्व ही हाड़े महाराणा के अधीन होगये थे और उनकी सेना में रहकर लड़ते थे।

बूंदी के इतिहास 'वंशप्रकाश[2]' में क्षेत्रसिंह के मांडलगढ़ को तोड़ने तथा हाड़ौती को अपने अधीन करने का उल्लेख नहीं है, किन्तु इसके विरुद्ध महाराणा हंमीर का हाड़ों से लड़ना तथा हाड़ों का मेवाड़ के पुर और मांडल (जो मांडलगढ़ से भिन्न है) नगरों को खाली कर महाराणा हंमीर को सौंप देना आदि कृत्रिम वृत्तांत लिखा है, जिसका सारांश केवल इसी अभिप्राय से नीचे दिया जाता है कि पाठकों को उक्त पुस्तक की ऐतिहासिक निरर्थकता का परिचय हो जाय—

"हाड़ा बंगदेव (बांगा[3]) बंबावदे (मेवाड़ के पूर्वी हिस्से में) में रहता था। उसने चित्तोड़, जीरण, दसोर (मंदसोर) आदि छोटे-बड़े २४ किले लिये।

---

(१) टॉ; रा; जि० ३, पृ० १८०२-५। यह शिलालेख अब मैनाल में नहीं है। मैंने दो बार वहां जाकर इसे ढूंढा पर कहीं पता न लगा, अतएव लाचार कर्नल टॉड के अनुवाद पर संतोष करना पड़ा। संभव है, कर्नल टॉड अनेक शिलालेख इंग्लैंड ले गये, उनके साथ यह भी वहां पहुंचा हो, परन्तु अब तक इसका पता वहां भी नहीं है।

(२) कर्नल टॉड के 'राजस्थान' के छपने के पीछे बूंदी के प्रसिद्ध चारण कवि मिश्रण सूर्यमल्ल ने 'वंशभास्कर' नामक बहुत विस्तृत पद्यात्मक ग्रंथ लिखा, जिसमें दिये हुए चौहानों तथा हाड़ों के इतिहास का गद्यात्मक सारांश बूंदी के पंडित गंगासहाय ने 'वंशप्रकाश' नाम से प्रसिद्ध किया है, वही बूंदी का इतिहास माना जाता है। सूर्यमल्ल एक अच्छा कवि था, परन्तु इतिहासवेत्ता न होने से उसने उक्त पुस्तक में प्राचीन इतिहास भाटों की ख्यातों से ही लिया है। उसमें सैकड़ों कृत्रिम पीढ़ियां भर दी हैं और वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) तक के सब संवत् तथा ऐतिहासिक घटनाएं बहुधा कृत्रिम लिखी हैं। उस समय तक का इतिहास लिखने में विशेष खोज की हो, ऐसा पाया नहीं जाता। कवि का लक्ष्य कविता की ओर ही रहा, प्राचीन इतिहास की विशुद्धि की ओर नहीं।

(३) राजपूताने में पंडित और पढ़े-लिखे लोग प्रचलित नामों को संस्कृत रूप में लिखते हैं, परन्तु साधारण लोग उनको लौकिक रूप से ही बोलते और लिखते हैं, जैसे कि

बंगदेव के देवीसिंह (देवा), हिंगुलू आदि कई पुत्र हुए। हिंगुलू महाराणा की सेवा में रहा और वि० सं० १३२८ (ई० स० १२७१) में अलाउद्दीन की चित्तोड़ की लड़ाई में मारा गया। देवीसिंह ने वि० सं० १२९८ (ई० स० १२४१) में मीनों से बूंदी ली। देवीसिंह के हरराज, समरसिंह आदि १२ पुत्र हुए, जिनमें से हरराज बंबावदे रहा और समरसिंह बूंदी का स्वामी हुआ। वि० सं० १३३२ (ई० स० १२७५) में अलाउद्दीन ने बंबावदे पर चढ़ाई की, उस समय बूंदी से समरसिंह हरराज की सहायता के लिये चढ़ आया। समरसिंह और हरराज दोनों अलाउद्दीन के साथ लड़ाई में मारे गये; फिर समरसिंह का पुत्र नरपाल (नापा) बूंदी का, और हरराज का पुत्र हालू बंबावदे का स्वामी हुआ। वि० सं० १३४३ (ई० स० १२८६) में नरपाल (नापा) टोडे में मारा गया और उसका पुत्र हंमीर (हामा) बूंदी की गद्दी पर बैठा। हालू ने जीरण के राजा जैतसिंह पंवार (परमार) का हिंगलाजगढ़ और भाणपुर के खीची (चौहानों की एक शाखा) राजा भरत के खेड़ी और जीरण के किले ले लिये। जब हालू विवाह करने को शोपुर (ग्वालियर राज्य में) गया हुआ था, उस समय जैतसी और भरत ने बंबावदे को घेर लिया, परन्तु हालू ने ब्याह से लौटते ही उनको भगा दिया। जैतसिंह चित्तोड़ के राणा हंमीर से फौज लेकर हालू पर चढ़ आया, उसने राणाजी की फौज को भी मार भगाया, फिर जीरण के राजा जैतसिंह के बेटे सुन्दरदास ने राणा हंमीर से सेना लेकर हालू पर चढ़ाई की। उस समय हालू की सहायता के लिये बूंदी से हामा आया। इस लड़ाई में राणाजी (हंमीर) के काका बींझराज और कुंवर खेतल (क्षेत्रसिंह) घायल हुए और राणाजी की सेना भाग गई। हालू ने बल पाकर राणाजी के पुर और मांडल शहर ले लिये, इसपर राणाजी ने उसपर चढ़ाई की। हामा बूंदी से आया और उसने सीधे राणाजी की फौज में जाकर उनसे कहा कि आपके महाराजकुमार खेतलजी के जो घाव लगे हैं, वे मेरे हाथ के हैं, मैं ही उनके लिये अपराधी हूं। आपको यह नहीं चाहिये था कि खीची और पँवारों की सहायता कर हालू पर चढ़ाई करें। इसके उत्तर में राणाजी ने कहा कि मेरे काका मारे गये, उसका बदला क्या दोगे? हामा

रामसिंह को 'रामा', प्रतापसिंह को 'पत्ता', देवीसिंह को 'देवा', हरराज को 'हाड़ा', बंगदेव को 'बांगा', क्षेत्रसिंह को 'खेता', कुंभकर्ण को 'कुंभा', उदयसिंह को 'ऊदा' आदि।

ने उत्तर दिया कि मेरे बेटे लालसिंह की कन्या का विवाह आपके महाराजकुमार खेतलजी से कर दूंगा और पुर तथा मांडल हालू से खाली करा दूंगा। इस बात पर राणाजी राजी हो गये, हामा ने अपनी पोती की सगाई (संबंध) खेतल से कर दी और हालू से पुर और मांडल भी खाली करा दिये। अपने पुत्र बरसिंह को राज्य देकर वि० सं० १३९३ (ई० स० १३३६) में हामा काशी चला गया। हालू ने अपना ठिकाना अपने पुत्र चन्द्रराज को देकर वि० सं० १४११ (ई० स० १३५४) में भद्रकाली के आगे अपना सिर चढ़ा दिया[1]"।

'वंशप्रकाश' से ऊपर उद्धृत किया हुआ सारांश कुछ नामों को छोड़कर सारा का सारा ही कल्पित है क्योंकि बंगदेव चित्तोड़ आदि २४ क़िलों में से एक भी लेने को समर्थ न था, वह तो एक मामूली हैसियत का सरदार था। यदि उसने चित्तोड़गढ़ लिया होता, तो उसके पुत्र हिंगुलू[2] का मेवाड़ के राजा की सेवा में रहकर अलाउद्दीन ख़िलजी के साथ चितोड़ की लड़ाई में मारा जाना उसी में कैसे लिखा जाता। वि० सं० १३२८ (ई० स० १२७१) में अलाउद्दीन की चित्तोड़ की लड़ाई का कथन भी कल्पित ही है, क्योंकि उक्त संवत् में तो दिल्ली का सुलतान गुलामवंशी गयासुद्दीन बलबन था और ख़िलजी वंश का राज्य

(१) 'वंशप्रकाश', पृ० ६९–७५।

(२) चित्तोड़ के क़िले पर हिंगुलू आहाड़ा के महल प्रसिद्ध होने से भाटों ने आहाड़ा को हाड़ा समझकर हिंगुलू का नाम भी हाड़ों की वंशावली में अनेक कल्पित नामों के साथ धर दिया। हिंगुलू आहाड़ा गोत्र (शाखा) का गुहिलवंशी था, न कि हाड़ा। मेवाड़ के गुहिलवंशियों के आहाड़ में रहने के कारण उनकी एक शाखा आहाड़ा नाम से प्रसिद्ध हुई, जिससे चारण लोग मेवाड़, डूंगरपुर आदि के गुहिलवंशी (सीसोदिये) राजाओं को अपनी कविता में अब तक 'आहाड़ा' कहते हैं। यह प्रथा आधुनिक नहीं, किन्तु प्राचीन है। डूंगरपुर राज्य के डेसां गांव से मिले हुए वि० सं० १५२० (ई० स० १४६४) के शिलालेख में डूंगरपुर के रावल कर्मसिंह को 'आहडवंशोत्पन्न' अर्थात् आहाड़ा गोत्र का कहा है (देखो ऊपर पृ० ३५१, टि० १)। जब से डूंगरपुर का राज्य मेवाड़ के अधीन हुआ तब से डूंगरपुर की कुछ सेना किसी सरदार की मातहती में चित्तोड़ में रहा करती थी। हिंगुलू (हिंगोलो) आहाड़ा डूंगरपुर का सरदार था और महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) के समय राव जोधा के साथ की लड़ाई में मारा गया था, जिसकी छत्री बालसमन्द (जोधपुर के निकट) तालाब पर अब तक विद्यमान है। मारवाड़ की ख्यात में भी उक्त लड़ाई के प्रसंग में लिखा है कि हिंगोला बड़ा राजपूत था। चित्तोड़ के गढ़ पर हिंगोलो आहाड़ा के महल हैं (मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात; जि० १ पृ० ४३–४४)।

भी दिल्ली पर स्थापित नहीं हुआ था। अलाउद्दीन वि० सं० १३५३ से १३७२ (ई० स० १२६६ से १३१६) तक दिल्ली का सुलतान रहा था, अतएव वि० सं० १३३२ (ई० स० १२७५) में उसके बंबावदे पर चढ़ाई करने का कथन भी गढ़ंत ही है। अलाउद्दीन ने मेवाड़ पर केवल एक ही बार चढ़ाई की, जो वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में चित्तोड़ लेने की थी। देवीसिंह तक बूंदी के हाड़ों की स्थिति साधारण ही थी। मीनों से बूंदी लेने के बाद उनकी दशा अच्छी होती गई। मुहणोत नैणसी के कथन से पाया जाता है कि देवीसिंह ने मेवाड़वालों की सहायता से मीनों से बूंदी लेकर मेवाड़ की मातहती स्वीकार की थी[1]। हरराज, हालू या चंद्रराज नाम का कोई सरदार बंबावदे में हुआ ही नहीं। बंबावदे के हाड़ा महादेव के वि० सं० १४४६ (ई० स० १३८६) के मैनाल के शिलालेख में देवराज (देवा प्रथम) के बंबावदे के वंशजों की नामावली में उस (देवराज) के पीछे क्रमशः रतपाल, केल्हण, कुंतल और महादेव के नाम दिये हैं—ये ही शुद्ध नाम हैं. महादेव महाराणा क्षेत्रसिंह का समकालीन था, इसलिये महाराणा हंमीर के समय बंबावदे का स्वामी कुंतल होना चाहिये, न कि हालू। महाराणा हंमीर सदा हाड़ों का सहायक रहा और उसने हाड़ों पर कभी चढ़ाई नहीं की। उक्त महाराणा के बींझराज नाम का कोई चाचा ही नहीं था[2]। महाराणा क्षेत्रसिंह ने हाड़ों पर चढ़ाई कर उनको अपने अधीन किया था, जैसा कि शिलालेखों से ऊपर बतलाया जा चुका है। लालसिंह की पुत्री का क्षेत्रसिंह से विवाह होना भी कल्पित बात है, क्योंकि राव देवीसिंह महाराणा हंमीर का समकालीन था; अतएव उसके पांचवें वंशधर[3] लालसिंह की पुत्री का विवाह महाराणा हंमीरसिंह की

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र २३, पृ० २, और पत्र २४, पृ० १।

(२) देखो ऊपर पृ० ४१२, टिप्पण २ में राणा लखमसी के नव पुत्रों (हम्मीर के चाचाओं) के नाम।

(३) मेवाड़ के महाराणा — बूंदी के राव

मेवाड़ के महाराणा		बूंदी के राव
१ महाराणा हंमीर	समकालीन	१ देवीसिंह
२ कुंवर क्षेत्रसिंह		२ समरसिंह
		३ नरपाल (नापा)
		४ हंमीर (हामा)
		५ कुंवर लालसिंह
	समकालीन (महाराणा हंमीर —)	६ लालसिंह की पुत्री

विद्यमानता में कुंवर खेतल (क्षेत्रसिंह, खेता) के साथ होना किसी प्रकार संभव नहीं हो सकता। उदयपुर राज्य के बड़वे देवीदान की पुस्तक में क्षेत्रसिंह (खेता, खेतल) का विवाह हाड़ा लालसिंह की पुत्री से नहीं, किन्तु हाड़ा हरराज की पुत्री बालकुंवर से होना लिखा है, जो संभव हो सकता है, क्योंकि 'वंशप्रकाश' में हरराज[1] को देवसिंह (देवीसिंह) के पुत्रों में से एक लिखा है।

वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८) के उपर्युक्त शृंगीऋषि के शिलालेख में लिखा है कि 'क्षेत्रसिंह ने अपनी तलवार के बल से युद्ध में अमीशाह को जीता, उसकी अशेष यवन-सेना को नष्ट किया और वह उसका सारा खज़ाना तथा असंख्य घोड़े अपनी राजधानी में ले आया[2]'। इसमें यह नहीं लिखा कि अमीशाह कहां का स्वामी था, परन्तु महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) के समय के बने हुए एकलिंगमाहात्म्य में कुंभा का वर्णन करते हुए लिखा है—'जैसे पहले राजा क्षेत्र (क्षेत्रसिंह) ने मालवे के स्वामी अमीशाह को युद्ध में नष्ट किया था, वैसे ही श्रीकुंभ (कुंभा) ने महमद खिलची (महमूद खिलजी) को युद्ध में जीता[3]'। इससे निश्चित है कि अमीशाह मालवे का स्वामी था। महाराणा क्षेत्रसिंह की मुसलमानों के साथ यही एक लड़ाई होना पाया जाता है। उसके विषय में महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) के चित्तोड़ के कीर्तिस्तंभ की वि० सं० १५१७ शाके १३८२ (ई० स० १४६०) मार्गशीर्ष वदि ५ की प्रशस्ति में लिखा है कि 'क्षेत्रसिंह ने चित्रकूट (चित्तोड़) के निकट यवनों की सेना का संहार कर

अमीशाह को जीतना

इन वंशवृक्षों को देखते हुए यह सर्वथा नहीं माना जा सकता कि कुंवर लालसिंह की पुत्री का विवाह महाराणा हंमीरसिंह की जीवित दशा में कुंवर क्षेत्रसिंह (खेता, खेतल) से हुआ हो।

(१) वंशप्रकाश; पृ० ६३।

(२) आजावमीसाहमसिप्रभावाज्जित्वा च हत्वा यवनानशेषान्।
यः कोशजातं तुरगानसंख्यान्समानयत्स्वां किल राजधानीं ॥ ६ ॥
(शृंगीऋषि का शिलालेख, अप्रकाशित)।

(३) अमीसाहं हत्वा रणभुवि पुरा मालवपतिं
जयोत्कर्षं हर्षादलभत किल क्षेत्रनृपतिः।
तथैव श्रीकुंभः खिलिचिमहमदं गजघटा-
वृतं संख्येजैषीच्च हि·················कोप्यसदृशः ॥
(एकलिंगमाहात्म्य; राजवर्णन अध्याय, श्लोक १९६)।

उसको पाताल में पहुंचाया[1]"। इससे इस लड़ाई का चित्तोड़ के निकट होना निश्चित है। महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) के समय के वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) के कुंभलगढ़ के शिलालेख से पाया जाता है—'मालवे का स्वामी शकपति उससे ऐसा पिटा कि स्वप्न में भी उसी को देखता है। सर्परूपी उस राजा ने मेंढक के समान अमीशाह को पकड़ा था[2]"। एकलिंगजी के मंदिर के दक्षिण द्वार की महाराणा रायमल के समय की वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) की प्रशस्ति में लिखा है कि 'क्षेत्रसिंह ने अमीसाहिरूपी बड़े सांप के गर्वरूपी विष को निर्मूल किया[3]"।

---

(१) येनानर्गलभल्लदीर्णहृदया श्रीचित्रकूटांतिके
तत्तत्सैनिकघोरवीरनिनदप्रध्वस्तधैर्योदया ।
मन्ये यावनवाहिनी निजपरित्राणस्य हेतोरलं
भूनिक्षेपमिषेण भीपरवशा पातालमूलं ययौ ॥ २२ ॥
(महाराणा कुंभा के कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति—अप्रकाशित)।

यही श्लोक 'एकलिंगमाहात्म्य' के राजवर्णन अध्याय में उक्त महाराणा के वर्णन में उद्धृत किया है, जहां इसकी संख्या १०५ है।

(२) शस्त्राशस्त्रिहताजिलंपटभटव्रातोच्छलच्छोणित—
च्छन्नप्रोद्गतपांशुपुंजविसरत्प्रादुर्भवत्कर्दमे ।
त्रस्तः सामि हतो रणे शकपतिर्यस्मात्तथा मालव—
क्ष्मापोद्यापि यथा भयेन चकितः स्वप्नेपि तं पश्यति ॥ २०० ॥......॥
अमीसाहिग्राहि येनाहिनेक
स्फुरद्भेक एकांगवीरव्रतेन ।
जगत्रा(त्रा)णदक्षस्य पाणौ कृपाणः
प्रसिद्धो भवद्भूपतिः षे(खे)तराणः ॥ २०२ ॥
(कुंभलगढ की प्रशस्ति, अप्रकाशित)।

ये दोनों श्लोक 'एकलिंगमाहात्म्य' में संख्या १०७ और १०६ पर उलट-पुलट हैं।

(३) योमीसाहिमहाहिगर्वगरलं मूलादवादीदहत्
स क्षेत्रक्षितिभृत् प्रभूतविभवः श्रीचित्रकूटेभवत् ॥ २६ ॥
(भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ११६)।

इन अवतरणों से स्पष्ट है कि क्षेत्रसिंह ने मालवे के स्वामी अमीशाह को चित्तोड़ के पास हराया था। तारीख़ फ़िरिश्ता में मालवे (मांडू) के सुलतानों का विस्तृत इतिहास दिया है, परन्तु उसमें वहां के सुलतानों की नामावली में अमीशाह का नाम नहीं मिलता; लेकिन शेख़ रिज़कुल्ला मुश्ताक़ी[1] की बनाई हुई 'वाक़ेआते मुश्ताक़ी' नामक तवारीख़[2] तथा 'तुज़ुके जहांगीरी[3]' से पाया

---

(१) रिज़कुल्ला मुश्ताक़ी का जन्म हि० स० ८९७ (वि० सं० १५४९=ई० स०१४९२) में और देहांत हि० स० ९८९ (वि० सं० १६३८=ई० स० १५८१) में हुआ था, इसलिये वह पुस्तक उक्त दोनों संवतों के बीच की बनी हुई है।

(२) उक्त तवारीख़ में लिखा है—'एक दिन एक व्यापारी बड़े साथ (कारवाँ) सहित आया; अमींशाह ने अपने नियम के अनुसार उससे महसूल मांगा, जिसपर उसने कहा कि मैं सुलतान फ़ीरोज़ का, जिसने कर्नाल के क़िले को दृढ़ किया है, सौदागर हूं और वहीं अन्न ले जा रहा हूं। अमींशाह ने कहा कि तुम कोई भी हो, तुमको नियमानुसार महसूल देकर ही जाना होगा। व्यापारी बोला कि मैं सुलतान के पास जा रहा हूं, अगर तुम महसूल छोड़ दो, तो मैं तुमको सुलतान से मांडू का इलाक़ा तथा घोड़ा और ख़िलअत दिलाऊंगा। तुम इसको अच्छा समझते हो या महसूल को? अमींशाह ने उत्तर दिया कि यदि ऐसा हो, तो मैं सुलतान का सेवक होकर उसकी अच्छी सेवा करूंगा। इसपर उसने उसको जाने दिया। व्यापारी ने सुलतान के पास पहुंचने पर अर्ज़ की कि अमींशाह मांडू का एक ज़मींदार है और सब रास्ते उसके अधिकार में हैं; यदि आप उसको मांडू का इलाक़ा, जो बिलकुल ऊजड़ है; प्रदान कर फ़र्मान भेजें, तो वह वहां शांति स्थापित करेगा। सुलतान ने उसी के साथ घोड़ा और ख़िलअत भेजा, जिनको लेकर वह अमींशाह के पास पहुंचा और उन्हें नज़र करके अपनी भक्ति प्रकाशित की। तब अमींशाह ने रिसाला भरती कर मुल्क को आबाद किया। उसकी मृत्यु के पीछे उसका पुत्र हुशंग वहां का सुलतान हुआ, (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ४, पृ० ५५२)। मांडू का सुलतान हुशंग (अलपख़ां) दिलावरखां का पुत्र था, इसलिये अमींशाह दिलावरख़ां का ही दूसरा नाम होना चाहिये।

(३) बादशाह जहांगीर ने अपनी तुज़ुक (दिनचर्या की पुस्तक) में धार (धारा नगरी) के प्रसंग में लिखा है कि अमीदशाह ग़ोरी ने—जिसको दिलावरख़ां कहते थे और दिल्ली के सुलतान फ़ीरोज़ (तुग़लक) के बेटे सुलतान मुहम्मद (तुग़लकशाह दूसरे) के समय जिसका मालवे पर पूरा अधिकार था—क़िले के बाहर मसजिद बनवाई थी; (अलक्ज़ैण्डर रॉजर्स; 'तुज़ुके जहांगीरी' का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० १, पृ० ४०७)। फ़ारसी लिपि के दोष से 'तुज़ुके जहांगीरी' में 'नून' (ن) की जगह 'दाल' (د) लिखे जाने से अमींशाह का अमीदशाह बनगया है। शिलालेखों में अमीसाह, अमीसाहि पाठ मिलता है, जो अमींशाह का सूचक है, अतएव फ़ारसी का शुद्ध नाम अमींशाह होना चाहिये।

जाता है कि मांडू के पहले सुलतान दिलावरखां गोरी का मूल नाम अमीशाह था, अतएव उक्त महाराणा ने मालवे (मांडू) के अमीशाह अर्थात् दिलावरखां को—जो उसका समकालीन था—जीता था।

कर्नल टॉड ने अपने 'राजस्थान' में लिखा है—'खेतसी (क्षेत्रसिंह) ने बाकरोल[1] के पास दिल्ली के बादशाह हुमायूं को परास्त किया[2]' परन्तु इस महाराणा का दिल्ली के बादशाह हुमायूं से लड़ना संभव नहीं, क्योंकि हुमायूं की गद्दीनशीनी वि० सं० १५८७ (ई० स १५३०) में और उक्त महाराणा की वि० सं० १४२१ (ई० स० १३६४) में हुई थी। इस महाराणा के समय के दिल्ली के सुलतानों में हुमायूं नाम या उपनामवाला कोई सुलतान ही नहीं हुआ। अनुमान होता है कि भाटों ने, हुमायूं नाम प्रसिद्ध होने के कारण, अमीशाह को हुमायूंशाह लिख दिया हो और उसी पर भरोसा कर टॉड ने उसको दिल्ली का बादशाह मान लिया हो[3]। टॉड को हुमायूं और क्षेत्रसिंह दोनों की गद्दीनशीनी के संवत् भली भांति ज्ञात थे, परन्तु लिखते समय उनका मिलान न करने से ही यह भूल हुई हो।

कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में लिखा है—'विजयी राजा क्षेत्रसिंह ने पराक्रमी शक (मुसलमान) पृथ्वीपति के गर्व को मिटानेवाले गुर्जर-मंडलेश्वर वीर रणमल्ल को

ईडर के राजा रणमल्ल को क़ैद करना

कारागार (क़ैदख़ाने) में डाला[4]'। कुंभलगढ़ की प्रशस्ति का कथन है कि 'राजाओं के समूह को हरानेवाला

(१) बाकरोल चित्तोड़गढ़ से अनुमान २० मील उत्तर के वर्तमान हंमीरगढ़ का पुराना नाम है। महाराणा हंमीरसिंह दूसरे ने अपने नाम से उसका नाम हंमीरगढ़ रक्खा था।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३२१।

(३) जैसे भाटों ने अमीशाह को हुमायूंशाह माना, वैसे ही 'वीरविनोद' में महाराणा रायमल के समय की एकलिंगजी के मन्दिर के दक्षिण द्वार की वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) की प्रशस्ति में दिये हुए अमीशाह के पराजय के वृत्तांत पर से अमीशाह का निर्णय करने की कोशिश की गई; परंतु उसमें सफलता न हुई, जिससे अमीशाह को अहमदशाह मान कर कई अहमदशाहों का समय उक्त महाराणा के समय से मिलाया, परंतु उनकी संगति ठीक न बैठी। तब यह लिखा गया कि 'हमने बहुत-सी फ़ारसी तवारीख़ों में ढूंढा लेकिन इस नाम का कोई बादशाह उस ज़माने में नहीं पाया गया, और प्रशस्तियों का लेख भी झूठा नहीं हो सकता, क्योंकि वे उसी ज़माने के क़रीब की लिखी हुई हैं' (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३०१-२)।

(४) संग्रामाजिरसीम्नि शौर्यविलसद्दोर्दंडहेलोल्लस—

पत्तन[1] का स्वामी दफ़रखान (ज़फ़रखां[2]) भी जिससे कुंठित हुआ था, वह शक-स्त्रियों को वैधव्य देनेवाला रणमल्ल भी इस(क्षेत्रसिंह)के कारागार में, जहां सौ राजा (यह अतिशयोक्ति है) थे, बिछौना भी न पा सका[3]'। एकलिंगजी के मंदिर के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति से पाया जाता है कि 'खेतसिंह (क्षेत्रसिंह) ने ऐल (ईडर) के प्राकार (गढ़) को जीतकर राजा रणमल्ल को क़ैद किया, उसका सारा

चापप्रोद्गतबाणवृष्टिशमितारातिप्रतापानलः ।
वीरः श्रीरणमल्लमूर्जितशकक्ष्मापालगर्वांतकं
स्फूर्जद्गूर्जरमंडलेश्वरमसौ कारागृहेवीवसत् ॥ २३ ॥

(चित्तोड़ के कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति)।

यही एकलिंगमाहात्म्य के राजवर्णन अध्याय में ६८वां श्लोक है।

(१) पत्तन=पाटण; अनहिलवाड़ा। गुजरात के चावड़ा वंश के राजाओं की और उनके पीछे सोलंकियों की राजधानी पाटण थी। सोलंकी (बघेल) वंश के अंतिम राजा कर्ण (करणवेला) से अलाउद्दीन ख़िलजी ने गुजरात का राज्य छीना, तब से दिल्ली के सुलतान के गुजरात के सूबेदार पाटण में ही रहा करते थे; पीछे से गुजरात के सुलतान अहमदशाह (पहले) ने आसावल (आशापल्ली) के स्थान पर अहमदाबाद बसाया, तब से गुजरात की राजधानी अहमदाबाद हुई।

(२) ज़फ़रख़ां नाम के दो पुरुष गुजरात के सूबेदार हुए। उनमें से पहले को ई० स० १३६१ (वि० सं० १४१८) में दिल्ली के सुलतान फ़ीरोज़ तुग़लक ने निज़ामुल्-मुल्क के स्थान पर वहां नियत किया था; उसकी मृत्यु फ़िरिश्ता के कथनानुसार ई० स० १३७३ (वि० सं० १४३०) में और 'मीराते अहमदी' के अनुसार ई० स० १३७१ (वि० सं० १४२८) में हुई, उसके पीछे उसका पुत्र दरियाख़ां गुजरात का सूबेदार बना (बंब० गै; जि० १, भाग १, पृ० २३१)। ज़फ़रख़ां (दूसरा) मुसलमान बने हुए एक तंवर राजपूत का वंशज था; उसको दिल्ली के सुलतान मुहम्मद तुग़लक (दूसरे) ने ई० स० १३९१ (वि० सं० १४४८) में गुजरात का सूबेदार बनाया और वह ईडर के राजा रणमल्ल से दो बार लड़ा था। दूसरी लड़ाई ई० स० १३९७ (वि० सं० १४५४) में हुई, जिसमें रण-मल्ल से संधि कर उसे लौटना पड़ा था (वही; पृ० २३३। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ७)। उसी समय के आसपास उसने दिल्ली से स्वतंत्र होकर मुज़फ़्फ़र नाम धारण किया था, (डफ़; क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इंडिया; पृ० २३४)। यदि रणमल्ल महाराणा के हाथ से क़ैद होने के पहले ज़फ़रख़ां से लड़ा हो, तो यही मानना पड़ेगा कि वह ज़फ़रख़ां (पहले) से भी लड़ा होगा।

(३) माद्यन्माद्यन्महेभप्रखरकरहतिक्षिप्तराजन्ययूथो
यं पा(स्रा)नः पत्तनेशो दफर इति समासाद्य कुंठीव(ब)भूव ।

खज़ाना छीन लिया और उसका राज्य उसके पुत्र[1] को दिया[2]"। इन कथनों का आशय यही है कि महाराणा क्षेत्रसिंह ने ईडर के राव रणमल्ल को क़ैद किया था। महाराणा हंमीर ने ईडर के राजा जैतकरण (जैत्रकर्ण) को जीता था, जिसका पुत्र रणमल्ल एक वीर राजपूत था। संभव है, उसने मेवाड़ की अधीनता में रहना पसंद न कर महाराणा क्षेत्रसिंह से विरोध किया हो, तो भी अन्य प्रमाणों से यह पाया जाता है कि वह (रणमल्ल) महाराणा के बंदीगृह से मुक्त होने के अनन्तर पुनः ईडर का स्वामी बन गया था, और गुजरात के सूबेदार ज़फ़रखां (दूसरे) से लड़ा[3] था।

कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में लिखा है कि जिस क्षेत्रसिंह की सेना की रज से सूर्य भी मंद हो जाता था, उसके सामने सादल आदि राजा अपने २ नगर छोड़कर

सादल आदि को जीतना

भयभीत हुए, तो क्या आश्चर्य है[4]? सादल कहां का राजा था, यह निश्चित रूप से नहीं जाना गया, परन्तु ख्यातों से

सोयं मल्लो रणादिः शककुलवनितादत्तवैधव्यदीक्षः
कारागारे यदीये नृपतिशतयुते संस्तरं नापि लेभे ॥ १९६ ॥

(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति)

यही 'एकलिंगमाहात्म्य' के राजवर्णन अध्याय का श्लोक १०१ है।

(१) रणमल्ल का पुत्र और उत्तराधिकारी पुंज (पूंजा) था।

(२) प्राकारमैलमभिभूय विधूय वीरा—
नादायकोशमखिलं खलु खेतसिंहः।
कारांधकारमनयद्रणमल्लभूप—
मेतन्महीमकृत तत्सुतसात्मसह्य ॥ ३० ॥

(भावनगर इन्स्क्रिपशन्स; पृ० ११९)।

(३) देखो ऊपर पृ० २६६, टि० २।

(४) यात्रोत्तुंगतुरंगचंचलखुराघातोत्थितैरेणुभिः
सेहे यस्य न लुप्तरश्मिपटलव्याजात्प्रतापं रविः।
तच्चित्रं किमु सादलादिकनृपा यत्प्राक्[ता]स्तत्रसु—
स्त्यक्त्वा[?] स्वानि पुराणि कस्तु बलिनां सूक्ष्मो गुरुर्वा पुरः ॥ १९९ ॥

(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति। यही 'एकलिंगमाहात्म्य' में १०४था श्लोक है।

टोड़े (जयपुर राज्य में) के राजा सातल (सादल) का उक्त महाराणा का समकालीन होना पाया जाता है; संभव है, उसी को जीता हो।

कर्नल टॉड और क्षेत्रसिंह

टॉड के राजस्थान में महाराणा क्षेत्रसिंह के हुमायूं (अमीशाह) को जीतने के अतिरिक्त यह भी लिखा है—'उक्त महाराणा ने लिल्ला (लल्ला) पठान से अजमेर और जहाज़पुर लिये तथा मांडलगढ़, दसोर (मंदसोर) और सारे छप्पन को फिर मेवाड़ में मिलाया। उसका देहांत अपने सामंत, बंबावदे के हाड़ा सरदार, के साथ के झगड़े में हुआ, जिसकी पुत्री से वह विवाह करनेवाला था'। यह कथन भी ज्यों-का-त्यों स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि लल्ला पठान उक्त महाराणा का समकालीन नहीं, किन्तु उसके पांचवें वंशधर महाराणा रायमल का समसामयिक था और उसको उक्त महाराणा के कुंवर पृथ्वीराज ने मारा था, जैसा कि आगे महाराणा रायमल के प्रसंग में बतलाया जायगा। अजमेर और जहाज़पुर महाराणा कुंभकर्ण ने अपने राज्य में मिलाये थे, न कि क्षेत्रसिंह ने। मांडलगढ़ का क़िला महाराणा क्षेत्रसिंह ने तोड़ा, परन्तु हाड़ों के अधीन हो जाने के कारण उसे छीना नहीं, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। दसोर (मंदसोर) लेने का हमें कोई दूसरा प्रमाण नहीं मिला। इसी प्रकार बंबावदे के हाड़ा (लालसिंह) के हाथ से उक्त महाराणा के मारे जाने की बात भी निर्मूल है।

महाराणा की मृत्यु

महाराणा क्षेत्रसिंह का देहांत वि० सं० १४३६ (ई० स० १३८२) में हुआ। इतिहास के अंधकार में बूंदी के भाटों ने इस विषय में एक झूठी कथा गढ़ंत कर ली जिसका आशय 'वंशप्रकाश' से नीचे उद्धृत किया जाता है—

'बूंदी के राव हामा ने अपनी पोती की सगाई कुंवर खेतल (क्षेत्रसिंह) से कर दी। फिर अपने पुत्र वरसिंह को राज्य तथा दूसरे पुत्र लालसिंह को क़स्बा गैणोली जागीर में देकर वि० सं० १३९३ (ई० स० १३३६) में वह काशी चला गया। लालसिंह ने गैणोली में रहकर अपनी पुत्री का विवाह कुंवर खेतल से करना चाहा। चितोड़ से एक बड़ी बरात गैणोली में पहुंची और ब्याह के दूसरे दिन शराब पीते समय दोनों तरफ़वाले अपनी २ बहादुरी की बातें करने लगे। चारण बारू ने महाराणा (हंमीरसिंह) की बहुत प्रशंसा की,

तब लालसिंह ने कहा—'हमने सुना है कि पहले चित्तोड़गढ़ में चार हाथवाली एक पत्थर की पुतली निकली थी, जिसका एक हाथ सामने, एक आकाश (स्वर्ग) की ओर, एक ज़मीन की तरफ़ और एक गले से लगा हुआ था। जब महाराणा ने उसके भाव के संबंध में पूछा, तब तुमने निवेदन किया कि पुतली यह बतलाती है कि आप जैसा दानी और शूरवीर न तो पृथ्वी पर है, और न आकाश (स्वर्ग) में; जो हो, तो मेरा गला काटा जाय। यह बात केवल तुमने ही बनाई थी, क्या ऐसा दानी तथा शूरवीर और कोई नहीं है ? तुम जो मांगो, वही मैं तुम्हें देता हूं। यदि मेरा सिर भी मांगो, तो वह भी तैयार है। मेरे जमाई को छोड़कर और कोई लड़ने को आवे, तो बहादुरी बतलाई जाय। यदि तुम कुछ न मांगो तो तुम नालायक हो, और मैं न दूं तो मैं नालायक हूं। पुतली तो पत्थर की है, अतएव उसके बदले में तुम्हें अपना सिर कटाना चाहिये'। यह सुनकर बारू ने लज्जापूर्वक डेरे पर जाकर अपने नौकर से कहा कि मैं अपना सिर काटता हूं, तू उसे लालसिंह के पास पहुंचा देना। यह कहकर उसने अपना सिर काट डाला, जिसको उस नौकर ने लालसिंह के पास पहुंचा दिया। इससे लालसिंह को बड़ी चिन्ता हुई। जब यह समाचार चित्तोड़ में पहुंचा, तब महाराणा (हंमीर) ने अपने कुंवर (क्षेत्रसिंह) को कहलाया कि जो तू मेरा पुत्र है, तो लालसिंह को मारकर आना। यह सूचना पाकर लालसिंह और वरसिंह ने अपने जमाई को समझाया कि इस छोटी-सी बात पर आपको लड़ाई नहीं करनी चाहिये। कुंवर ने उनके कथन पर कुछ भी ध्यान न दिया और लड़ाई छेड़ दी, जो एक वर्ष तक चली। उसमें लालसिंह के हाथ से कुंवर क्षेत्रसिंह मारा गया, वरसिंह के ६ घाव लगे और लालसिंह की पुत्री अपने पति के साथ सती हुई। सेना लौटकर चित्तोड़ पहुंची, जिसके पूर्व ही महाराणा (हंमीरसिंह) का देहांत हो गया था। सेना के द्वारा कुंवर क्षेत्रसिंह के मारे जाने के समाचार पाकर उसका पुत्र (महाराणा हंमीर का पौत्र) लाखा (लक्षसिंह) चित्तोड़ की गद्दी पर बैठा[१]'।

वंशप्रकाश का यह सारा कथन कल्पित ही है। यदि कुंवर क्षेत्रसिंह अपने पिता की विद्यमानता में मारा गया होता, तो उसका नाम मेवाड़ के राजाओं की

(१) वंशप्रकाश; पृ० ७३, ७५—७८।

नामावली में न रहता। हम ऊपर बतला चुके हैं कि उसने राजा होने पर कई लड़ाइयां लड़ी थीं, और अट्ठारह वर्ष राज्य किया था। क्षेत्रसिंह का विवाह लालसिंह की पुत्री से होना और उस समय तक महाराणा हंमीरसिंह का जीवित रहना भी सर्वथा कपोल-कल्पना है; क्योंकि महाराणा हंमीरसिंह का समकालीन बूंदी का राव देवीसिंह (देवसिंह) था, जिसके पांचवें वंशधर लालसिंह की पुत्री का विवाह उक्त महाराणा की जीवित दशा में हुआ हो, यह किसी प्रकार संभव नहीं। क्षेत्रसिंह का विवाह हाड़ा देवीसिंह के कुंवर हरराज की पुत्री बालकुंवर से होना ऊपर बतलाया जा चुका है। यह सारी कथा भाटों की गढ़न्त है और उसपर विश्वास कर पिछले इतिहास-लेखकों ने[1] अपनी पुस्तकों में उसे स्थान दिया है, परन्तु जाँच की कसौटी पर यह निर्मूल सिद्ध होती है।

महाराणा क्षेत्रसिंह (खेता) के ७ पुत्र—लाखा, भाखर[2], माहप (महीपाल), भवणसी (भुवनसिंह), भूचर[3], सलखा[4] और सखरा[5]—हुए। इनके सिवा एक

महाराणा की सन्तति

खातिन पासवान (अविवाहिता स्त्री) से चाचा और मेरा उत्पन्न हुए[6]।

इस महाराणा ने पनवाड़ गांव (अब जयपुर राज्य में) एकलिंगजी के मंदिर को भेट किया[7]। इसके समय का अब तक केवल एक ही शिलालेख मिला है,

---

(१) कर्नल टॉड ने क्षेत्रसिंह का अपने सामन्त बंबावदे के हाड़ा के हाथ से मारा जाना लिखा है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३२१)। वीरविनोद में कुछ हेर-फेर के साथ वही बात लिखी है, जो वंशप्रकाश से मिलती हुई है, परन्तु विश्वास-योग्य नहीं है।

(२) भाखर के भाखरोत हुए।

(३) भूचर के भूचरोत हुए।

(४) सलखा के सलखणोत हुए।

(५) सखरा के सखरावत हुए।

(६) महाराणा के कुल पुत्रों के नाम नैणसी की ख्यात से उद्धृत किये गये हैं (पत्र ४, पृ० २)। ये ही नाम मेवाड़ की ख्यातों आदि में भी मिलते हैं। (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३०३)।

(७) ग्रामं··········पनवाडपुरं च खेतनरनाथः।

सततसपर्यासंभृतिहेतोर्गिरिजागिरीशयोरादिशत् ॥ ३२ ॥

दक्षिण द्वार की प्रशस्ति—भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ११९।

जो वि० सं० १४२३ (ई० स० १३६६) आषाढ वदि १३ का है[1]।

लक्षसिंह (लाखा)

महाराणा क्षेत्रसिंह के पीछे उसका पुत्र लक्षसिंह (लाखा) वि० सं० १४३९ (ई० स० १३८२) में चित्तोड़ के राज्य-सिंहासन पर बैठा।

एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में लिखा है—'युवराज पद पाए हुए लक्ष ने रणक्षेत्र में जोगादुर्गाधिप[2] को परास्त कर उसके कन्यारूपी रत्न, हाथी और घोड़े छीन लिये[3]'। जोगादुर्गाधिप कहां का स्वामी था, इसका निश्चय नहीं हो सका। यह घटना लक्षसिंह के कुंवरपदे की होनी चाहिये।

जोगादुर्गाधिप को विजय करना

इस महाराणा के समय बदनोर के पहाड़ी प्रदेश के मेदों (मेरों) ने सिर उठाया, इसलिये महाराणा ने उनपर चढ़ाई की और उन्हें परास्त करके उनका वर्धन (बदनोर) नाम का पहाड़ी प्रदेश अपने अधीन किया। वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) के कुंभलगढ़ के शिलालेख से पाया जाता है कि उग्र तेजवाले इस राणा का रणघोष सुनते ही मेदों (मेरों) का धैर्य-ध्वंस हो गया, बहुतसे मारे गये और उनका वर्धन (बदनोर) नाम का पहाड़ी प्रदेश छीन लिया गया[4]।

मेरों पर चढ़ाई

---

(१) यह शिलालेख गोगूंदा गांव (उदयपुर राज्य में) में शीतला माता के मंदिर के द्वार पर छबने में खुदा है।

(२) प्रशस्ति का मूलपाठ 'जोगादुर्गाधिपं' है, जिसका अर्थ 'जोगा दुर्ग का स्वामी' या 'जोगा नामक गढ़पति' हो सकता है। संभवतः पहला अर्थ ठीक हो।

(३) जोगादुर्गाधि[पं यः] समरभुवि पराभूय लक्षः क्षितींद्रः
कन्यारत्नान्यहार्षीत्सहगजतुरगैर्यौवराज्यं प्रपन्नः।
प्रत्यूहव्यूह मोहं··· ·· ···························· ॥ ३५ ॥
(भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ११६)।

(४) मेदानाराच्चल्लसादुल्लसत्त—
भेरीधीरध्वानविध्वस्तधैर्यान्।
कारं कारं योग्रहीदुग्रतेजा
दग्धारातिर्वर्द्धनाख्यं गिरींद्रम् ॥३६॥ (चित्तोड़ के कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति)।
कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में भी यही २१२वां श्लोक है।

इस महाराणा के राजत्व-काल में मगरा ज़िले के जावर गांव में चांदी की खान निकल आई, जिसमें से चांदी और सीसा बहुत निकलने लगा, जिससे राज्य की आय में बड़ी वृद्धि हो गई। इसी खान के कारण जावर एक अच्छा क़स्बा बन गया, जहां कई मन्दिर भी बने। कई सौ बरसों तक यह खान जारी रही, जिससे राज्य को बड़ा लाभ होता रहा, किन्तु अब यह खान बहुत समय से बन्द है। अब तक खंडित मूसों के टुकड़ों के पहाड़ियों जैसे ढेर वहां नज़र आते हैं, जिनसे वहां से निकलनेवाली चांदी का अनुमान किया जा सकता है। वहां कुछ घर ऐसे भी विद्यमान हैं, जिनकी दीवारें ईंटों की नहीं, किन्तु मूसों की बनी हुई हैं।

जावर की चांदी की खान

मुसलमानों के राज्य में हिन्दुओं के पवित्र तीर्थस्थानों में जानेवाले यात्रियों पर उनकी तरफ़ से कर लगा दिया गया था, जिससे यात्रियों को कष्ट होता था। इस धर्म-परायण महाराणा ने त्रिस्थली (काशी, प्रयाग और गया) को यवनों (मुसलमानों) के कर से मुक्त कराया[1]। यह पुण्य कार्य लड़कर किया गया हो, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, किन्तु इसके विपरीत एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति से पाया जाता है कि बहुतसी सुवर्ण-मुद्राएं देकर गया को यवन-कर से मुक्त किया[2]। शृंगीऋषि के वि० सं० १४८५ के शिलालेख में लिखा है कि इस महाराणा ने घोड़े और बहुत-सा सुवर्ण देकर गया का कर छुड़ाया था[3]।

गया आदि का कर छुड़ाना

---

(१) कीनाशपाशान् सकलानपास्थत्
यस्त्रिस्थलीमोचनतः शकेभ्यः।
तुलादिदानातिभरण्यतारी—
ल्लृदयाख्यभूपो निहतप्रतीपः ॥ २०७ ॥
(कुंभलगढ़ का शिलालेख)।

(२) गयातीर्थं व्यर्थीकृतकथ(था)पुराणस्मृतिपथं
शकैः क्रूरालोकैः करकटकनिर्यन्त्रणमधात्।
मुमोचेदं भित्वा घनकनकटंकैर्भवभुजां
सहस्त्यावृत्या निगडमिह लक्षक्षितिपतिः ॥ ३८ ॥
(भावनगर इंस्क्रिप्शन्स; पृ० ११६)।

(३) दत्वा···तुरंगहेमनिचयास्तस्मै ग····स्वामिने

अलाउद्दीन खिलजी के हमले और ख़िज़रखां की हुकूमत के समय तोड़े हुए चित्तोड़ के महल, मन्दिर आदि को इस महाराणा ने पीछा बनवाया और कई तालाब, कुंड, क़िले आदि निर्माण कराये[1]। इसी महाराणा के राज्यसमय उदयपुर शहर के पास की पीछोला नाम की बड़ी झील एक धनाढ्य बनजारे ने बनवाई, ऐसी प्रसिद्धि है[2]।

सार्वजनिक कार्य

शिलालेखों से पाया जाता है कि इस महाराणा के पास धन-संचय बहुत हो गया था, जिससे इसने बहुत कुछ दान और सुवर्णादि की तुलाएं कीं[3]। चीरवा

मुक्ता येन कृता गया करभराद्वर्षाण्यनेकान्यतः ।
....॥ ११ ॥

(शृंगीऋषि का शिलालेख—अप्रकाशित)।

नीतिप्रीतिभुजार्जितानि [बहु]शो रत्नानि यत्नादयं
दायं दायममायया व्यतनुत ध्वस्तांतरायां गयां ।
तीर्थानां करमाकलय्य विधिनान्यत्रापि युंक्ते धनं
प्रौढग्रावनिबद्धतीर्थसरसीजाग्रद्यशोंभोरुहः ॥ ३८ ॥

महाराणा मोकल का वि० सं० १४८५ का चित्तोड़ का शिलालेख (ए, इं; जि० २, पृ० ४१५ । भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ९८)।

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३२२; और वीरविनोद; भाग १, पृ० ३०८।

(२) देखो ऊपर पृ० ३११ ।

(३) लक्षं सुवर्णानि ददौ द्विजेभ्यो
लक्षस्तुलादानविधानदक्षः ।
एतत् प्रमाणं विधिरित्यतोसा—
वजेन सायो(यु)ज्यसुखं सिषेवे ॥ ४० ॥

एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति; (भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ११९)।

दाने हेम्नस्तुलाया मखभुवि बहुधा शुद्धिमापादि[ता]नां
भास्वज्जांबूनदानां कुतुकिजनभरैस्तर्किता राशयोस्य ।
संग्रामे लुंटितानां प्रतिनृपमहसां राशयस्ते किमेते
विंध्यं बंधुं समेतुं किमु समुपगताः साधु हेमाद्रिपादाः ॥ ४० ॥

महाराणा मोकल का वि० सं० १४८५ का चित्तोड़ का शिलालेख (ए, इं; जि० २, पृ० ४१५–१६ । भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ९८)।

पुण्य कार्य

गांव एकलिंगजी को भेट किया[1] और सूर्यग्रहण में झोटिंग भट्ट[2] को पिप्पली (पीपली) गांव और धनेश्वर भट्ट को पंचदेवालय (पंच देवळां) गांव[3] दिया।

---

(१) *लब्धो वलक्षकीर्तिश्रीरुवनगरं व्यतीतरद्रुचिरं।*
चिखरविस्यासंभृतिसंपत्तावेकलिंगस्य ॥ ३७ ॥

एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति।

(२) झोटिंग भट्ट दशपुर (दशोरा) जाति का ब्राह्मण था। (*विप्रो दशपुरज्ञातिर-भूज्झोटिंगकेशवः*—घोसुंडी की बावड़ी की प्रशस्ति; श्लोक २५)। शिलालेखों में मिलनेवाले उसके वंश के परिचय से ज्ञात होता है कि भृगु के वंश (गोत्र) में वसन्तयाजी सोमनाथ नाम का विद्वान् उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र नरहरि आन्वीक्षिकी (न्याय) में निपुण होने के अतिरिक्त वेदविद्या में निपुण होने से 'इलातलविरंचि' (पृथ्वी पर का ब्रह्मा) कहलाया। उसका पुत्र कीर्तिमान केशव हुआ, जिसको झोटिंग भी कहते थे और जो अनेक शास्त्रार्थों में विजयी हुआ था। उसने महाराणा कुंभा के प्रसिद्ध कीर्तिस्तंभ की बड़ी प्रशस्ति की रचना करना आरंभ किया, परन्तु वह उसके हाथ से संपूर्ण न होने पाई, आधी बनी (कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति; श्लोक १८८-१९१—वि० सं० १७३५ की हस्तलिखित प्रति से)। अत्रि का पुत्र कवीश्वर महेश हुआ, जो दर्शनशास्त्र का ज्ञाता था। उसने अपने पिता की अधूरी छोड़ी हुई उक्त प्रशस्ति को वि० सं० १५१७ मार्गशीर्ष वदि ५ को पूर्ण किया। उसको महाराणा कुंभकर्ण ने दो हाथी, सोने की डंडीवाले दो चँवर और श्वेत छत्र दिया (वही; श्लोक १९२—९३)। फिर वह कुछ समय तक मालवे में रहा, जहां उसने वहां के सुलतान ग़यासशाह ख़िलजी के समय उसके एक मुसलमान सेनापति बहरी की बनवाई हुई खिड़ावदपुर (खड़ावदा गांव—इन्दौर राज्य के रामपुरा इलाके में) की बावड़ी की बड़ी प्रशस्ति की वि० सं० १५४१ कार्तिक सुदि २ गुरुवार को रचना की (बंब; ए. सो. ज.; जि० २३, पृ० १२--१८)। वह महाराणा कुंभा के पुत्र रायमल के दरबार का भी कवि रहा और वि० सं० १५४५ चैत्र सुदि १० गुरुवार के दिन उक्त महाराणा की एकलिंगजी के दक्षिण द्वारवाली प्रशस्ति, और वि० सं० १५६१ वैशाख सुदि ३ को उसी महाराणा की राणी शृंगारदेवी की बनवाई हुई घोसुंडी गांव (चित्तोड़ से अनुमान १२ मील उत्तर में) की बावड़ी की प्रशस्ति बनाई। उसको महाराणा रायमल ने सूर्यग्रहण पर रत्नखेटक (रतनखेड़ा) गांव दिया (दक्षिण द्वार की प्रशस्ति; श्लोक ६७), जिसको इस समय डूंमखेड़ा कहते हैं।

(३) *लब्धः क्षोणिपतिर्द्विजाय विदुषे झोटिंगनाम्ने ददौ*
ग्रामं पिप्पलिकामुदारविधिना राहूपरुद्धे रवौ।
तद्वद्भट्टधनेश्वराय रुचिरं तं पंचदेवालयं

ऐसा कहते हैं कि महाराणा लाखा की माता द्वारका की यात्रा को गई, उस समय काठियावाड़ में पहुंचते ही काबों ने, जो एक लुटेरी कौम है, मेवाड़ की सेना को घेर लिया और लड़ाई होने लगी। उस समय शार्दूलगढ़ का राव सिंह डोडिया अपने दो पुत्रों—कालू व धवल— सहित मेवाड़ी फ़ौज की रक्षार्थ आ पहुंचा। काबों के साथ की लड़ाई में वह (सिंह डोडिया) मारा गया। कालू और धवल ने मेवाड़ी सैन्य सहित काबों पर विजय पाई तथा राजमाता को अपने ठिकाने में ले जाकर घायलों का इलाज करवाया और यात्रा से लौटते समय वे दोनों भाई राजमाता को मेवाड़ की सीमा तक पहुंचा गये। राजमाता से यह वृत्तांत सुनने पर महाराणा ने इस कार्य को बड़ी सेवा समझकर धवल को पत्र लिख अपने यहां बुलाया और रतनगढ़, नन्दराय और मसूदा आदि ५ लाख की जागीर देकर अपना उमराव बनाया[1]। उक्त धवल के वंश में इस समय सरदारगढ़ (लावा) का ठिकाना है, जहां का राव उदयपुर राज्य के प्रथम श्रेणी के सरदारों में से है।

डोडियों का मेवाड़ में आना

कर्नल टॉड ने लिखा है—'महाराणा लाखा ने बदनोर की लड़ाई में मुहम्मदशाह लोदी को परास्त किया, वह लड़ता हुआ गया तक चला गया और मुसलमानों से गया को मुक्त करने में युद्ध करता हुआ मारा गया[2]'। टॉड का यह कथन संशय-रहित नहीं है, क्योंकि प्रथम तो दिल्ली के लोदी सुलतानों में मुहम्मद नाम का कोई सुलतान ही नहीं हुआ, और दूसरी बात यह है कि उस समय तक लोदियों का राज्य भी दिल्ली में स्थापित नहीं हुआ था। संभव है, टॉड ने मुहम्मदशाह तुग़लक को, जो फ़ीरोज़शाह तुग़लक का बेटा था और ई० स० १३८९ (वि० सं० १४४६) में दिल्ली के तख़्त पर बैठा था, भूल से मुहम्मद लोदी[3] लिख दिया हो, परंतु उस लड़ाई का उल्लेख मेवाड़ के किसी शिलालेख में नहीं मिलता। ऐसे ही मुसलमानों से लड़कर

कर्नल टॉड और महाराणा लाखा

प्रादाद्धर्म्ममतिर्जलेश्वरादिशि श्रीचित्रकूटाचलात् ॥ ३९ ॥

(दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स)।

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३०६।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३२१-२२।

(३) वीरविनोद में बदनोर की लड़ाई में ग़यासुद्दीन तुग़लक का हारना लिखा है। (भा० १, पृ० ३०५-६), परंतु वह भी महाराणा लाखा (लक्षसिंह) का समकालीन नहीं था।

उक्त महाराणा का गया में मारा जाना भी माना नहीं जा सकता, क्योंकि ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि महाराणा लाखा ने बहुत-सा सुवर्ण देकर गया आदि तीर्थों को मुसलमानों के कर से मुक्त किया था।

टॉड राजस्थान में, बड़े व्यय से उक्त महाराणा का चित्तोड़ पर ब्रह्मा का मंदिर बनवाना भी लिखा है[1], जो भ्रम ही है। उक्त मन्दिर से अभिप्राय मोकलजी के मन्दिर से है, जिसे प्रारंभ में मालवे के परमार राजा भोज ने बनवाया था और जिसका जीर्णोद्धार वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२६) में महाराणा लाखा के पुत्र महाराणा मोकल ने करवाया था, जिससे उसको मोकलजी का मन्दिर (समिद्धेश्वर) कहते हैं (देखो ऊपर पृ० ३५४)। इस मन्दिर के गर्भगृह में शिवलिंग और अनुमान ६–७ फुट की ऊंचाई पर पीछे की दीवार से सटी हुई शिव की तीन मुखवाली विशाल त्रिमूर्ति है। ब्रह्मा की मूर्तियों में बहुधा तीन ही मुख बतलाये जाते हैं (चौथा मुख पीछे की तरफ़ का अदृश्य रहता है)[2], इसी से भ्रम में पड़कर कर्नल टॉड ने उस शिव-मंदिर को ब्रह्मा का मंदिर मान लिया हो[3]। उक्त पुस्तक में यह भी लिखा है कि इस महाराणा ने आंबेर के पास नागरचाल[4] के सांखले राजपूतों को परास्त किया था[5]।

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३२२।

(२) प्राचीन काल में राजपूताने में ब्रह्मा के मन्दिर भी बहुत थे, जिनमें से कई एक अब तक विद्यमान हैं और उनमें पूजन भी होता है। ब्रह्मा की जो मूर्ति दीवार से लगी हुई रहती है, उसमें तीन मुख ही बतलाये जाते हैं—एक सामने और एक एक दोनों पार्श्वों में (कुछ तिरछा); परंतु ब्रह्मा की जो मूर्ति परिक्रमावाली वेदी पर स्थापित की जाती है, उसके चार मुख (प्रत्येक दिशा में एक एक) होते हैं, जिससे उसकी परिक्रमा करने पर ही चारों मुखों के दर्शन होते हैं। ऐसी (चार मुखवाली) मूर्तियां थोड़ी ही देखने में आई।

(३) वीरविनोद में भी महाराणा लाखा का लाखों रुपयों की लागत से ब्रह्मा का मंदिर बनाना लिखा है, जो टॉड से ही लिया हुआ प्रतीत होता है। (इस मंदिर के विशेष वृत्तान्त के लिये देखो ना० प्र० प; भा० ३, पृ० १–१८ में प्रकाशित 'परमार राजा भोज का उपनाम त्रिभुवननारायण' शीर्षक मेरा लेख)।

(४) जयपुर राज्य का एक अंश, जिसमें झूंझणूं, सिंघाना आदि विभागों का समावेश होता था।

(५) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३२१। इस घटना का उल्लेख वीरविनोद में भी मिलता है, परंतु शिलालेखों में नहीं।

मंडोवर के राठोड़ राव चूंडा ने अपनी गोहिल वंश की राणी पर अधिक प्रेम होने के कारण उसके बेटे कान्हा को, जो उसके छोटे पुत्रों में से एक था, राज्य देना चाहा। इसपर अप्रसन्न होकर उसका ज्येष्ठ पुत्र रणमल ५०० सवारों के साथ महाराणा लाखा की सेवा में आ रहा। महाराणा ने चालीस गांव देकर उसे अपना सरदार बनाया[1]।

राठोड़ रणमल का मेवाड़ में आना

इस महाराणा की वृद्धावस्था में राठोड़ रणमल की बहिन हंसबाई के संबंध के नारियल महाराणा के कुंवर चूंडा के लिये आये, उस समय महाराणा ने हँसी में कहा कि जवानों के लिये नारियल आते हैं, हमारे जैसे बूढ़ों के लिये कौन भेजे? यह वचन सुनते ही पितृभक्त चूंडा के मन में यह भाव उत्पन्न हुआ कि मेरे पिता की इच्छा नया विवाह करने की है। इसी से प्रेरित होकर उसने राव रणमल से कहलाया कि आप अपनी बहिन का विवाह महाराणा के साथ कर दीजिये। उसने इस बात को स्वीकार न कर कहा कि महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र होने से राज्य के अधिकारी आप हैं, अतएव आपके साथ शादी करने से यदि मेरी बहिन से पुत्र उत्पन्न हुआ, तो वह मेवाड़ का भावी स्वामी होगा, परंतु महाराणा के साथ विवाह करने से मेरे भानजे को चाकरी से निर्वाह करना पड़ेगा। इसपर चूंडा ने कहा कि आपकी बहिन के पुत्र हुआ, तो वह मेवाड़ का स्वामी होगा और मैं उसका सेवक बनकर रहूंगा। इसके उत्तर में रणमल ने कहा, मेवाड़ जैसे राज्य का अधिकार कौन छोड़ सकता है? यह तो कहने की बात है। इसपर चूंडा ने एकलिंगजी की शपथ खाकर कहा कि मैं इस बात का इकरार लिख देता हूं, आप निश्चिन्त रहिये। फिर उसने अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध आग्रह कर उनको नई शादी करने के लिये बाध्य किया और इस आशय का प्रतिज्ञा-पत्र लिख दिया कि यदि इस विवाह से पुत्र उत्पन्न हुआ, तो राज्य का स्वामी वही

चूंडा का राज्याधिकार छोड़ना

(१) मारवाड़ की ख्यात में रणमल का महाराणा मोकल के समय मेवाड़ में आना और जागीर पाना लिखा है (जि० १, पृ० ३३), जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि रणमल के मेवाड़ में रहते समय उसकी बहिन हंसबाई के साथ महाराणा लाखा का विवाह होना प्रसिद्ध है। महाराणा मोकल ने तो रणमल की सहायता कर उसको मंडोवर का राज्य दिलाया था।

होगा। महाराणा ने हंसबाई से विवाह किया, जिससे मोकल का जन्म हुआ[1]। महाराणा ने अन्तिम समय अपने बालक पुत्र मोकल की रक्षा का भार चूंडा पर छोड़ा, और उसकी अपूर्व पितृभक्ति की स्मृति के लिये यह नियम कर दिया कि अब से मेवाड़ के महाराणाओं की तरफ़ से जो पट्टे, परवाने आदि सनदें दी जावें या लिखी जावें, उनपर भाले का राज्यचिह्न चूंडा और उसके मुख्य वंशधर (सलूम्बर के रावत) करेंगे, जिसका पालन अब तक हो रहा है[2]।

---

(१) यह कथा भिन्न भिन्न इतिहासों में कुछ हेर-फेर के साथ लिखी मिलती है, परंतु चूंडा के राज्याधिकार छोड़ने पर महाराणा का विवाह रणमल की बहिन से होना तो सब में लिखा मिलता है।

(२) प्राचीन काल में हिंदुस्तान के भिन्न भिन्न राजाओं की सनदें संस्कृत में लिखी जाती थीं और उनके अंत में या ऊपर राजा के हस्ताक्षर होते थे; यही शैली मेवाड़ में भी रही। कदमाल गांव से मिला हुआ राजा विजयसिंह का वि० सं० ११६४ (?) का दानपत्र देखने में आया, जो संस्कृत में है। उसमें राजा के हस्ताक्षर तथा भाले का चिह्न, दोनों अंत में हैं। महाराणा हंमीर के संस्कृत दानपत्र की नकल वि० सं० १४०० से कुछ पीछे की एक मुक़द्दमे की मिसल में देखी गई, मूल ताम्रपत्र देखने को नहीं मिला। इन ताम्रपत्रों से निश्चित है कि महाराणा हंमीर तक तो राजकीय लिखावट संस्कृत थी और पीछे से किसी समय मेवाड़ी हुई। भाले का चिह्न पहले छोटा होता था (देखो ना० प्र० प; भा० १, पृ० ४४१ के पास कुंभा की सनद का फ़ोटो), जैसा कि उक्त महाराणा के आबू के शिलालेख और एक दानपत्र से पाया जाता है। पीछे से भाला बड़ा होने लगा और उसकी आकृति भी पलट गई। अनुमान होता है कि जब महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) ने 'हिन्दुसुरत्राण' बिरुद धारण किया, तब से हस्ताक्षर की शैली मिट गई और मुसलमानों का अनुकरण किया जाकर सनदों के ऊपर भाले के साथ 'सही' होना आरंभ हुआ हो। उक्त महाराणा के आबू पर देलवाड़े के मंदिर के वि० सं० १५०६ के शिलालेख पर 'भाला' और 'सही' दोनों हैं परंतु नांदिया गांव से मिले हुए वि० सं० १४६४ के एक ताम्रपत्र पर 'सही' नहीं है। पहले मेवाड़ के राजा सनदों पर हस्ताक्षर और भाला स्वयं करते थे। महाराणा मोकल के समय से भाले का चिह्न चूंडा या चूंडा के मुख्य वंशधर (सलूंबर के रावत) करने लगे। पीछे से उनकी तरफ़ का यह चिह्न उनकी आज्ञा से 'सहीवाले' (राजकीय सनद लिखनेवाले) करने लगे। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के, जिसने वि० सं० १७५५ से १७६७ तक राज्य किया, समय में शक्तावत शाखा के सरदारों ने महाराणा से यह निवेदन किया कि चूंडावतों की ओर से सनदों पर भाला होता है, तो हमारी तरफ़ से भी कोई निशान होना चाहिये। इसपर महाराणा ने आज्ञा दी कि सहीवालों को अपनी तरफ़ से भी कोई निशान बता दो, कि वह भी बना दिया जाय। इसपर शक्तावतों ने अंकुश का चिह्न बनाने को कहा। उस दिन से भाले के प्रारंभ का कुछ अंश छोड़कर भाले की छड़ से सटा एवं दाहिनी ओर झुका हुआ अंकुश का चिह्न भी होने लगा। महाराणा अपने हाथ से केवल 'सही' अब तक लिखते हैं।

बूंदी के इतिहास वंशप्रकाश में महाराणा हम्मीर की जीवित दशा में कुंवर खेतल (क्षेत्रसिंह) का हाड़ा लालसिंह के हाथ से मारे जाने और हम्मीर के पीछे लाखा के मेवाड़ की गद्दी पर बैठने के कल्पित वृत्तान्त के साथ एक कथा यह भी लिखी है—"राणा लाखण (लाखा) के गद्दी पर बैठते ही लोगों ने यह अर्ज़ की कि यदि बूंदी का राव वरसिंह मदद पर न होता, तो गैणोली के जागीरदार (लालसिंह) से क्या हो सकता था ? इसपर महाराणा ने प्रतिज्ञा की कि जब तक बूंदीवालों को न जीत लूंगा, तब तक भोजन न करूंगा। इसपर लोगों ने निवेदन किया कि यह बात कैसे हो सकती है कि बूंदी शीघ्र जीती जा सके। जब महाराणा ने उनका कथन स्वीकार न किया, तब उन्होंने कहा कि अभी तो मिट्टी की बूंदी बनाई जाय और उसमें थोड़ेसे आदमी रखकर उसे जीत लीजिये। इसके उत्तर में महाराणा ने कहा कि उसमें कोई हाड़ा राजपूत रखना चाहिये। उस समय हाड़ा कुंभकर्ण को, जो हालू (बम्बावदेवाले) का दूसरा पुत्र था और चन्द्रराज की दी हुई जागीर को छोड़कर महाराणा (हम्मीर) के पास आ रहा था, लोगों ने बनावटी बूंदी में रहने को तैयार किया और उसे यह समझा दिया कि जब महाराणा चढ़कर आवें, तब तुम शस्त्र छोड़ देना। इसके उत्तर में कुंभकर्ण ने कहा कि मैं हाड़ा हूं, अतएव बूंदी की रक्षा में त्रुटि न करूंगा। इस कथन को लोगों ने हँसी समझा और उसको थोड़ेसे लड़ाई के सामान के साथ उस बूंदी में रख दिया। उसके साथ ३०० राजपूत थे। जब महाराणा चढ़ आये, तब उसने अपने नौकरों से कहा कि राणाजी को छोड़कर जो कोई वार में आवे उसे मार डालो। अन्त में कुंभकर्ण अपने राजपूतों सहित लड़कर मारा गया। चन्द्रराज के पीछे उसका पुत्र धीरदेव बम्बावदे का स्वामी हुआ। राणा लाखण (लक्षसिंह, लाखा) ने धीरदेव को मारकर बम्बावदा छीन लिया और हालू के वंशजों के निर्वाह के लिये थोड़ी-सी भूमि छोड़ दी[1]"।

मिट्टी की बूंदी की कथा

वंशप्रकाश की यह सारी कथा वैसी ही कल्पित है, जैसा कि उसका यह कथन कि महाराणा हम्मीर के जीतेजी उसका ज्येष्ठ कुंवर क्षेत्रसिंह (खेता) मारा गया और उस(हंमीर)के पीछे उसका पौत्र लक्षसिंह (लाखा) चित्तोड़ के राज्य-सिंहा-

(१) वंशप्रकाश; पृ० ७८-८० ।

सन पर आरूढ़ हुआ। मैनाल के वि० सं० १४४६ (ई० स० १३८९) के शिलालेख से ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि वहां का हाड़ा महादेव महाराणा क्षेत्रसिंह (खेता) का सरदार होने के कारण अमीशाह (दिलावरख़ां गोरी) के साथ की उक्त महाराणा की लड़ाई में बड़ी वीरता से लड़ा था; वही हाड़ा महादेव महाराणा लाखा के समय वि० सं० १४४६ (ई० स० १३८९) तक तो जीवित और बम्बावदे का सामन्त था तथा उक्त संवत् के पीछे भी कुछ समय तक जीवित रहा हो। महाराणा लाखा की गद्दीनशीनी के समय अर्थात् वि० सं० १४३९ (ई० स० १३८२) में बम्बावदे का सामन्त चन्द्रराज नहीं किन्तु महादेव था, जो उक्त समय से सात वर्ष पीछे भी जीवित था, यह निश्चित है और महाराणा की सेना में रहकर अमीशाह के साथ लड़ने का अपने ही शिलालेख में वह गौरव के साथ उल्लेख करता है। हालू तो कभी बम्बावदे का स्वामी हुआ ही नहीं, न उसका पुत्र कुंभकर्ण हुआ और न वह महाराणा क्षेत्रसिंह की गद्दीनशीनी के समय विद्यमान था। ये सब नाम एवं मिट्टी की बूंदी की कथा भाटों ने इतिहास के अज्ञान में गढ़न्त की है। कूड़े-करकट के समान ऐसी कथा को इतिहास में स्थान देने का कारण केवल यही बतलाना है कि भाटों की पुस्तकें इतिहास के लिये कैसी निरुपयोगी हैं।

फ़िरिश्ता लिखता है—'हि० सन् ७९८ (ई० स० १३९६=वि० सं० १४५३) में मांडलगढ़ के राजपूत ऐसे बलवान हो गये कि उन्होंने अपने इलाक़े से मुसलमानों को निकाल दिया और ख़िराज देना भी बंद कर दिया। इसपर गुजरात के मुज़फ़्फ़रख़ां ने मांडलगढ़ पर चढ़ाई कर उसे घेर लिया, परंतु क़िला हाथ न आया। ऐसे समय दुर्भाग्य से क़िले में बीमारी फैल गई, जिससे राय दुर्गा ने अपने दूतों को सन्धि के प्रस्ताव के लिये भेजा। क़िले पर के बच्चों और औरतों के रोने की आवाज़ सुनकर उसको दया आ गई, जिससे वह बहुत-सा सोना और रत्न लेकर लौट गया''[1]।

फ़िरिश्ता और मांडलगढ़

उस समय मेवाड़ का स्वामी महाराणा लक्षसिंह था और मांडलगढ़ का

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ६। मुसलमान लेखकों की यह शैली है कि जहां मुसलमानों की हार होती है, वहां बहुधा मौन धारण कर लेते हैं अथवा लिख देते हैं कि ख़िराज़ हो जाने, बीमारी फैलने या नज़राना देने से सेना लौटा दी गई।

क़िला बम्बावदे के हाड़ों के अधीन था। यदि गुजरात का हाकिम मुज़फ़्फ़रख़ां (ज़फ़रख़ां) मांडलगढ़ पर चढ़ाई करता, तो मेवाड़ में प्रवेश कर चित्तोड़ के निकट होता हुआ मांडलगढ़ पहुंचता। ऐसी दशा में महाराणा लाखा (लक्ष-सिंह) से उसकी मुठभेड़ अवश्य होती, परंतु इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। फ़ारसी वर्णमाला की अपूर्णता के कारण स्थानों के नाम पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों में शुद्ध नहीं मिलते, जिससे उनमें स्थानों के नामों में बहुत कुछ गड़बड़ पाई जाती है। मण्डल (काठियावाड़ में), मांडलगढ़ (मेवाड़ में) और मांडू (माण्डवगढ़, मालवे में) के नामों में बहुत कुछ भ्रम हो जाता है। ख़ास गुजरात के फ़ारसी इतिहास मिराते-सिकन्दरी की तमाम हस्तलिखित प्रतियों में मुज़फ़्फ़रख़ां की उपर्युक्त चढ़ाई का मांडू[1] पर होना लिखा है, न कि मांडलगढ़ पर, अतएव फ़िरिश्ता का कथन संशयरहित नहीं है।

महाराणा की मृत्यु

भाटों की ख्यातों, टॉड राजस्थान और वीरविनोद में महाराणा का देहान्त वि० सं० १४५४ (ई० स० १३६७) में होना लिखा है, परन्तु जावर के माताजी के पुजारी के पास एक ताम्रपत्र, वि० सं० १४६२ माघ सुदि ११ गुरुवार का, महाराणा लाखा के नाम का है[2]। आबू पर अचलेश्वर के मन्दिर में खड़े हुए विशाल लोहे के त्रिशूल पर एक लेख खुदा है, जिसका आशय यह है कि यह त्रिशूल वि० सं० १४६८ में धाणेरा गांव में राणा लाखा के समय बना, और नाणा के ठाकुर मांडण और कुंवर भादा ने इसे अचलेश्वर को चढ़ाया[3]। कोट सोलंकियान (जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ ज़िले में) से एक शिलालेख मिला है, जिसका आशय यह है—'सं० १४७५ आषाढ सुदि ३ सोमवार के दिन राणा श्री लाखा के

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ७७।

(२) इस ताम्रपत्र की एक नकल हमारे देखने में आई, जिसमें सं० १४६२ माह सुदी ११ गुरुवार लिखा हुआ था, परंतु उक्त संवत् में माघ सुदि ११ को गुरुवार नहीं, किन्तु शनि-वार था। ऐसी दशा में उक्त ताम्रपत्र की सचाई पर विश्वास नहीं किया जा सकता। ऐसे ही मामूली आदमी की की हुई नकल की शुद्धता पर भी विश्वास नहीं होता। मूल ताम्रपत्र को देखकर उसकी जाँच करने का बहुत कुछ उद्योग किया गया, परंतु उसमें सफलता न हुई, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि वह ताम्रपत्र सच्चा है या जाली।

(३) मूल लेख से यह आशय उद्धृत किया गया है।

विजय-राज्य समय आसलपुर दुर्ग में श्रीपार्श्वनाथ चैत्य का जीर्णोद्धार हुआ"।

उपर्युक्त तीनों लेखों में से पहला (अर्थात् ताम्रलेख) तो ख़ास मेवाड़ का ही है और दूसरे तथा तीसरे का संबंध गोड़वाड़ से है। उनसे राणा लाखा का वि० सं० १४७५ तक तो जीवित रहना मानना पड़ता है। महाराणा लाखा के पुत्र मोकल का पहला शिलालेख वि० सं० १४७८ (ई० स० १४२१) पौष सुदि ६ का मिला है, अतएव महाराणा लाखा का स्वर्गवास वि० सं० १४७६ और १४७८ के बीच किसी वर्ष हुआ होगा।

ख्यातों आदि में महाराणा लाखा के पुत्रों के ८ या ९ नाम लिखे मिलते हैं, जो ये हैं—चूंडा[2], राघवदेव,[3] अज्जा,[4] दूल्हा,[5] डूंगर,[6] गजसिंह,[7] लूंणा,[8] मोकल और बाघसिंह।

महाराणा लाखा के पुत्र

मोकल

महाराणा लाखा का स्वर्गवास होने पर राठोड़ रणमल की बहिन हंसबाई सती होने को तैयार हुई और चूंडा से पूछा कि तुमने मेरे कुंवर मोकल के लिये कौनसी जागीर देना निश्चय किया है। इसपर चूंडा ने उत्तर दिया कि माता, मोकल तो मेवाड़ का स्वामी है, उसके लिये जागीर की बात ही कौनसी

---

(१) मुनि जिनविजय; प्राचीन जैनलेखसंग्रह; भा० २, लेख सं० ३७०, पृ० २२१। यह संवत् मेवाड़ का राजकीय (श्रावणादि) संवत् है, जो चैत्रादि १४७६ होता है। उक्त चैत्रादि संवत् में आषाढ़ सुदि ३ को सोमवार था।

(२) चूंडा के वंशज चूंडावत कहलाये। मेवाड़ में चूंडावत सरदारों के ठिकाने ये हैं—सलूम्बर, देवगढ़, बेगूं, आमेट, मेजा, भैंसरोड़, कुराबड़, आसींद, थाणा, भदेसर, बेमाली लूंणदा, थाणा, बम्बोरा, भगवानपुरा, लसाणी और संग्रामगढ़ आदि।

(३) राघवदेव छल से मारा गया और पूर्वज (पितृ) हुआ, ऐसा माना जाता है।

(४) अज्जा के पुत्र सारङ्गदेव से सारङ्गदेवोत शाखा चली; इस शाखा के सरदारों के ठिकाने कानोड़ और बाठरड़ा हैं।

(५) दूल्हा के वंशज दूल्हावत कहलाए, जिनके ठिकाने भाणपुर, सैंमरड़ा आदि हैं।

(६) डूंगर के वंशज भांडावत कहलाये।

(७) गजसिंह के वंशज गजसिंहोत हुए।

(८) लूंणा के वंशज लूंणावत (मालपुर, कथारा, खेड़ा आदि ठिकानोंवाले) हैं।



सत्यव्रत रावत चूंडा

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

है, मैं तो उसका नौकर हूं। इस समय आपका सती होना अनुचित है, क्योंकि महाराणा मोकल कम उम्र[1] हैं, अतएव आपको राजमाता बनकर राज्य का प्रबंध करना चाहिये। इस प्रकार चूंडा ने विशेष आग्रह करके राजमाता का सती होना रोक दिया। इसपर राजमाता ने चूंडा की पितृभक्ति और वचन की दृढ़ता देखकर उसकी बड़ी प्रशंसा की और राज्य का कुल काम उसके सुपुर्द कर दिया। चूंडा ने मोकल को राज्यसिंहासन पर बिठाकर[2] सबसे पहले नज़राना किया।

धन्य है चूंडा की पितृभक्ति। रघुकुल में या तो रामचन्द्र ने पितृभक्ति के कारण ऐसा ज्वलन्त उदाहरण दिखलाया, या चूंडा ने। इसी से चूंडा के वंश का अब तक बड़ा गौरव चला आता है।

चूंडा वीर प्रकृति का पुरुष होने के अतिरिक्त न्यायी और प्रजावत्सल भी था। वह तन मन से अपने छोटे भाई की सेवा करने लगा और प्रजा उससे बहुत प्रसन्न रही। स्वार्थी लोगों को चूंडा का ऐसा राज्य-प्रबन्ध देखकर ईर्ष्या हुई, क्योंकि उसके आगे उनका स्वार्थ सिद्ध नहीं होता था। राठोड़ रणमल भी चूंडा को अलग कर राजकार्य अपने हाथ में लेना चाहता था। इन स्वार्थी लोगों ने राजमाता के कान भरना शुरू किया और यहां तक कह दिया कि राज्य का सारा काम चूंडा के हाथ में है, जिससे वह मोकल को मारकर स्वयं महाराणा बनना चाहता है। ऐसी बात सुनकर राजमाता का मन विचलित हो गया और उसने पुत्र-वात्सल्य एवं स्त्री जाति की स्वाभाविक निर्बलता के कारण चूंडा को बुलाकर कहा, कि या तो तुम मेवाड़ छोड़ दो या तुम कहो जहां मैं अपने पुत्र को लेकर चली जाऊं। यह वचन सुनते ही सत्यव्रती चूंडा ने मेवाड़ का परित्याग करना निश्चय कर राजमाता से कहा कि आपकी आज्ञानुसार मैं तो मेवाड़ छोड़ता हूं। महाराणा और राज्य

चूंडा का मेवाड़-त्याग

(१) राज्याभिषेक के समय मोकल की अवस्था कितने वर्ष की थी, यह अनिश्चित है। ख्यातों में उसका पांच वर्ष का होना लिखा है, जो सम्भव नहीं। हमारे अनुमान से उस समय उसकी अवस्था कम से कम १२ वर्ष की होनी चाहिये।

(२) महाराणा लाखा के देहान्त और मोकल के राज्यभिषेक के संवत् का अब तक ठीक ठीक निर्णय नहीं हुआ। वि० सं० १४७६ (ई० स० १४१६) के आसपास मोकल का राज्याभिषेक होना अनुमान किया जा सकता है (देखो ऊपर पृष्ठ २८२)।

की रक्षा आप अच्छी तरह करना। ऐसा न हो कि राज्य नष्ट हो जाय। फिर अपने छोटे भाई राघवदेव पर महाराणा की रक्षा का भार छोड़कर वह अपने भाई अज्जा आदि सहित मांडू के सुलतान के पास चला गया, जिसने बड़े सम्मान के साथ उनको अपने यहां रक्खा और कई परगने जागीर में दिये।

चूंडा के चले जाने पर रणमल ने राज्य का सारा काम अपने हाथ में कर लिया और सैनिक विभाग में राठोड़ों को उच्च पद पर नियत करता रहा तथा उनको अच्छी अच्छी जागीरें देने लगा। महाराणा ने—अपने मामा का लिहाज़ होने से—उसके काम में किसी प्रकार हस्तक्षेप न किया।

राव चूंडा के मरने पर उसका छोटा पुत्र काना मंडोवर का स्वामी हुआ; काना का देहान्त होने पर उसका भाई सत्ता मण्डोवर का राव हुआ। वह

रणमल को मंडोर का राज्य दिलाना

शराब में मस्त रहता था और उसका छोटा भाई रणधीर राज्य का काम करता था। कुछ समय बाद सत्ता के पुत्र नरवद और रणधीर में परस्पर अनबन हो गई। इसपर रणधीर रणमल के पास पहुंचा और उसको मंडोवर लेने के लिये उद्यत किया; रणमल ने महाराणा की सेना लेकर मंडोवर पर चढ़ाई कर दी। इस लड़ाई में नरवद घायल हुआ और रणमल मंडोर का स्वामी हो गया। महाराणा मोकल ने सत्ता और नरवद, दोनों को अपने पास चित्तोड़ में बुला लिया और नरवद को एक लाख रुपये की कायलाणे की जागीर देकर अपना सरदार बनाया[1]।

दिल्ली के सुलतान मुहम्मद तुग़लक ने ज़फ़रख़ां को फ़रहतुल्मुल्क की जगह गुजरात का सूबेदार बनाया। फिर दिल्ली की सल्तनत की कमज़ोरी देखकर हि० स० ७९८ (वि० सं० १४५३=ई० स० १३९६) में वह

फ़ीरोज़ख़ां आदि को विजय करना और सांभर लेना

गुजरात का स्वतन्त्र सुलतान बन गया और अपना नाम मुज़फ़्फ़रशाह रक्खा। उसका पुत्र तातारख़ां उसको गद्दी से उतारकर स्वयं सुलतान हो गया और अपने चाचा शम्सख़ां दन्दानी को अपना वज़ीर बनाया, परन्तु थोड़े ही समय बाद मुज़फ़्फ़रशाह के इशारे से उसने तातारख़ां को शराब में ज़हर देकर मार डाला। इस सेवा के बदले में मुज़फ़्फ़रशाह ने शम्सख़ां

---

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३१२-१३। मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात; जि० १, पृ० ३२-३५।

को नागोर की जागीर दी। शम्सख़ां के पीछे उसका बेटा फ़ीरोज़ख़ां नागोर का स्वामी हुआ। उसकी छेड़छाड़ देखकर महाराणा मोकल ने नागोर पर चढ़ाई कर दी। वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८) के स्वयं राणा मोकल के चित्तोड़ के शिलालेख में लिखा है कि उक्त महाराणा ने उत्तर के मुसलमान नरपति पीरोज पर चढ़ाई कर लीलामात्र से युद्धक्षेत्र में उसके सारे सैन्य को नष्ट कर दिया[1]। इसी विजय का उल्लेख वि० सं० १४८५ के शृंगीऋषि के लेख[2] में और वि० सं० १५४५ की एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति[3] में भी मिलता है। फ़ारसी तवारीख़ों में फ़ीरोज़शाह के साथ की लड़ाई में महाराणा मोकल का हारना और ३००० आदमियों का मारा जाना लिखा है[4]। यह कथन प्रशस्तियों के समान समकालीन लेखकों का नहीं, किन्तु बहुत पिछले लेखकों का होने से विश्वास-योग्य नहीं है[5]।

वि० सं० १५१७ के कुंभलगढ़ के शिलालेख से पाया जाता है कि महाराणा ने सपादलक्ष[6] देश को बरबाद किया और जालंधरवालों[7] को कंपायमान किया।

---

(१) चित्तोड़ का शिलालेख; श्लोक ५१ (ए. इं; जि० २, पृ० ४१७)।

(२) *यस्याग्रे समभूत्पलायनपरः पेरोजखानः स्वयम्* .... । श्लोक १४।

(३) भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १२०, श्लोक ४४।

(४) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० १४८, टिप्पण ४।

(५) वीरविनोद में महाराणा की फ़ीरोज़ख़ां के साथ दो लड़ाइयां होना माना है। पहली लड़ाई नागोर के पास जोताई के मैदान में होना, ३००० राजपूतों का खेत रहना और महाराणा का हारना फ़ारसी तवारीख़ों के अनुसार लिखा है। दूसरी लड़ाई जावर मुकाम पर होना और उसमें महाराणा की विजय होना बतलाया है (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३१४-१५), परंतु वास्तव में महाराणा की फ़ीरोज़ख़ां के साथ एक ही लड़ाई हुई, जिसमें महाराणा की विजय हुई थी। अनुमान होता है कि कविराजा ने पहली लड़ाई का वर्णन फ़ारसी तवारीख़ों के आधार पर लिखा और दूसरी लड़ाई का शिलालेखों से; इसी से एक ही लड़ाई को दो भिन्न मानने का भ्रम हुआ हो।

(६) सांभर का इलाक़ा पहले सपादलक्ष नाम से प्रसिद्ध था। सपादलक्ष के विस्तृत वर्णन के लिये देखो 'राजपूताने के भिन्न भिन्न विभागों के प्राचीन नाम' शीर्षक मेरा लेख (ना. प्र. प; भा० ३, पृ० ११७-४०)।

(७) जालन्धर सामान्य रूप से त्रिगर्त (कांगड़ा, पंजाब में) प्रदेश का सूचक माना जाता है, परंतु संभव है कि यहां प्रशस्तिकार पंडित ने जालन्धर शब्द का प्रयोग जालोर के लिये किया हो तो आश्चर्य नहीं। पंडित लोग गांवों और शहरों के लौकिक नामों को

शाकंभरी[1] (सांभर) को छीनकर दिल्ली को अपने स्वामी के संबंध में संशय-युक्त कर दिया, और पीरोज तथा मुहम्मद को परास्त किया[2]।

मुहम्मद कौन था, इसका ठीक ठीक निर्णय नहीं हो सका। कर्नल टॉड ने उसको फ़ीरोज़ तुग़लक का पोता (मुहम्मदशाह का पुत्र महमूदशाह) मानकर अमीर तीमूर की चढ़ाई के समय उसका गुजरात की तरफ़ जाते हुए मेवाड़ में रायपुर के पास महाराणा मोकल से हारना माना है;[3] परंतु तीमूर ता० ८ रबि-उस्सानी हि० स० ८०१ (पौष सुदि ६ वि० सं० १४५५=ई० स० १३६८ ता० १८ दिसम्बर) को दिल्ली पहुंचा था, अतएव वह महाराणा मोकल का समकालीन नहीं हो सकता। शृङ्गीऋषि के वि० सं० १४८५ के शिलालेख में फ़ीरोज़शाह के भागने के कथन के साथ यह भी लिखा है कि पातसाह (सुलतान) अहमद भी रणखेत छोड़ कर भागा[4]। यह प्रशस्ति स्वयं महाराणा मोकल के समय की है, अतएव संभव है कि महाराणा गुजरात के सुलतान अहमदशाह (प्रथम) से भी जो उसका समकालीन था—लड़ा हो। कुंभलगढ़ की प्रशस्ति तैयार करनेवाले पंडित ने भ्रम से अहमद को महम्मद लिख दिया हो।

वि० सं० १५४५ की दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में लिखा है—"बलवान् पत्त-

---

संस्कृत के साँचे में ढालते समय उनके रूपों को बहुत कुछ तोड़ मरोड़ डालते हैं।

(१) राजपूताने के चौहान राजाओं की पहली राजधानी नागोर थी और दूसरी शाकंभरी हुई, जिसको अब सांभर कहते हैं।

(२) *आलोड्याशु सपादलक्षमखिलं जालंधरान् कंपयन्*
ढिल्लीं शंकितनायकां व्यरचयन्नादाय शाकंभरीं।
पीरोजं समहंमदं शरशतैरापात्य यः प्रोल्लसत्
कुंतव्रातनिपातदीर्णहृदयांस्तस्यावधीद्दंतिनः॥ २२१॥

कुंभलगढ़ का लेख (अप्रकाशित)।

कर्नल टॉड ने भी इस महाराणा के सांभर लेने का उल्लेख किया है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३३१)।

(३) वही; पृ० ३३१।

(४) *यस्याग्रे समभूत्पलायनपरः पेरोजखानः स्वयं*
पातसाहाहमदस्सहोपि समरे संत्यज्य को……॥ १४॥

शृंगीऋषि का लेख।

वाले, शत्रु की लाखों सेना को नष्ट करनेवाले, बड़े संग्रामों में विजय पानेवाले और दूतों के द्वारा दूर दूर की खबरें जाननेवाले मोकल ने जहाजपुर के युद्ध में विजय प्राप्त की[1]"। यह लड़ाई किसके साथ हुई, यह उक्त लेख से नहीं पाया जाता। उस समय जहाजपुर का गढ़ बम्बावदे के हाड़ों के हाथ में था और ख्यातों में लिखा है कि महाराणा मोकल ने हाड़ों से बम्बावदा छीन लिया, अतएव शायद यह लड़ाई बम्बावदे के हाड़ों के साथ हुई हो[2]।

जहाजपुर की विजय

इस महाराणा ने चित्तोड़ पर जलाशय सहित द्वारिकानाथ (विष्णु) का मंदिर बनवाया[3] और समिद्धेश्वर (समाधीश्वर, त्रिभुवननारायण) के मंदिर का जीर्णोद्धार[4] कराकर उसके खर्च के लिये धनपुर गांव भेट किया[5]। एकलिंगजी के मंदिर के चौतरफ़ का तीन द्वारवाला कोट बनवाया[6]; बाघेला वंश की अपनी राणी गौरांबिका की स्वर्गप्राप्ति के निमित्त शृंगीऋषि (ऋष्यशृङ्ग) के स्थान में वापी (कुण्ड)

महाराणा के पुण्य-कार्य

---

(१) दक्षिण द्वार की प्रशस्ति; श्लोक ४३ (भावनगर इन्स्क्रिपृशंस; पृ० ११०)।

(२) वीरविनोद में लिखा है—'इन महाराणा ने जहाजपुर मुक़ाम पर बादशाह फ़ीरोज़-शाह के साथ लड़ाई की, जिसमें बादशाह हारकर उत्तर की तरफ़ भागा'; परंतु फ़ीरोज़शाह नाम का कोई बादशाह (सुलतान) उक्त महाराणा का समकालीन नहीं था। एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के श्लोक ४४वाले पीरोज का संबंध नागोर के फ़ीरोज़ख़ां से ही है।

(३) चित्तोड़ का वि० सं० १४८५ का शिलालेख; श्लोक ६१–६३ (ए. इं; जि० २, पृ० ४१८–१९)।

(४) चित्तोड़ की उपर्युक्त प्रशस्ति इसी मंदिर के संबंध में खुदवाई गई है (वही; जि० २, पृ० ४१०–२१)।

(५) वही; जि० २, श्लोक ७३।

(६) येन स्फाटिकसच्छिलामय इव ख्यातो महीमंडले
प्राकारो रचितः सुधाधवलितो देवैकलिंग——।
······सत्कपाटविलसद्द्वारत्रयालंकृतः
कैलासं तु विहाय शंभुरकरोद्यत्राधिवासे मतिं ॥ १६ ॥

(शृंगीऋषि का शिलालेख)।

बनवाई[1] और अपने भाई बाघसिंह के नाम से बाघेला तालाब का निर्माण कराया[2]। विष्णु-मंदिर को सुवर्ण का गरुड़ और देवी के मंदिर को सर्वधातु का बना हुआ सिंह भेट किया[3]। इस महाराणा ने सोने और चांदी के २५ तुलादान किये[4],

---

(१) बाघेलान्वयदीपिकावितरणप्रख्यातहस्ता······

···ण···भूमिपालतनया पुष्पायुधप्रेयसी ।····॥ २२ ॥

गौरांबिकाया निजवल्लभायाः

सल्लोकसंप्राप्तिफलैकहेतोः ।

एषा पुरस्ता····विभांडसूनो–

र्व्वापी निबद्धा किल मोकलेन ॥ २४ ॥ (शृंगीऋषि का शिलालेख)।

भाटों की ख्यातों में महाराणा मोकल की राणियों के जो नाम दिये हैं, वे विश्वास-योग्य नहीं हैं, क्योंकि उनमें बाघेली गौराम्बिका का नाम ही नहीं है। वे नाम प्रामाणिक न होने से ही हमने उन्हें यहां स्थान नहीं दिया।

(२) अथ बाघेलावर्णनं ।

यदकारि मोकलनृपः सरोवरं लसदिंदिरानिलयराजिराजितं ।

उपगम्य भालनयनस्तदाशयं जलकेलये श्रयति नापरं पयः ॥ ३६ ॥

(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति)।

(३) पक्षिराजमपि चक्रपाणये

हेमनिर्मितमसौ दधौ नृपः ।···॥ २२५ ॥

यः सुधांशुमुकुटप्रियांगणे

वाहनं मृगपतिं मनोरमं ।

निर्मितं सकलधातुभक्तिभिः

पीठरक्षणविधाविव व्यधात् ॥ २२४ ॥

कुंभलगढ़ की प्रशस्ति ।

(४) यः पंचविंशतितुलाः समदाद्द्विजेभ्यो

हेम्नस्तथैव रजतस्य च फद्यकानां ।···॥ १५ ॥

(शृंगीऋषि का लेख)।

इस श्लोक में 'फद्यक' (पदिक) शब्द का प्रयोग हुआ है, जो चांदी के एक छोटे सिक्के का नाम है और जिसका मूल्य दो आने के करीब होता हो, ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि राजपूताने के कुछ अंशों में अब तक दो आने को 'फदिया' (फद्यक) कहते हैं।

जिनमें से एक सुवर्ण तुलादान पुष्कर[1] के आदिवराह[2] (वराह) के मंदिर में किया था। इसने बांधनवाड़ा (अजमेर ज़िले में) और रामां गांव (एकलिंगजी के निकट) एकलिंगजी के भोग के लिये भेट किये[3] और जो ब्राह्मण कृषक हो गये थे, उनके लिये सांग (छः अंगों सहित) वेद पढ़ाने की व्यवस्था की[4]।

हि० स० ८३६ (वि० सं० १४६०=ई० स० १४३३) में अहमदाबाद का सुलतान अहमदशाह (पहला) डूंगरपुर राज्य में होता हुआ जीलवाड़े की तरफ़ बढ़ा[5] और वहां के मंदिर तोड़ने लगा। यह ख़बर सुनते ही महाराणा ने उससे लड़ने के लिये प्रस्थान कर दिया। उस समय महाराणा खेता की पासवान (उपपत्नी) के पुत्र चाचा व मेरा भी साथ थे। एक दिन एक हाड़ा सरदार के इशारे से महाराणा ने एक वृक्ष की तरफ़ अंगुली करके उनसे पूछा कि इस वृक्ष का क्या नाम है। चाचा और मेरा

महाराणा की मृत्यु

(१) *कार्त्तिक्यामथ पूर्णिमावरतिथौ योदात्तुलां कांचनीं*
शास्त्रज्ञः प्रथमं.........................।
देवं पुष्करतीर्थसान्निध्यममुं नारायणं शाश्वतं
रूपेणादिवराहमुत्तमतरैः स्वर्णादिकैः पूजयन् ॥ १७ ॥

(शृंगीऋषि का शिलालेख)।

(२) बादशाह जहांगीर अपनी दिनचर्या की पुस्तक (तुज़ुके जहांगीरी) में लिखता है—'पुष्कर के तालाब के चौतरफ़ हिन्दुओं के नये और पुराने मंदिर हैं। राणा संकर (सगर) ने, जो राणा अमरसिंह का चाचा और मेरे बड़े सरदारों में से है, एक मंदिर एक लाख रुपये लगाकर बनवाया था। मैं उस मंदिर को देखने के लिये गया; उसमें श्याम पत्थर की वराह की मूर्ति थी, जिसको मैंने तुड़वाकर तालाब में डलवा दिया' (तुज़ुके-जहांगीरी का अलैग्ज़ैण्डर राजर्स-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० १, पृ० २५४)। पुष्कर का वराह का मंदिर शृंगीऋषि की प्रशस्ति के लिखे जाने के समय अर्थात् वि० सं० १४८५ से पूर्व विद्यमान था। ऐसी दशा में यही मानना होगा कि राणा सगर ने उक्त मंदिर का जीर्णोद्धार कराया होगा। वह मंदिर चौहानों के समय का बना हुआ होना चाहिये।

(३) दक्षिण द्वार की प्रशस्ति; श्लोक ४६ (भावनगर इन्स्क्रिपूशन्स; पृ० १२०)।

(४) *यो विप्रानमितान् हलं कलयतः कार्श्येन वृत्तेरलं*
वेदं सांगमपाठयत् कलिगलग्रस्ते धरित्रीतले।...॥२१७॥

(कुंभलगढ़ का शिलालेख)।

(५) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० १२०।

खातिन के पेट से थे और वृक्ष की जाति खाती ही पहिचानते हैं। महाराणा ने तो शुद्ध भाव से यह बात पूछी थी, परन्तु इसको अपमान समझकर चाचा और मेरा के कलेजे में आग लग गई। उन्होंने महाराणा को मारने का निश्चय कर महपा[1] (महीपाल) परमार आदि कई लोगों को अपने पक्ष में मिलाया और उनको साथ लेकर वे महाराणा के डेरे पर गये। महाराणा और उनके पासवाले उनका इरादा जानते ही उनसे भिड़ गये। दोनों पक्ष के कुछ आदमी मारे गये और महाराणा भी खेत रहे। यह घटना वि० सं० १४९० (ई० स० १४३३) में हुई[2]।

राणा मोकल के सात पुत्र—कुंभा,[3] खींवा[4] (क्षेमकर्ण), शिवा[5] (सुआ),

(१) देखो ऊपर पृ० २०१।

(२) कर्नल टॉड ने महाराणा मोकल के मारे जाने और महाराणा कुंभा के राज्याभिषेक का संवत् १४७५ (ई० स० १४१८) दिया है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३३३), जो अशुद्ध है। हम ऊपर बतला चुके हैं कि वि० सं० १४८९ में इस महाराणा ने समिद्धेश्वर के मंदिर का जीर्णोद्धार कराकर अपनी प्रशस्ति उसमें लगवाई थी। इसी तरह जोधपुर की ख्यात में महाराणा मोकल का वि० सं० १४९५ में मारा जाना लिखा है (मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात; पृ० ३५) वह भी विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि महाराणा कुंभकर्ण के समय के शिलालेख वि० सं० १४९१ से मिलते हैं—*संवत् १४९१ वर्षे कार्तिक सुदि २ सोमे राणाश्री-कुंभकर्णविजयराज्ये उपकेशज्ञातीय साह सहणा साह सारंगेन*······(यह शिलालेख उदयपुर राज्य के देलवाड़ा गांव में यति खेमसागर के पास रक्खा हुआ है)। *संवत् १४९२ वर्षे आषाढ़ सुदि ५ गुरौ श्रीमेदपाटदेशे श्रीदेवकुलपाटकपुरवरे श्रीकुंभकर्णराज्ये श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनचंद्रसूरिपट्टे श्रीजिनसागरसूरिणामुपदेशेन श्रीउकेशवंशीयनवलक्षशाखा-मंडन सा०श्रीरामदेवभार्यासाध्वी नीमेलादे*····(आवश्यकबृहद्वृत्ति; दूसरे खंड का अंत—जैनाचार्य विजयधर्मसूरि; 'देवकुलपाटक', पृ० २२)। मारवाड़ की ख्यात में वि० सं० १६०० से पूर्व की घटनाएं और बहुतेरे संवत कल्पित ही हैं।

(३) महाराणा का ज्येष्ठ पुत्र कुंभा सौभाग्यदेवी नामक राणी से उत्पन्न हुआ था—

श्रीकुंभकर्णोयमलंभिसाध्व्या[:]

सौभाग्यदेव्या[:] तनयस्त्रिशक्तिः ॥ २३५ ॥

(कुंभलगढ़ का शिलालेख)।

सौभाग्यदेवी का नाम भी भाटों की ख्यातों में नहीं मिलता।

(४) क्षेमकर्ण के वंश में प्रतापगढ़ (देवलिया) राज्य के स्वामी हैं।

(५) सुआ के सुआवत हुए।

महाराणा के पुत्र

सत्ता,[1] नाथसिंह,[2] वीरमदेव और राजधर—थे। उनमें से कुंभा (कुंभकर्ण) अपने पिता के राज्य का स्वामी हुआ।

महाराणा मोकल के समय के अब तक तीन शिलालेख प्राप्त हुए हैं, जिनमें से पहला जावर (मगरा ज़िले में) के जैन मंदिर के छवने पर खुदा हुआ वि० सं० १४७८ (ई० स० १४२१) पौष सुदि ६ का[3] और दूसरा एकलिंगजी से अनुमान ६ मील-दक्षिण पूर्व में शृंगीऋषि नामक स्थान की तिबारी में लगा हुआ वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८) श्रावण सुदि ५ का है[4]। यह लेख टूट गया है और इसका एक टुकड़ा खो गया है; इसकी रचना कविराज वाणीविलास योगीश्वर ने की और सूत्रधार हादा के पुत्र फना ने इसे खोदा। तीसरा लेख—चित्तोड़ के शिवमंदिर (समिद्धेश्वर) में लगा हुआ—वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२९) माघ सुदि ३ का है[5]। इसकी रचना दशपुर (दशोरा) ज्ञाति के भट्ट विष्णु के पुत्र एकनाथ ने की, शिल्पकार वीसल ने इसे लिखा और सूत्रधार मन्ना के पुत्र वीसा ने इसे खोदा।

महाराणा के शिलालेख

कुंभकर्ण (कुंभा)

महाराणा मोकल के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र कुंभकर्ण, जो लोगों में कुंभा नाम से प्रसिद्ध है, वि० सं० १४९० (ई० स० १४३३) में चित्तोड़ के राज्यसिंहासन पर बैठा।

---

(१) सत्ता के वंशज कीतावत कहलाये।

(२) नैणसी की ख्यात में राजधर और नाथसिंह के नाम नहीं हैं, उनके स्थान में अडू और गडू नाम दिये हैं। अडू के वंश में अडूओत और गडू के वंश में गडूओत होना भी लिखा है।

(३) *संवत् १४७८ वर्षे पौष शु० ६ राजाधिराजश्रीमोकलदेवविजयराज्ये प्राग्वाट सा० नाना भा० फनीसुत सा० उतन भा० लीखू······*

(जावर का लेख अप्रकाशित)।

(४) यह लेख अब तक अप्रकाशित है।

(५) ए. इं; जि० २, पृ० ४१०-२१। भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ९६-१००।

इसके बिरुद महाराजाधिराज, रायरायं (राजराज), राणेराय, महाराणा,[1] राजगुरु,[2] दानगुरु, शैलगुरु,[3] परमगुरु,[4] चापगुरु,[5] तोडरमल्ल,[6] अभिनवभरताचार्य[7] और 'हिन्दुसुरत्राण'[8] शिलालेखादि में मिलते हैं, जो उसका राजाओं का शिरोमणि, विद्वान्, दानी और महाप्रतापी होना सूचित करते हैं।

महाराणा कुंभा ने गद्दी पर बैठते ही सबसे पहले अपने पिता के मारनेवालों

---

(१) पहले चार बिरुद उक्त महाराणा के समय की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में दिये हुए हैं (॥२३२॥ *इति महाराजाधिराजमहाराणाश्रीमृगांकमोकलेन्द्रवर्णनं ॥ अथ महाराजाधिराजरायरायराणेरायमहाराणाश्रीकुंभकर्णवर्णनं*)।

(२) राजगुरु अर्थात् राजाओं को शिक्षा देनेवाला।

(३) पर्वतों का स्वामी। गीतगोविन्द की टीका में 'सेलगुरु' पाठ है, जिसका अर्थ 'सेल' (भाला) नामक शस्त्र का उपयोग सिखलानेवाला है।

(४) *योयं राजगुरुश्च दानगुरुरित्युर्व्यां प्रसिद्धश्च यो योसौ शैलगुरुर्गुरुश्च परमःप्रोद्दामभूमीभुजां* ।...............................॥ १४८ ॥

कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति—वि० सं० १७३५ की हस्तलिखित प्रति से। परमगुरु का अर्थ 'राजाओं का सबसे बड़ा गुरु' उक्त प्रशस्तिकार ने बतलाया है।

(५) चापगुरु=धनुर्विद्या का शिक्षक (गीतगोविन्द की टीका; पृ० १७४—निर्णयसागर-संस्करण)।

(६) तोडरमल्ल (तोडनमल्ल) के संबंध में यह लिखा मिलता है कि अश्वपति (हयेश), गजपति (हस्तीश), और नरपति (नरेश)—इन तीन बिरुदों को धारण करनेवाले राजाओं का बल तोड़ने में मल्ल के समान होने के कारण महीमहेन्द्र (पृथ्वी पर का इन्द्र) कुंभकर्ण तोडरमल्ल कहलाता था (*गजनरतुरगाधीशराजत्रितयतोडरमल्लेन*—गीतगोविन्द की टीका; पृ० १७४। *हयेशहस्तीशनरेशराजत्रयोल्लसत्तोडरमल्लमुख्यं। विजित्य तानाजिषु कुंभकर्णमहीमहेन्द्रो वि(बि)रुदं बिभर्ति ॥ १७७ ॥*—कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति की वि० सं० १७३५ की हस्तलिखित प्रति से)।

(७) यह बिरुद गीतगोविन्द की टीका (पृ० १७४) में मिलता है, और कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति (श्लोक १६७) में उसको 'नव्य(नवीन)भरत' कहा है।

(८) 'हिन्दुसुरत्राण' (हिन्दू सुलतान) का अर्थ हिंदू बादशाह (हिंदुपति पातशाह) है (*प्रबलपराक्रमाक्रांतढिल्लीमंडलगुर्जरत्रासुरत्राणदत्तातपत्रप्रथितहिंदुसुरत्राणबिरुदस्य*—राणपुर के जैन मंदिर का वि० सं० १४९६ का शिलालेख—भावनगर इन्स्क्रिप्शंस; पृ० ११४)।



महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण)

से बदला लेना निश्चय कर चाचा, मेरा आदि के छिपने की जगह का पता लगते ही उनको मारने के लिये सेना भेजने का प्रबन्ध किया।

महाराणा मोकल के मारे जाने का समाचार सुनकर मंडोवर के राव रणमल ने भी अपने सिर से पगड़ी उतारकर 'फैंटा' बांध लिया और यह प्रतिज्ञा की कि जब तक चाचा और मेरा मारे न जावेंगे, तब तक मैं सिर पर पगड़ी न बांधूंगा। चित्तोड़ आकर वह दरबार में उपस्थित हुआ और महाराणा को नज़राना[1] किया। फिर वहां से ५०० सवार अपने साथ लेकर चाचा और मेरा को मारने के लिये पाइकोटड़ा के पहाड़ों की ओर चला, जहां वे अपने साथियों और कुटुम्बियों सहित छिपे हुए थे। पहले मेवाड़ में रहते समय राव रणमल ने कभी एक 'गमेती' (भीलों का मुखिया) को मारा था, जिससे भील लोग रणमल के शत्रु बन गये थे और इसी से वे चाचा व मेरा की सहायता करने लगे थे। उनकी प्रबल सहायता के कारण रणमल उनको मारने में सफल न हो सका और ६ मास तक वहां पड़ा रहा; अन्त में एक दिन वह उन भीलों को अपने पक्ष में लाने के उद्देश्य से अकेला उसी गमेती की विधवा स्त्री के घर पर गया। उस विधवा ने उसको पहिचानने पर कहा कि तुमने अपराध तो बहुत बड़ा किया है, परंतु अब मेरे घर आ गये हो, इसलिये मैं तुम्हें कुछ नहीं कहती। यह कहकर उसने उसे अपने घर में बिठा दिया; इतने में उस विधवा के पांच लड़के बाहर से आये। उनको देखकर माता ने कहा कि यदि तुम्हारे घर अब रणमल आवे, तो क्या करोगे? उन्होंने उत्तर दिया कि यदि वह अपने घर पर आ जाय, तो हम उसे कुछ न कहेंगे। यह सुनकर माता ने अपने पुत्रों की बहुत प्रशंसा की और रणमल को भीतर से बाहर बुलाया। उस समय रणमल ने उस भीलनी को बहिन और भीलों को भाई कहा; इसपर भीलों ने पूछा, क्या चाहते हो? रणमल ने उनसे चाचा व मेरा की सहायता न करने का आग्रह किया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया और वे उसके सहायक बन गये। इस प्रकार भीलों को अपना सहायक बनाकर उनको साथ ले वह पहाड़ों में गया, जहां एक कोट नज़र आया, जिसमें चाचा व मेरा रहते थे। रणमल अपने राजपूतों और भीलों सहित

राव रणमल का मेवाड़ में आना

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३१८।

उसमें घुस गया। कुछ राजपूत तो चाचा, मेरा आदि को मारने के लिये गये और रणमल स्वयं महपा (पँवार) के घर पर पहुंचा और उसे बाहर बुलाया, परंतु वह तो स्त्री के भेष में पहले ही बाहर निकल गया था। जब रणमल ने उसे बाहर आने के लिये फिर कहा, तो भीतर से एक डोमनी बोली कि वह तो मेरे कपड़े पहनकर बाहर निकल गया है और मैं भीतर नंगी बैठी हूं। यह सुनकर रणमल वापस लौटा, इतने में उसके साथियों ने चाचा और मेरा तथा उनके बहुतसे पक्षकारों को मार डाला। फिर चाचा के पुत्र एका और महपा (पँवार) ने भागकर मांडू (मालवे) के सुलतान के यहां शरण ली[1]। इस प्रकार महाराणा ने अपने पिता के मारनेवालों से बदला लेकर अपनी क्रोधाग्नि शान्त की[2]।

फिर चाचा व मेरा के पक्षकार राजपूतों की लड़कियों को रणमल देलवाड़े में ले आया और उनको राठोड़ों के घर में डालने की आज्ञा दी। उस समय राघवदेव (महाराणा मोकल का भाई) भी वहां पहुंच गया। उन लड़कियों को राठोड़ों के घर में डालने का विचार ज्ञात होने पर वह बड़ा ही क्रुद्ध हुआ और उनको रणमल के डेरे से अपने डेरे में ले आया, जिससे रणमल और राघवदेव में परस्पर अनबन हो गई, जो दिन दिन बढ़ती गई। फिर रणमल ने महाराणा के सामने राघवदेव की बुराइयां करना आरंभ किया।

महाराणा के दरबार में रणमल का प्रभाव दिन दिन बढ़ता गया और वह अपने पक्ष के राठोड़ों को अच्छे अच्छे पदों पर नियुक्त करने लगा। चूंडा और अज्जा तो मांडू में थे और केवल राघवदेव महाराणा के पास था; उसको भी रणमल वहां से दूर करना चाहता था। उसके ऐसे बर्ताव से मेवाड़ के सरदारों को उसके विषय में सन्देह होने लगा, परंतु महाराणा का कृपापात्र होने से वे उसका कुछ न कर सकते थे।

रणमल का प्रभाव बढ़ना और राघवदेव का मारा जाना

---

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३११।

(२) असमसमरभूमीदारुणः कुंभकर्णः
करकलितकृपाणैर्वैरिवृन्दं निहत्य।
चलितरुधिरपूरोत्तालकल्लोलिनीभिः
शमयति पितृवैरोद्भूतरोषानलौघं ॥ १५० ॥
(कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति)।

एक दिन रणमल ने कपट कर सिरोपाव देने के बहाने से राघवदेव को महाराणा के सामने बुलवाया, परंतु सिरोपाव के अंगरखे की बाहों के दोनों मुंह सिये हुए थे; ज्यों ही वह अंगरखा पहनने लगा, त्यों ही उसके दोनों हाथ फँस गये। इतने में रणमल के संकेत के अनुसार उसके दो राजपूतों ने दोनों तरफ़ से उसपर कटार के वार किये और वह मारा गया[1]। अपनी महत्ता के कारण महाराणा ने उस समय तो कुछ न कहा, परंतु इस घटना से उनके चित्त में रणमल के प्रति संदेह का अंकुर अवश्य उत्पन्न हो गया।

महाराणा का आबू विजय करना

महाराणा के आबू छीनने का निश्चित कारण तो मालूम न हो सका, परंतु ऐसा माना जाता है कि महाराणा मोकल के मारे जाने पर सिरोही के स्वामी सैंसमल ने सिरोही की सीमा से मिले हुए मेवाड़ के कुछ गांव दबा लिये,[2] जिसपर महाराणा ने डोडिये नरसिंह की अध्यक्षता में फ़ौज भेजकर आबू और उसके निकट का कुछ प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। सिरोही राज्य में आबू, भूला, वसन्तगढ़ आदि स्थानों से महाराणा कुम्भा के शिलालेख मिले हैं, जिनसे जान पड़ता है कि उसने आबू के अतिरिक्त सिरोही राज्य का पूर्वी भाग भी, जो मेवाड़ की सीमा से मिला हुआ है, सिरोहीवालों से छीन लिया था।

सिरोही की ख्यात में यह लिखा है—"महाराणा कुंभा गुजरात के सुलतान की फ़ौज से हारकर महाराव लाखा की रज़ामन्दी से आबू पर आकर रहा था और सुलतान की फ़ौज के लौट जाने पर उससे आबू खाली करने को कहा गया, परंतु उसने कुछ न माना, जिसपर महाराव लाखा ने उससे लड़कर आबू वापस ले लिया और उस समय से प्रण किया कि भविष्य में किसी राजा को आबू पर न चढ़ने देंगे। वि० संवत् १८९३ (ई० स० १८३६) में जब मेवाड़ के महाराणा जवानसिंह ने आबू की यात्रा करनी चाही, उस समय मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल स्पीयर्स ने बीच में पड़कर उक्त महाराणा के लिये आबू पर जाने की मंज़ूरी दिलवाई; तब से राजा लोग फिर आबू पर जाने लगे[3]"। सिरोही की ख्यात का यह लेख हमारी राय में ज्यों-का-त्यों विश्वास-योग्य नहीं है, क्योंकि महाराणा

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३११।

(२) मेरा सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० १९५।

(३) वही; पृ० १९५-९६।

कुंभा ने देवड़ा सैंसमल के समय आबू आदि पर अपना अधिकार जमाया था, न कि देवड़ा लाखा के समय; और यह घटना वि० सं० १४६४ (ई० स० १४३७) के पहले किसी समय हुई थी[1]। उस समय तक गुजरात के सुलतान से महाराणा की लड़ाई होना भी पाया नहीं जाता, और शिलालेखों तथा फ़ारसी तवारीखों से भी यही ज्ञात होता है कि महाराणा कुंभा ने आबू का प्रदेश छीना था। 'मिराते सिकन्दरी' में लिखा है—"हि० सन् ८६० (वि० सं० १५१३=ई० स० १४५६) में सुलतान कुतुबुद्दीन ने नागोर की हार का बदला लेने की इच्छा से राणा के राज्य पर चढ़ाई की। मार्ग में सिरोही के राजा खेता[2] देवड़ा ने आकर सुलतान से कहा कि मेरे बाप दादों का निवास-स्थान—आबू का क़िला—राणा ने मुझसे छीन लिया है, वह मुझे वापस दिला दो। इसपर सुलतान ने मलिक शाबान इमादुल्मुल्क को राणा की सेना से क़िला छीनकर खेता (लाखा) देवड़ा के सुपुर्द करा देने को भेजा। मलिक तंग घाटियों के रास्ते से चला, परन्तु ऊपर

---

(१) नांदिया गांव (सिरोही राज्य में) से मिला हुआ महाराणा कुंभा का वि० सं० १४६४ (ई० स० १४३७) का ताम्रपत्र राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) में सुरक्षित है; इसमें अजाहरी (अजारी) परगने के चूरड़ी (चवरली) गांव में भूमि-दान करने का उल्लेख है, अतएव उसने आबू का प्रदेश उक्त संवत् से पूर्व अपने अधीन किया होगा—

श्रीराम 

स्वस्ति राणा श्रीकूंभा आदेशता ॥ दवे परभा जोग्यं अजाहरी मगणां चुरडीए ढीबडुं १ नाम गणासू पे(खे)त्र वडनां नाम गोलीयावउ । बाई श्रीपूरबाई नइ अनामि दीधउं............................ ॥.....संवत् १४९४ वर्षे आसाढ वदि ॥....................   (मूल ताम्रपत्र से)।

(२) हाथ की लिखी हुई 'मिराते सिकन्दरी' की प्रतियों में कहीं 'खेता' और कहीं 'कंथा' पाठ मिलता है; परंतु ये दोनों पाठ अशुद्ध हैं, क्योंकि सुलतान कुतुबुद्दीन के समय उक्त नाम का कोई राजा सिरोही में नहीं हुआ। फ़ारसी लिपि के दोषों के कारण उसमें लिखे हुए पुरुषों और स्थानों के नाम कुछ के कुछ पढ़े जाते हैं। इसी से एक प्रति से दूसरी प्रति लिखी जाने में नक़ल करनेवाले नामों को बहुत कुछ बिगाड़ डालते हैं। संभव है, ऐसा ही उक्त पुस्तक में लाखा के विषय में हुआ हो।

के शत्रुओं ने चौतरफ़ से हमला किया, जिससे वह (मलिक) हार गया और उसकी फ़ौज के बहुतसे सिपाही मारे गये[1]"। इससे स्पष्ट है कि महाराणा कुंभा को आबू खुशी से नहीं दिया गया था, किन्तु उसने बलपूर्वक छीना था। मेवाड़ के शिलालेखों तथा संस्कृत पुस्तकों से भी यही पाया जाता है[2]।

एक दिन महाराणा कुंभा ने राव रणमल से कहा कि हमारे पिता को मारनेवाले चाचा व मेरा को तो उचित दंड मिल गया, परन्तु महपा पँवार को उसके अपराध का दंड नहीं मिला। इसपर रणमल ने निवेदन किया कि एक पत्र सुलतान महमूद ख़िलजी (प्रथम) को लिखा जाय कि वह महपा को हमारे सुपुर्द कर दे। महाराणा ने इसी आशय का एक पत्र सुलतान को लिखा, जिसका उसने यह उत्तर दिया कि मैं अपने शरणागत को किसी तरह नहीं छोड़ सकता। यदि आपकी युद्ध करने की इच्छा है, तो मैं भी तैयार हूं। यह उत्तर पाकर महाराणा ने सुलतान पर चढ़ाई की तैयारी कर दी। उधर सुलतान महमूद भी लड़ाई की तैयारी करने लगा। उसने चूंडा और अज्जा से--जो हुशंग (अलपखां) के समय से ही मेवाड़ को छोड़ मांडू में जा रहे थे—कहा कि मेरे साथ तुम भी चलो और रणमल से अपने भाई राघवदेव को मारने का बदला लो, परन्तु वे यह कहकर, कि 'महाराणा से हमें कोई द्वेष नहीं है,' अपनी अपनी जागीर पर चले गये। इस चढ़ाई में महाराणा की सेना में १००००० सवार और १४०० हाथी होना प्रसिद्ध है (शायद इसमें अतिशयोक्ति हो)। उधर से सुलतान भी लड़ने को

मालवे के सुलतान पर चढ़ाई

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० १४६।

(२) *समग्रहीदर्बुदशैलराजं*
व्याधूय युद्धोद्धरधीरधुर्यान् ॥ ११ ॥
नीलाभ्रंलिहमर्बुदाचलमसौ प्रौढप्रतापांशुमा—
नारुह्याखिलसैनिकानसिबलेनाजावजेयोजयत् ।
निर्मायाचलदुर्गमस्य शिखरे तत्राकरोदालयं
कुंभस्वामिन उच्चशेखरशिखं प्रीत्यै रमाचक्रिणः ॥ १२ ॥

(चित्तोड़ के कीर्तिस्तंभ के शिलालेख में कुंभकर्ण का वर्णन—वि० सं० हस्तलिखित प्रति से)।

चला[1]; वि० सं० १४९४ (ई० स० १४३७) में[2] सारङ्गपुर के पास दोनों सेनाओं का मुक़ाबला होकर घोर युद्ध हुआ, जिसमें महमूद हारकर भागा। वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) के राणपुर के जैन मन्दिर के शिलालेख में सारङ्गपुर के विजय का उल्लेख-मात्र है,[3] परन्तु कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में लिखा है कि "कुंभकर्ण ने सारङ्गपुर में असंख्य मुसलमान स्त्रियों को क़ैद किया, महम्मद (महमूद) का महामद छुड़वाया, उस नगर को जलाया और अगस्त्य के समान अपने खड्गरूपी चुल्लू से वह मालवसमुद्र को पी गया[4]"।

वीरविनोद और ख्यातों आदि से यह भी पाया जाता है कि सुलतान भागकर मांडू के क़िले में जा रहा और उसने महपा को वहां से चले जाने को कहा, जिसपर वह

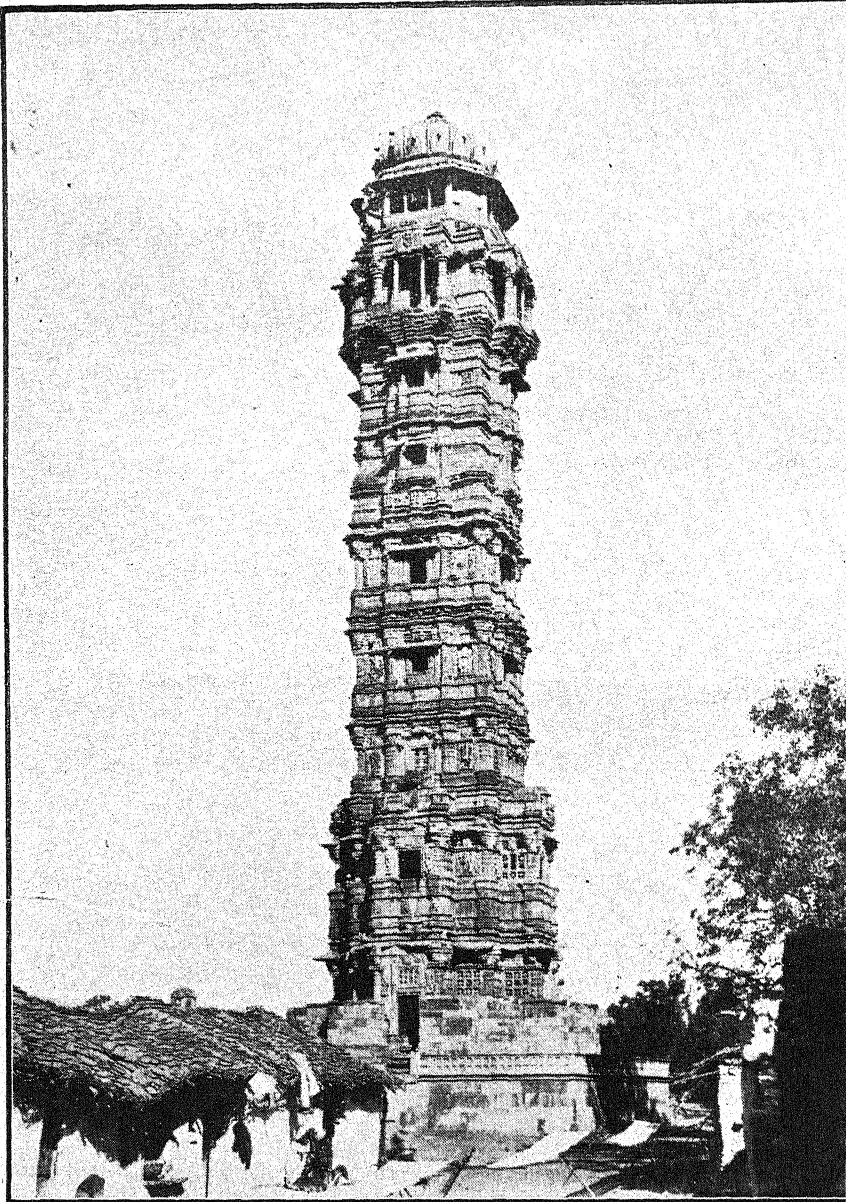
---

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३१९-२०।

(२) वीरविनोद में इस लड़ाई का वि० सं० १४८८ (ई० स० १४३१) में होना तथा उस समय राव रणमल का मेवाड़ में विद्यमान होना लिखा है, जो संभव नहीं, क्योंकि वि० सं० १४९५ में रणमल मारा गया था (जैसा कि आगे बतलाया जायगा) और सुलतान महमूद वि० सं० १४९३ (ई० स० १४३६) में अपने स्वामी मुहम्मद (ग़ज़नीख़ां) को मारकर मालवे का सुलतान बना था; अतएव इन दोनों संवतों के बीच यह लड़ाई होनी चाहिये।

(३) राणपुर के जैन मंदिर का शिलालेख, पंक्ति १७-१८। भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ११४।

(४) त्यक्त्वा दीना दीनदीनाधिनाथा
दीना बद्धा येन सारंगपुर्यां।
योषाः प्रौढाः पारसीकाधिपानां
ताः संख्यातुं नैव शक्नोति कोपि ॥ २६८ ॥
महोमदो युक्ततरो न चैषः
स्वस्वामिघातेन धनार्जनात्र(॰र्जनत्वात्)।
इतीव सारंगपुरं विलोड्य
महंमदं त्याजितवान् महंमदं ॥ २६९ ॥
.................................।
एतद्दग्धपुराग्निवाडवमसौ यन्मालवांभोनिधिं
क्षोणीशः पिबति स्म खड्गचुलुकैस्तस्मादगस्त्यः स्फुटम् ॥ २७० ॥
कुंभलगढ़ की प्रशस्ति—अप्रकाशित।



चित्तोड़ का कीर्तिस्तंभ ।

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग ।

गुजरात की तरफ़ चला गया। कुंभा ने मांडू का किला घेर लिया, अन्त में सुलतान की सेना भाग निकली और महाराणा महमूद को चित्तोड़ ले आया। फिर छः महीने तक कैद रक्खा और कुछ भी दंड न लेकर उसे छोड़ दिया[1]। अबुल-फ़ज़ल इस विजय का उल्लेख करता हुआ—अपने शत्रु से कुछ न लेकर इसके विपरीत उसे भेट देकर स्वतंत्र कर देने के लिये—कुंभा की बड़ी प्रशंसा करता है, परंतु कर्नल टॉड ने इसे हिन्दुओं की राजनैतिक अदूरदर्शिता, अहंकार, उदारता और कुलाभिमान बतलाया है,[2] जो ठीक ही है।

जहां इस प्रकार मुसलमानों की हार होती है, वहां मुसलमान लेखक उस घटना का उल्लेख तक नहीं करते। शम्सुद्दीन अल्तमश का महारावल जैत्रसिंह से और मालवे के पहले सुलतान अमीशाह (दिलावरख़ां गोरी) का महाराणा खेत्रसिंह से हारना निश्चित रूप से ऊपर बतलाया जा चुका है (पृ० ४५३-६८; और ५६२-६५), परन्तु उनका उल्लेख फ़िरिश्ता आदि किसी फ़ारसी ऐतिहासिक ने नहीं किया; संभव है, वैसा ही इसके संबंध में भी हुआ हो। इसका उल्लेख पिछले इतिहास-लेखकों ने अवश्य किया है, जिसकी पुष्टि शिलालेखादि से होती है। इस विजय के उपलक्ष्य में महाराणा ने अपने उपास्यदेव विष्णु के निमित्त चित्तोड़ पर विशाल कीर्तिस्तंभ बनवाया, जो अब तक विद्यमान है।

चूंडा का मेवाड़ में आना और रणमल का मारा जाना

हम ऊपर बतला चुके हैं कि महाराणा की कृपा से राठोड़ राव रणमल का अधिकार बढ़ता ही गया; परन्तु राघवदेव को मरवाने के बाद रणमल के विषय में लोगों का सन्देह दिन दिन बढ़ने लगा, तो भी अपने पिता का मामा होने के कारण प्रकट में महाराणा उसपर पूर्ववत् ही कृपा दिखलाते रहे। उच्च पदों पर राठोड़ों को नियत करने से लोग उसके विरुद्ध महाराणा के कान भरने लगे, जिसका भी कुछ प्रभाव उनपर अवश्य पड़ा। ऐसी स्थिति देखकर महपा पँवार और चाचा का पुत्र एका महाराणा के पैरों में आ गिरे और अपना अपराध क्षमा करने की प्रार्थना की। महाराणा ने दया करके उनका अपराध क्षमा कर दिया। यह बात रणमल को पसन्द न आई और जब उसने इस विषय में अर्ज़ की, तो महाराणा ने यही

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२०। मैणसी की ख्यात, पत्र १७८, पृ० २।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३३२।

उत्तर दिया कि हम 'शरणागत-रक्षक' कहलाते हैं और ये हमारी शरण में आये हैं, इसलिये हमने इनके अपराध क्षमा कर दिये[1]। इस उत्तर से रणमल के चित्त में कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया।

एक दिन महपा ने अवसर पाकर महाराणा से निवेदन किया कि राठोड़ों का दिल साफ़ नहीं है, शायद वे मेवाड़ का राज्य दबा बैठें, परन्तु महाराणा ने उसके कथन पर ध्यान न दिया। फिर एक दिन एका महाराणा के पैर दबा रहा था, उस समय उसकी आखों से आंसू टपककर उनके पैरों पर गिरे। जब महाराणा ने उसके रोने का कारण पूछा, तो उसने निवेदन किया कि मेवाड़ का राज्य सीसोदियों के हाथ से राठोड़ों के हाथ में गया समझिये,[2] इसी दुःख से आंसू टपक रहे हैं। महाराणा ने कहा, क्या तू रणमल को मारेगा? एका ने उत्तर दिया कि यदि दीवाण (महाराणा) का हाथ मेरी पीठ पर रहे, तो मारूंगा। महाराणा ने कहा—अच्छा मारना[3]। इस प्रकार की बातें सुनकर रणमल पर से कुंभा का विश्वास उठता गया।

महाराणा की माता सौभाग्यदेवी की भारमली नामक दासी, जिसके साथ राव रणमल का प्रेम था, एक दिन उसके पास कुछ देर से पहुंची। वह उस समय शराब के नशे में चूर हो रहा था और देर से आने का कारण पूछने पर भारमली ने कहा कि जिनकी मैं दासी हूं, उनसे जब छुट्टी मिली तब आई। इसपर नशे की हालत में रणमल ने उससे कह दिया कि तू अब किसी की नौकर न रहेगी, बल्कि जो चित्तोड़ में रहना चाहेंगे, वे तेरे नौकर बनकर रहेंगे[4]। भारमली ने यह सारा हाल सौभाग्यदेवी से कहा, जिससे वह व्यथित हो गई और अपने पुत्र को बुलाकर भारमली की कही हुई बात से उसे परिचित कर दिया। इस प्रकार भारमली के कथन से रणमल के प्रति कुंभा का संदेह और भी बढ़ गया। फिर उन दोनों ने सलाह की, परंतु जहां देखें वहां राठोड़ ही नज़र आते थे, इसलिये स्वामिभक्त चूंडा को बुलाने का निश्चय किया गया। महाराणा ने एक

---

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२०–२१।

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२१। नैणसी की ख्यात; पत्र १४८, पृ० १।

(३) नैणसी की ख्यात; पत्र १४८, पृ० १।

(४) वीरविनोद; भा० १, पृ० ३२१।

सवार भेजकर चूंडा को शीघ्र चित्तोड़ आने को लिखा, जिसपर चूंडा और अज्जा आदि चित्तोड़ में आ गये। इसपर रणमल ने राजमाता से अर्ज़ कराई कि चूंडा का चित्तोड़ में आना ठीक नहीं है, शायद राज्य के लिये उसका दिल बिगड़ जाय। इसके उत्तर में सौभाग्यदेवी ने कहलाया कि जिसने राज्य का अधिकारी होने पर भी राज्य अपने छोटे भाई को दे दिया, ऐसे सत्यव्रती को क़िले में न आने देने से तो निन्दा ही होगी। वह तो थोड़े-से आदमियों के साथ यहां आया है, जिससे कर भी क्या सकता है[1] ? इस उत्तर से रणमल चुप हो गया।

एक दिन रणमल के एक डोम ने उससे कहा कि मुझे सन्देह है कि महाराणा आपको मरवा डालेंगे। यह सुनकर रणमल को भी अपने प्राणों का भय होने लगा, जिससे उसने अपने पुत्रों—जोधा, कांधल आदि—को सचेत करते हुए यह कहकर तलहटी में भेज दिया कि—'यदि मैं बुलाऊं तो भी तुम क़िले पर मत आना'। एक दिन महाराणा ने रणमल से पूछा, आजकल जोधा कहां है ? वह यहां क्यों नहीं आता ? इसपर रणमल ने निवेदन किया कि वह तो तलहटी में रहता है और घोड़ों को चराता है। महाराणा ने कहा, उसे बुलाओ। उसने उत्तर दिया—अच्छा, बुलाऊंगा;[2] परन्तु वह इस बात को टालता ही रहा।

एक रात्रि को संकेत के अनुसार भारमली ने रणमल को खूब मद्य पिलाया और नशे में बेहोश होने पर पगड़ी से कसकर उसे पलंग के साथ बांध दिया। फिर महपा (महीपाल) पँवार दूसरे आदमियों को साथ लेकर भीतर घुसा और रणमल पर उसने शस्त्र-प्रहार किया। वृद्ध वीर रणमल भी प्रहार के लगते ही खाट सहित खड़ा हो गया और अपनी कटार से दो तीन आदमियों को मारकर स्वयं भी मारा गया[3]। यह समाचार पाते ही रणमल के उसी डोम ने क़िले की दीवार पर चढ़कर उच्च स्वर से यह दोहा गाया—

---

(१) वीरविनोद; भा० १, पृ० ३२१–२२।

(२) नैणसी की ख्यात; पत्र १४८।

(३) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२१–२२। मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र १४८–४०। राय साहिब हरबिलास सारड़ा; महाराणा कुंभा; पृ० २०–२५। टॉ; रा; जि० १, पृ० ३२७।

कर्नल टॉड ने महाराणा मोकल के समय में राव रणमल का मारा जाना लिखा है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि मोकल के मारे जाने पर तो रणमल दूसरी बार मेवाड़ में आया था।

चूंडा अजमल आविया, मांडू हूं धक आग।
जोधा रणमल मारिया, भाग सके तो भाग[1] ॥

ये शब्द सुनते ही तलहटीवालों ने जान लिया कि रणमल मारा गया। यह घटना वि० सं० १४६५ (ई० स० १४३८) में हुई[2]।

अपने पिता के मारे जाने के समाचार सुनते ही जोधा अपने भाइयों आदि सहित मारवाड़ की तरफ़ भागा। चूंडा ने विशाल सैन्य के साथ उसका पीछा किया और मार्ग में जगह जगह उससे मुठभेड़ होती रही। मारवाड़ की ख्यात से पाया जाता है कि जोधा के साथ ७०० सवार थे, किन्तु मारवाड़ में पहुंचने तक केवल सात ही बचने पाये थे[3]। चूंडा ने मंडोवर पर अधिकार कर लिया। फिर अपने पुत्रों—कुन्तल, मांजा, सूवा—तथा झाला विक्रमादित्य एवं हिंगलू आहाड़ा आदि को वहां के प्रबन्ध के लिये छोड़कर स्वयं चित्तोड़ लौट आया[4]। जोधा निराश होकर वर्तमान बीकानेर से १० कोस दूर काहुनी गांव में जा रहा[5]। मंडोवर के राज्य पर महाराणा का अधिकार हो गया और जगह जगह थाने क़ायम कर दिये गये।

एक साल तक जोधा काहुनी में ठहरकर फिर मंडोवर को लेने की कोशिश करने लगा। कई बार उसने मंडोवर पर हमले किये, परन्तु प्रत्येक बार हारकर ही भागना पड़ा। एक दिन मंडोवर से भागता हुआ, भूख से व्याकुल होकर, वह एक जाट के घर में आ ठहरा; फिर उस जाट की स्त्री ने थाली-भर गरम 'घाट' (मोठ और बाजरे की खिचड़ी) उसके सामने रख दी। जोधा ने तुरन्त थाली के बीच में हाथ डाला, जिससे वह जल गया। यह देखकर उस स्त्री ने कहा—तू तो जोधा जैसा ही

जोधा का मंडोवर पर अधिकार

(१) मेवाड़ में यह पूरा दोहा इसी तरह प्रसिद्ध है। ख्यातों में इसके अंतिम दो चरण ही मिलते हैं।

(२) मारवाड़ की ख्यात में वि० सं० १५०० के आषाढ में रणमल का मारा जाना लिखा है (पृ० ३६), जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि वि० सं० १४९६ के राणपुर के शिलालेख में महाराणा कुंभा के मंडोर (मंडोवर) विजय करने का स्पष्ट उल्लेख है।

(३) मारवाड़ की ख्यात; जिल्द १, पृ० ४०।

(४) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२२ तथा अन्य ख्यातें।

(५) मारवाड़ की ख्यात; जि० १, पृ० ४१।

निर्बुद्धि दीख पड़ता है। इसपर उसने पूछा—बाई, जोधा निर्बुद्धि कैसे है ? उसने उत्तर में कहा कि जोधा निकट की भूमि पर तो अपना अधिकार जमाता नहीं, और एकदम मंडोवर पर जाता है, जिससे अपने घोड़े और राजपूत मरवाकर उसे प्रत्येक बार निराश होकर भागना पड़ता है। इसी से उसको मैं निर्बुद्धि कहती हूं। तू भी वैसा ही है, क्योंकि किनारे से तो खाता नहीं और एकदम बीच की गरम घाट पर हाथ डालता है। इस घटना से शिक्षा पाकर जोधा ने मंडोवर लेना छोड़कर सबसे पहले अपने निकट की भूमि पर अधिकार करना ठाना,[1] क्योंकि पहले कई वर्षों तक उद्योग करने पर भी मंडोवर लेने में उसे सफलता न हुई थी।

जोधा की यह दशा देखकर महाराणा की दादी हंसबाई ने कुंभा को अपने पास बुलाकर कहा कि 'मेरे चित्तोड़ ब्याहे जाने में राठोड़ों का सब प्रकार से नुकसान ही हुआ है। रणमल ने मोकल को मारनेवाले चाचा और मेरा को मारा, मुसलमानों को हराया और मेवाड़ का नाम ऊंचा किया, परन्तु अन्त में वह भी मरवाया गया और आज उसी का पुत्र जोधा निस्सहाय होकर मरुभूमि में मारा मारा फिरता है, इसपर महाराणा ने कहा कि मैं प्रकट रूप से तो चूंडा के विरुद्ध जोधा को कोई सहायता नहीं दे सकता, क्योंकि रणमल ने उसके भाई राघवदेव को मरवाया है; आप जोधा को लिख दें कि वह मंडोवर पर अपना अधिकार कर ले, मैं इस बात पर नाराज़ न होऊंगा। तदनन्तर हंसबाई ने आशिया चारण डूला को जोधा के पास यह सन्देश देने के लिये भेजा। वह चारण उसे ढूंढता हुआ मारवाड़ की थलियों के गांव भाडंग और पड़ावे के जंगलों में पहुंचा, जहां जोधा अपने कुछ साथियों सहित बाजरे के 'सिट्टों' से अपनी क्षुधा शान्त कर रहा था। चारण ने उसे पहिचानकर हंसबाई का सन्देश सुनाया[2]। इस कथन से उसे कुछ आशा बँधी, परन्तु उसके पास घोड़े न होने से वह सेत्रावा के रावत लूंणा (लूणकरण) के पास गया और उससे कहा कि मेरे पास राजपूत तो हैं, परंतु घोड़े मर गये हैं। आपके पास ५०० घोड़े हैं, उनमें से २०० मुझे दे दो। उसने उत्तर दिया कि मैं राणा का आश्रित हूं, इसलिये यदि मैं तुम्हें घोड़े दूं, तो राणा मेरी जागीर छीन लेगा। इसपर वह लूंणा की

---

(१) मारवाड़ की ख्यात; जि० १, पृ० ४१–४२।

(२) वीरविनोद; भा० १, पृ० ३२३–२४।

स्त्री भटियाणी—अपनी मौसी—के पास गया। जोधा को उदास देखकर उसने उसकी उदासी का कारण पूछा, तो उसने कहा कि मैंने रावतजी से घोड़े मांगे, परन्तु उन्होंने नहीं दिये। इसपर भटियाणी ने कहा कि चिन्ता मत कर, मैं तुझे घोड़े दिलाती हूं। फिर उसने अपने पति को बुलाकर कहा कि अमुक आभूषण तोशाख़ाने में रख दो। जब रावत तोशाख़ाने में गया, तो उसकी स्त्री ने किवाड़ बन्द कर बाहर ताला लगा दिया और जोधा के साथ अपनी एक दासी भेजकर अस्तबलवालों से कहलाया कि रावतजी का हुक्म है कि जोधा को सामान सहित घोड़े दे दो। जोधा वहां से १४० घोड़े लेकर रवाना हो गया। कुछ देर बाद ताला खोलकर उसने अपने पति को बाहर निकाला। रावत अपनी ठकुराणी और कामदार से बहुत अप्रसन्न हुआ और घोड़ों के चरवादारों को पिटवाया, परन्तु गये हुए घोड़े पीछे न मिल सके[1]। हरबू (हरभम्) सांखला भी, जो एक सिद्ध (पीर) माना जाता था, जोधा का सहायक हो गया।

इस प्रकार घोड़े पाकर जोधा ने सबसे पहले चौकड़ी के थाने पर हमला किया, जहां भाटी वणवीर, राणा वीसलदेव, रावल दूदा आदि राणा के राजपूत अफ़सर मारे गये। वहां से कोसाणे को जीतकर जोधा मंडोवर पर पहुंचा, जहां लड़ाई हुई, जिसमें राणा के कई आदमी मारे गये और वि० सं० १५१० (ई० स० १४५३) में वहां पर जोधा का अधिकार हो गया इसके बाद जोधा ने सोजत पर अधिकार जमा लिया[2]। रणमल के मारे जाने के अनन्तर जोधा की स्थिति कैसी निर्बल रही, यह पाठकों को बतलाने के लिये ही हमने ऊपर का वृत्तान्त मारवाड़ की ख्यात आदि से उद्धृत किया है। उक्त ख्यात में यह भी लिखा है कि 'मंडोवर लेने की ख़बर पाकर राणा कुंभा बड़ी सेना के साथ जोधा पर चढ़ा और पाली में आ ठहरा। इधर से जोधा भी लड़ने को चला, परन्तु घोड़े दुबले और थोड़े होने से ५००० बैल गाड़ियों में २०००० राठोड़ों को बिठलाकर वह पाली की तरफ़ रवाना हुआ। जोधा के नक्कारे की आवाज़ सुनते ही राणा अपने सैन्य सहित बिना लड़े ही भाग गया। फिर जोधा ने मेवाड़ पर हमला कर चित्तोड़ के किवाड़ जला दिये, जिसपर राणा ने आपस में समझौता करके

(१) मारवाड़ की ख्यात; जि० १, पृ० ४२-४३।

(२) वहीं; पृ० ४३-४४।

जोधा को सोजत दिया और दोनों राज्यों के बीच की सीमा नियत कर दी"[1]। यह कथन आत्मश्लाघा, खुशामद एवं अतिशयोक्ति से ओतप्रोत है। कहां तो महाराणा कुंभा—जिसने मालवे और गुजरात के सुलतानों को कई बार परास्त किया था; जिसने दिल्ली के सुलतान का कुछ प्रदेश छीन लिया था; जिसने राजपूताने का अधिकांश तथा मालवे एवं गुजरात के राज्यों का कितनाएक अंश अपने राज्य में मिला लिया था, और जो अपने समय का सबसे प्रबल हिन्दू राजा था—और कहां एक छोटेसे इलाके का स्वामी जोधा, जिसने कुंभा के इशारे से ही मंडोवर लिया था। राजपूताने के राज्यों की ख्यातों में आत्मश्लाघा-पूर्ण ऐसी झूठी बातें भरी पड़ी हैं, इसी से हम उनको प्राचीन इतिहास के लिये बहुधा निरुपयोगी समझते हैं। महाराणा ने दूसरी बार मारवाड़ पर चढ़ाई की ही नहीं। पीछे से जोधा ने अपनी पुत्री शृङ्गारदेवी का विवाह महाराणा कुंभा के पुत्र रायमल के साथ किया, जिससे अनुमान होता है कि जोधा ने मेवाड़वालों के साथ का वैर अपनी पुत्री ब्याहकर मिटाया हो, जैसी कि राजपूतों में प्राचीन प्रथा है। मारवाड़ की ख्यात में न तो इस विवाह का उल्लेख है, और न जोधा की पुत्री शृंगारदेवी का नाम मिलता है, जिसका कारण यही है कि वह ख्यात वि० सं० १७०० से भी पीछे की बनी हुई होने से उसमें पुराना वृत्तान्त भाटों की ख्यातों या सुनी-सुनाई बातों के आधार पर लिखा गया है। शृंगारदेवी ने चित्तोड़ से अनुमान १२ मील उत्तर के घोसुण्डी गांव में वि० सं० १५६१ में एक बावड़ी बनवाई, जिसकी संस्कृत प्रशस्ति में—जो अब तक विद्यमान है—उसका जोधा की पुत्री होने तथा रायमल के साथ विवाह आदि का विस्तृत वृत्तान्त है[2]।

बूंदी को विजय करना

वि० सं० १४९६ के राणपुर के जैन मन्दिरवाले लेख में[3] महाराणा के बूंदी विजय करने का उल्लेख है और यही बात कुंभलगढ़ की वि० सं० १५१७ की प्रशस्ति में[4] भी मिलती है, जिससे निश्चित है कि वि० सं० १४९६ अथवा उससे कुछ पूर्व महाराणा कुंभा ने

(१) मारवाड़ की ख्यात; जि० १, पृ० ४४–४५।

(२) बंगाल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल; जि० ५५, भाग १, पृ० ७९–८२।

(३) राणपुर के शिलालेख का अवतरण आगे पृ० ६०८, टिप्पण ६ में दिया गया है।

(४) *जित्वा देशमनेकदुर्गविषमं हाडावटीं हेलया*

तन्नाथान् करदान्विधाय च जयस्तंभानुदस्तंभयत्।

बून्दी को जीत लिया था। इतिहास के अन्धकार में बूंदी के भाटों की ख्यातों के आधार पर बने हुए वंशप्रकाश में इस सम्बन्ध में एक लम्बी चौड़ी गढ़ंत कथा लिखी है, जिसका आशय नीचे लिखा जाता है—

"जब हाड़ों ने छल से अमरगढ़ के क़िले पर कब्ज़ा कर लिया, तो महाराणा ने बूंदी पर चढ़ाई कर दी। उस समय राणी ने यह पूछा कि आप कब तक लौट आवेंगे, इसपर महाराणा ने कहा कि हाड़ों को मारकर श्रावण सुदि ३ के पहले आजाऊंगा। तब राणी ने कहा जो आप 'तीज' तक न आये, तो आपका परलोकवास हुआ समझकर मैं चिता में जल मरूंगी। यह सुनकर महाराणा ने तीज पर लौट आने का वचन दिया। फिर जाकर अमरगढ़ हाड़ों से छीना और बूंदी को घेर लिया। कई दिनों तक लड़ाई होती रही; जब श्रावण की तीज निकट आई, तब महाराणा ने अपनी फ़ौज के सरदारों से कहा कि हम तो प्रतिज्ञा के अनुसार चित्तोड़ जावेंगे। इसपर सरदारों ने अर्ज़ की कि आप पधारते हैं, तो अपनी पगड़ी यहां छोड़ जावें; हम उसको मुजरा कर लड़ाई पर जाया करेंगे। महाराणा ने वहां अपनी पगड़ी रखकर चित्तोड़ को प्रस्थान कर दिया। जब यह खबर बूंदीवालों को मिली, तब सारण और सांडा ने यह विचार किया कि जैसे बने वैसे महाराणा की पगड़ी छीन लें। यह विचार कर रात के वक्त उन्होंने मेवाड़ की फ़ौज पर धावा किया, उस समय मेवाड़वाले, जो अचेत पड़े हुए थे, भाग निकले और महाराणा की पगड़ी गोहिल जाति के राजपूत हरिसिंह के, जो बूंदी के सरदारों में से था, हाथ आ गई। उसको लेकर बूंदी के सरदार तो क़िले में दाखिल हो गये और मेवाड़ की फ़ौज ने कई दिनों में यह खबर महाराणा के पास पहुंचाई, जिससे वे शर्मिन्दगी के मारे रणवास के बाहर भी न निकले और दो महीने पीछे स्वर्ग को सिधारे[1]"।

यह सारी कथा ऐतिहासिक नहीं, किंतु आत्मश्लाघा से भरी हुई और वैसी

दुर्गं गोपुरमत्र षट्पुरमपि प्रौढां च वृंदावतीं
श्रीमन्मंडलदुर्गमुच्चविलसच्छालां विशालां पुरीं ॥ २६४ ॥

(वि० सं० १५१७ का कुंभलगढ़ का शिलालेख)।

इस श्लोक में 'वृन्दावती' बूंदी का सूचक है।

(१) वंशप्रकाश; पृ० ८९-९०।

ही कल्पित है, जैसी कि उसी पुस्तक से पहले उद्धृत की हुई महाराणा हंमीर की जीवित दशा में कुंवर क्षेत्रसिंह के गैणौली में मारे जाने तथा मिट्टी की बूंदी की कथाएं हैं। महाराणा कुंभकर्ण ने वि० सं० १४९६ में अथवा उससे कुछ पूर्व बूंदी विजय कर ली थी। महाराणा का देहान्त बूंदी की चढ़ाई से दो मास पीछे नहीं, किन्तु उन्नीस से भी अधिक वर्ष पीछे वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में हुआ था; और वह भी लज्जा के मारे रणवास में नहीं, किन्तु अपने ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह (ऊदा) के हाथ से मारे जाने से हुआ था। कुंभकर्ण ने सारा हाड़ोती देश विजय कर वि० सं० १५१७ के पूर्व ही अपने राज्य में मिला लिया था, जैसा कि आगे बतलाया जायगा। यह महाराणा अपने समय के सबसे प्रबल हिंदू राजा थे और बूंदीवाले केवल एक छोटे से प्रदेश के स्वामी एवं मेवाड़ के सरदार थे।

वि० सं० १४९६ तक का महाराणा का वृत्तान्त

वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) में राणपुर (जोधपुर राज्य में) का प्रसिद्ध जैन मन्दिर बना, जिसके शिलालेख में महाराणा कुंभकर्ण के राज्य के पहले सात वर्षों का वृत्तान्त नीचे लिखे अनुसार मिलता है—

"अपने कुलरूपी कानन (वन) के सिंह राणा कुंभकर्ण ने सारंगपुर,[1] नागपुर[2] (नागोर), गागरण[3] (गागरौन), नराणक,[4] अजयमेरु,[5] मंडोर,[6] मंडलकर,[7]

(१) सारंगपुर मालवे में है। यहां महाराणा कुंभकर्ण ने मालवे (मांडू) के सुलतान महमूदशाह ख़िलजी (प्रथम) को परास्त किया था, जिसका विस्तृत वर्णन ऊपर (पृ० ५९७-९९) लिखा जा चुका है।

(२) नागपुर (नागोर) जोधपुर राज्य में है। वि० सं० १४९६ या उससे पूर्व उक्त नगर के विजय का वृत्तान्त अन्यत्र कहीं नहीं मिला, परंतु यह युद्ध फ़ीरोज़ख़ां के साथ होना चाहिये।

(३) गागरौन कोटा राज्य में है।

(४) नराणक (नराणा) जयपुर राज्य में है। इस समय यह दादूपंथी साधुओं का मुख्य स्थान है।

(५) अजयमेरु=अजमेर। महाराणा कुंभा के राज्य के प्रारंभकाल में यह क़िला मुसलमानों के अधिकार में था। युद्ध के लिये महत्त्व का स्थान होने से महाराणा ने इसे मुसलमानों से छीनकर अपने राज्य में मिला लिया था।

(६) मंडोर (मंडोवर) के विजय का वृत्तान्त ऊपर (पृ० ६०२) लिखा जा चुका है।

(७) मंडलकर (मांडलगढ़) पहले बम्बावदे के हाड़ों के अधिकार में था। महाराणा कुंभा ने इसे उनसे छीनकर अपने राज्य में मिलाया था।

बूंदी,[1] खाटू,[2] चाटसू[3] आदि सुदृढ़ और विषम किलों को लीलामात्र से विजय किया, अपने भुजबल से अनेक उत्तम हाथियों को प्राप्त किया, और म्लेच्छ मही-पाल(सुलतान)-रूपी सर्पों का गरुड़ के समान दलन किया था। प्रचण्ड भुजदण्ड से जीते हुए अनेक राजा उसके चरणों में सिर झुकाते थे। प्रबल पराक्रम के साथ ढिल्ली (दिल्ली)[4] और गूर्जरत्रा (गुजरात)[5] के राज्यों की भूमि पर आक्रमण करने के कारण वहां के सुलतानों ने छत्र भेट कर उसे 'हिन्दु-सुरत्राण' का बिरुद प्रदान किया था। वह सुवर्णसत्र (दान, यज्ञ) का आगार (निवासस्थान), छः शास्त्रों में कहे हुए धर्म का आधार, चतुरंगिणी सेनारूपी नदियों के लिये समुद्र था और कीर्ति एवं धर्म के साथ प्रजा का पालन करने और सत्य आदि गुणों के साथ कर्म करने में रामचन्द्र और युधिष्ठिर का अनुकरण करता था और सब राजाओं का सार्वभौम (सम्राट्) था[6]"।

इस लेख से यह पाया जाता है कि वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) तक महाराणा कुंभा ने अपने भुजबल से ऊपर लिखे हुए अनेक क़िले नगर आदि

(१) बूंदी के विजय का वृत्तान्त ऊपर (पृ० ६०२–७) लिखा जा चुका है।

(२) राजपूताने में खाटू नाम के तीन स्थान हैं, दो (बड़ी खाटू और छोटी खाटू) जोधपुर राज्य में और एक जयपुर राज्य में। राणपुर के लेख का संबंध संभवतः जयपुर राज्य के खाटू नगर से हो।

(३) चाटसू (चाकसू) जयपुर राज्य में।

(४) उस समय दिल्ली का सुलतान मुहम्मदशाह (सैयद) था।

(५) गुजरात के सुलतान से अभिप्राय अहमदशाह (प्रथम) से है।

(६) *कुलकाननपञ्चाननस्य। विषमतमाभंगसारंगपुरनागपुरगागरणनराणकाऽजयमेरुमंडोरमंडलकरबूंदीखाटूचाटसूजानादिनानामहादुर्गलीलामात्रग्रहणप्रमाणितजितकाशित्वाभिमानस्य। निजभुजोर्जितसमुपार्जितानेकभद्रगजेन्द्रस्य। म्लेच्छमहीपालव्यालचक्रवालविदलनविहंगमेन्द्रस्य। प्रचण्डदोर्दण्डखण्डिताभिनिवेशनानादेशनरेशभालमालालालितपादारविंदस्य। अस्खलितललितलक्ष्मीविलासगोविंदस्य।............ प्रबलपराक्रमाक्रान्तढिल्लीमंडलगूर्जरत्रासुरत्राणदत्तातपत्रप्रथितहिंदुसुरत्राणबिरुदस्य सुवर्णसत्रागारस्य षड्दर्शनधर्माधारस्य चतुरंगवाहिनीवाहिनीपारावारस्य कीर्तिधर्मप्रजापालनसत्त्वादिगुणक्रियमाणश्रीरामयुधिष्ठिरादिनरेश्वरानुकारस्य राणाश्रीकुंभकर्णसर्वोर्वीपतिसार्वभौमस्य......* (एन्युअल् रिपोर्ट ऑफ़ दी आर्कियालाजिकल् सर्वे ऑफ़ इंडिया; ई० स० १९०७–८, पृ० २१४–१५)।

जीत लिये थे; मुसलमान सुलतानों पर भी उसका आतङ्क जम गया था और वह धर्मानुसार प्रजा का पालन कर रहा था।

महाराणा मोकल के मारे जाने के बाद हाड़ौती के हाड़ों (चौहानों) ने स्वतन्त्र होने का उद्योग किया, जिसपर महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) ने हाड़ौती पर चढ़ाई कर दी। इस विषय में कुंभलगढ़ के वि० सं० १५१७ के शिलालेख में लिखा है कि बबावदा[1] (बम्बावदा) तथा मण्डलकर[2] (मांडलगढ़) को महाराणा ने विजय किया; हाड़ावटी[3] (हाड़ौती) को जीतकर वहां के राजाओं को करद (ख़िराजगुज़ार) बनाया और षट्पुर (खटकड़) तथा वृन्दावती (बूंदी) को जीत लिया।

हाड़ौती को विजय करना

मेवाड़ के पूर्वी हिस्से के ऊपर लिखे हुए स्थान महाराणा ने किस संवत् में अपने अधीन किये, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। वि० सं० १५१७ के कुंभलगढ़ के शिलालेख में उनके विजय का उल्लेख मिलता है, अतएव यह तो निश्चित है कि उक्त संवत् से पूर्व ये विजय किये गये होंगे। वि० सं० १४९६ के राणपुर के शिलालेख में मांडलगढ़, बूंदी और गागरौन की विजय का उल्लेख है और बाकी के स्थान उसी प्रदेश में हैं, अतएव मांडलगढ़ से लेकर गागरौन तक का सारा प्रदेश एक ही चढ़ाई में—वि० सं० १४९६ में—या उससे पूर्व महाराणा ने लिया हो, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। मांडलगढ़ और बम्बावदा उक्त महाराणा के समय से लगाकर अब तक मेवाड़ के अन्तर्गत हैं। षट्पुर (खटकड़) इस समय बूंदी के और गागरौन कोटा राज्य के अधीन है।

सुलतान महमूदशाह ख़िलजी अपनी पहले की हार और बदनामी का बदला लेने के लिये मेवाड़ पर चढ़ाई कर कुंभलगढ़ की तरफ़ गया। फ़िरिश्ता का कथन है कि "हि० स० ८४६ (वि० सं० १५०० =ई० स० १४४३) में सुलतान महमूद कुम्भलगढ़ के

मालवे के सुलतान के साथ की लड़ाइयां

(१) कुंभकर्णनृपतिर्बबावदोद्धूलनोद्धतभुजो विराजते ॥ २६२ ॥
कुंभलगढ़ का शिलालेख (अप्रकाशित)।

(२) दीर्घोदोलितबाहुदंडविलसत्कोदंडदंडोल्लस—
द्बाणास्तान्विरचय्य मंडलकरं दुर्गं क्षणेनाजयत् ॥ २६३ ॥ (वही)।

(३) हाड़ावटी (हाड़ौती), षट्पुर (खटकड़) और वृन्दावती (बूंदी) के मूल अवतरण के लिये देखो ऊपर पृ० ६०५, टि० ४, श्लोक २६४।

निकट पहुंचा। क़िले के दरवाज़े के नीचे (केलवाड़ा गांव के) एक विशाल मन्दिर (बाण माता का) में, जो कोट के कारण सुरक्षित था, महाराणा का बेणीराय (? दीपसिंह) नामक एक सरदार रहता था और उसी में लड़ाई का सामान भी रक्खा जाता था। सुलतान ने उस मन्दिर पर—चाहे जितनी हानि क्यों न हो—अधिकार करना चाहा और स्वयं सेना सहित लड़ने चला। बड़ा भारी नुकसान उठाकर उसने उसे ले लिया; मन्दिर में लकड़ियां भरकर उनमें आग लगा दी गई और अग्नि से तप्त मूर्तियों पर ठंडा पानी डालने से उनके टुकड़े टुकड़े हो गये, जो सेना के साथ के कसाइयों को मांस तोलने के लिये दिये गये और एक मींढे (? नन्दी) की मूर्ति का चूना पकवा-कर राजपूतों को पान में खिलवाया। सुलतान ने उस गढ़ी को विजय कर उसके लिये ईश्वर को बड़ा धन्यवाद दिया, क्योंकि बहुत दिनों तक घेरने पर भी गुजरात के सुलतान उसे न ले सके थे। यहां से सुलतान चित्तोड़ की तरफ़ चला और दुर्ग के नीचे के हिस्से को विजय किया, जिससे राणा क़िले में चला गया। वर्षा के दिन निकट आने के कारण सुलतान ने एक ऊंचे स्थान पर अपना डेरा डालने और वर्षा के बाद क़िला फ़तह करने का विचार किया। महाराणा कुंभा ने शुक्रवार ता० २५ ज़िलहिज्ज हि० स० ८४६ (वि० सं० १५०० ज्येष्ठ वदि ११=ता० २६ अप्रेल ई० स० १४४३) को बारह हज़ार सवार और छः हज़ार पैदल सेना सहित सुलतान पर धावा किया, परंतु उसमें निष्फलता हुई। दूसरी रात को सुलतान ने राणा की सेना पर आक्रमण किया, जिसमें बहुतसे राजपूत मारे गये तथा बहुत कुछ माल हाथ लगा और राणा क़िले में चला गया। दूसरे साल चित्तोड़ का क़िला फ़तह करने का विचार कर सुलतान वहां से मांडू को लौटा और बिना सताये वहां पहुंच गया, जहां उसने हुशंग की मसजिद के सम्मुख अपनी स्थापित की हुई पाठशाला के आगे सात मंज़िल की एक सुन्दर मीनार बनवाई[1]"।

फ़िरिश्ता के इस कथन से यह तो अवश्य झलकता है कि सुलतान को निराश होकर लौटना पड़ा हो। कुंभलगढ़ के नीचे का केलवाड़े का एक मन्दिर लेने में भी स्वयं सुलतान का अपनी सेना के आगे रहना, चित्तोड़

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २०८-१०।

के निकट पहुंचने पर बरसात के मौसिम का आ जाना मानकर छः महीनों के लिये एक स्थान पर पड़ा रहने का विचार करना, तथा महाराणा का उसपर हमला होने के दूसरे ही दिन अपनी विजय के गीत गाना और साथ ही एक साल बाद आने का विचार कर बिना सताये मांडू को लौट जाना—ये सब बातें स्पष्ट बतला देती हैं कि सुलतान को हारकर लौटना पड़ा हो और मार्ग में वह सताया भी गया हो तो आश्चर्य नहीं। ऐसे अवसरों पर मुसलमान लेखक बहुधा इसी प्रकार की शैली का अवलम्बन किया करते हैं।

महमूद ख़िलजी इस हार का बदला लेने के लिये विशाल सैन्य लेकर वि० सं० १५०३ के कार्तिक में फिर मांडलगढ़ की तरफ़ चला। जब वह बनास नदी को पार करने लगा, तब महाराणा की सेना ने उसपर आक्रमण किया[1]।

इस लड़ाई के सम्बन्ध में फ़िरिश्ता का कथन है कि "ता० २० रज्जब हि० स० ८५० (कार्तिक वदि ६ वि० सं० १५०३= ता० ११ अक्टूबर ई० स० १४४६) को सुलतान ने मांडलगढ़ के क़िले को विजय करने के लिये कूच किया। रामपुरा (इन्दौर राज्य में) पहुंचने पर वहां के हाकिम बहादुरख़ां की जगह उसने मलिक सैफ़ुद्दीन को नियत किया। फिर बनास नदी को पार कर वह मांडलगढ़ की तरफ़ चला, जहां राणा कुंभा मुक़ाबले को तैयार था। राजपूतों ने घेरा उठाने के लिये उसपर कई हमले किये, जो निष्फल हुए। अन्त में राणा कुंभा ने बहुतसे रुपये तथा रत्न दिये, जिसपर सुलतान महमूद उससे सुलह कर मांडू को लौट गया[2]"। फ़िरिश्ता का यह कथन भी पूर्व कथन के समान अविश्वसनीय है, क्योंकि फ़िरिश्ता आगे लिखता है—"मांडू लौटने के बाद सुलतान बयाने की तरफ़ चढ़ा और वहां के हाकिम मुहम्मदख़ां से नज़राना लेकर लौटते समय रणथम्भोर के निकट का अनन्दपुर का क़िला विजय करके वहां से ८००० सवार और २० हाथियों के साथ ताजख़ां को चित्तोड़ पर हमला करने को भेजा[3]"। यदि मांडलगढ़ की लड़ाई में सुलतान ने विजयी होकर महाराणा से सुलह कर ली होती, तो फिर ताजख़ां को चित्तोड़ भेजने की आवश्यकता ही न रहती।

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२५। रायसाहब हरबिलास सारडा; महाराणा कुंभा; पृ० ४६।

(२) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २१४-१५।

(३) वही; जि० ४, पृ० २१५।

आगे चलकर फ़िरिश्ता फिर लिखता है—"हि० स० ८५८ (वि० सं० १५११=ई० स० १४५४) में शाहज़ादा ग़यासुद्दीन तो रणथम्भोर पर चढ़ा और सुलतान चित्तोड़ की तरफ़ चला। इस बला को टालने के लिये महाराणा स्वयं सुलतान के पास उपस्थित हुआ और अपने नामवाले बहुतसे रुपये भेट किये। इस बात से अप्रसन्न होकर सुलतान ने वे सब रुपये लौटा दिये और मंसूर-उल्मुल्क को मन्दसोर का इलाक़ा बरबाद करने के लिये छोड़कर वह चित्तोड़ की ओर चला। उन ज़िलों पर अपनी तरफ़ का हाकिम नियत करने और वहां अपने वंश के नाम से ख़िलजीपुर बसाने की धमकी देने पर महाराणा ने अपना दूत भेजकर कहलाया कि आप कहें उतने रुपये दे दूं और अब से आपकी अधीनता स्वीकार करता हूं; परंतु चातुर्मास निकट आ गया, इसलिये इस बात को स्वीकार कर कुछ सोना लेकर वह लौट गया[1]"। फ़िरिश्ता के इस कथन की शैली से ही अनुमान होता है कि सुलतान को इस समय भी निराश होकर लौटना पड़ा हो, क्योंकि उसके साथ ही उसने यह भी लिखा है—"इन्हीं दिनों मालूम हुआ कि अजमेर में मुसलमानों का धर्म उच्छिन्न हो रहा है, इसलिये उसने वहां जाकर क़िले पर घेरा डाला। चार रोज़ तक क़िलेदार राजा गजाधर ने मुसलमान सेना पर आक्रमण किया; वह बड़ी वीरता से लड़ा और अन्त में मारा गया। सुलतान ने बड़ी भारी हानि के बाद क़िले पर अधिकार किया और उसकी यादगार में क़िले में एक मसजिद बनवाई। नियामतुल्ला को सैफ़ख़ां का ख़िताब देकर वहां का हाकिम नियत किया और मांडलगढ़ की तरफ़ रवाना होकर बनास नदी पर डेरा डाला। राणा कुंभा ने स्वयं राजपूतों की एक टुकड़ी सहित ताजख़ां के अधीन की सेना पर आक्रमण किया और दूसरी सेना को अलीख़ां की सेना पर हमला करने को भेजा। दूसरे दिन सुलतान को उसके सरदारों ने यह सलाह दी कि सेना को अपने पड़ाव पर ले जाना उचित है, क्योंकि सेना बहुत कम रह गई है और सामान भी खूट गया है। ऐसी अवस्था और वर्षा के दिन निकट आये देखकर सुलतान मांडू को लौट गया[2]"।

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २२१-२२।

(२) वही; जि० ४, पृ० २२२-२३।

यदि महाराणा ने मंदसोर इलाके के आसपास ख़िलजीपुर बसाने की धमकी देने पर सुलतान की अधीनता स्वीकार कर ली होती, तो फिर सुलतान को मांडलगढ़ पर चढ़ाई करने और हारकर भाग आने की आवश्यकता ही न रहती।

फ़िरिश्ता यह भी लिखता है कि "ता० ६ मुहर्रम हि० स० ८६१ (वि० सं० १५१३ मार्गशीर्ष सुदि ७=ई० स० १४५६ ता० ४ दिसम्बर) को सुलतान फिर मांडलगढ़ पर चढ़ा और बड़ी लड़ाई के बाद उसने क़िले के नीचे के भाग पर अधिकार कर लिया और कई राजपूतों को मार डाला, तो भी क़िला विजय नहीं हुआ; परन्तु जब तोपों के गोलों की मार से तालाब में पानी न रहा, तब क़िले की सेना सन्धि करने को बाध्य हुई और राणा कुंभा ने दस लाख टंके (रुपये) दिये। यह घटना ता० २० ज़िलहिज्ज हि० स० ८६१ (वि० सं० १५१४ मार्गशीर्ष वदि ७=ई० स० १४५७ ता० ८ नवम्बर) को, अर्थात् उसके मांडू से रवाना होने के ग्यारह मास पीछे हुई। फिर ता० १६ मुहर्रम हि० स० ८६२ (वि० सं० १५१४ पौष वदि ३=ई० स० १४५७ ता० ४ दिसम्बर) को वह लौट गया[1]"। इस कथन से भी यह अनुमान होता है कि सुलतान इस बार भी हारकर लौटा हो; क्योंकि इस प्रकार अपनी पहली हार का बदला लेने के लिये सुलतान महमूद ने पांच बार मेवाड़ पर चढ़ाइयां कीं, परन्तु प्रत्येक बार उसको हारकर लौटना पड़ा, जिससे उसने ताजख़ां को गुजरात के सुलतान कुतुबुद्दीन के पास भेजकर गुजरात तथा मालवे के सम्मिलित सैन्य से मेवाड़ पर आक्रमण करने और महाराणा को परास्त करने का प्रबन्ध किया था, जिसका वृत्तान्त आगे लिखा जायगा।

इस महाराणा की नागोर की चढ़ाई के सम्बन्ध में फ़िरिश्ता लिखता है— "हि० स० ८६० (वि० सं० १५१३=ई० स० १४५६) में नागोर के स्वामी फ़ीरोज़ख़ां के मरने पर उसका बेटा शम्सख़ां नागोर का स्वामी हुआ, परन्तु उसके छोटे भाई मुजाहिदख़ां ने उसको निकालकर नागोर छीन लिया, जिससे वह भागकर सहायता के लिये राणा कुंभा के पास चला गया। राणा पहले से ही नागोर पर अधिकार करना चाहता था, इसलिये उसने उसकी सहायतार्थ नागोर पर

नागोर की लड़ाई

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २२३-२४।

चढ़ाई करदी। उसके नागोर पहुंचने पर वहां की सेना ने बिना लड़े ही शम्सख़ां को अपना स्वामी स्वीकार कर लिया। राणा ने उसको नागोर की गद्दी पर इस शर्त पर बिठाया कि उसे राणा की अधीनता के चिह्नस्वरूप अपने क़िले का एक अंश गिराना होगा। तत्पश्चात् राणा चित्तोड़ को लौट आया। शम्सख़ां ने उक्त प्रतिज्ञा के अनुसार क़िले को गिराने की अपेक्षा उसको और भी दृढ़ किया। इस से अप्रसन्न होकर राणा बड़ी सेना के साथ नागोर पर फिर चढ़ा। शम्सख़ां अपने को राणा के साथ लड़ने में असमर्थ देखकर नागोर को अपने एक अधिकारी के सुपुर्द कर स्वयं सहायता के लिये अहमदाबाद गया। वहां के सुलतान कुतुबुद्दीन ने उसको अपने दरबार में रक्खा; इतना ही नहीं, किन्तु उसकी लड़की से शादी भी कर ली। फिर उसने मलिक गदाई और राय रामचन्द्र (अमीचन्द) की अधीनता में शम्सख़ां की सहायतार्थ नागोर पर सेना भेज दी। इस सेना के नागोर पहुंचते ही राणा ने उसे भी परास्त किया और बहुतसे अफ़सरों और सिपाहियों को मारकर नागोर छीन लिया[1]"।

फ़ारसी तवारीख़ों से तो नागोर की लड़ाई का इतना ही हाल मिलता है, परन्तु कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में लिखा है कि 'कुंभकर्ण ने गुजरात के सुलतान की विडंबना (उपहास) करते हुए नागपुर (नागोर) लिया, पेरोज (फ़ीरोज़) की बनवाई हुई ऊंची मसजिद को जलाया, क़िले को तोड़ा, खाई को भर दिया, हाथी छीन लिये, यवनियों को क़ैद किया और असंख्य यवनों को दण्ड दिया; यवनों से गौओं को छुड़ाया, नागपुर को गोचर बना दिया, शहर को मसजिदों सहित जला दिया और शम्सख़ां के ख़ज़ाने से विपुल रत्न-संचय छीना[2]'।

---

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ४०-४१। ऐसा ही वर्णन गुजरात के इतिहास मिराते सिकन्दरी में भी मिलता है (बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० १४८-४९)।

(२) *शेषांगद्युतिगर्वरुन्नरपतेर्यस्येन्दुधामोज्ज्वला*
कीर्तिः शेषसरस्वती विजयिनी यस्यामला भारती।
शेषस्यातिधरः क्षमाभरभृतो यस्योरुशौर्यो भुजः
शेषं नागपुरं निपात्य च कथाशेषं व्यधाद्भूपतिः॥ १८॥
शकाधिपानां व्रजतामधस्तादद्दर्शयन्नागपुरस्य मार्गम्।
प्रज्वाल्य पेरोजमशीतिमुच्चां निपात्य तन्नागपुरं प्रवीरः॥ १९॥

नागोर में अपनी सेना की बुरी तरह से हार होने के समाचार पाकर सुलतान कुतुबुद्दीन (कुतुबशाह) चित्तोड़ की तरफ़ चला। मार्ग में सिरोही का देवड़ा राजा उसे मिला और निवेदन किया कि मेरा आबू का क़िला राणा ने ले लिया है, उसे छुड़ा दीजिये। इसपर सुलतान ने अपने सेनापति मलिक शहबान (इमादुल्मुल्क) को आबू लेकर देवड़ा राजा के सुपुर्द करने को भेजा[1] और स्वयं कुंभलमेर (कुंभलगढ़) की तरफ़ गया। मलिक शहबान आबू की लड़ाई में बुरी तरह से हारा और अपनी सेना की बरबादी कराकर लौटा; इधर सुलतान भी राणा से सुलह कर गुजरात को लौट गया[2]।

गुजरात के सुलतान से लड़ाई

निपात्य दुर्गं परिखां मपूर्य गजान्गृहीत्वा यवनीश्च बध्वा ।
अदंडयद्यो यवनाननन्तान् विडंबयन्गुर्जरभूमिभर्तुः ॥ २० ॥
लक्षाणि च द्वादशगोमतल्लीरमोचयद् दुर्यवनानलेभ्यः ।
तं गोचरं नागपुरं विधाय चिराय यो ब्राह्मणसादकार्षीत् ॥ २१ ॥
मूलं नागपुरं महच्छकतरोरुन्मूल्य नूनं मही—
माथो यं पुनरच्छिदत्समदहत्पश्चान्मशीत्या सह ।
तस्मान्म्लानिमवाप्य दूरमपतन् शाखाश्च पत्राण्यहो
सत्यं याति न को विनाशमधिकं मूलस्य नाशे सति ॥ २२ ॥
अग्रहीदमितरत्नसंचयं कोशतः समसखानभूपतेः ।
जांगलस्थलमगाहताहवे कुंभकर्णधरणीपुरन्दरः ॥ २३ ॥

चित्तोड़ के कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति की वि० सं० १७३५ की हस्तलिखित प्रति से। ऊपर दी गई श्लोक-संख्या कुंभकर्ण के वर्णन की है।

(१) फ़िरिश्ता लिखता है—"नागोर की हार की ख़बर सुनते ही कुतुबुद्दीन राणा पर चढ़ा, परंतु चित्तोड़ लेने में अपने को असमर्थ जानकर सिरोही की तरफ़ गया, जहां के राजा का राणा से घनिष्ठ संबंध था। सिरोही के राजपूतों ने सुलतान का मुक़ाबला किया, जिनको उसने परास्त किया" (ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ४१)। फ़िरिश्ता का यह कथन विश्वास-योग्य नहीं है, क्योंकि सिरोही के देवड़े सुलतान से नहीं लड़े; उन्होंने तो राणा से आबू दिलाने का निवेदन किया था, जिसे स्वीकार कर सुलतान ने इमादुल्मुल्क को आबू छीनने के लिये भेजा था, जैसा कि मिराते सिकन्दरी से पाया जाता है (बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० १४६ और ऊपर पृ० २६६)।

(२) बंब. गै; जि० १, भाग १, पृ० ३४२।

इस लड़ाई का वर्णन करते हुए फ़िरिश्ता लिखता है कि "कुंभलगढ़ के पास राणा ने मुसलमानों पर कई हमले किये, परन्तु वह कई बार हारा और बहुतसे रुपये तथा रत्न देने पर कुतुबुद्दीन संधि करके लौट गया[1]"। फ़िरिश्ता का यह कथन भी पक्षपात-रहित नहीं है, क्योंकि यदि कुतुबुद्दीन नज़राना लेने पर सन्धि करके लौटा होता, तो मालवे और गुजरात के दोनों सुलतानों को परस्पर मिल-कर मेवाड़ पर चढ़ने की आवश्यकता ही न रहती। वास्तव में कुतुबुद्दीन भी महमूद ख़िलजी के समान महाराणा से हारकर लौटा था,[2] इसी से दोनों सुल-तानों को एक साथ मेवाड़ पर चढ़ाई करनी पड़ी थी।

मालवा और गुजरात के सुलतानों की एक साथ मेवाड़ पर चढ़ाई

जब सुलतान कुतुबुद्दीन कुंभलगढ़ से अहमदाबाद को लौट रहा था, तब मार्ग में मालवे के सुलतान महमूद ख़िलजी का राजदूत ताजख़ां उसके पास पहुंचा और उससे कहा कि मुसलमानों में परस्पर मेल न होने से काफ़िर (हिन्दू) शान्तिपूर्वक रहते हैं। शरअ के अनुसार हमें परस्पर भाई बनकर रहना तथा हिन्दुओं को दबाना चाहिये और विशेषकर राणा कुम्भा को, जो कई बार मुस-लमानों को हानि पहुंचा चुका है। महमूद ने प्रस्ताव किया कि एक ओर से मैं उस (राणा) पर हमला करूंगा और दूसरी तरफ़ से सुलतान कुतुबुद्दीन करे; इस प्रकार हम उसको बिलकुल नष्ट कर उसका मुल्क आपस में बांट लेंगे[3]। फ़िरिश्ता से पाया जाता है कि राणा का मुल्क बांटने में दोनों सुलतानों के बीच यह तय हुआ था कि मेवाड़ के दक्षिण के सब शहर, जो गुजरात की तरफ़ हैं, कुतुबुद्दीन और मेवाड़ (ख़ास) तथा अहीरवाड़े (?) के ज़िले महमूद लेवे। इस प्रकार का अहदनामा चांपानेर में लिखा गया और उसपर दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किये[4]।

अब दोनों तरफ़ से मेवाड़ पर चढ़ाई करने की तैयारियां हुई। फ़िरिश्ता लिखता है—"दूसरे वर्ष चांपानेर की सन्धि के अनुसार कुतुबशाह चित्तोड़ के

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ४१।

(२) हरबिलास सारड़ा; महाराणा कुंभा; पृ० ४७-४८। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२१।

(३) मिराते सिकन्दरी; बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० १५०।

(४) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ४१-४२।

लिये चला, मार्ग में आबू का क़िला लिया और वहां कुछ सेना रखकर आगे बढ़ा। इसी समय सुलतान महमूद ख़िलजी मालवे की तरफ़ के राणा के इलाक़ों पर चढ़ा। राणा का विचार प्रथम मालवावालों से लड़ने का था, परन्तु कुतुबशाह जल्दी से आगे बढ़ता हुआ सिरोही के पास पहुंचा और उसने पहाड़ी प्रदेश में प्रवेश कर राणा को लड़ने के लिये बाध्य किया, जिसमें राजपूत सेना हार गई। कुतुबशाह आगे बढ़ा और राणा लड़ने को आया। राणा दूसरी बार भी हारकर पहाड़ों में चला गया; फिर चौदह मन सोना और दो हाथी लेकर कुतुबशाह गुजरात को लौट गया। महमूद भी अच्छी रक़म लेकर मालवे को चला गया[1]"। फ़िरिश्ता का यह कथन ठीक वैसा ही है, जैसा कि मुसलमानों के हिन्दुओं से हारने पर मुसलमान इतिहास-लेखक किया करते हैं। चांपानेर के अहदनामे के अनुसार राणा कुंभा को नष्ट कर उसका मुल्क आपस में बांटने का निश्चय कहां तक सफल हुआ, यह पाठक भली भांति समझ सकते हैं। फ़िरिश्ता के कथन से यही प्रतीत होता है कि कुतुबुद्दीन (कुतुबशाह) के हारकर लौट जाने से महमूद भी मालवे को बिना लड़े चला गया हो। कुतुबुद्दीन के चौदह मन सोना लेने और महमूद को अच्छी रक़म मिलने की बात पराजय की मलिन दीवार पर चूना पोतकर उसे सफ़ेद बनाना ही है। महाराणा कुंभा के समय की वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) मार्गशीर्ष वदि ५ की कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में गुर्जर (गुजरात) और मालवा (दोनों) के सुरत्राणों के सैन्यसमुद्र को मथन करना लिखा है,[2] जो फ़िरिश्ता से अधिक विश्वास के योग्य है।

नागोर पर फिर महाराणा की चढ़ाई

फ़िरिश्ता लिखता है कि हि० स० ८६२ (वि० सं० १५१५=ई० स० १४५८) में राणा पचास हज़ार सवार और पैदल सेना के साथ नागोर पर चढ़ा, जिसकी खबर नागोर के हाकिम ने गुजरात के सुलतान के पास पहुंचाई। इन दिनों कुतुबशाह शराब में मस्त होकर पड़ा रहता था, जिससे वह सचेत नहीं किया जा सकता था। सुलतान की

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ४२।

(२) स्फूर्जद्गुर्जरमालवेश्वरसुरत्राणोरुसैन्यार्णव-

व्यस्ताव्यस्तसमस्तवारणवनप्राग्भारकुंभोद्भवः।......॥१७१॥

कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में कुंभकर्ण का वर्णन।

यह दशा देखकर इमादुल्मुल्क सेना एकत्रित कर अहमदाबाद से चला, परन्तु एक मंज़िल चलने के बाद उसे लड़ाई का सामान दुरुस्त करने के लिये एक मास तक ठहरना पड़ा। राणा ने जब यह सुना कि सुलतान की फ़ौज रवाना हो गई है, तब वह चित्तोड़ को चला गया और सुलतान भी अहमदाबाद लौट-कर फिर शराबख़ोरी में लग गया[1]।

वीरविनोद में इस लड़ाई के प्रसंग में लिखा है कि नागोर के मुसलमानों ने हिन्दुओं का दिल दुखाने के लिये गोवध करना शुरू किया। महाराणा ने मुसलमानों का यह अत्याचार देखकर पचास हज़ार सवार लेकर नागोर पर चढ़ाई की और क़िले को फ़तह कर लिया जिसमें हज़ारों मुसलमान मारे गये[2]। वीरविनोद का यह कथन ही ठीक प्रतीत होता है।

इसी वर्ष के अन्त में कुतुबुद्दीन सिरोही पर चढ़ा, जहां का राजा, जो राणा कुंभा का संबंधी था, मुसलमानों से डरकर कुंभलमेर की पहाड़ियों

कुतुबुद्दीन की फिर कुंभलगढ़ पर चढ़ाई

में चला गया। गुजरातियों ने उसका मुल्क उजाड़ दिया; फिर सुलतान ने कुंभलगढ़ तक राणा का पीछा किया, परन्तु जब उसको यह मालूम हुआ कि वह किला विजय नहीं किया जा सकता, तब मुल्क को लूटता हुआ अहमदाबाद लौट गया[3]। इस प्रकार महमूदशाह ख़िलजी की तरह कुतुबुद्दीन भी कई बार महा-राणा कुंभा से लड़ने को आया, परंतु प्रत्येक बार हारकर लौटा।

महाराणा कुंभकर्ण के युद्धों तथा विजयों का जो कुछ वर्णन हमने ऊपर किया है, उसके अतिरिक्त और भी विजयों का उल्लेख शिलालेखादि में संक्षेप से मिलता है।

महाराणा की अन्य विजय

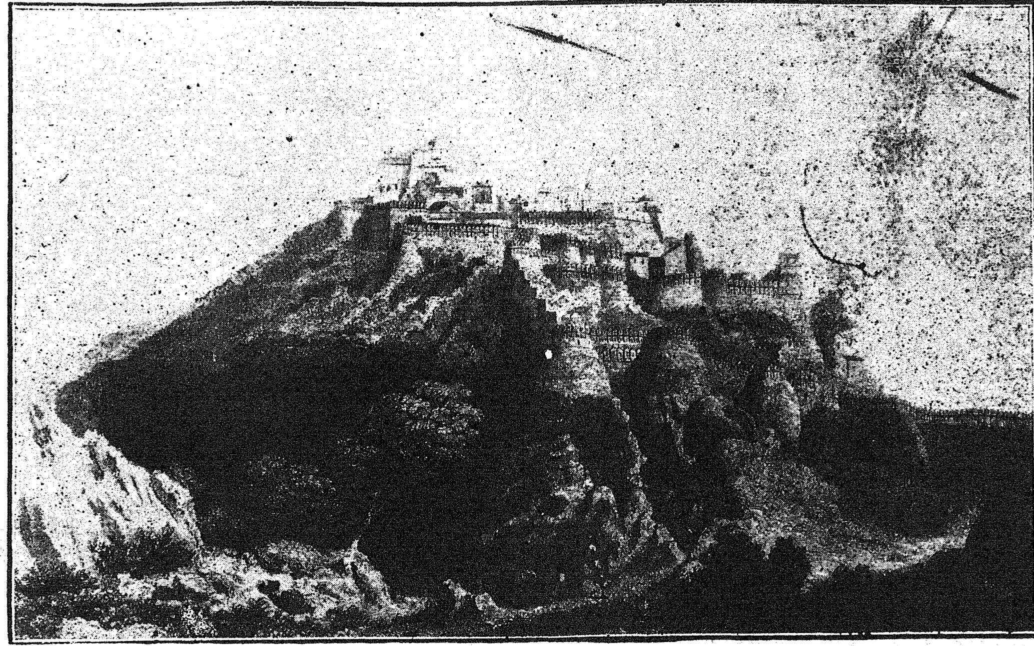
वि० सं० १५१७ की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति से पाया जाता है कि इस महाराणा ने नारदीयनगर के स्वामी से लड़कर उसकी स्त्रियों को अपनी दासियां बनाईं,[4] अपने शत्रु—शोध्यानगरी के राजा—

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ४३।

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३१।

(३) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ४३।

(४) या नारदीयनगरावनिनायकस्य नार्यो निरंतरमचीकरदत्र दास्यं।
तां कुंभकर्णनृपतेरिह कः सहेत बाणावलीमसमसंगरसंचरिष्णोः ॥२४६॥



कुंभलगढ़ का दृश्य

को अपने पैरों पर झुकाया,[1] हम्मीरपुर के युद्ध में रणवीर विक्रम को क़ैद किया,[2] धान्यनगर को जड़ से उखाड़ डाला,[3] जनकाचल को हस्तगत किया, चम्पवती नगरी को सताया,[4] मल्लारण्यपुर (मलारणा) को जला दिया, सिंहपुर (सीहोर) में शत्रुओं को तलवार के घाट उतारा,[5] रणस्तम्भ (रणथम्भोर) को जीता,[6] आम्रदाद्रि (आंबेर) को पीस डाला, कोटड़े के युद्ध में सिंह-समान पराक्रम दिखाया,[7] विशालनगर (वीसलनगर) को समूल नष्ट किया[8] और अपने अश्व-सैन्य से गिरिपुर (डूंगरपुर) पर आक्रमण किया, तो रणवाद्यों का घोष सुनते ही वहां का राजा (रावल) गैपाल (गैबा या गोपाल) क़िला छोड़कर भाग गया[9]। उसी संवत् की कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में डीडवाणे की नमक की खान से कर लेना[10] और विशाल सैन्य से खण्डेले को तोड़ना,[11] तथा एकलिंगमाहात्म्य[12] में

---

(१) अरिंदमः स्वांङ्घ्रिसरोजलग्नं विशोध्य शोध्याधिपतिप्रतीपं ।···॥२४८॥

(२) विगृह्य हम्मीरपुरं शरोत्करैर्निगृह्य तस्मिन् रणवीरविक्रमं ।······॥२५०॥

(३) स धन्यो धान्यनगरमामूलादुदमूलयत् ।······॥ २५३ ॥

(४) जनकाचलमग्रहीदलं महतीं चंपवतीमतीतपत् ।·······॥ २५८ ॥

(५) मल्लारण्यपुरं वरेण्यमनलज्वालावलीढं व्यधा—

द्वीरः सिंहपुरीमबीभरदसिप्रध्वस्तवैरिव्रजैः ।······॥ २६० ॥

(६) कृत्वा·········वीरो रणस्तंभं तथाजयत् ॥ २६१ ॥

(७) आम्रदाद्रि लनेन दारुणः कोटडाकलहकेलिकेसरी ।·······॥२६२॥

(८) इसके अवतरण के लिये देखो ऊपर पृ० ६०५, टि० ४ ।

(९) तन्नागरीनयननीरतरंगिणीनामंगीकृतं किमु समुत्तरणं तुरंगैः ।

श्रीकुंभकर्णनृपतिः प्रवितीर्णझंपैरालोडयद्गिरिपुरं यदमीभिरुग्रः ॥२६६॥

यदीयगर्जद्रणतूर्यघोषसिंहस्वनाकर्णननष्टशौर्यः ।

विहाय दुर्गं सहसा पलायांचकार गैपालशृगालबालः ॥ २६७ ॥

(१०) कुंभकर्णनृपतिः करमदं डिडुआखलवणाकरं व्यधात् ।·····॥ ६ ॥

(११) ····· ········ ······बाणावलीविदलिताखिलो नृपालः ।

खंडेलखंडनविधिं व्यतनोदतुच्छसैन्योच्छलद्बहलरेणुविलुप्तभानुः ॥२५॥

(१२) एकलिंगमाहात्म्य में २०४ श्लोकों के एक अध्याय का नाम 'राजवर्णन' है; उसके अधिकांश श्लोक शिलालेखों से ही उद्धृत किये गये हैं। खंडित या बिगड़े हुए कुछ

वायसपुर को नष्ट करना और मुसलमानों से टोड़ा छीनना लिखा है[1]।

संस्कृत के पण्डित लौकिक नामों को संस्कृत शैली के बना डालते हैं, जिससे उनमें से कई एक का पता लगाना कठिन हो जाता है। नारदीयनगर, शोध्या-नगरी, हम्मीरपुर, धान्यनगर, जनकाचल, चम्पवती, कोटड़ा और वायसपुर का ठीक २ पता नहीं चला, तो भी प्रारंभ के कुछ नाम मालवे से संबन्ध रखते हों तो आश्चर्य नहीं। उपर्युक्त विजय कब २ हुई, यह जानने के लिये साधन उपस्थित नहीं हैं, तो भी इतना तो निश्चित है कि ये सब विजय वि० सं० १५१७ से पूर्व किसी समय हो चुकी थीं।

महाराणा कुंभा शिल्पशास्त्र का ज्ञाता होने के अतिरिक्त शिल्प कार्यों का भी बड़ा प्रेमी था। ऐसी प्रसिद्धि है कि मेवाड़ के छोटे-बड़े ८४ क़िलों में से ३२ क़िले[2] तथा अनेक मन्दिर, जलाशय आदि कुंभा ने बनवाये थे। इनमें से जिन जिन का उल्लेख शिलालेखों में मिलता है, वह नीचे लिखे अनुसार है।

महाराणा के बनवाये हुए क़िले, मन्दिर, तालाब आदि

कुंभकर्ण ने चित्तोड़ के क़िले को विचित्रकूट (भिन्न भिन्न प्रकार के शिखरों अर्थात् बुर्ज़ोंवाला) बनवाया[3]। पहले इस क़िले पर जाने के लिये रथ-मार्ग (सड़क) नहीं था, इसलिये उसने रथमार्ग बनवाया[4] और रामपोल

शिलालेखों के कई एक श्लोकों की पूर्ति एकलिंगमाहात्म्य के इस अध्याय से हो जाती है।

(१) ....भंक्त्वा पुरं वायसं।
तोडामंडलमग्रहीच्च सहसा जित्वा शकं दुर्ज्जयं
जीव्याद्वर्षशतं सभृत्यतुरगः श्रीकुंभकर्णो भुवि ॥ १५७ ॥

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३४।

(३) असौ शिरोमंडनचंद्रतारं विचित्रकूटं किल चित्रकूटं।
स्वरा.................................
मकरोन्महींद्रो महासहा भानुरिवोदयाद्रिं ॥ २६ ॥

महाराणा कुंभा के बनवाये हुए स्थानों के संबंध में जो मूलपाठ नीचे दिये गये हैं, उनमें जहां शिलालेख का नाम नहीं दिया, वे कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति के हैं।

(४) उच्चैर्मेरुगिरेर्नवो दिनकरः श्रीचित्रकूटाचले
भव्यां सद्रथपद्धतिं जनसुखायाचूलमूलं व्यधात् ॥ ३४ ॥
रामः सरामो विरथो महोच्चैः पद्भ्यामगच्छत्किल चित्रकूटे।
इतीव कुंभेन महीधरेण किमत्र रामाः सरथा नियुक्ताः ॥ ३५ ॥

(रामरथ्या[1]), हनुमानपोल (हनुमानगोपुर[2]), भैरवपोल (भैरवांकविशिखा[3]), महालक्ष्मीपोल (महालक्ष्मीरथ्या[4]), चामुंडापोल (चामुंडाप्रतोली[5]), तारापोल (तारारथ्या[6]) और राजपोल (राजप्रतोली[7]) नाम के दरवाज़े निर्माण कराये। उसने वहीं सुप्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ बनवाया, जिसकी समाप्ति वि० सं० १५०५ माघ

कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति बनानेवाले पंडित ने जिस चित्रकूट में रघुपति रामचन्द्र गये थे, उसको चित्तोड़ मान लिया है, जो भ्रम है, क्योंकि रामचन्द्र से संबंध रखनेवाला प्रसिद्ध चित्रकूट प्रयाग से दक्षिण में है, न कि मेवाड़ में।

(१) *इतीव दुर्गे खलु रामरथ्यां स सेतुबंधामकरोन्महींद्रः ॥ ३६ ॥*

इस श्लोक में "सेतुबंध" शब्द का अभिप्राय कुकड़ेश्वर के कुंड के पश्चिम की ओर के बांध से होना चाहिये।

(२) *हनूमन्नामांकं व्यरचयदसौ गोपुरमिह ॥ ३८ ॥*

(३) *भैरवांकविशिखा मनोरमा भाति भूपमुकुटेन कारिता ।...॥ ३९ ॥*

(४) *इति प्रायः शिक्षानिपुणकमलाधिष्टिततनु—*
र्महालक्ष्मीरथ्या नृपपरिवृढेनात्र रचिता ॥ ४० ॥

(५) *चामुंडायाः कापि तस्याः प्रतोली भव्या भाति क्ष्माभुजा निर्मितोच्चा॥४१॥*

(६) *श्रीमत्कुंभक्ष्माभुजा कारितोर्वी.........रम्यलीलागवाक्षा ।*
तारारथ्या शोभते यत्र ताराश्रेणी.........संमिलत्तोरणश्रीः ॥ ४२ ॥

कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में पहले ४० श्लोकों में महाराणा मोकल तक का; फिर १ से अंक शुरू कर १८७ श्लोकों तक कुंभकर्ण का और अन्त के ६ श्लोकों में प्रशस्तिकार का वर्णन है। वि० सं० १७३५ की हस्तलिखित प्रति में, जो हमें मिली, कुंभकर्ण के वर्णन के श्लोक ४३ से १२४ तक नहीं हैं, जिनकी शिलाएं उक्त संवत् से पूर्व नष्ट हो गई होंगी। ४२वें श्लोक में तारापोल तक का वर्णन है, अन्य दरवाज़ों का वर्णन आगे के श्लोकों में होगा। चित्तोड़गढ़ के राजपोल (महलों की पोल) सहित ९ दरवाज़े हैं, उनमें से सात के नाम ऊपर मिलते हैं, दो के नाम, जो हिस्सा नष्ट हो गया है, उसमें रह गये होंगे। तीन दरवाज़ों (रामपोल, भैरवपोल और हनुमानपोल) के नाम अब तक वही हैं, जो कुंभा के समय में थे। लक्ष्मणपोल शायद लक्ष्मीपोल हो।

(७) *राजप्रतोली मणिरश्मिरक्ता सदिंद्रनीलद्युतिनीलकांतिः ।*
सस्फाटिका शारदवारिदश्रीर्विभाति सेंद्रायुधमंडनेव ॥ १२५ ॥

राजप्रतोली (राजपोल) शायद चित्तोड़ के राजमहलों के बाहरी दरवाज़े का नाम हो।

सुदि १० को हुई[1]। कुंभस्वामी[2] और आदिवराह[3] के मन्दिर, रामकुण्ड, जलयन्त्र (अरहट, रहँट) सहित कई बावड़ियां[4] और कई तालाब एवं वि० सं० १५०७ कार्तिक वदि ६ को चित्तोड़ पर विशिखा[5] (पोल) बनवाई।

---

(१) पुराये पंचदशे शते व्यपगते पंचाधिके वत्सरे
माघे मासि वलन्नपन्नदशमीदेवेज्यपुष्पागमे ।
कीर्त्तिस्तंभमकारयन्नरपतिः श्रीचित्रकूटाचले
नानानिर्मितनिर्जरावतरणैर्मेरोर्हसंतं श्रियं ॥ १८५ ॥

कीर्तिस्तंभ के लिये देखो ऊपर पृ० ३२२-२६।

(२) सर्वोर्वीतिलकोपमं मुकुटवच्छ्रीचित्रकूटाचले
कुंभस्वामिन आलयं व्यरचयच्छ्रीकुंभकर्णो नृपः ॥ २८ ॥

(३) अकारयच्चादिवराहगेहमनेकधा श्रीरमणस्य मूर्तिः ॥ ३१ ॥

कुंभस्वामी और आदिवराह के दोनों विष्णुमंदिर चित्तोड़ में एक ही ऊंची कुर्सी पर पास पास बने हुए हैं। एक बहुत ही बड़ा और दूसरा छोटा है। बड़े मंदिर की प्राचीन मूर्ति मुसलमानों के समय तोड़ डाली गई, जिससे नई मूर्ति पीछे से स्थापित की गई है। इस मंदिर की भीतरी परिक्रमा के पिछले ताक में वराह की मूर्ति विद्यमान है। अब लोग इसी को कुंभस्वामी (कुंभश्याम) का मंदिर कहते हैं। लोगों में यह प्रसिद्धि हो गई है कि बड़ा मंदिर महाराणा कुंभा ने और छोटा उसकी राणी मीरांबाई ने बनवाया था; इसी जनश्रुति के आधार पर कर्नल टॉड ने मीरांबाई को महाराणा कुंभा की राणी लिख दिया है, जो मानने के योग्य नहीं है। मीरांबाई महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज की स्त्री थी, जिसका विशेष परिचय हम महाराणा सांगा के प्रसंग में देंगे। उक्त बड़े मंदिर के सभामंडप के ताकों में कुछ मूर्तियां स्थापित हैं, जिनके आसनों पर वि० सं० १५०५ के कुंभकर्ण के लेख हैं, जिनसे पाया जाता है कि वह मंदिर उक्त संवत् में बना होगा।

(४) रामकुंडममराधिपचापप्राज्यदीधितिमनोहरगेहं ।
दीर्घिकाश्च जलयंत्रदर्शनव्यग्रनागरिकदत्तकौतुकाः ॥ ३३ ॥

इनमें से एक भीमलत्त नाम की बावड़ी होनी चाहिये।

(५) वर्षे पंचदशे शते व्यपगते सप्ताधिके कार्तिक-
स्याद्यानंगतिथौ नवीनविशिषां(खां) श्रीचित्रकूटे व्यधात् ॥ १८४ ॥

कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति बनानेवाले ने भैरवपोल तथा कुंभलगढ़ की पोलों (दरवाज़ों) का वर्णन करते हुए विशिखा शब्द का प्रयोग पोल (दरवाज़े) के अर्थ में किया है। इस श्लोक में "नवीनविशिखां" (नया दरवाज़ा) किसका सूचक है, यह ज्ञात नहीं हुआ। यदि "नवीन-

वि० सं० १५१५ चैत्र वदि १३ को कुंभमेरु[1] (कुंभलगढ़) की प्रतिष्ठा हुई। उस क़िले के चार दरवाज़े (विशिखा,[2] पोल) बनवाये और मांडव्यपुर (मंडोवर) से लाई हुई हनुमान की मूर्ति[3] तथा एक अन्य शत्रु के यहां से लाई हुई गणपति की मूर्ति[4] वहां स्थापित की। वहीं उसने कुंभस्वामी का मन्दिर[5] और जलाशय[6] तथा एक बाग़[7] निर्माण कराया।

एकलिंगजी के मन्दिर को, जो खण्डित हो गया था, नया बनवाकर[8] उसने

विशिखाः" शुद्ध पाठ माना जाय, तो 'नये दरवाज़े' अर्थ होगा और यह माना जायगा कि चित्तोड़ के क़िले की सड़क पर के दरवाज़े वि० सं० १५०७ में बने होंगे।

(१) श्रीविक्रमात्पंचदशाधिकेस्मिन् वर्षे शते पंचदशे व्यतीते।
चैत्रासितेनंगतिथौ व्यधायि श्रीकुंभमेरुर्वसुधाधिपेन ॥ १८४ ॥

(२) चतसृषु विशिखाचतुष्टयीयं स्फुरति हरित्सु च यत्र दुर्गवर्यें ॥ १३५ ॥

(३) आनीय मांडव्यपुराद्धनूमान् संस्थापितः कुंभलमेरुदुर्गे ॥ ३ ॥
यह मूर्ति कुंभलगढ़ की हनुमानपोल पर स्थापित है।

(४) आनयद्द्विरदवक्त्रमादरादुद्धतमतिनृपालदुर्गतः।
दुर्गवर्यशिखरे निजे तथास्थापयत्कृतमहोत्सवो नृपः ॥ १४६ ॥

(५) तत्र तोरणालसन्मणि कुंभस्वामिमंदिरमकारयन्महत्।...... ॥ १३० ॥

(६) संनिवेश्य कुंभनृपतिः सरोद्भुतं
निरमापयत् शशिकलोज्ज्वलोदकं।...... ॥ १३१ ॥

(७) वृंदावनं चैत्ररथं च नंदनं मनोज्ञभृंगध्वनि गंधमादनं।
नृपाललीलाकृतवाटिकामिषाद्वसंत्यमून्यत्र समेत्य भूधरे ॥ १४३ ॥

(८) एकलिंगनिलयं च खंडितं प्रोच्चतोरणालसन्मणिचक्रं।
भानुबिंबमिलितोच्चपताकं सुंदरं पुनरकारयन्नृपः ॥ २४० ॥
इत्थं चारु विचार्य कुंभनृपतिस्तानेकलिंगे व्यधा—
द्रम्यान् मंडपहेमदंडकलशान् त्रैलोक्यशोभातिगान् ॥ २४१ ॥
(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति)।

एकलिंगजी के मंदिर का जीर्णोद्धार कराकर महाराणा कुंभकर्ण ने चार गांव—नागहृद (नागदा), कठडावण, मलकखेटक (मलकखेड़ा) और भीमाण (भीमाणा)—उक्त मंदिर के पूजन व्यय के लिये भेट किये थे (भावनगर इन्स्क्रिपूशन्स; पृ० १२०, श्लोक ५८)।

मण्डप, तोरण, ध्वजादण्ड और कलशों से अलंकृत किया तथा उक्त मन्दिर के पूर्व में कुंभमंडप नामक स्थान निर्माण कराया[1]।

वसन्तपुर (सिरोही राज्य में) नगर को, जो पहले उजड़ गया था, उसने फिर बसाया और वहां पर विष्णु के निमित्त सात जलाशय निर्माण कराये;[2] आबू छीनकर अचलेश्वर के पास के शृंग पर वि० सं० १५०९ माघ सुदि पूर्णिमा को अचलदुर्ग की प्रतिष्ठा की[3]। अचलेश्वर के पास कुंभस्वामी का मन्दिर[4] और उसके निकट एक सरोवर[5] तथा चार और जलाशय[6] (वहां) बनवाए।

ऊपर लिखे हुए क़िले, कीर्तिस्तम्भ, मन्दिर आदि के देखने से अनुमान होता है कि उनके निर्माण में करोड़ों रुपये व्यय हुए होंगे। कुंभा की अतुल धनसम्पत्ति का अनुमान उन स्थलों को प्रत्यक्ष देखने से ही हो सकता है। कीर्तिस्तम्भ तो

---

(१) अमराधिपप्रतिमवैभवो नृगिरिदुर्गराजमपि कुंभमंडपं।
स्फुरदेकलिंगनिलयाच्च पूर्वतो निरमापयत्सकलभूतलाद्भुतं ॥ १० ॥

इस स्थान को इस समय मीरांबाई का मंदिर कहते हैं और इसका उपयोग तेल आदि सामान रखने के लिये किया जाता है।

(२) असौ महौजाः प्रवरं वसंतपुरं व्यधत्ताभिनवो वसंतः ॥ ८ ॥
सप्तसागरविजित्वरानसौ सप्तपल्वलवरानकारयत्।
श्रीवसंतपुरनाम्नि चक्रिणः प्रीतये वसुमतीपुरंदरः ॥ ९ ॥

(३) सत्प्राकारप्रकारं प्रचुरसुरगृहाडंबरं मंजुगुंज-
द्भृंगश्रेणीवरेण्योपवनपरिसरं सर्वसंसारसारं।
नंदव्योमेषु शीतद्युतिमितिरुचिरे वत्सरे माघमासे
पूर्णायां पूर्णरूपं व्यरचयदचलं दुर्गमुर्वीमहेंद्रः ॥ १८६ ॥

(४) इसके मूल अवतरण के लिये देखो ऊपर पृ० ५१७, टि० २, श्लो० १२।

(५) कुंभस्वामिगणोत्र सुंदरसरोराजीव राजीमिल-
द्रोलंबावलिकेलये व्यरचयत्सूत्रामवामभ्रुवां(?) ॥ १३ ॥

यह जलाशय अचलेश्वर के मंदिर के पासवाली मंदाकिनी का सूचक है, जिसके तट पर परमार राजा धारावर्ष की धनुष-सहित पाषाण की मूर्ति और पत्थर के तीन भैंसे खड़े हुए हैं।

(६) चतुरश्चतुरो जलाशयान् चतुरो वारिनिधीनिवापरान्।
स किलार्बुदशेष(ख)रे नृपः कमलाकामुककेलये व्यधात् ॥ १५ ॥

भारत भर में हिन्दू जाति की कीर्ति का एक अलौकिक स्तम्भ है, जिसके महत्त्व और व्यय का अनुमान उसके देखने से ही हो सकता है[1]।

महाराणा कुंभा जैसा वीर और युद्धकुशल था, वैसा ही पूर्ण विद्यानुरागी, स्वयं बड़ा विद्वान् और विद्वानों का सम्मान करनेवाला था। एकलिंगमाहात्म्य में उसको वेद, स्मृति, मीमांसा, उपनिषद्, व्याकरण, राजनीति और साहित्य[2] में निपुण बताया है। उसने संगीत के विषय के 'संगीतराज', 'संगीतमीमांसा' एवं 'सूडप्रबन्ध'[3] (?) नामक ग्रंथों की

महाराणा का विद्यानुराग

(१) कुंभकर्ण के समय भिन्न भिन्न धर्म के लोगों ने भी अनेक मंदिर बनवाये थे। उक्त महाराणा के बसाये हुए राणपुर नगर में, कुंभा के प्रीतिपात्र शाह गुणराज के साथ रहकर, प्राग्वाट-(पोरवाड़)वंशी सागर के पुत्र कुरपाल के बेटे रत्ना तथा उसके पुत्र-पौत्रों ने 'त्रैलोक्यदीपक' नामक युगादीश्वर का सुविशाल चतुर्मुख मंदिर उक्त महाराणा से आज्ञा पाकर वि० सं० १४९६ में बनवाया, जो प्रसिद्ध जैन मंदिरों में से एक है। इसी तरह गुणराज ने अजाहरि (अजारी), पिण्डरवाटक (पींडवाड़ा, दोनों सिरोही राज्य में) तथा सालेरा (उदयपुर राज्य में) में नवीन मंदिर बनवाये और कई पुराने मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया (भावनगर इंस्क्रिप्शन्स; पृ० ११४–१५)। महाराणा कुंभा के ख़जानची वेला ने, जो साह केला का पुत्र था, वि० सं० १५०५ में चित्तोड़ पर शान्तिनाथ का एक सुन्दर मंदिर बनवाया, जिसको इस समय 'शृंगार चौरी' कहते हैं (देखो ऊपर पृ० २५६। राजपूताना म्यूज़ियम् की रिपोर्ट, ई० स० १९२०–२१; पृ० ५, लेख-संख्या १०)। ऐसे ही सेमा गांव (एकलिंगजी से कुछ मील दूर) की पहाड़ी पर का शिव-मंदिर, वसंतपुर, भूला आदि के जैन मंदिर तथा कई अन्य देवालय बने, जैसा कि उनके लेखों से पाया जाता है। इनसे अनुमान होता है कि कुंभा के राज्य-काल में प्रजा सम्पन्न थी।

(२) वेदा यन्मौलिरत्नं स्मृतिविहितमतं सर्वदा कंठभूषा
मीमांसे कुंडले द्वे हृदि भरतमुनिव्याहृतं हारवल्ली।
सर्वांगीणं पूकृष्टं कवचमपि परे राजनीतिप्रयोगाः
सार्वज्ञं बिभ्रदुच्चैरगणितगुणभूर्भासते कुंभभूपः ॥ १७२ ॥
अष्टव्याकरणी(?) विकास्युपनिषत्स्पष्टाष्टदंष्ट्रोत्कटः
षट्तर्क्की(?) विकटोक्तियुक्तिविसरत्पूस्फारगुंजारवः।
सिद्धांतोद्धतकाननैकवसतिः साहित्यभूक्रीडनो
गर्ज···दिगुणान्विदार्य·····················पूज्ञास्फुरत्केसरी ॥ १७३ ॥
(एकलिंगमाहात्म्य; राजवर्णन अध्याय)।

यहां से नीचे के अवतरण कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति के हैं।

(३) आलोड्याखिलभारतीविलसितं संगीतराजं व्यधात्

रचना की और चण्डीशतक की व्याख्या तथा गीतगोविन्द पर रसिकप्रिया नाम की टीका लिखी। इनके अतिरिक्त वह चार नाटकों का रचयिता था; जिनमें उसने महाराष्ट्री, कर्णाटी और मेवाड़ी भाषाओं का प्रयोग भी किया था[1]। वह कवियों का शिरोमणि, वीणा बजाने में अतिनिपुण[2] और नाट्यशास्त्र का बहुत अच्छा ज्ञाता था, जिससे वह नव्यभरत (अभिनव-भरताचार्य[3]) कहलाता और नन्दिकेश्वर के मत का अनुसरण करता था[4]। उसने संगीतरत्नाकर की भी टीका की[5] और भिन्न भिन्न रागों तथा तालों के साथ गाई जानेवाली अनेक देवताओं की स्तुतियां बनाईं, जो एकलिंगमाहात्म्य के रागवर्णन अध्याय में संगृहीत हैं[6]। शिल्पसम्बन्धी अनेक पुस्तकें भी उसके आश्रय में बनीं। सूत्रधार

औधत्यावधिरंजसा समतनोत्सूडप्रबंधाधिपं।

(१) नानालंकृतिसंस्कृतां व्यरचयच्चण्डीशतव्याकृतिं
वागीशो जगतीतलं कलयति श्रीकुंभदंभात्किल ॥ १५७ ॥
येनाकारि मुरारिसंगतिरसप्रस्यन्दिनी नन्दिनी
वृत्तिव्याकृतिचातुरीभिरतुला श्रीगीतगोविंदके।
श्रीकर्णाटकमेदपाटसुमहाराष्ट्रादिके योदय–
द्वाणीगुंफमयं चतुष्टयमयं सन्नाटकानां व्यधात् ॥ १५८ ॥

(२) सकलकविनृपाली मौलिमाणिक्यरोचि–
र्मधुररणितवीणावाद्यवैशद्यबिंदुः।
मधुकरकुललीलाहारि·········रसाली
जयति जयति कुंभो भूरिशौर्यांशुमाली ॥ १६० ॥

(३) नाटकप्रकरणांकवीथिकानाटिकासमवकारभाणके।
प्रोल्लसत्प्रहसनादिरूपके नव्य एष भरतो महीपतिः ॥ १६७ ॥

(४) भारतीयरसभावदृष्टयः प्रेमचातकपयोदवृष्टयः।
नंदिकेश्वरमतानुवर्तनाराधितत्रिनयनं श्रयंति यं ॥ १६८ ॥

(५) रायसाहिब हरबिलास सारड़ा; महाराणा कुंभा; पृ० २२।

(६) इति महाराजाधिराजरायरायांराणेरायमहाराणाकुंभकर्णमहेन्द्रेण विरचिते सुखवाद्यक्षीरसागरे रागवर्णनो नाम···· (एकलिंगमाहात्म्य)।

(सुथार) मण्डन ने देवतामूर्ति-प्रकरण, प्रासादमण्डन, राजवल्लभ, रूपमण्डन, धास्तुमण्डन, वास्तु-शास्त्र, वास्तुसार और रूपावतार; मंडन के भाई नाथा ने वास्तुमंजरी और मंडन के पुत्र गोविन्द ने उद्धारधोरणी, कलानिधि तथा द्वारदीपिका नामक पुस्तकों की रचना की[1]। उक्त महाराणा ने जय और अपराजित के मतानुसार कीर्तिस्तंभों की रचना का एक ग्रन्थ बनाया[2] और उसे शिलाओं पर खुदवाकर अपने कीर्तिस्तंभ के नीचे के हिस्से में बाहर की तरफ़ कहीं लगवाया था। उसकी पहली शिला के प्रारंभ का कुछ अंश मुझे कीर्तिस्तंभ के पास पत्थरों के ढेर में मिला, जिसको मैंने उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित किया। महाराणा कुंभा विद्वानों का भी बड़ा सम्मान करता था। उसके बनवाये हुए कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति के अन्तिम श्लोकों से पाया जाता है कि उक्त प्रशस्ति के पूर्वार्द्ध की रचना कर उसका कर्ता कवि अत्रि मर गया, जिससे उत्तरार्द्ध की रचना उसके पुत्र महेश कवि ने की, जिसपर महाराणा कुंभा ने उसे दो मदमत्त हाथी, सोने की डंडीवाले दो चँवर और एक श्वेत छत्र प्रदान किया था[3]।

---

(१) श्रीधर रामकृष्ण भंडारकर; रिपोर्ट ऑफ़ ए सेकण्ड टूर इन् सर्च ऑफ़ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन् राजपुताना एण्ड सेन्ट्रल इंडिया इन् १९०४-६ ई० स०; पृ० ३८। ऑफ्रेक्ट; कैटेलॉगस् कैटेलॉगरम्; भाग १, पृ० ७३०।

(२) श्रीविश्वकर्माख्यमहार्यवीर्यमाचार्यमुत्पत्तिविधावुपास्य ।
स्तम्भस्य लक्ष्मा तनुते नृपालः श्रीकुंभकर्णो जयभाषितेन ॥ २ ॥
(मूल लेख से)।

(३) अत्रिस्तत्तनयो नयैकनिलयो वेदान्तवेदस्थितिः
मीमांसारसमांसलातुलमतिः साहित्यसौहित्यवान् ।
रम्यां सूक्तिसुधासमुद्रलहरीं सामिप्रशस्तिं व्यधात्
श्रीमत्कुंभमहीमहेंद्रचरिताविष्कारिवाक्योत्तरां ॥ १६१ ॥
येनाप्तं मदगंधसिंधुरयुगं श्रीकुंभभूमीपतेः
सच्चामीकरचारुचामरयुगच्छत्रं शशांकोज्ज्वलं ।
तेनात्रेस्तनयेन नव्यरचना रम्या प्रशस्तिः कृता
पूर्णा पूर्णतरं महेशकविना सूक्तैः सुधास्यन्दिनी ॥ १६२ ॥
(कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति)।

कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान में मालवे और गुजरात के सुलतानों की एक साथ मेवाड़ पर चढ़ाई वि० सं० १४९६ (ई० स० १४४०) में होना लिखा है,[1] जो ठीक नहीं है। मालवे और गुजरात के सुलतानों ने वि० सं० १५१३ (ई० स० १४५६) में चांपानेर में सन्धि करने के पीछे एक साथ मेवाड़ पर चढ़ाई की थी (देखो ऊपर पृ० ६१६)। उक्त पुस्तक में यह भी लिखा है कि मालवे के सुलतान ने कुंभा से मिलकर दिल्ली के सुलतान पर चढ़ाई की, जिसमें उन्होंने झूंझणूं नामक स्थान पर दिल्ली के अन्तिम गोरी सुलतान को हराया[2]। यह कथन भी विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि महाराणा कुंभा तो मालवे के सुलतान का सहायक कभी बना ही नहीं और न उस समय दिल्ली में गोरी वंश का राज्य था। दिल्ली के सुलतान मुहम्मदशाह और आलिमशाह सैयद तथा बहलोल लोदी कुंभा के समकालीन थे। इसी तरह उसमें यह भी लिखा है कि जोधा ने मंडोर पर अधिकार करते समय चूंडा के दो पुत्रों को मारा। इस प्रकार मंडोर के एक स्वामी (रणमल) के बदले में चित्तोड़ के घराने के दो पुरुष मारे गये, जिसकी 'मूंडकटी' में जोधा ने गोड़वाड़ का प्रदेश महाराणा को दिया[3]। इस कथन को भी हम स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि चौहानों के पीछे गोड़वाड़ का प्रदेश मेवाड़ के अधीन हो गया था और महाराणा लाखा के समय के लेखों से पाया जाता है कि घाणेरा (घाणेराव), नाणा और कोट सोलंकियान (जो गोड़वाड़ में हैं) उक्त महाराणा के राज्य के अन्तर्गत थे (देखो ऊपर पृ० ५८१)। महाराणा मोकल ने चूंडा को मंडोर का राज्य दिलाने के बाद उसके भाई सत्ता तथा भतीजे नरबद को कायलाणे की, जो मंडोर से निकट है, एक लाख की जागीर दी थी (देखो ऊपर पृ० ५८४)। ऐसी दशा में गोड़वाड़ का इलाक़ा, जो मेवाड़ का ही था, जोधा ने मूंडकटी में दिया हो, यह संभव नहीं।

कर्नल टॉड और महाराणा कुंभा

महाराणा कुंभा के सोने या चांदी के सिक्कों का उल्लेख[4] तो मिलता है,

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३३५।

(२) वही; जि० १, पृ० ३३५-३६।

(३) वही; जि० १, पृ० ३३०।

(४) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २२१।

महाराणा कुंभा के सिक्के

परंतु अब तक सोने या चांदी का कोई सिक्का उपलब्ध नहीं हुआ। तांबे के पांच[1] प्रकार के सिक्के देखने में आये, जिनपर नीचे लिखे अनुसार लेख हैं—

	सामने की तरफ़	दूसरी तरफ़
१	श्रीकुंभल मेरु महा राणा श्री कुं भकर्णस्य	श्रीएकलिं ग श्री स्य प्र सा दात १५१७
२	राणा श्री कुं श्री भ कर्णस्य	श्रीकुंभ लमेरु
३	राणा श्री कुंभकर्ण	श्री कुंभ लमेरु
४	राणा कुं- भकर्ण	श्री कुंभ लमेरु
५	कुंभ कर्ण	एक लिंग

ये सब सिक्के चौकोर हैं, जिनमें से पहला सबसे बड़ा, दूसरा व तीसरा उससे छोटे और चोथा तथा पांचवां उनसे भी छोटे हैं।

---

(१) ऊपर लिखे हुए पांच प्रकार के तांबे के सिक्कों में से पहले चार प्रकार के हमको मिले और अंतिम मिस्टर प्रिन्सेप को मिला था (जे. प्रिन्सेप; एसेज़ ऑन् इंडियन् ऍंटिक्विटीज़; जि० १, पृ० २१८, प्लेट २४, संख्या २६)। उक्त पुस्तक में 'कुंभकर्ण' को 'कुभकंस्मी' और 'एकलिंग' को 'एकलिस' पढ़ा है, परंतु छाप में कुंभकर्ण और एकलिंग स्पष्ट है।

महाराणा के समय के शिलालेख

महाराणा कुंभा के समय के वि० सं० १४९१ से १५१८ तक के ६० से अधिक शिलालेख देखने में आये; यदि उन सब का संग्रह किया जाय, तो अनुमान २०० पृष्ठ की पुस्तक बन सकती है। ऐसी दशा में हम थोड़े से आवश्यक लेखों का ही नीचे उल्लेख करते हैं—

१—वि० सं० १४९१ कार्तिक सुदि २ का देलवाड़े (उदयपुर राज्य में) का शिलालेख[1]।

२—वि० सं० १४९४ आषाढ वदि ॥ (३०, ऽऽ, अमावास्या) का नांदिया गांव से मिला हुआ दानपत्र[2]।

३—वि० सं० १४९४ माघ सुदि ११ गुरुवार का नागदा नगर के अद्बुदजी (शांतिनाथ) की अतिविशाल मूर्ति के आसन पर का लेख[3]।

४—वि० सं० १४९६ का राणपुर के सुप्रसिद्ध जैन मंदिर में लगा हुआ शिलालेख, जो इतिहास के लिये विशेष उपयोगी है[4]।

५—वि० सं० १५०६ आषाढ सुदि २ का देलवाड़ा गांव (आबू पर) के विमलशाह और तेजपाल के सुप्रसिद्ध मंदिरों के बीच के चौक में एक वेदी पर खड़ा हुआ शिलालेख, जिसमें आबू पर जानेवाले यात्रियों आदि से जो 'दाण' (राहदारी, ज़गात), मुंडिक (प्रतियात्री से लिया जानेवाला कर), वलावी (मार्गरक्षा का कर) तथा घोड़े, बैल आदि से जो कर लिये जाते थे, उनको माफ़ करने का उल्लेख है[5]।

६—वि० सं० १५१७ मार्गशीर्ष वदि ५ सोमवार की चित्तोड़ के प्रसिद्ध कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति। वह कई शिलाओं पर खुदी हुई थी, परंतु अब उनमें

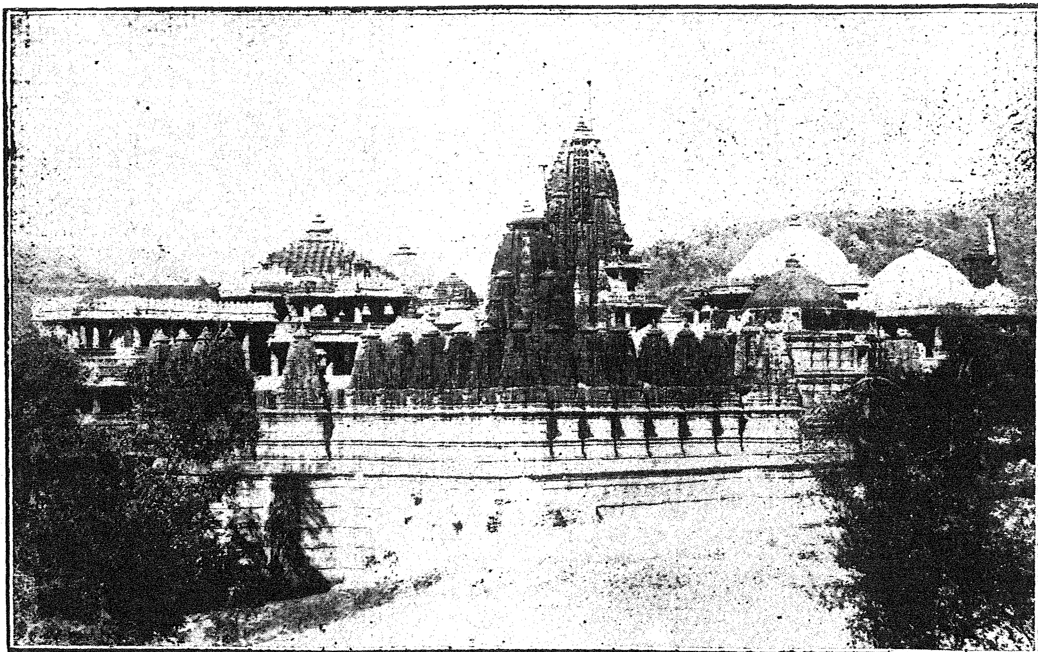
(१) देखो ऊपर पृ० ५९०, टिप्पण २।

(२) देखो ऊपर पृ० ५९६, टि० १।

(३) भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ११२ और जैनाचार्य विजयधर्मसूरि; देवकुल-पाटक; पृ० १६।

(४) एन्युअल् रिपोर्ट ऑफ़ दी आर्कियालॉजिकल् सर्वे ऑफ़ इंडिया; ई० स० १९०७–८, पृ० २१४–१५। भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ११४; और भावनगर-प्राचीन-शोधसंग्रह; पृ० ५६–५८।

(५) नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); भाग १, पृ० ४५१–५२ और पृ० ४५१ के पास का फोटो।



राणपुर का प्रसिद्ध जैन मंदिर

से केवल दो ही शिलाएं—पहली और अंत के पूर्व की-वहां विद्यमान हैं[1]। पहली शिला में १ से २८ तक के श्लोक हैं और अंत के पूर्व की शिला में १६८से१८७ तक के। अंत में लिखा है कि आगे का वर्णन लघुपट्टिका (छोटी शिला) में अंकक्रम से जानना चाहिये[2]। इस शिला की पहली पांच-छः पंक्तियां बिगड़ गई हैं। वि० सं० १७३५ में इस प्रशस्ति की अधिक शिलाएं वहां पर विद्यमान थीं, जिनकी प्रतिलिपि (नक़ल) उक्त संवत् में किसी पंडित ने पुस्तकाकार २२ पत्रों में की, जो मुझे मिल गई है[3]। उससे पाया जाता है कि पहले ४० श्लोकों में बप्प(बापा)वंशी हंमीर से मोकल तक का वर्णन है; तदनंतर फिर १ से श्लोकांक आरंभ कर १८७ श्लोकों में कुंभा का वर्णन किया है और अंत के ६ श्लोकों में प्रशस्तिकार तथा उसके वंश का परिचय है। उक्त प्रतिलिपि के लिखे जाने के समय भी कुछ शिलाएं नष्ट हो चुकी थीं, जिससे कुंभा के वर्णन के श्लोक ४३–१२४ तक जाते रहे; तिस पर भी जो कुछ अंश बचा वह भी इतिहास के लिये कम महत्त्व का नहीं है[4]।

७—वि० सं० १५१७ मार्गशीर्ष वदि ५ सोमवार की कुंभलगढ़ के मामादेव (कुंभस्वामी) के मन्दिर की प्रशस्ति[5]। यह प्रशस्ति बड़ी बड़ी ५ शिलाओं पर खुदवाई गई थी, जिनमें से पहली शिला पर ६४ श्लोक हैं और उसमें देवमन्दिर, जलाशय आदि मेवाड़ के पवित्र स्थानों का वर्णन है। दूसरी शिला का एक छोटासा टुकड़ामात्र उपलब्ध हुआ है। तीसरी शिला के प्रारंभ में प्राचीन जनश्रुतियों के आधार पर गुहिल, बापा आदि का वृत्तान्त दिया है; फिर श्लोक १३८ से १७९ तक प्राचीन शिलालेखों के आधार पर राजवंश की नामावली (गुहिल से)

---

(१) क; आ. स. इं, रि; जि० २३, प्लेट २०–२१।

(२) ॥ १८७ ॥ अनंतरवर्णनं [उत्तर]लघुपट्टिकायां अंकक्रमेण वेदितव्यं ॥ क; आ. स. इं. रिपोर्ट; जि० २३, प्लेट २१।

(३) ॥ इति प्रशस्तिः समाप्ता ॥ संवत् १७३५ वर्षे फाल्गुन वदि ७ गुरौ लिखितेयं प्रशस्तिः ॥ (हस्तलिखित प्रति से)।

(४) यह लेख अप्रकाशित है। इसकी बची हुई दोनों मूल शिलाएं कीर्तिस्तंभ की छत्री में विद्यमान हैं।

(५) इसकी बची हुई शिलाएं विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित हैं।

एवं रावल रत्नसिंह तक का वृत्तान्त और सीसोदे के लक्ष्मसिंह का वर्णन है। चौथी शिला में १८०वां श्लोक उक्त लक्ष्मसिंह के सात पुत्रों सहित मारे जाने के वर्णन में है। फिर हंमीर के पिता अरिसिंह के वर्णन के अनन्तर हंमीर से लगाकर महाराणा मोकल तक का वृत्तान्त श्लोक २३२ तक लिखा गया है। श्लोक २३३ से कुंभकर्ण का वृत्तान्त आरंभ होकर श्लोक २७० के साथ इस शिला की समाप्ति होती है। इन ३८ श्लोकों में कुंभा के विजय का वर्णन भी अपूर्ण ही रह जाता है। पांचवीं शिला बिलकुल नहीं मिली; उसमें कुंभा की शेष विजयों, उसके बनाये हुए मन्दिर, क़िले, जलाशय आदि स्थानों और उसके रचे हुए ग्रंथों आदि का वर्णन होना चाहिये। उस शिला के न मिलने से कुंभा का इतिहास अपूर्ण ही समझना चाहिये। इस प्रशस्ति की रचना किसने की, यह भी उक्त शिला के न मिलने से ज्ञात नहीं हो सकता, परंतु कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति के कुछ श्लोक इस प्रशस्ति में भी मिलते हैं, जिससे अनुमान होता है कि इस प्रशस्ति की रचना भी दशपुर (दशोरा) जाति के महेश कवि ने की हो। यदि इसकी रचना किसी दूसरे कवि ने की होती तो वह महेश के श्लोक उसमें उद्धृत न करता। उक्त दोनों प्रशस्तियों की समाप्ति का दिन भी एक ही है। कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति संक्षेप से है और कुंभलगढ़ की विस्तार से।

८—वि० सं० १५१७ मार्गशीर्ष वदि ५ सोमवार की कुंभलगढ़ की दूसरी प्रशस्ति। यह प्रशस्ति कम से कम दो बड़ी शिलाओं पर खुदी होगी। इसकी पहली शिलामात्र मिली है, जिसमें ६४ श्लोक हैं और महाराणा कुंभा के वर्णन का थोड़ासा अंश ही आया है और अंत में लिखा है कि आगे का वर्णन शिलाओं के अंकक्रम से जानना[1]।

९—आबू पर अचलगढ़ के जैन मंदिर में आदिनाथ की पीतल की विशाल मूर्ति के आसन पर खुदा हुआ वि० सं० १५१८ वैशाख वदि ४ का लेख[2]।

---

(१) यह प्रशस्ति कुछ बिगड़ गई है और अब तक अप्रकाशित है। मूल शिला उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में रक्खी गई है।

(२) संवत् १५१८ वर्षे वैशाखवदि ४ दिने मेदपाटे श्रीकुंभलमेरुमहादुर्गे राजाधिराजश्रीकुंभकर्णविजयराज्ये श्रीतपा[पक्षी]यश्रीसंघकारिते श्रीअर्बुदानीतपित्तलमयप्रौढश्रीआदिनाथमूलनायकप्रतिमालंकृते······ ······

महाराणा कुंभा को पिछले दिनों में कुछ उन्माद रोग हो गया था,[1] जिससे वह बहकी बहकी बातें किया करता था। एक दिन वह कुंभलगढ़ में मामादेव (कुंभस्वामी) के मन्दिर के निकटवर्ती जलाशय के तट पर बैठा हुआ था, उस समय उसके राज्यलोभी और दुष्ट

महाराणा की मृत्यु

(१) महाराणा कुंभा को उन्माद रोग होने के विषय में ऐसी प्रसिद्धि है कि एक दिन उसने एकलिंगजी के मन्दिर में दर्शन करने को जाते हुए उस मन्दिर के सामने एक गौ को जम्हाते हुए देखा, जिससे उसका चित्त उचट गया और कुंभलगढ़ आने पर वह 'कामधेनु तंडव करिय' पद का बार बार पाठ करने लगा। जब कोई इस विषय में पूछता, तो उसे यही उत्तर मिलता कि 'कामधेनु तंडव करिय'। सब सरदार आदि महाराणा के इस उन्माद रोग से बहुत घबराये। कुछ समय पूर्व महाराणा ने एक ब्राह्मण की इस भविष्यवाणी पर कि 'आप एक चारण के हाथ से मारे जावेंगे, सब चारणों को अपने राज्य से निकाल दिया था। एक चारण ने, जो गुप्तरूप से एक राजपूत सरदार के पास रहा करता था, उससे कहा कि मैं महाराणा का यह उन्माद रोग दूर कर सकता हूं। दूसरे दिन वह सरदार उसे भी अपने साथ दरबार में ले गया। जब अपने स्वभाव के अनुसार महाराणा ने वही पद फिर कहा, तब उस चारण ने मारवाड़ी भाषा का यह छप्पय पढ़ा—

जद धर पर जोवती दीठ नागोर धरंती
गायत्री संग्रहण देख मन मांहिं डरंती।
सुरकोटी तेतीस आण नीरन्ता चारो
नहिं चरंत पीवंत मनह करती हंकारो॥
कुम्भेण राण हणिया कलम आजस डर डर उतरिय।
तिण दीह द्वार शंकर तणै कामधेनु तंडव करिय॥ १॥

आशय—नागोर में गोहत्या होती देखकर गायत्री (कामधेनु) बहुत डर रही थी; तेतीस करोड़ देवता उसके लिये घास और पानी लाते थे, परन्तु वह न खाती और न पीती थी। जब से राणा कुंभा ने मुसलमानों ('कलम', कलमा पढ़नेवालों) को मारकर (नागोर को जीतकर) गौओं की रक्षा की, तब से गौ भी हर्षित होकर शंकर के द्वार पर तांडव करती है।

महाराणा यह छप्पय सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे कहा कि तू राजपूत नहीं, चारण है। उसने उत्तर दिया—"हां, मैं चारण हूं; आपने हम लोगों की जागीरें छीनकर हम निरपराधों को देश से निकाल दिया है, इसलिये यह प्रार्थना करने आया हूं कि कृपा कर हमें जागीर वापस देकर अपने देश में आने की आज्ञा प्रदान कीजिये"। कुंभा ने उसकी बात स्वीकार कर ली और वैसी ही आज्ञा दे दी। तब से महाराणा ने वह पद कहना तो छोड़ दिया, परन्तु उन्माद रोग बना ही रहा। वीरविनोद; भा० १, पृ० ३३३-३४।

पुत्र ऊदा (उदयसिंह) ने कटार से उसे अचानक मार डाला[1]। यह घटना वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में हुई।

कुंभा की सन्तति

महाराणा कुंभा के ग्यारह पुत्रों—उदयसिंह, रायमल, नगराज, गोपालसिंह, आसकरण, अमरसिंह, गोविन्ददास, जैतसिंह, महरावण, क्षेत्रसिंह और अचलदास—का होना भाटों की ख्यातों से पाया जाता है[2]। जावर के रमाकुंड के पासवाले रामस्वामी नामक विष्णु-मन्दिर की प्रशस्ति से पता लगता है कि उसकी एक पुत्री का नाम रमाबाई था, जिसका विवाह सोरठ (जूनागढ़) के यादव राजा मंडलीक (अन्तिम) के साथ हुआ था[3]।

कुंभलगढ़ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि महाराणा के बहुतसी स्त्रियां थीं,[4] जिनमें से दो के नाम कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति तथा गीतगोविन्द की महाराणा कुंभकर्ण-कृत रसिकप्रिया टीका में क्रमशः—कुंभल्लदेवी[5] और अपूर्वदेवी[6]—मिलते हैं।

---

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र १२, पृ० १। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३४।

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३५। मुहणोत नैणसी ने केवल पांच ही नाम दिये हैं—रायमल, ऊदा, नंगा (नगराज), गोयंद और गोपाल (मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ४, पृ० २)।

(३) श्रीचित्रकूटाधिपतिश्रीमहाराजाधिराजमहाराणाश्रीकुंभकर्णपुत्री श्रीजीर्णप्राकारे सोरठपतिमहारायारायश्रीमंडलीकभार्याश्रीरमाबाईप्रासादरामस्वामि···॥

जावर के रामस्वामी के मंदिर का वि० सं० १५५४ का शिलालेख।

(४) नानादिग्भ्यो राजकन्याः समेत्य
क्षोणीपालं कुंभकर्णं श्रयन्ते।······॥ २५१ ॥

(५) यस्यानंगकुतूहलैकपदवी कुंभल्लदेवी प्रिया ॥ १८० ॥

(६) महाराज्ञीश्रीअपूर्वदेवीहृदयाधिनाथेन महाराजाधिराजमहाराजश्रीकुंभकर्णमहीमहेन्द्रेण···········॥

गीतगोविंद; पृ० १७४।

भाटों की ख्यातों में महाराणा की राणियों के नाम—प्यारकुँवर, अपरमदे, हरकुँवर और नारंगदे मिलते हैं, जो विश्वासयोग्य नहीं हैं, क्योंकि इनमें उपर्युक्त दो में से एक का भी नाम नहीं है।

महाराणा कुंभा मेवाड़ की सीसोदिया शाखा के राजाओं में बड़ा प्रतापी हुआ। महाराणा सांगा के साम्राज्य की नींव डालनेवाला भी वही था। सांगा के बड़े गौरव का उल्लेख उसी के परम शत्रु बाबर ने अपनी दिनचर्या की पुस्तक 'तुज़ुके बाबरी' में किया, जिसके कारण वह बहुत प्रसिद्ध हो गया, परन्तु कुंभा के महत्त्व का वर्णन बहुधा उसके शिलालेखों में ही रह गया। वे भी किसी अंश में तोड़-फोड़ डाले गये और जो कुछ बचे, उनकी तरफ़ किसी ने दृष्टिपात भी न किया; इसी से कुंभा का वास्तविक महत्त्व लोगों के जानने में न आया। वस्तुतः कुंभा भी सांगा के समान युद्ध-विजयी, वीर और अपने राज्य को बढ़ानेवाला हुआ। इसके अतिरिक्त उसमें कई ऐसे विशेष गुण भी थे, जो सांगा में नहीं पाये जाते। वह विद्यानुरागी, विद्वानों का सम्मानकर्ता, साहित्यप्रेमी, संगीत का आचार्य, नाट्यकला में कुशल, कवियों का शिरोमणि, अनेक ग्रन्थों का रचयिता; वेद, स्मृति, दर्शन, उपनिषद् और व्याकरण आदि का विद्वान्, संस्कृतादि अनेक भाषाओं का ज्ञाता और शिल्प का पूर्ण अनुरागी तथा उससे विशेष परिचित था, जिसके साक्षिस्वरूप चित्तोड़ का दुर्ग, वहां का प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ, कुम्भस्वामी का मन्दिर, चितोड़ की सड़क और कुल दरवाज़े; एकलिंगजी का मन्दिर और उससे पूर्व का कुंभमण्डप; कुम्भलगढ़ का क़िला, वहां का कुंभस्वामी का देवालय; आबू पर अचलगढ़ का क़िला तथा कुम्भस्वामी का मन्दिर आदि अब तक विद्यमान हैं, जो प्राचीन शोधकों, शिल्पप्रेमियों और निरीक्षकों को मुग्ध कर देते हैं; इतना ही नहीं, किन्तु उक्त महाराणा की अतुल सम्पत्ति और वैभव का अनुमान भी कराते हैं। कुंभा के इष्टदेव एकलिंगजी (शिव) होने पर भी वह विष्णु का परम भक्त था और अनेक प्रकार[1] की विष्णु-मूर्तियों की कल्पना उसी के प्रतिमा-निर्माण-ज्ञान का फल है,

कुंभा का व्यक्तित्व

---

(१) चित्तोड़ के कुंभस्वामी के विशाल मंदिर के बाहरी ताकों में अधिक ऊंचाई पर भिन्न भिन्न हाथोंवाली कई प्रकार की विष्णु की मूर्तियां बनी हुई हैं, जो कुंभा की कल्पना से तैयार की गई हों, ऐसा अनुमान होता है। अनुमान तीस वर्ष पूर्व मैं अपने एक मित्र के साथ आबू पर अचलेश्वर के मंदिर के पासवाला विष्णुमंदिर (कुंभस्वामी का मंदिर) देख रहा था; उसमें न कोई मूर्ति थी और न शिलालेख। उसके मंडप के ऊंचे ताकों में विभिन्न प्रकार की विष्णुमूर्तियां देखकर मैंने उस मित्र से कहा कि यह मंदिर तो महाराणा कुंभा का बनवाया हुआ प्रतीत होता है। इसपर उसने पूछा कि ऐसा मानने के लिये क्या कारण है? मैंने उत्तर दिया कि ऊंचे ऊंचे ताकों में जो मूर्तियां हैं वे ठीक चित्तोड़ के कुंभस्वामी के मंदिर के ताकों की मूर्तियां

जिसका सम्यक् परिचय कीर्तिस्तम्भ के भीतर बनी हुई हिन्दुओं के समस्त देवी-देवताओं आदि की असंख्य मूर्तियां देखने से ही हो सकता है। वह प्रजापालक और सब मतों को समदृष्टि से देखता था। आबू पर जानेवाले जैन यात्रियों पर जो कर लगता था, उसे उठाकर उसने यात्रियों के लिये बड़ी सुगमता कर दी। उसके समय में उसकी प्रजा में से अनेक लोगों ने कई जैन, शिव और विष्णु आदि के मन्दिर बनवाये, जिनमें से कुछ अब तक विद्यमान हैं।

वह शरीर का हृष्ट-पुष्ट[1] और राजनीति तथा युद्धविद्या में बड़ा कुशल था। अपनी वीरता से उसने दिल्ली और गुजरात के सुलतानों का कितना एक प्रदेश अपने अधीन किया, जिसपर उन्होंने उसे छत्र भेट कर हिन्दु-सुरत्राण का खिताब दिया अर्थात् उसको हिन्दू बादशाह स्वीकार किया था। उसने कई बार मांडू और गुजरात के सुलतानों को हराया, नागोर को विजय किया, गुजरात और मालवे के सम्मिलित सैन्य को पराजित किया, और राजपूताने का अधिकांश एवं मांडू, गुजरात और दिल्ली के राज्यों के कुछ अंश छीनकर मेवाड़ को महाराज्य बना दिया।

उदयसिंह (ऊदा)

उदयसिंह अपने पिता महाराणा कुम्भा को मारकर वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में मेवाड़ के राज्य का स्वामी बना। राजपूताने के लोग पितृघाती को प्राचीन काल से ही 'हत्यारा' कहते और उसका मुख देखने से घृणा करते थे; इतना ही नहीं, किन्तु वंशावली-लेखक तो उसका नाम तक वंशावली में नहीं लिखते थे[2]। ठीक वैसा ही व्यवहार ऊदा के साथ भी हुआ। राजभक्त

जैसी हैं। एकलिंगजी से पूर्व का मीरांबाई का मंदिर (कुंभमण्डप) देखते हुए भी ठीक ऐसा ही प्रसंग उपस्थित हुआ था। पीछे से जब मुझे कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति की वि० सं० १७३५ की हस्तलिखित प्रति मिली, तब उसमें उक्त दोनों मंदिरों का कुंभा द्वारा निर्माण होना पढ़कर मुझे अपना अनुमान ठीक होने की बड़ी प्रसन्नता हुई।

(१) *भवानीपतिप्रसादपरिप्राप्तहृष्टशरीरशालिना ......।*

गीतगोविंद की टीका; पृ० १७४।

(२) अजमेर के चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि० सं० १२२६ के बीजोल्यां की चट्टान

सरदारों में से कोई अपने भाई और कोई अपने पुत्र को उसकी सेवा में भेजकर स्वयं उससे किनारा करने एवं उसको राज्यच्युत करने का उद्योग करने लगे। वह उनकी प्रीति सम्पादन करने का भरसक प्रयत्न करने लगा, परन्तु जब उसमें सफलता न हुई, तब उसने अपने पड़ोसियों को सहायक बनाने का उद्योग किया। इसके लिये उसने आबू का प्रदेश, जो कुम्भा ने ले लिया था, पीछा देवड़ों को दे दिया और अपने राज्य के कई परगने भी आसपास के राजाओं को दे दिये। इस कार्य से मेवाड़ के सरदार उससे और भी अप्रसन्न हुए और रावत चूंडा के पुत्र कांधल की अध्यक्षता में उन्होंने परस्पर सलाह कर उसके छोटे भाई रायमल को, जो अपनी सुसराल ईडर में था, राज्य लेने के लिये बुलाया। उधर से कुछ सैन्य लेकर वह ब्रह्मा की खेड़ तथा ऋषभदेव (केसरियानाथ) होता हुआ जावर (योगिनीपुर) के निकट आ पहुंचा; इधर से सरदार भी अपनी अपनी सेना सहित उससे जा मिले। जावर के पास की लड़ाई में रायमल की विजय हुई और वहां पर उसका अधिकार हो गया[1]। यहीं से रायमल के राज्य का प्रारम्भ समझना चाहिये। फिर दाड़िमपुर के पास घोर युद्ध हुआ, जहां रुधिर की नदी बही। वहां भी रायमल की विजय हुई और क्षेम नृपति मारा गया[2]। इस लड़ाई में उदयसिंह के

पर खुदे हुए बड़े लेख में अर्णोराज (आना) के पीछे उसके पुत्र विग्रहराज (वीसलदेव) का राजा होना और उसके बाद उसके बड़े भाई के पुत्र पृथ्वीराज (दूसरे, पृथ्वीभट) का राज्य पाना लिखा है (श्लोक १६ से २३ तक)। जब अर्णोराज के ज्येष्ठ पुत्र का बेटा विद्यमान था, तो वीसलदेव राजा कैसे बन गया, यह उस लेख से ज्ञात नहीं होता था; परंतु पृथ्वीराजविजय महाकाव्य से ज्ञात हुआ कि अर्णोराज को उसके ज्येष्ठ पुत्र ने, जिसका नाम उक्त पुस्तक में नहीं लिखा, मारा था (सर्ग ७, श्लोक १२-१३। नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग १, पृ० ३९४-९५)। इसी कारण बीजोल्यां के शिलालेख और पृथ्वीराजविजय के कर्ताओं ने उस पितृघाती (जगदेव) का नाम तक चौहानों की वंशावली में नहीं दिया।

(१) *योगिनीपुरगिरीन्द्रकन्दरं हीरहेममणिपूर्णमन्दिरं ।*
अध्यरोहदहितेषु केसरी राजमल्लजगतीपुरन्दरः ॥ ६३ ॥

महाराणा रायमल के समय की दक्षिण द्वार की प्रशस्ति; भावनगर इंस्क्रिप्शंस; पृ० १२१।

(२) *अवर्षत्संग्रमे सरभसमसौ दाडिमपुरे*
धराधीशस्तस्मादभवदनणुः शोणितसरित् ।

हाथी, घोड़े, नक्कारा और निशान रायमल के हाथ लगे। इसी प्रकार जावी और पानगढ़ की लड़ाइयों में भी विजयी होकर रायमल ने चित्तोड़ को जा घेरा[1]। बड़ी लड़ाई के बाद चित्तोड़ भी विजय हो गया[2] और उदयसिंह ने भागकर कुम्भलगढ़ की शरण ली। वहां भी उसका पीछा किया गया; मूर्ख उदयसिंह वहां से भी भागा[3] और रायमल का सारे मेवाड़ पर अधिकार हो गया।

यह घटना वि० सं० १५३० में हुई। इस विषय में एक कवि का कहा हुआ यह दोहा प्रसिद्ध है—

ऊदा बाप न मारजै, लिखियो लाभै राज।
देश बसायो रायमल, सर्‌यो न एको काज॥

स्खलन्मूलस्तु(?)लोपमितगरिमा क्षेमकुपतिः
पतन् तीरे यस्यास्तटविटपिवाटे विघटितः॥ ६४॥ वही; पृ० १२१।

क्षेम नृपति कौन था, यह उक्त प्रशस्ति से स्पष्ट नहीं होता, परंतु वह प्रतापगढ़वालों का पूर्वज और महाराणा कुंभा का भाई (क्षेमकर्ण) होना चाहिये। नैणसी के कथन से पाया जाता है कि राणा कुंभा के समय वह सादड़ी में रहता था और कुंभा से उसकी अनबन ही रही, जिससे वह उदयसिंह के पक्ष में रहा हो, यह संभव है। उसका पुत्र सूरजमल भी रायमल का सदा विरोधी रहा था।

(१) रायमल रासा। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३७।

(२) श्रीराजमल्लनृपतिर्नृपतीव्रतापातिग्मद्युतिः करनिरस्तखलांधकारः।
सच्चित्रकूटनगमिन्द्रहरिद्विरीन्द्रमाक्रामति स्म जवनाधिकवाजिवर्गैः॥६५॥

दक्षिण द्वार की प्रशस्ति; भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १२१।

(३) श्रीकर्णादित्यवंशं प्रमथपतिपरीतोषसंप्राप्तदेशं
पापिष्ठो नाधितिष्ठेदिति मुदितमना राजमल्लो महीन्द्रः।
तादृक्षोऽभूत् सपक्षं समरभुवि पराभूय मूढोदयाह्वं
निर्धास्या(या)ग्नेयमाशाभिमुखमभिमतैरग्रहीत्कुंभमेरुं॥ ६६॥

वही; पृ० १२१।

इस विषय में यह प्रसिद्ध है कि जब एक भी लड़ाई में उदयसिंह के पैर न टिक सके, तब उसके पक्षवालों ने उसका साथ छोड़कर रायमल से मिलने का विचार किया। तदनुसार रायमल के कुंभलगढ़ के निकट आने से पूर्व ही वे उसको शिकार के बहाने से क़िले से नीचे ले गये, जिससे रायमल ने क़िले पर सुगमता से अधिकार कर लिया।

आशय—उदयसिंह ! बाप को नहीं मारना चाहिये था। राज्य तो भाग्य में लिखा हो तभी मिलता है; देश का स्वामी तो रायमल हुआ और तेरा एक भी काम सिद्ध न हुआ।

उदयसिंह वहां से अपने दोनों पुत्रों—सैंसमल व सूरजमल—सहित अपनी सुसराल सोजत में जाकर रहा। वहां से कुछ समय बीकानेर में रहकर वह मांडू के सुलतान ग़यासशाह (ग़यासुद्दीन) ख़िलजी के पास गया[1] और उक्त सुलतान की सहायता से फिर मेवाड़ लेने की कोशिश करने लगा।

रायमल

महाराणा रायमल अपने भाई उदयसिंह से राज्य छीनकर वि० सं० १५३० (ई० स० १४७३) में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा।

सोजत आदि में रहता हुआ उदयसिंह अपने पुत्रों सहित सुलतान ग़यासशाह के समय मांडू में पहुंचा और मेवाड़ का राज्य पीछा लेने के लिये उससे सहायता मांगी। जब सुलतान ने उसको सहायता देना स्वीकार किया। तब उसने भी अपनी पुत्री का विवाह सुलतान से करने की बात कही। जब यह बातचीत कर वह अपने डेरे को लौट रहा था तब मार्ग में उसपर बिजली गिरी और वह वहीं मर गया[2]। उसके दोनों पुत्रों को मेवाड़ का राज्य दिलाने के विचार से सुलतान ने एक बड़ी सेना के साथ चित्तोड़ को आ घेरा। वहां बड़ा भारी युद्ध हुआ, जिसके

ग़यासशाह के साथ की लड़ाइयां

(१) वीरविनोद; भा० १, पृ० ३३८।

कर्नल टॉड ने लिखा है—'ऊदा दिल्ली के सुलतान के पास गया और उस (ऊदा) की मृत्यु के पीछे सुलतान उसके दोनों पुत्रों को साथ लेकर सिहाड़ (नाथद्वारा) आ पहुंचा। घासे के पास रायमल से लड़ाई हुई, जिसमें वह ऐसी बुरी तरह से हारा कि फिर मेवाड़ में कभी नहीं आया' (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३४०)। कर्नल टॉड ने दिल्ली के सुलतान का नाम नहीं दिया और यह सारा कथन भाटों की ख्यातों से लिया हुआ होने से विश्वसनीय नहीं है। उदयसिंह दिल्ली नहीं किन्तु मांडू के सुलतान के पास गया था, जिसके पुत्रों की सहायता के लिये सुलतान मेवाड़ पर चढ़ आया था।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३३६। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३८।

सम्बन्ध में एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की वि० सं० १५४५ की प्रशस्ति में इस तरह लिखा है—"इस भयंकर युद्ध में महाराणा ने शकेश्वर (सुलतान) ग्यास (ग़यासशाह) का गर्वगञ्जन किया[1]। वीरवर गौर[2] ने क़िले के एक शृंग (बुर्ज़) पर खड़े रहकर प्रतिदिन बहुतसे मुसलमानों को मारा, जिसके कारण महाराणा ने उस शृंग का नाम गौरशृंग रक्खा और वह (गौर) भी मुसलमानों के रुधिर-स्पर्श का दोष निवारण करने के लिये स्वर्ग-गंगा में स्नान करने को परलोक सिधारा[3]"। इस लड़ाई में हारकर ग़यासशाह मांडू को लौट गया।

---

(१) यंत्रायंत्रि हलाहलि प्रविचलद्दन्तावलव्याकुलं
वल्गद्वाजिबलक्रमेलककुलं विस्फारवीरारवं ।
त्वानं तुमुलं महासिहतिभिः श्रीचित्रकूटे गल–
द्गर्वं ग्यासशकेश्वरं व्यरचयत् श्रीराजमल्लो नृपः ॥ ६८ ॥

दक्षिण द्वार की प्रशस्ति; भावनगर इन्स्क्रिपूशंन्स; पृ० १२१।

(२) दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के श्लोक ६९ और ७१ में गौरसंज्ञक किसी वीर का ग़यासुद्दीन के कई सैनिकों को मारकर प्रशंसा के साथ मरने का उल्लेख है, परन्तु ७०वें श्लोक में चार दीर्घकाय गौर वीरों का वर्णन मिलता है, जिससे यह निश्चय नहीं हो सकता कि गौर किसी पुरुष का नाम था या शाखा विशेष का। 'मुसलमानों के रुधिर-स्पर्श के दोष से मुक्त होने के लिये स्वर्गगंगा में स्नान करना' लिखने से उसका क्षत्रिय होना निश्चित है। ऐसी दशा में सम्भव है कि प्रशस्तिकार पण्डित ने गौर शब्द का प्रयोग गौड़ नामक क्षत्रिय जाति के लिये किया हो। रायमल-रासे में ज़फ़रखां के साथ की मांडलगढ़ की लड़ाई में रघुनाथ नामक गौड़ सरदार का महाराणा की सेना में होना भी लिखा मिलता है।

(३) काश्चिद्गौरो वीरवर्यः शकौघं युद्धेमुष्मिन् प्रत्यहं संजहार ।
तस्मादेतन्नाम कामं बभार प्राकारांशश्चित्रकूटैकशृङ्गं ॥ ६९ ॥
मन्ये श्रीचित्रकूटाचलशिखरशिरोऽध्यासमासाद्य सद्यो
यद्योधो गौरसंज्ञो सुविदितमहिमा प्रापदुच्चैर्नभस्तत् ।
प्रध्वस्तानेकजाग्रच्छकविगलदसृक्पूरसंपर्कदोषं
निःशेषीकर्तुमिच्छुर्व्रजति सुरसरिद्वारिणि स्नातुकामः ॥ ७१ ॥

(भावनगर इन्स्क्रिपूशन्स; पृ० १२१)।

उक्त प्रशस्ति के ७२वें श्लोक में जहीरल को मारकर शत्रु-सैन्य के संहार करने का

ग़यासुद्दीन ने इस पराजय से लज्जित होकर फिर युद्ध की तैयारी कर अपने सेनापति ज़फ़रख़ां को बड़ी भारी सेना के साथ मेवाड़ पर भेजा। वह मेवाड़ के पूर्वी हिस्से को लूटने लगा, जिसकी सूचना पाते ही महाराणा अपने ५ कुंवर—पृथ्वीराज, जयमल, संग्रामसिंह, पत्ता (प्रताप) और रामसिंह—तथा कांधल चूंडावत (चूंडा के पुत्र), सारंगदेव अज्जावत, कल्याणमल (खींची?), पंवार राघव महपावत और किशनसिंह डोडिया आदि कई सरदारों[1] एवं बड़ी सेना के साथ मांडलगढ़ की तरफ़ बढ़ा। वहां ज़फ़रख़ां के साथ घमसान युद्ध हुआ, जिसमें दोनों पक्ष के बहुतसे वीर मारे गये और ज़फ़रख़ां हारकर मालवे को लौट गया। इस लड़ाई के प्रसंग में उपर्युक्त प्रशस्ति में लिखा है कि मेदपाट के अधिपति राजमल ने मंडलदुर्ग (मांडलगढ़) के पास जाफ़र के सैन्य का नाश कर शकपति ग्यास के गर्वोन्नत सिर को नीचा कर दिया[2]। वहां से रायमल मालवे की ओर बढ़ा, खैराबाद की लड़ाई में यवन-सेना को तलवार के घाट उतारकर मालववालों से दण्ड लिया और अपना यश बढ़ाया[3]।

इन लड़ाइयों के सम्बन्ध में फ़िरिश्ता ने अपनी शैली के अनुसार मौन धारण किया है, और दूसरे मुसलमान लेखकों ने तो यहां तक लिख दिया है कि

वर्णन है, परन्तु उसपर से यह निश्चय नहीं हो सकता कि वह कौन था। इमादुलमुल्क, ज़हीरुलमुल्क आदि मुसलमान सेनापतियों के उपनाम होते थे, अतएव वह ग़यासशाह का कोई सेनापति हो, तो आश्चर्य नहीं।

(१) रायमल रासा; वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३९-४१।

(२) मौलौ मंडलदुर्गमध्यधिपतिः श्रीमेदपाटावने—
श्रीहिंग्राहमुदारजाफरपरीवारोरुवीरव्रजं।
कंठच्छेदमाचिक्षिपत्क्षितितले श्रीराजमल्लो द्रुतं
ग्यासक्षोणिपतेः क्षणान्निपतिता मानोन्नता मौलयः॥ ७७॥

(दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १२१)।

(३) खैराबादतरून्विदार्य यवनस्कंधान्बिभिद्यासिभि—
र्दण्डान्मालवजान्बलादुपहरन् भिंदंश्च वंशान्द्विषां।
स्फूर्जत्संगरसूत्रभृद्भिरिधरासंचारिसेनांतरैः
कीर्तेर्मण्डलमुच्चकैर्व्यरचयत् श्रीराजमल्लो नृपः॥ ७८॥

वही; पृ० १२१।

गद्दी पर बैठने के बाद ग़यासुद्दीन सदा ऐश-इशरत में ही पड़ा रहा और महल से बाहर तक न निकला[1], परन्तु चित्तोड़ की लड़ाई में उसका विद्यमान होना महाराणा रायमल के समय की प्रशस्ति से सिद्ध है।

ग़यासशाह के पीछे उसका पुत्र नासिरशाह मांडू की सल्तनत का स्वामी हुआ। उसने भी मेवाड़ पर चढ़ाई की, जिसके विषय में फ़िरिश्ता लिखता है कि

नासिरशाह की चित्तोड़ पर चढ़ाई

"हि० स० ६०६ (वि० सं० १५६०=ई० स० १५०३) में नासिरुद्दीन (नासिरशाह) चित्तोड़ की ओर बढ़ा, जहां राणा से नज़राने के तौर बहुतसे रुपये लिये और राजा जीवनदास की, जो राणा के मातहतों में से एक था, लड़की लेकर मांडू को लौट गया। पीछे से उस लड़की का नाम 'चित्तोड़ी बेगम' रक्खा गया[2]"। नासिरशाह की इस चढ़ाई का कारण फ़िरिश्ता ने कुछ भी नहीं लिखा, तो भी संभव है कि ग़यासशाह की हार का बदला लेने के लिये वह चढ़ आया हो। इसका वर्णन शिलालेखों या ख्यातों में नहीं मिलता।

यह प्रसिद्ध है कि एक दिन कुंवर पृथ्वीराज, जयमल और संग्रामसिंह ने अपनी अपनी जन्मपत्रियां एक ज्योतिषी को दिखलाई; उन्हें देखकर उसने कहा

---

(१) बंब. गै; जि० १, भाग १, पृ० ३६२।

ख्यातों आदि में यह भी लिखा है—'एक दिन महाराणा सुलतान ग़यासुद्दीन के एक दूत से चित्तोड़ में विनयपूर्वक बातचीत कर रहे थे, ऐसे में कुंवर पृथ्वीराज वहां आ पहुंचा। महाराणा को उसके साथ इस प्रकार बातचीत करते हुए देखकर वह क्रुद्ध हुआ और उसने अपने पिता से कहा कि क्या आप मुसलमानों से दबते हैं कि इस प्रकार नम्रतापूर्वक बातचीत कर रहे हैं? यह सुनकर वह दूत क्रुद्ध हो उठ खड़ा हुआ और अपने डेरे पर आकर मांडू को लौट गया। वहां पहुंचकर उसने सारा हाल सुलतान से कहा, जो अपनी पूर्व की पराजयों के कारण जलता ही था; फिर यह सुनकर वह और भी क्रुद्ध हुआ और एक बड़ी सेना के साथ चित्तोड़ की ओर चला। इधर से कुंवर पृथ्वीराज भी, जो बड़ा प्रबल और वीर था, अपने राजपूतों की सेना सहित लड़ने को चला। मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा पर दोनों दलों में घोर युद्ध हुआ, जिसमें पृथ्वीराज ने विजयी होकर सुलतान को क़ैद कर लिया और एक मास तक चित्तोड़ में क़ैद रखने के पश्चात् दण्ड लेकर उसे मुक्त कर दिया (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३४१-४२)। इस कथन पर हम विश्वास नहीं कर सकते, क्योंकि इसका कहीं शिलालेखादि में उल्लेख नहीं मिलता; शायद यह भाटों की गढ़ंत हो।

(२) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २४३।

रायमल के कुंवरों में परस्पर विरोध

कि ग्रह तो पृथ्वीराज और जयमल के भी अच्छे हैं, परंतु राजयोग संग्रामसिंह के है, इसलिये मेवाड़ का स्वामी वही होगा। इसपर वे दोनों भाई संग्रामसिंह के शत्रु बन गये और पृथ्वीराज ने तलवार की हूल मारी, जिससे संग्रामसिंह की एक आंख फूट गई। ऐसे में महाराणा रायमल का चाचा सारंगदेव[1] आ पहुंचा। उसने उन दोनों को फटकार कर कहा कि तुम अपने पिता के जीते-जी ऐसी दुष्टता क्यों कर रहे हो? सारंगदेव के यह वचन सुनकर वे दोनों भाई शान्त हो गये और वह संग्रामसिंह को अपने निवासस्थान पर लाकर उसकी आंख का इलाज कराने लगा, परंतु उसकी आंख जाती ही रही। दिन-दिन कुंवरों में परस्पर का विरोध बढ़ता देखकर सारंगदेव ने उनसे कहा कि ज्योतिषी के कथन पर विश्वास कर तुम्हें आपस में विरोध न करना चाहिये। यदि तुम यह जानना ही चाहते हो कि राज्य किसको मिलेगा, तो भीमल गांव के देवी के मंदिर की चारण जाति की पुजारिन से, जो देवी का अवतार मानी जाती है, निर्णय करा लो। इस सम्मति के अनुसार वे तीनों भाई एक दिन सारंगदेव तथा अपने राजपूतों सहित वहां गये तो पुजारिन ने कहा कि मेवाड़ का स्वामी तो संग्रामसिंह होगा और पृथ्वीराज तथा जयमल दूसरों के हाथ से मारे जावेंगे। उसके यह वचन सुनते ही पृथ्वीराज और जयमल ने संग्रामसिंह पर शस्त्र उठाया। उधर से संग्रामसिंह और सारंगदेव भी लड़ने को खड़े हो गये। पृथ्वीराज ने संग्रामसिंह पर तलवार का वार किया, जिसको सारंगदेव ने अपने सिर पर ले लिया[2] और वह भी तलवार लेकर

(१) वीरविनोद में इस कथा के प्रसंग में सारंगदेव के स्थान पर सर्वत्र सूरजमल नाम दिया है, जो मानने के योग्य नहीं है, क्योंकि संग्रामसिंह का सहायक सारंगदेव ही था। सूरजमल के पिता क्षेमकर्ण की महाराणा कुंभकर्ण से सदा अनबन ही रही (नैणसी की ख्यात; पत्र २२, पृ० १) और दाड़िमपुर की लड़ाई में उदयसिंह के पक्ष में रहकर उसके मारे जाने के पीछे उसका पुत्र सूरजमल तो महाराणा का विरोधी ही रहा; इतना ही नहीं, किन्तु सादड़ी से लेकर गिरवे तक का सारा प्रदेश उसने बलपूर्वक अपने अधीन कर लिया था (वही; पत्र २२, पृ० १)। इसी कारण महाराणा रायमल को वह बहुत ही खटकता था, जिससे उसने अपने कुंवर पृथ्वीराज को उसे मारने के लिये भेजा था, जैसा कि आगे बतलाया जायगा। सूरजमल तो उक्त महाराणा की सेवा में कभी उपस्थित हुआ ही नहीं।

(२) इस विषय में नीचे लिखा हुआ दोहा प्रसिद्ध है—

पीथल खग हाथां पकड़, वह सांगा किय वार।
सांरग झेले सीस पर, उणवर साम उबार॥

झपटा। इस कलह में पृथ्वीराज सख्त घायल होकर गिरा और संग्रामसिंह भी कई घाव लगने के पीछे अपने प्राण बचाने के लिये घोड़े पर सवार होकर वहां से भाग निकला, उसको मारने के लिये जयमल ने पीछा किया। भागता हुआ संग्रामसिंह सेवंत्री गांव में पहुंचा, जहां राठोड़ बीदा जैतमालोत (जैतमाल का वंशज[1]) रूपनारायण के दर्शनार्थ आया हुआ था। उसने सांगा को खून से तर-बतर देखकर घोड़े से उतारा और उसके घावों पर पट्टियां बांधीं; इतने में जयमल भी अपने साथियों सहित वहां आ पहुंचा और बीदा से कहा कि सांगा को हमारे सुपुर्द कर दो, नहीं तो तुम भी मारे जाओगे। वीर बीदा ने अपनी शरण में लिये हुए राजकुमार को सौंप देने की अपेक्षा उसके लिये लड़कर मरना क्षात्रधर्म समझकर उसे तो अपने घोड़े पर सवार कराकर गोड़वाड़ की तरफ़ रवाना कर दिया और स्वयं अपने भाई रायपाल तथा बहुतसे राजपूतों सहित जयमल से लड़कर वीरगति को प्राप्त हुआ। तब जयमल को निराश होकर वहां से लौटना पड़ा[2]। कुछ दिनों में पृथ्वीराज और सारंगदेव के घाव भर गये। जब महाराणा रायमल ने यह हाल सुना, तब पृथ्वीराज को कहला भेजा कि दुष्ट, मुझे मुंह मत दिखलाना, क्योंकि मेरी विद्यमानता में तूने राज्य-लोभ से ऐसा क्लेश बढ़ाया और मेरा कुछ भी लिहाज़ न किया। इससे लज्जित होकर पृथ्वीराज कुम्भलगढ़ में जा रहा[3]।

(१) मारवाड़ के राठोड़ों के पूर्वज राव सलखा के चार पुत्रों में से दूसरा जैतमाल था, जिसके वंशज जैतमालोत कहलाये। उस (जैतमाल) के पीछे क्रमशः बैजल, कांधल, ऊदल और मोकल हुए। मोकल ने मोकलसर बसाया। मोकल का पुत्र बीदा था, जो मोकलसर से रूपनारायण के दर्शनार्थ आया हुआ था। उसके वंश में इस समय केलवे का ठाकुर उदयपुर राज्य के दूसरी श्रेणी के सरदारों में है।

(२) रूपनारायण के मन्दिर की परिक्रमा में राठोड़ बीदा की छत्री बनी हुई है, जिसमें तीन स्मारक-पत्थर खड़े हुए हैं। उनमें से तीसरे पर का लेख बिगड़ जाने से स्पष्ट पढ़ा नहीं जाता। पहले पर के लेख का आशय यह है कि वि० सं० १५६१ ज्येष्ठ वदि ७ को महाराणा रायमल के कुंवर संग्रामसिंह के लिये राठोड़ बीदा अपने राजपूतों सहित काम आया। दूसरे पर का लेख भी उसी मिती का है और उसमें राठोड़ रायपाल का कुंवर संग्रामसिंह के लिये काम आना लिखा है। इन दोनों लेखों से निश्चित है कि सेवंत्री गांववाली घटना वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) में हुई थी।

(३) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३४५।

जब लल्लाखां पठान ने सोलंकियों से टोड़ा (जयपुर राज्य में) और उसके आसपास का इलाक़ा छीन लिया, तब सोलंकी राव सुरताण हरराजोत

टोड़े के सोलंकियों का मेवाड़ में आना और कुंवर जयमल का मारा जाना

(हरराज का पुत्र) महाराणा रायमल के पास चित्तोड़ में उपस्थित हुआ। महाराणा ने प्राचीन वंश के उस सरदार को बदनोर का इलाक़ा जागीर में देकर अपना सरदार बनाया। उस सोलंकी सरदार की पुत्री[1] तारादेवी के सौन्दर्य का हाल सुनकर महाराणा के कुंवर जयमल ने राव सुरताण से कहलाया कि आपकी पुत्री बड़ी सुन्दरी सुनी जाती है, इसलिये आप मुझे पहले उसे दिखला दो तो मैं उससे विवाह कर लूं। इसपर राव ने कहलाया कि राजपूत की पुत्री पहले दिखलाई नहीं जाती; यदि आप उससे विवाह करना चाहें, तो हमें स्वीकार है। यह सुनकर घमंडी जयमल ने कहलाया कि जैसा मैं चाहता हूं वैसा ही आपको करना होगा। इसपर राव सुरताण ने अपने साले रतनसिंह को भेजकर कहलाया कि हम विदेशी राजपूतों को आपके पिता ने आपत्ति के समय में शरण दी है, इसलिये हम नम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि आपको ऐसा विचार नहीं करना चाहिये। परंतु जयमल ने उसके कथन पर कुछ भी ध्यान न देकर बदनोर पर चढ़ाई की तैयारी कर दी। यह सारा वृत्तान्त सांखले रतनसिंह ने अपने बहनोई राव सुरताण से कह दिया, जिसपर सुरताण ने महाराणा का नमक खाने के लिहाज़ से कुंवर से लड़ना अनुचित समझकर कहीं अन्यत्र चले जाने के विचार से अपना सामान छकड़ों में भरवाकर बदनोर से सकुटुंब प्रस्थान कर दिया। उधर से जयमल भी अपनी सेना सहित बदनोर पहुंचा, परंतु कस्बा राजपूतों से खाली देखकर राव सुरताण के पीछे लगा। रात्रि हो जाने के कारण मशालों की रोशनी साथ लेकर वह आगे बढ़ा और बदनोर से सात कोस दूर आकड़सादा गांव के निकट सुरताण के साथियों के पास जा पहुंचा। मशालों की रोशनी देखकर राव सुरताण की ठकुराणी सांखली ने अपने भाई रतनसिंह से कहा कि शत्रु निकट आ गया है। यह सुनते ही उसने अपना घोड़ा पीछा फिराया और वह तुरन्त ही जयमल की सेना में जा पहुंचा। मशालों की रोशनी से घोड़ों के रथ में बैठे हुए जयमल

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ६१, पृ० २। टॉ; रॉ; जि० २, पृ० ७८२।

को पहचानकर उसके पास जाते ही 'कुंवरजी, सांखला रतना का मुजरा पहुंचे', कहकर उसने अपने बर्छे से उसका काम तमाम कर डाला जिसपर जयमल के राजपूतों ने रतनसिंह को भी वहीं मार डाला। जयमल और रतनसिंह की दाह-क्रिया दूसरे दिन वहीं हुई। जयमल ने यह झगड़ा महाराणा की आज्ञा के बिना किया था, यह जानने पर राव सुरताण पीछा बदनोर चला गया और वहां से महाराणा की सेवा में सारा वृत्तान्त लिख भेजा। उसको पढ़कर महाराणा ने यही फ़रमाया कि राव सुरताण निर्दोष है; सारा दोष जयमल का ही था, जिसका उचित दण्ड उसे मिल गया[1]। ऐसे विचार जानने पर सुरताण ने महाराणा की न्यायपरायणता की बड़ी प्रशंसा की, परंतु जयमल के मारे जाने का दुःख उसके चित्त पर बना ही रहा।

सुरताण ने पराधीनता में रहना पसन्द न कर यह निश्चय किया कि अब तो अपनी पुत्री का विवाह ऐसे पुरुष के साथ करना चाहिये जो मेरे बाप-दादों का निवास-स्थान टोड़ा मुझे पीछा दिला दे। उसका यह विचार जानने पर कुंवर पृथ्वीराज ने तारादेवी के साथ विवाह कर लिया; फिर टोड़े पर चढ़ाई कर[2] लल्लाखां को मार डाला[3] और टोड़े का राज्य पीछा राव सुरताण को दिला दिया। अजमेर का मुसलमान सूबेदार (मल्लूखां) पृथ्वीराज की चढ़ाई का हाल सुनते ही लल्लाखां की मदद के लिये चढ़ा, परंतु पृथ्वीराज ने उसे भी जा दबाया

कुंवर पृथ्वीराज का राव सुरताण को टोड़ा पीछा दिलाना

(१)) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३४५–४६। रायसाहब हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० २४–२५।

२) इस विषय में नीचे लिखे हुए प्राचीन पद्य प्रसिद्ध हैं—

(अ)—भाग लल्ला प्रथिराज आयो
सिंहरे साथ रे स्याल ब्यायो।

(आ)—द्रड चढ़े पृथिमल्ल भाजे टोड़ो
लल्ला तणैं सर धारे लोह।

रायसाहब हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० २७–२८।

(३) इस लड़ाई में वीरांगना ताराबाई भी घोड़े पर सवार होकर सशस्त्र लड़ने को गई थी, ऐसा कर्नल टॉड आदि का कथन है। (टॉ; रा; जि० २, पृ० ७८३। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० २७–२८)।

और लड़ाई में उसे मारकर अजमेर के क़िले (गढ़बीठली) पर अधिकार करने के बाद वह कुम्भलगढ़ को लौट गया[1]।

सारंगदेव की अच्छी सेवा देखकर महाराणा ने उसको कई लाख की आय की भैंसरोड़गढ़ की जागीर दी थी[2]। कुंवर सांगा का पक्ष करने के कारण

सारंगदेव का सूरजमल से मिल जाना

भीमल गांव के कलह के समय से ही कुंवर पृथ्वीराज उसका शत्रु बन गया था, जिससे वह उससे भैंसरोड़गढ़ छीनना चाहता था। इसलिये उसने महाराणा को लिखा कि आपने सारंगदेव को पांच लाख की जागीर दे दी है; अगर इसी तरह छोटों को इतनी बड़ी जागीर मिलती, तो आपके पास मेवाड़ का कुछ भी हिस्सा न रहता। इसपर महाराणा ने कुंवर को लिखा कि हम तो उसे भैंसरोड़गढ़ दे चुके; अगर तुम इसे अनुचित समझते हो, तो आपस में समझ लो। यह सूचना पाते ही पृथ्वीराज ने २००० सवारों के साथ भैंसरोड़गढ़ पर चढ़ाई कर दी[3]। रावत सारंगदेव क़िले से भाग निकला। इस प्रकार बिना किसी कारण के अपनी जागीर छिन जाने से वह सूरजमल का सहायक बन गया।

महाराणा के विरुद्ध होकर सूरजमल ने बहुतसा इलाक़ा दबा लिया था और सारंगदेव भी उससे जा मिला। फिर वे दोनों मांडू के सुलतान नासिरुद्दीन[4]

सूरजमल और सारंगदेव के साथ लड़ाई

के पास मदद लेने के लिये पहुंचे। कवि गंगाराम-कृत 'हरिभूषण महाकाव्य' से पाया जाता है कि महाराणा रायमल ने एक दिन दरबार में कहा कि महाबली सूर्यमल के कारण मुझको

---

(१) वीरविनोद; भा० १, पृ० ३४६–४७। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० २५–२८। टॉ; रॉ; जि० २, पृ० ७८३–८४।

(२) वीरविनोद में सूरजमल और सारंगदेव दोनों को भैंसरोड़गढ़ की जागीर देना लिखा है (भाग १, पृ० ३४७), जो माना नहीं जा सकता, क्योंकि प्रथम तो दो भिन्न भिन्न पुरुषों को एक ही जागीर नहीं दी जाती थी और दूसरी बात यह कि सूरजमल कभी महाराणा के पास आया ही नहीं। वह तो सदा विरोधी ही बना रहा था (देखो ऊपर पृ० ६४३, टि० १)।

(३) वीरविनोद; भा० १, पृ० ३४७।

(४) कर्नल टॉड ने लिखा है कि सूरजमल और सारंगदेव दोनों मालवे के सुलतान मुज़फ़्फ़र के पास गये और उसकी सहायता से उन दोनों ने मेवाड़ के दक्षिणी भाग पर हमला कर सादड़ी, बाठरड़ा, और नाई से नीमच तक का सारा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया (टॉ; रॉ; जि० १, पृ० ३४५)। कर्नल टॉड का यह कथन ज्यों-का-त्यों मानने योग्य नहीं है

इतना दुःख है कि उसके जीते-जी मुझे यह राज्य भी प्रिय नहीं है। उसके इस कथन पर जब कोई सरदार सूर्यमल को मारने को तैयार न हुआ, तो पृथ्वीराज ने उसको मारने का बीड़ा उठाया[1]। इधर से सूर्यमल और सारंगदेव भी मांडू के सुलतान से सेना की सहायता लेकर चित्तोड़ की ओर रवाना हुए। इनके आने का समाचार सुनकर महाराणा रायमल लड़ने को तैयार हुआ। गंभीरी नदी (चित्तोड़ के पास) पर दोनों सेनाओं का घोर संग्राम हुआ। उस समय महाराणा की सेना थोड़ी होने के कारण संभव था कि पराजय हो जाती; इतने में पृथ्वीराज भी कुंभलगढ़ से एक बड़ी सेना के साथ आ पहुंचा और लड़ाई का रंग एकदम बदल गया। दोनों पक्ष के बहुतसे वीर मारे गये और स्वयं

क्योंकि उक्त नाम का मालवे में कोई सुलतान हुआ ही नहीं। संभव है, ग़यासशाह के सेनापति ज़फ़रख़ां को मुज़फ़्फ़र समझकर उसको मालवे का सुलतान मान लिया हो। सादड़ी का प्रदेश तो क्षेमकरण और सूरजमल के अधिकार में ही था।

(१) एकदा चित्रकूटेशो रायमल्लोऽतिवीर्यवान्।
सिंहासनसमारूढो वीरालंकृतसंसदि ॥ १८ ॥
इत्यूचे वचनं क्रुद्धो रायमल्लः प्रतापवान्।
मदाज्ञाबीटिकां वीरः कोऽपि गृह्णातु सत्वरं ॥ १९ ॥
उत्थाय च ततो भूपैरनेकैर्नामितं शिरः।
वद नाथ महावीर दुर्विनेयोऽस्ति कोऽपि चेत् ॥ २० ॥
अवोचदिति विज्ञप्तः सूर्यमल्लो महाबलः।
व्यथयत्येव मर्माणि श्रुत एव न संशयः ॥ २१ ॥
न राज्यं रोचते मह्यं न पुत्रा न च बांधवाः।
न स्त्रियोऽप्यसवो यावत्तस्मिञ्जीवति भूपतौ ॥ २३ ॥
वीरैः कैश्चिद्वचस्तस्य श्रुतमप्यश्रुतं कृतं।
अन्यैरन्यप्रसंगेन परैरपरदर्शनात् ॥ २४ ॥
तदात्मजो महावीरः पृथ्वीराजो रणाग्रणीः।
तेनोत्थाय नमस्कृत्य बीटिका याचिता ततः ॥ २७ ॥
अवश्यं मारणीयो मे सूर्यमल्लो महाबली।
निराधारोऽपि नालीकः सपक्षो ···· ······॥ २८ ॥ (सर्ग २)

महाराणा के २२ घाव लगे। कुंवर पृथ्वीराज, सूरजमल और सारंगदेव भी घायल हुए। शाम होने पर दोनों सेनाएं अपने अपने पड़ाव को लौट गईं।

महाराणा के ज़ख़्मों पर मरहम-पट्टी करवाकर पृथ्वीराज रात को घोड़े पर सवार हो सूरजमल के डेरे पर पहुंचा। सूरजमल के घावों पर भी पट्टियां बँधी थीं, तो भी उसको देखते ही वह उठ खड़ा हुआ, जिससे उसके कुछ घाव खुल गये। इन दोनों में परस्पर नीचे लिखी बातचीत हुई—

पृथ्वीराज—काकाजी, आप प्रसन्न तो हैं?

सूरजमल—कुंवर, आपके आने से मुझे विशेष प्रसन्नता हुई।

पृथ्वीराज—काकाजी, मैं भी महाराणा के घावों पर पट्टियां बँधवाकर आया हूं।

सूरजमल—राजपूतों का यही काम है।

पृथ्वीराज—काकाजी, स्मरण रखिये कि मैं आपको भाले की नोक जितनी भूमि भी न रखने दूंगा।

सूरजमल—मैं भी आपको एक पलंग जितनी भूमि पर शान्ति से शासन न करने दूंगा।

पृथ्वीराज—युद्ध के समय कल फिर मिलेंगे, सावधान रहिये।

सूरजमल—बहुत अच्छा।

इस तरह बातचीत करके पृथ्वीराज लौट आया।

दूसरे दिन सवेरे ही युद्ध आरंभ हुआ। सारंगदेव के ३५ तथा कुंवर पृथ्वीराज के ७ घाव लगे, सूरजमल भी बुरी तरह घायल हुआ और सारंगदेव का ज्येष्ठ पुत्र लिंबा मारा गया। सूरजमल और सारंगदेव को उनके साथी राजपूत वहां से अपने डेरों पर ले गये और पृथ्वीराज भी महाराणा के पास उसी अवस्था में गया। चित्तोड़ की इस लड़ाई में परास्त होने के पश्चात् लौटकर सूरजमल सादड़ी में और सारंगदेव बाठरडे में रहने लगा।

एक दिन सारंगदेव से मिलने के लिये सूरजमल बाठरड़े गया; उसी दिन एक हज़ार सवार लेकर कुंवर पृथ्वीराज भी वहां जा पहुंचा। रात का समय होने से सब लोग गांव का 'फलसा'(१) बन्द करके आग जलाकर निश्चिन्त ताप रहे थे। पृथ्वीराज फलसा तोड़कर भीतर घुस गया; उधर से राजपूतों ने भी

(१) कांटे और लकड़ियों के बने हुए फाटक को फलसा कहते हैं।

तलवारें सम्भालीं और युद्ध होने लगा। पृथ्वीराज को देखते ही सूरजमल ने कहा—'कुंवर, हम तुम्हें मारना नहीं चाहते, क्योंकि तुम्हारे मारे जाने से राज्य डूबता है, मुझपर तुम शस्त्र चलाओ'। यह सुनते ही पृथ्वीराज लड़ाई बन्दकर घोड़े से उतरा और उसने पूछा—'काकाजी, आप क्या कर रहे थे?' सूरजमल ने उत्तर दिया—'हम तो यहां निश्चिन्त होकर ताप रहे थे, पृथ्वीराज ने कहा—'मेरे जैसे शत्रु के होते हुए भी क्या आप निश्चिन्त रहते हैं? उसने कहा—'हां'।

दूसरे दिन सुबह होते ही सूरजमल तो सादड़ी की तरफ़ चला गया और सारंगदेव को पृथ्वीराज ने कहा कि देवी के मन्दिर में दर्शन करने को चलें। वे दोनों वहां पहुंचे और बलिदान हुआ। अब तक भी पृथ्वीराज उन घावों को नहीं भूला था, जो पहली लड़ाई में सारंगदेव के हाथ से उसके लगे थे। दर्शन करते समय अवसर देख उसने कमर से कटार निकालकर सारंगदेव की छाती में प्रहार कर दिया। गिरते-गिरते सारंगदेव ने भी तलवार का वार किया, परन्तु उसके न लगकर वह देवी के पाट पर जा लगी। सारंगदेव को मारकर पृथ्वीराज सूरजमल के पास सादड़ी पहुंचा और उससे मिलकर अन्तःपुर में गया, जहां उसने अपनी काकी से मुजरा कर कहा कि मुझे भूख लगी है। उसने भोजन तैयार करवाकर सामने रक्खा। भोजन के समय सूरजमल भी उसके साथ बैठ गया। यह देखते ही सूरजमल की स्त्री ने आकर, जिसमें विष मिलाया था, उस कटोरे को उठा लिया। इसपर पृथ्वीराज ने सूरजमल की ओर देखा, तो उसने कहा कि मैं तो तेरा चाचा हूं, इसलिये रक्त-सम्बन्ध से अपने भतीजे की मृत्यु को नहीं देख सकता, लेकिन तेरी काकी को तेरे मरने का क्या दुःख, इसी से उसने ऐसा किया है। यह सुनकर पृथ्वीराज ने कहा कि काकाजी, अब मेवाड़ का सारा राज्य आपके लिये हाज़िर है। इसके उत्तर में सूरजमल ने कहा कि अब मेवाड़ की भूमि में जल पीने की भी मुझे शपथ है। यह कहकर सूरजमल ने वहां से चलने की तैयारी की। पृथ्वीराज ने बहुत रोका, परन्तु उसने एक न सुनी और कांठल में जाकर नया राज्य स्थापित किया, जो अब प्रतापगढ़ नाम से प्रसिद्ध है[1]। फिर महाराणा ने सारंगदेव के पुत्र जोगा को मेवल में बाठरड़ा आदि की जागीर देकर संतुष्ट कर दिया।

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३४५-४७। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३४७-४६। राय साहिब हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० ३४-४१।

राण या राणक (भिणाय, अजमेर ज़िले में) में सोलंकी रहते थे। वहां से भोज या भोजराज नाम का सोलंकी सिरोही राज्य के लास (लांछ) गांव में जो मगरे के पास है जा रहा। सिरोही के राव लाखा और भोज के बीच अनबन हो गई और कई लड़ाइयों के बाद सोलंकी भोज मारा गया, जिससे उसका पुत्र रायमल और पौत्र शंकरसी, सामन्तसी,[1] सखरा तथा भाण वहां से भागकर महाराणा रायमल के पास कुंभलगढ़ पहुंचे। उनका सारा हाल सुनकर कुंवर पृथ्वीराज की सम्मति के अनुसार उनसे कहा गया कि हम तुम्हें देसूरी की जागीर देते हैं, तुम मादड़ेचों को मारकर उसे ले लो। इसपर सोलंकी रायमल ने निवेदन किया कि मादड़ेचे तो हमारे सम्बन्धी हैं, हम उन्हें कैसे मारें? उत्तर में महाराणा ने कहा कि अगर कोई ठिकाना लेना है, तो यही करना होगा; देसूरी के सिवा और कोई ठिकाना हमारे पास देने को नहीं है। तब लाचार होकर सोलंकियों ने यह मंज़ूर कर एकाएक मादड़ेचों पर हमला किया और उनको मारकर उसे ले लिया। जब सोलंकी रायमल महाराणा को मुजरा करने आया तो उसे १४० गावों के साथ देसूरी का पट्टा भी दिया गया[2]।

लांछ के सोलंकियों का मेवाड़ में आना

महाराणा कुंभा की राजकुमारी रमाबाई (रामाबाई) का विवाह गिरनार (सोरठ--काठियावाड़ का दक्षिणी विभाग) के यादव (चूड़ासमा) राजा मंडलीक (अन्तिम) के साथ हुआ था[3]। मेवाड़ के भाटों की ख्यातों तथा वीरविनोद से पाया जाता है कि 'रमाबाई और उसके पति के बीच अनबन हो जाने के कारण वह उसको दुःख दिया करता था[4]। इसकी ख़बर मिलने पर कुंवर पृथ्वीराज अपनी सेना सहित गिरनार पहुंचा और महल में सोते हुए मंडलीक को जा दबाया। ऐसी स्थिति में

रमाबाई का मेवाड़ में आना

(१) इस समय शंकरसी के वंश में जीलवाड़े के और सामन्तसी के वंश में रूपनगर के सरदार हैं।

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३४५। मेरा सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० १९६, और देखो ऊपर पृ० २२७।

(३) देखो ऊपर पृ० ३६४, टि० २।

(४) मंडलीक दुराचारी था और एक चारण के पुत्र की स्त्री पर बलात्कार करने की लंबी चौड़ी कथा मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में लिखी है, जिसमें उसका महमूद बेगड़े से हारकर राज्यच्युत होना और मुसलमान बनना भी लिखा है (पत्र १२१)।

उससे कुछ न बन पड़ा और वह पृथ्वीराज से प्राण-भिक्षा मांगने लगा, जिसपर उसने उसके कान का एक कोना काटकर उसे छोड़ दिया। फिर वह रमाबाई को अपने साथ ले आया, उस(रमाबाई)ने अपनी शेष आयु मेवाड़ में ही व्यतीत की। महाराणा रायमल ने उसे खर्च के लिये जावर का परगना दिया। जावर में रमाबाई ने विशाल रामकुंड और उसके तट पर रामस्वामी का एक सुन्दर विष्णुमन्दिर बनवाया, जिसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १५५४ चैत्र शुक्ला ७ रविवार को हुई। उस समय महाराणा ने राजा मंडलीक को भी निमंत्रित किया था[1]"।

ऊपर लिखे हुए वृत्तांत में से कुंवर पृथ्वीराज का गिरनार जाकर राजा मंडलीक को प्राणभिक्षा देना तथा रामस्वामी के मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय मंडलीक को मेवाड़ में बुलाना, ये दोनों बातें भाटों की गढ़न्त ही हैं, क्योंकि गिरनार का राजा अंतिम मंडलीक गुजरात के सुलतान महमूद बेगड़े से हारने के पश्चात् हि० स० ८७६ (वि० सं० १५२८=ई० स० १४७१) में मुसलमान हो गया था[2] तथा हि० स० ८७७ (वि० सं० १५२६=ई०स० १४७२) के आसपास—अर्थात् रायमल के राज्य पाने से पूर्व—उसका देहान्त भी हो चुका था[3]। संभव तो यही है कि राज्यच्युत होकर मंडलीक के मुसलमान बनने या मरने पर रमाबाई मेवाड़ में आ गई हो। रमाबाई ने कुंभलगढ़ पर दामोदर का मन्दिर,

---

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३४६-५०। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ३१-३३।

(२) सी० मेबेल डफ़; क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इण्डिया; पृ० २६१। बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० १६० और १८३। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ५६।

कर्नल टॉड ने दिल्ली के सुलतान के साथ की घासा गांव के पास की रायमल की लड़ाई में गिरनार के राजा (मंडलीक) का उसकी सहायतार्थ लड़ने को आना और रायमल का अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करना लिखा है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३४०), जो मानने के योग्य नहीं है, क्योंकि न तो रायमल की दिल्ली के सुलतान से लड़ाई हुई और न उसकी पुत्री का विवाह गिरनार के राजा के साथ हुआ था। संभव है, कर्नल टॉड ने भूल से रायमल की बहिन के स्थान में उसकी पुत्री लिख दिया हो।

(३) फ़ारसी तवारीख़ों से पाया जाता है कि मंडलीक का राज्य छिन जाने और उसके मुसलमान होने के बाद उसको थोड़ीसी जागीर दी गई थी। उसका भतीजा भापत (भोपत) ई० स० १४७२ (वि० सं० १५२६) में उस जागीर का स्वामी हुआ था, ऐसा माना जाता है (सी० मेबेल डफ़; क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इण्डिया; पृ० २८४)।

कुंडेश्वर के मन्दिर से दक्षिण की पहाड़ी के नीचे एक सरोवर तथा योगिनीपत्तन (जावर) में रामकुंड और रामस्वामी नामक मन्दिर बनवाया था[1]।

काठियावाड़ के हलवद राज्य का स्वामी झाला राजसिंह (राजधर) था। उसके पुत्र—अज्जा और सज्जा—भ्रातृकलह के कारण वि० सं० १५६३ (ई० स० १५०६) में मेवाड़ में चले आये, तब महाराणा रायमल[2] ने उनको अपने पास रक्खा और अपना सरदार बनाया। उन दोनों भाइयों के वंश में पांच ठिकाने—प्रथम श्रेणी के उमरावों में सादड़ी, देलवाड़ा तथा गोगुंदा (मोटा गांव), और दूसरी श्रेणी के सरदारों में ताणा व झाड़ोल—अभी तक मेवाड़ में मौजूद हैं[3]।

झालों का मेवाड़ में आना

पृथ्वीराज की बहिन आनंदाबाई का विवाह सिरोही के राव जगमाल के साथ हुआ था; वह दूसरी राणियों के कहने में आकर उसको बहुत दुःख दिया करता था। इसपर उसके भाई पृथ्वीराज ने सिरोही जाकर अपनी बहिन का दुःख मिटा दिया। जगमाल ने अपने वीर साले का बहुत सत्कार किया, परन्तु सिरोही से कुंभलगढ़ लौटते समय विष मिली हुई तीन गोलियां उसको देकर कहा कि बंधेज की ये गोलियां बहुत अच्छी हैं, कभी इनको आज़माना। सरलहृदय पृथ्वीराज ने कुंभलगढ़

पृथ्वीराज की मृत्यु

(१) *श्रीमत्कुंभनृपस्य दिग्गजरदातिक्रांतकीर्त्यंबुधेः*
कन्या यादववंशमंडनमणिश्रीमंडलीकप्रिया ॥······॥ १ ॥
श्रीमत्कुंभलमेरुदुर्गशिष(ख)रे दामोदरं मंदिरं
श्रीकुंडेश्वरदक्ष(क्षि)णाश्रितगिरेस्तीरे सरः सुंदरं ।
श्रीमद्भूरिमहाब्धिसिंधुभुवने श्रीयोगिनीपत्तने
भूयः कुंडमचीकरत्किल रमा लोकत्रये कीर्तये ॥ २ ॥

(जावर के रामस्वामी के मन्दिर की प्रशस्ति)।

अनुमान तीस वर्ष पूर्व जब मैंने इस प्रशस्ति की छाप तैयार की, उस समय यह अखंडित थी; परन्तु तीन वर्ष पूर्व फिर मैंने इसे देखा, तो इसके टुकड़े टुकड़े ही मिले।

(२) अज्जा और सज्जा के महाराणा रायमल के पास चले आने का कारण यह है कि उक्त महाराणा ने उनकी बहिन रतनकुंवर से विवाह किया था (बड़वा देवीदान की ख्यात। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० ३८-३९)।

(३) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३९३।

के निकट पहुंचने पर वे गोलियां खाईं, जिससे कुंभलगढ़ के नीचे पहुंचते ही उसका देहान्त हो गया[1]। कुंभलगढ़ के क़िले में मामादेव (कुंभस्वामी) के मन्दिर के सामने उसका दाह-संस्कार किया गया, जिसमें १६ स्त्रियां सती हुईं। जहां उसका देहान्त हुआ और जहां दाहक्रिया हुई, वहां दोनों जगह एक एक छत्री बनी हुई है।

कुंवर संग्रामसिंह का अज्ञात रहना

जब कुंवर पृथ्वीराज और जयमल को भविष्यद्वक्ताओं द्वारा विश्वास हो गया कि सांगा मेवाड़ का स्वामी होगा, तब उन्होंने उसे मारना चाहा। राठोड़ बीदा की सहायता से वह सेवंत्री गांव से बचकर गोड़वाड़ की तरफ़ चला गया, जिसके पीछे वह गुप्त भेष में रहकर इधर उधर अपने दिन काटता रहा[2]। उस समय के संबंध की अनेक कथाएं प्रसिद्ध हैं, परन्तु उनके ऐतिहासिक होने में सन्देह है। अन्त में वह एक घोड़ा ख़रीदकर श्रीनगर (अजमेर ज़िले में) के परमार कर्मचन्द की सेवा में जाकर रहा। ऐसा प्रसिद्ध है कि एक दिन कर्मचन्द अपने साथियों सहित जंगल में आराम कर रहा था; उस समय सांगा भी कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे सो रहा। कुछ देर बाद उधर जाते हुए दो राजपूतों ने देखा कि एक सांप सांगा के सिर पर अपना फन फैलाए हुए छाया कर रहा है। उन राजपूतों

---

(१) मेरा सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० २०९। टॉ; रा; जि० १, पृ० ३४८। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ४२-४३। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३५१। पृथ्वीराज बड़ा वीर होने के अतिरिक्त लड़ने के लिये दूर दूर धावे किया करता था, जिससे उसको 'उडणा पृथ्वीराज' कहते थे (नैणसी की ख्यात; पत्र ४, पृ० २)।

(२) एक बात तो यह प्रसिद्ध है कि सांगा ने एक गड़रिये के यहां रहकर कुछ दिन बिताये (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३४२)। दूसरी कथा यह है कि वह आमेर के राजा पृथ्वीराज के नौकरों में भर्ती हुआ और रात को उसके महल का पहरा दिया करता था। एक दिन रात को वह पहरा दे रहा था, उस समय मूसलधार वर्षा होने लगी और महल की छत से पानी के गिरने की आवाज़ उसके कानों को बुरी मालूम हुई, जिससे उसने सोचा कि राजा को तो यह आवाज़ बहुत ही बुरी लगती होगी; इसलिये वहां पर उसने गहरी घास डाल दी, तो पानी की आवाज़ बन्द हो गई। इसपर राणी ने राजा से कहा कि अब तो बारिश बंद हो गई। राजा ने कहा कि वर्षा तो हो रही है, परन्तु आश्चर्य है कि पानी की आवाज़ बंद कैसे हो गई! फिर एक दासी को आवाज़ बंद होने का कारण जानने के लिये राजा ने भेजा। दासी ने आकर कहा—पानी तो वैसे ही गिर रहा है, मगर पहरेदार ने उसके नीचे

ने जाकर यह बात कर्मचन्द से कही, जिसे सुनकर उसको बहुत आश्चर्य हुआ और उसने वहां जाकर स्वयं इस घटना को अपनी आंखों से देखा। यह देखकर सब को सांगा के साधारण पुरुष होने के विषय में संदेह हुआ। बहुत पूछताछ करने पर उसने सच्चा हाल कह दिया, जिससे कर्मचन्द बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि आपको छिपकर नहीं रहना चाहिये था। फिर उसने अपनी पुत्री का विवाह सांगा के साथ कर दिया[1]।

जयमल और पृथ्वीराज के मारेजाने और सांगा का पता न होने से महाराणा ने अपने पुत्र जेसा को अपना उत्तराधिकारी बनाया,[2] जो मेवाड़ जैसे राज्य के लिये योग्य नहीं था। सांगा के जीवित होने की बात जब महाराणा ने सुनी, तब उसको बुलाने के लिये कर्मचन्द पंवार के पास आदमी भेजा। बुलावा आते ही कर्मचन्द उसको साथ लेकर महाराणा के दरबार में पहुंचा। उसे देखकर महाराणा को बड़ी प्रसन्नता हुई और कर्मचन्द को अच्छी जागीर दी[3]। कर्मचन्द के वंश में इस समय बम्बोरी का सरदार मेवाड़ के द्वितीय श्रेणी के सरदारों में है।

सांगा का महाराणा के पास आना

अनुमान होता है कि महाराणा कुंभा के नये बनवाये हुए एकलिंगजी के मन्दिर को महाराणा रायमल के समय की मुसलमानों की चढ़ाइयों में हानि पहुंची हो, जिससे रायमल ने सूत्रधार (सुथार) अर्जुन के द्वारा उक्त मन्दिर का फिर उद्धार कराया। इस मन्दिर को भेट किये हुए कई गांव, जो उदयसिंह के समय राज्याधिकार में आ गये

महाराणा रायमल के पुण्य-कार्य

घास रख दी है, जिससे आवाज़ नहीं होती। यह सुनकर राजा ने जान लिया कि वह साधारण सिपाही नहीं, किन्तु किसी बड़े घराने का पुरुष होना चाहिये; क्योंकि उसे वह आवाज़ बुरी लगी, जिससे उसने उसका यत्न भी तत्काल कर दिया। राजा ने उसको बुलाया और ठीक हाल जानने पर उसे कहा—तुमने मुझसे अपना हाल क्यों छिपाया? मैं क्या ग़ैर आदमी हूं? तब से वह उसका सत्कार करने लगा (मुंशी देवीप्रसाद; आमेर के राजा पृथ्वीराज का जीवनचरित्र; पृ० ९–११)।

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ०३२१--२२। टॉ; रा; जि० १, पृ० ३४२–४३। हरविलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० १७--१९।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ४, पृ० २। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० २१।

थे, फिर बहाल किये गये और नौवापुर गांव उसने अपनी तरफ़ से भेट किया[१]। अपने गुरु गोपालभट्ट को उसने प्रहाण[२] और थूर[३] गांव तथा उक्त मन्दिर की प्रशस्ति के कर्त्ता महेश को रत्नखेट[४] (रतनखेड़ा) गांव दिया। उक्त महाराणा ने राम,[५] शांकर[६] और समयासंकट[७] नामक तीन तालाब बनवाये। अर्थशास्त्र के अनुसार निष्पुत्रों के धन का स्वामी राजा होता है, परन्तु सब शास्त्रों के ज्ञाता रायमल ने ऐसा धन अपने कोश में लेना छोड़ दिया[८]।

---

(१) पूर्वंक्षोणिपतिप्रदत्तनिखिलग्रामोपहारार्पणा—
काले लोपमवाप यावनजनैः प्रासादभंगोऽप्यभूत्।
उद्धृत्योन्नतमेकलिंगनिचयं ग्रामांश्च तान् पूर्वव—
द्दत्त्वा संप्रति राजमल्लनृपतिर्नौवापुरं चार्पयत् ॥ ८६ ॥

भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १२२।

(२) प्रगीतासुतार्थानुपादानमेकं परं ब्राह्मणग्रामतस्तु प्रहाणं।
असौ दक्षिणामर्थिने राजमल्लो ददाति स्म गोपालभट्टाय तुष्टः ॥ ८२ ॥

(३) इक्षुक्षेत्रं मधुरमददात् भट्टगोपालनाम्ने
थु(थू)रग्रामं तमिह गुरवे राजमल्लो नरेन्द्रः ॥ ८७ ॥ वही; पृ० १२२।

(४) आसज्येज्यं हरमनुमनःपावनं राजमल्लो
मल्लीमालामृदुलकवये श्रीमहेशाय तुष्टः।
ग्रामं रत्नप्रभवमभवावृत्तये रत्नखेटं
क्षोणीभर्ता व्यतरदरुणे सैंहिकेयाभियुक्ते ॥ ६७ ॥ वही; पृ० १२१।

(५) श्रीरामाह्वं सरो यन्नरपतिरतनोद्राजमल्लस्तदासौ।
प्रोत्फुल्लांभोजमित्थं वि(त्वि)दशदशमिनो हंत संशेरते स्म ॥ ७४ ॥

वही; पृ० १२१।

(६) अचीखनच्छांकरनामधेयं महासरो भूपतिराजमल्लः······॥ ७५ ॥

वही; पृ० १२१।

(७) श्रीराजमल्लविभुना समयासंकटमसंकटं सलिलै
अंबरचुंबितरंगं सेतौ तुंगं महासरो व्यरचि ॥ ७६ ॥ वही; पृ० १२१।

(८) धनिनि निधनमाप्तेपत्यहीने तदीयं

महाराणा रायमल के समय के अब तक नीचे लिखे चार शिलालेख मिले हैं।

महाराणा रायमल के शिलालेख

१—एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) चैत्र शुक्ला दशमी गुरुवार की प्रशस्ति[1]। इसमें महाराणा हंमीर से लेकर रायमल तक के राजाओं के संबंध की कई घटनाओं का उल्लेख होने से इतिहास के लिये यह बड़े महत्त्व की है। इसी लिये ऊपर जगह-जगह इससे अवतरण उद्धृत किये गये हैं।

२—महाराणा रायमल की बहिन रमाबाई के बनवाये हुए जावर गांव के रामस्वामी के मंदिर की वि० सं० १५५४ (ई० स० १४९७) चैत्र सुदि ७ रविवार की प्रशस्ति[2]। इसी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि रमाबाई का विवाह जूनागढ़ के यादव राजा मंडलीक (अंतिम) के साथ हुआ था।

३—नारलाई (जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ इलाके में) गांव के आदिनाथ के मंदिर का वि० सं० १५५७ (ई० स० १५००) वैशाख सुदि ६ शुक्रवार का शिलालेख[3]। इसमें लिखा है कि महाराणा रायमल के राज्य-समय ऊकेश-(ओसवाल) वंशी मं० (मंत्री) सीहा और समदा तथा उनके कुटुंबी मं० कर्मसी, धारा, लाखा आदि ने कुंवर पृथ्वीराज की आज्ञा से सायर के बनवाये हुए मंदिर की देवकुलिकाओं का उद्धार कराया और उक्त मंदिर में आदिनाथ की मूर्ति स्थापित की।

४—घोसुंडी की बावड़ी की वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) वैशाख सुदि ३

विदितनिखिलशास्त्रो राजमल्लस्तदुज्झन्
विशदयति यशोभिर्बप्पभूपान्ववार्यं ॥ ८३ ॥

भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १२२।

(१) वही; पृ० ११७–२३।

(२) इस लेख की छाप तथा नक़ल मैंने तैयार की है।

(३) विजयशंकर गौरीशंकर ओझा; भावनगर प्राचीन-शोध-संग्रह; पृ० ६४–६६। भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १४०–४२। उक्त दोनों पुस्तकों में इस लेख का संवत् १५९७ छपा है, जो अशुद्ध है, क्योंकि उक्त संवत् में मेवाड़ का स्वामी रायमल नहीं, किन्तु उदयसिंह (दूसरा) था। इस लेख का शुद्ध संवत् जानने के लिये मैंने नारलाई जाकर इसको पढ़ा तो इसमें संवत् १५५७ मिला।

बुधवार की प्रशस्ति[1]। इस प्रशस्ति में महाराणा रायमल की राणी शृंगारदेवी के—जो मारवाड़ के राजा जोध्र (राव जोधा) की पुत्री थी—द्वारा उक्त बावड़ी के बनवाये जाने का उल्लेख और उसके पति तथा पिता के वंशों का थोड़ासा परिचय भी है।

कुंवर जयमल और पृथ्वीराज के मारे जाने के बाद महाराणा उदासीन और

महाराणा रायमल की मृत्यु

अस्वस्थ रहा करता था। वि० सं० १५६६ ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १५०९ ता० २४ मई) को अनुमान ३६ वर्ष राज्य करने के पश्चात् वह स्वर्ग को सिधारा।

भाटों की ख्यातों में लिखा है कि रायमल ने ग्यारह विवाह[2] किये थे, जिनसे तेरह कुंवर[3]—पृथ्वीराज, जयमल, संग्रामसिंह,[4] कल्याणमल, पत्ता, रायसिंह,

महाराणा रायमल की सन्तति

भवानीदास, किशनदास, नारायणदास, शंकरदास, देवीदास, सुन्दरदास और वेणीदास—तथा दो लड़कियां हुईं, जिनमें से एक आनन्दाबाई[5] थी।

संग्रामसिंह (सांगा)

महाराणा संग्रामसिंह का, जो लोगों में सांगा नाम से अधिक प्रसिद्ध है,

---

(१) बंगा. ए. सो. ज; जिल्द ५६, भाग १, पृ० ७९-८२।

(२) रायमल की राणियों के जो ग्यारह नाम ख्यातों में मिलते हैं, वे बहुधा विश्वास के योग्य नहीं हैं, क्योंकि घोसुंडी की बावड़ी की प्रशस्ति से पाया जाता है कि मारवाड़ के राव रणमल के पुत्र जोध (जोधा) की कुंवरी शृंगारदेवी के साथ, जिसने घोसुंडी की बावड़ी बनवाई थी, रायमल का विवाह हुआ था (बंगा. ए. सो. ज; जि० ५६, भा० १, पृ० ७९–८२), परन्तु उसका नाम ख्यातों में नहीं है।

(३) मुहणोत नैणसी ने केवल ९ नाम—पृथ्वीराज, जयमल, जेसा, सांगा, किसना, धन्ना, देवीदास, पत्ता और राया (रामा) दिये हैं (ख्यात; पत्र ४, पृ० २)। भाटों की ख्यातों में जेसा (जयसिंह) का नाम नहीं मिलता।

(४) प्रथम तीन कुंवर हलवद के स्वामी राजधर बाघावत की पुत्री से उत्पन्न हुए थे (बड़वा देवीदान की ख्यात। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० २८-२९)।

(५) आनन्दाबाई के लिये देखो ऊपर पृ० ६२३।



महाराणा सांगा (संग्रामसिंह)

जन्म वि० सं० १५३९ वैशाख वदि ९ (ई० स० १४८२ ता० १२ अप्रेल) तथा राज्याभिषेक वि० सं० १५६६ ज्येष्ठ सुदी ५ (ई० स० १५०९ ता० २४ मई) को हुआ था[1]। मेवाड़ के महाराणाओं में वह सबसे अधिक प्रतापी और प्रसिद्ध हुआ; इतना ही नहीं, किन्तु उस समय का सबसे प्रबल हिन्दू राजा था, जिसकी सेवा में अनेक हिन्दू राजा रहते थे और कई हिन्दू राजा, सरदार तथा मुसलमान अमीर, शाहज़ादे आदि उसकी शरण लेते थे। जिस समय महाराणा सांगा मेवाड़ के राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ, उस समय दिल्ली में लोदी वंश का सुलतान सिकन्दर लोदी, गुजरात में महमूदशाह (बेगड़ा) और मालवे में नासिरशाह ख़िलजी राज्य करता था। उस समय दिल्ली की सल्तनत बहुत ही निर्बल हो गई थी।

पंवार कर्मचन्द की प्रतिष्ठा बढ़ाना

कुंवर सांगा को लेकर पंवार कर्मचन्द के चित्तोड़ आने पर महाराणा रायमल ने उसको अच्छी जागीर दी थी, जिसको यथेष्ट न समझकर महाराणा सांगा ने अपनी आपत्ति के समय में की हुई सेवा के निमित्त, कर्मचन्द को अपने राज्य के दूसरे ही वर्ष अजमेर, परबतसर, मांडल, फूलिया, बनेड़ा आदि पंद्रह लाख की वार्षिक आय के परगने जागीर में देकर उसे रावत की पदवी भी दी। कर्मचन्द ने अपना नाम चिरस्थायी रखने के लिए उन परगनों के कई गांव ब्राह्मण, चारणादि को दान में दिये, जिनमें से कई एक अब तक उनके वंशजों के अधिकार में हैं[2]।

ईडर का राज्य रायमल को दिलाना

ईडर के राव भाण के दो पुत्र—सूर्यमल और भीम—थे। राव भाण का देहान्त होने पर सूर्यमल गद्दी पर बैठा और १८ मास तक राज्य करके मर गया; सूर्यमल की जगह उसका पुत्र रायमल ईडर का राजा बना, परन्तु उसके कम उमर होने के कारण उसका चाचा भीम उसको गद्दी से उतारकर स्वयं राज्य का स्वामी बन गया। रायमल ने वहां

---

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ४, पृ० २। वीरविनोद में ये दोनों संवत् क्रमशः १५३८ और १५६५ दिये हैं (वीरविनोद; भा० १, पृ० ३७१–७२)। कर्नल टॉड ने भी महाराणा सांगा की गद्दीनशीनी का वर्ष वि० सं० १५६५ दिया है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३४८), परन्तु इन दोनों की अपेक्षा नैणसी का लेख अधिक विश्वास-योग्य है।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० २६–२७।

से भागकर महाराणा सांगा की शरण ली। महाराणा ने अपनी पुत्री की सगाई उसके साथ कर दी। कुछ दिनों बाद भीम भी मर गया और उसका पुत्र भारमल गद्दी पर बैठा। युवा होने पर रायमल ने महाराणा सांगा की सहायता से फिर ईडर पर अधिकार कर लिया[1]।

गुजरात के सुलतान से लड़ाई

हि० स० ६२० (वि० सं० १५७१=ई० स० १५१४) में गुजरात के सुलतान मुज़फ्फ़र ने महमूदाबाद आने पर सुना कि राणा सांगा की सहायता से भारमल को ईडर से निकालकर रायमल वहां का स्वामी बन गया है। इस बात से वह अप्रसन्न हुआ कि भीम ने उसकी आज्ञा से ईडर पर अधिकार किया था, अतएव उसे पदच्युत कर रायमल को ईडर दिलाने का राणा को अधिकार नहीं है[2]। इसी विचार के अनुसार उसने अहमदनगर के जागीरदार निज़ामुल्मुल्क को आज्ञा दी कि वह रायमल को निकालकर भारमल को ईडर की गद्दी पर बिठा दे। निज़ामुल्मुल्क ने ईडर को आ घेरा, जिससे रायमल ईडर छोड़कर बीसलनगर (बीजानगर) की तरफ़ पहाड़ों में चला गया। निज़ामुल्मुल्क ने उसका पीछा किया, परन्तु उसने गुजरात की सेना पर हमला कर निज़ामुल्मुल्क को बुरी तरह से हराया और उसके बहुतसे अफ़सरों को मार डाला। सुलतान मुज़फ्फ़र ने यह ख़बर सुनकर निज़ामुल्मुल्क को यह लिखकर पीछा बुला लिया कि यह लड़ाई तुमने व्यर्थ ही की, हमारा प्रयोजन तो सिर्फ़ ईडर लेने से था[3]। सुलतान ने निज़ामुल्मुल्क के स्थान पर नसरतुल्मुल्क को नियत किया, परन्तु उसके पहुंचने से पहले ही निज़ामुल्मुल्क वहां के बन्दोबस्त पर ज़हीरुल्मुल्क को नियत कर वहां से लौट गया। इस अवसर का लाभ उठाकर रायमल ने ईडर के इलाक़े में पहुंचकर ज़हीरुल्मुल्क पर हमला किया और उसे मार डाला[4]। यह ख़बर सुनकर सुलतान ने नसरतुल्मुल्क को लिखा कि बीसलनगर (बीजानगर) बदमाशों का

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३५४-५५। रायसाहब हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ५३-५४। बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २५२। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ८३।

(२) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २५२-५३।

(३) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ८३।

(४) वही; जि० ४, पृ० ८३। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ५५।

ठिकाना है इसलिए उसे लूट लो; परन्तु रायमल के आगे उसकी दाल न गली, जिससे सुलतान ने उसे वापस बुलाकर मलिक हुसेन बहमनी को, जो अपनी बहादुरी के कारण निज़ामुल्मुल्क (मुबारिज़ुल्मुल्क) बनाया गया था, अपने मंत्रियों की इच्छा के विरुद्ध ईडर का हाकिम नियत किया[1]।

हि० स० ९२६ (वि० सं० १५७७=ई० स० १५२०) में एक दिन एक भाट फिरता हुआ ईडर पहुंचा और निज़ामुल्मुल्क के सामने भरे दरबार में महाराणा सांगा की प्रशंसा करते हुए उसने कहा कि महाराणा के समान इस समय भारत भर में कोई राजा नहीं है। महाराणा ईडर के राजा रायमल के रक्षक हैं, अतः भले ही थोड़े दिन ईडर में रह लो, परन्तु अन्त में वह रायमल को ही मिलेगा। यह सुनकर निज़ामुल्मुल्क ने बड़े क्रोध से कहा—देखें, वह कुत्ता किस प्रकार रायमल की रक्षा करता है? मैं यहां बैठा हूं, वह क्यों नहीं आता? फिर दरवाज़े पर बैठे हुए कुत्ते की तरफ़ उंगली करके कहा कि अगर राणा नहीं आया तो वह इस कुत्ते जैसा ही होगा[2]। भाट ने उत्तर दिया कि सांगा आवेगा और तुम्हें ईडर से निकाल देगा। उस भाट ने जाकर यह सारा हाल महाराणा से कहा। यह सुनते ही उसने गुजरात पर चढ़ाई करने का निश्चय किया और सिरोही के इलाके में होता हुआ वह वागड़ में जा पहुंचा। वागड़ का राजा (उदयसिंह) भी महाराणा के साथ हो गया। महाराणा के ईडर के इलाके में पहुंचने की ख़बर सुनने पर सुलतान ने और सेना भेजना चाहा, परन्तु उसके मंत्रियों ने निज़ामुल्मुल्क की बदनामी कराने के लिए वह बात टाल दी। सुलतान, किवामुल्मुल्क पर नगर की रक्षा का भार सौंपकर मुहम्मदाबाद को पहुंचा, जहां निज़ामुल्मुल्क ने उसको यह ख़बर पहुंचाई कि राणा के साथ ४०००० सवार हैं और ईडर में केवल ५०००, अतएव ईडर की रक्षा न की जा सकेगी। इस विषय में सुलतान ने अपने मंत्रियों की सलाह ली, परन्तु वे इस बात को टालते ही रहे। इस समय तक राणा ईडर पर आ पहुंचा और निज़ामुल्मुल्क, जिसको मुबारिज़ुल्मुल्क का ख़िताब मिला था, भागकर अहमदनगर के क़िले में जा रहा और

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २६४। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ७८।

(२) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २६४-६५। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ७८-७९।

सुलतान के आने की प्रतीक्षा करने लगा[1]। महाराणा ने ईडर की गद्दी पर रायमल को बिठाकर अहमदनगर को जा घेरा। मुसलमानों ने क़िले के दरवाज़े बन्द कर लड़ाई शुरू की। इस युद्ध में महाराणा की सेना का एक नामी सरदार डूंगरसिंह चौहान[2] (वागड़ का) बुरी तरह घायल हुआ और उसके कई भाई-बेटे मारे गए। डूंगरसिंह के पुत्र कान्हसिंह ने बड़ी वीरता दिखाई। क़िले के लोहे के किवाड़ तोड़ने के लिये जब हाथी आगे बढ़ाया गया तब वह उनमें लगे हुए तीक्ष्ण भालों के कारण मुहरा न कर सका। यह देखकर वीर कान्हसिंह ने भालों के आगे खड़े होकर महावत को कहा कि हाथी को मेरे बदन पर झोंक दे। कान्हसिंह पर हाथी ने मुहरा किया, जिससे उसका बदन भालों से छिन-छिन हो गया और वह तत्क्षण मर गया, परन्तु किवाड़ भी टूट गए[3]। इस घटना से राजपूतों का उत्साह और भी बढ़ गया, वे नंगी तलवारें लेकर क़िले में घुस गए और उन्होंने मुसलमान सेना को काट डाला। मुबारिज़ुल्मुल्क क़िले की पीछे की खिड़की से भाग गया। ज्यों ही वह क़िले से भाग रहा था, त्यों ही वही भाट—जिसने उसे भरे दरबार में कहा था कि सांगा आयगा और तुम्हें ईडर से निकाल देगा—दिखाई दिया और उसने कहा कि तुम तो सदा महाराणा के आगे भागा करते हो। इसपर लज्जित होकर वह नदी के दूसरे किनारे पर महाराणा की सेना से मुक़ाबला करने के लिए ठहरा[4]। उसका पता लगते ही महाराणा उसपर टूट पड़ा, जिससे मुसलमानों में भगदड़ पड़ गई, बहुतसे मुसलमान सरदार मारे गए, मुबारिज़ुल्मुल्क भी बहुत घायल हुआ और सुलतान की सारी सेना तितर-बितर होकर अहमदाबाद को भाग गई। मुसलमानों के असबाब के साथ कई हाथी भी महाराणा के हाथ लगे। महाराणा ने अहमदनगर को लूटकर बहुतसे मुसलमानों को क़ैद किया; फिर वह बड़नगर को लूटने चला,

---

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २६५-६६।

(२) डूंगरसिंह चौहान बाला का पुत्र था, जो पहले वागड़ में रहता था, फिर महाराणा सांगा की सेवा में आकर रहा, तो उसको बदनोर की जागीर मिली, जहां उसके बनवाए हुए तालाब, बावड़ियां और महल विद्यमान हैं (मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र २६, पृ० १)।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र २६, पृ० १। वीरविनोद; भा० १, पृ० ३५६। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ८०-८१।

(४) हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ८१।

परंतु वहां के ब्राह्मणों ने उससे अभयदान की प्रार्थना की, जिसे स्वीकार कर वह वीसलनगर की ओर बढ़ा। महाराणा ने लड़ाई में वहां के हाकिम हातिमखां को मारकर शहर को लूटा। इस प्रकार महाराणा ने अपने अपमान का बदला लिया, सुलतान को भयभीत किया, निज़ामुल्मुल्क का घमंड चूर्ण कर दिया और रायमल को ईडर का राज्य देकर चित्तोड़ को प्रस्थान किया[1]।

दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोदी से लड़ाइयां

सिकन्दर लोदी के समय से ही महाराणा ने दिल्ली के अधीनस्थ इलाक़े अपने राज्य में मिलाना शुरू कर दिया था, परन्तु अपने राज्य की निर्बलता के कारण वह महाराणा से लड़ने को तैयार न हो सका। वि० सं० १५७४ (ई० स० १५१७) में उसका देहान्त होने पर उसका पुत्र इब्राहीम लोदी दिल्ली के तख़्त पर बैठा और तुरन्त ही उसने बड़ी सेना के साथ मेवाड़ पर चढ़ाई करदी। यह ख़बर सुनकर महाराणा भी उससे मुक़ाबला करने के लिये आगे बढ़ा। हाड़ौती की सीमा पर खातोली गांव के पास दोनों सेनाओं का मुक़ाबला हुआ। एक पहर तक लड़ाई होने के बाद सुलतान अपनी सेना सहित भाग निकला और उसका एक शाहज़ादा क़ैद हुआ, जिसे कुछ समय तक क़ैद रखने के बाद महाराणा ने दण्ड लेकर छोड़ दिया। इस युद्ध में महाराणा का बायां हाथ तलवार से कट गया और घुटने पर एक तीर लगने के कारण वह सदा के लिये लँगड़ा हो गया[2]।

खातोली की पराजय का बदला लेने के लिये सुलतान ने वि० सं० १५१८ में एक सेना चित्तोड़ की ओर रवाना की। 'तारीख़े सलातीने अफ़ग़ाना' में इस लड़ाई के संबंध में इस तरह लिखा है—"इस सेना में मियां हुसेनखां ज़रबख़्श, मियां ख़ानख़ाना फ़ारमुली और मियां मारूफ़ मुख्य अफ़सर थे और सेनापति मियां माखन था। हुसेनखां, सुलतान एवं माखनखां से नाराज़ होकर एक हज़ार सवारों सहित राणा से जा मिला, क्योंकि सुलतान माखन द्वारा उसको पकड़वाना चाहता था। पहले तो राणा ने इसको भेद-नीति समझा, परन्तु अंत में उसने उसे अपने पक्ष में ले लिया। हुसेन के इस तरह अलग हो जाने से मियां माखन

(१) फ़ॉर्ब्स; रासमाला; पृ० २९५। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ८२-८३। बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २६९-७०।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३४९। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३५४। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ५६।

निराश हो गया, यद्यपि उसके पास ३०००० सवार और ३०० हाथी थे। दूसरे दिन मियां माखन ने राणा पर चढ़ाई की। राणा भी हुसेन को साथ लेकर बड़े सैन्य सहित आगे बढ़ा। मियां माखन ने अपनी सेना को इस तरह जमाया कि ७००० सवारों सहित सय्यदख़ां फ़ुरत और हाजीख़ां दाहिनी ओर; तथा दौलतख़ां, अल्लाहदादख़ां और यूसफ़ख़ां बाईं ओर रक्खे गये। जब दोनों सेनाएं तैयार हो गईं, तो हिन्दू बड़ी वीरता से आगे बढ़े और सुलतान की सेना को हराने में सफल हो गये। बहुत से मुसलमान मारे गये, शेष सेना बिखर गई और मियां माखन अपने डेरे को लौट गया। इस दिन शाम को मियां हुसेन ने मियां माखन को एक पत्र लिखा कि अब तुमको ज्ञात हुआ होगा कि एक दिल होकर लड़नेवाले क्या-क्या कर सकते हैं। तुम्हें धिक्कार है कि ३०००० सवार इतने थोड़े-से हिन्दुओं से हार गये। मारूफ़ को फ़ौरन भेजो ताकि राणा को जल्दी हराया जा सके। हुसेन ने मारूफ़ को भी इस आशय का एक पत्र लिखा कि अब तुमने अच्छी तरह देख लिया है कि मियां माखन किस तरह कार्य-संचालन करता है। अब हमें सुलतान की ओर से लड़ना चाहिये; यद्यपि उसने हमारे साथ उचित व्यवहार नहीं किया, तो भी हमने उसका नमक खाया है। मियां मारूफ़ ने ६००० सवार लेकर मियां हुसैन से दो कोस पर डेरा डाला, जिसकी ख़बर पाते ही हुसेन भी महाराणा से अलग होकर उससे जा मिला। राणा की सेना विजय का आनन्द मना रही थी, इतने में अफ़ग़ानों ने उस पर एकदम हमला कर दिया। इस युद्ध में महाराणा भी घायल हुआ और उसे राजपूत उठा ले गये; मारूफ़ ने राणा के १५ हाथी और ३०० घोड़े सुलतान के पास भेजे[1]"। ऊपर लिखे हुए वर्णन का पिछला अंश विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि "तारीख़े दाउदी' और 'वाक़ेआते मुश्ताक़ी' आदि में इस धोखे का वर्णन नहीं मिलता। यदि हुसेन की सहायता से सुलतान की विजय हुई होती, तो वह उसको युद्ध के कुछ दिनों पश्चात् चंदेरी में न मरवाता और न उसके घातकों को पारितोषक देता[2]। वस्तुतः इस युद्ध में राजपूतों की ही विजय हुई। यह लड़ाई धौलपुर के पास हुई थी और बादशाह बाबर अपनी दिनचर्या की पुस्तक में महाराणा की विजय होना लिखता है[3]। राजपूतों ने मुसलमान सेना

(१) तारीख़े सलातीन अफ़ग़ाना—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; जि० ५, पृ० १६-२०।

(२) हरविलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ६२।

(३) तुज़ुके बाबरी का ए. एस. बैवरिज कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५९३।

को भगाकर बयाने तक उसका पीछा किया। इस युद्ध में महाराणा को मालवे का कुछ भाग, जिसे सिकन्दरशाह लोदी ने अपने अधिकार में कर लिया था, मिला[1]।

मेदिनीराय की सहायता करना

महमूद (दूसरे) के समय में मालवे के राज्य की स्थिति डाँवाडोल हो रही थी। मुसलमान अमीर शक्तिशाली बन गये और वे महमूद को अपने हाथ का खिलौना बनाना चाहते थे। जब उसको अपने प्राणों का भय हुआ, तब वह मांडू से भाग निकला। उसके चले जाने पर अमीरों ने उसके भाई साहिबखां को मालवे का सुलतान बनाया[2]। इस आपत्ति-काल में मालवे का प्रबल राजपूत सरदार मेदिनीराय महमूद का सहायक बना और उसने साहिबखां की सेना को परास्त कर महमूद को फिर मांडू की गद्दी पर बिठाया। इस सेवा के बदले में सुलतान ने उसको अपना प्रधान मंत्री बनाया। विद्रोही पक्ष के अमीरों ने उसकी बढ़ी हुई शक्ति की ईर्ष्या कर दिल्ली के सुलतान सिकन्दर लोदी और गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़र से यह कहकर सहायता मांगी कि मालवे का राज्य हिन्दुओं के हाथ में चला गया है और महमूद तो नाममात्र का सुलतान रह गया है। दिल्ली के सुलतान ने १२००० सेना साहिबखां की सहायता के लिये भेजी और मुज़फ़्फ़र स्वयं सेना के साथ मालवे की तरफ़ बढ़ा। मेदिनीराय ने सब विद्रोहियों पर विजय पाई, दिल्ली तथा गुजरात की सेनाओं को परास्त किया और मालवे में महमूद का राज्य स्थिर कर दिया[3]। निराश और हारे हुए अमीर मेदिनीराय के विरुद्ध सुलतान को भड़काने का यत्न करने लगे और उसमें वे इतने सफल हुए कि मेदिनीराय को मरवाने के लिये उस (सुलतान) को उद्यत कर दिया। अन्त में सुलतान ने उसे मरवाने का प्रपंच रचा, परन्तु वह घायल होकर बच गया। इस घटना के बाद मेदिनीराय सुलतान से सचेत रहने लगा और चुने हुए ५०० राजपूतों के साथ महल में जाने लगा। मूर्ख सुलतान को उसकी इस सावधानी से भय हो गया, जिससे वह मांडू छोड़कर गुजरात को भाग

(१) अर्स्किन; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; जि० १, पृ० ४८०।

(२) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २४७।

(३) वही; जि० ४, पृ० २४८–५४। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ६४–६८।

गया[1]। सुलतान मुज़फ़्फ़र उसको साथ लेकर मांडू की तरफ़ चला, तो मेदिनीराय भी अपने पुत्र पर मांडू के क़िले की रक्षा का भार सौंपकर महाराणा सांगा से सहायता लेने के लिये चित्तोड़ पहुंचा। महाराणा ने मेदिनीराय के साथ मांडू को प्रस्थान किया, परन्तु सारंगपुर पहुंचने पर यह ख़बर मिली कि मुज़फ़्फ़रशाह ने हज़ारों राजपूतों को मारने के बाद मांडू को विजय कर सुलतान को फिर गद्दी पर बिठा दिया है और उसकी रक्षा के लिये आसफ़ख़ां की अध्यक्षता में बहुतसी सेना रखकर वह गुजरात को लौट गया है, जिससे महाराणा भी मेदिनीराय के साथ चित्तोड़ को लौट गया[2] और उसने गागरौन, चंदेरी[3] आदि इलाके जागीर में देकर मेदिनीराय को अपना सरदार बनाया।

महाराणा का महमूद को क़ैद करना

हि० स० ९२५ (वि० सं० १५७६=ई० स० १५१९) में सुलतान महमूद अपनी रक्षार्थ रखी हुई गुजरात की सेना के भरोसे मेदिनीराय पर चढ़ाई कर गागरौन की तरफ़ चला, जहां मेदिनीराय का प्रतिनिधि भीमकरण[4] रहता था। यह ख़बर पाते ही महाराणा सांगा भी ५० हज़ार सेना लेकर महमूद से लड़ने को चला और गागरौन के पास दोनों सेनाएं जा पहुंचीं। गुजरात की सेना के अफ़सर आसफ़ख़ां ने लड़ाई न करने की सलाह दी, परन्तु सुलतान लड़ने को उतारू हुआ और लड़ाई शुरू हुई, जिसमें मालवे के तीस सरदार और गुजरात का प्रायः सारा सैन्य राजपूतों के हाथ से नष्ट हुआ। इस लड़ाई में आसफ़ख़ां का पुत्र मारा गया और वह स्वयं भी घायल हुआ। सुलतान महमूद भी बुरी तरह

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २५५-५६। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ६८-६९।

(२) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २६३। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २६०-६१।

(३) तुज़ुके बाबरी से पाया जाता है कि चंदेरी का क़िला मालवे के सुलतान महमूद के अधीन था। सिकन्दरशाह लोदी ने मुहम्मदशाह (साहिबख़ां) का पक्ष लेकर बड़ी सेना भेजी, उस समय उसके बदले में चंदेरी को ले लिया। फिर जब सुलतान इब्राहीम लोदी राणा सांगा की साथ की लड़ाई में हारा, उस समय चंदेरी पर राणा का अधिकार हो गया था (तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५९३)।

(४) मिराते सिकन्दरी में भीमकरण नाम मिलता है (बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २६३), परन्तु मुंशी देवीप्रसाद ने हेमकरण पाठ दिया है (महाराणा संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० ६)।

घायल होकर गिरा, उसे उठवाकर महाराणा ने अपने तम्बू में पहुंचाया और उसके घावों का इलाज कराया। फिर वह उसे अपने साथ चित्तोड़ ले गया[1] और वहां तीन मास तक क़ैद रक्खा।

एक दिन महाराणा सुलतान को एक गुलदस्ता देने लगा। इसपर उसने कहा कि किसी चीज़ के देने के दो तरीक़े होते हैं। एक तो अपना हाथ ऊंचा कर अपने से छोटे को देवें या अपना हाथ नीचा कर बड़े को नज़र करें। मैं तो आपका क़ैदी हूं, इसलिये यहां नज़र का तो कोई सवाल ही नहीं तो भी आपको ध्यान रहे कि भिखारी की तरह केवल इस गुलदस्ते के लिये हाथ पसारना मुझे शोभा नहीं देता। यह उत्तर सुनकर महाराणा बहुत प्रसन्न हुआ और गुलदस्ते के साथ मालवे का आधा राज्य[2] देने की बात भी उसे कह दी। महाराणा की इस उदारता से प्रसन्न होकर सुलतान ने वह गुलदस्ता ले लिया[3]। फिर तीसरे ही दिन महाराणा ने फ़ौज-ख़र्च लेकर सुलतान को एक हज़ार राजपूतों के साथ मांडू को भेज दिया। सुलतान ने भी अधीनता के चिह्नस्वरूप महाराणा को रत्नजटित मुकुट तथा सोने की कमरपेटी—ये (दोनों) सुलतान हुशंग के समय से राज्य-चिह्न के रूप में वहां के सुलतानों के काम आया करते थे—भेट कीं[4]। आगे को अच्छा बर्ताव रखने के लिये महाराणा ने सुलतान के एक शाहज़ादे को 'ओल' (ज़ामिन) के तौर पर चित्तोड़ में रख लिया[5]। महाराणा के इस उदार

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २६४। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २६३।

(२) बाबर बादशाह लिखता है कि राणा सांगा ने, जो बड़ा ही प्रबल हो गया था, मांडू के इलाक़े रणथम्भोर, सारंगपुर, भिलसा और चंदेरी ले लिये थे (तुज़ुके बाबरी का बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ४८३)।

(३) मुन्शी देवीप्रसाद; महाराणा संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० २८-२९। हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० ७३।

(४) बादशाह बाबर लिखता है कि जिस समय सुलतान महमूद राणा सांगा के हाथ क़ैद हुआ, उस समय प्रसिद्ध 'ताजकुला' (रत्नजटित मुकुट) और सोने की कमरपेटी उसके पास थी। सुलह के समय ये दोनों वस्तुएं राणा ने उससे ले ली थीं (तुज़ुके बाबरी का बेवरिज कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ६१२-१३)।

(५) हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० ७४। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३५७। मिराते सिकन्दरी से पाया जाता है कि सुलतान महमूद का एक शाहज़ादा, जो राणा सांगा के यहां क़ैद था, गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़रशाह के सैन्य के साथ की मंदसोर की लड़ाई के बाद मुक्त किया गया था (बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २७५)।

बर्ताव की मुसलमान लेखकों ने बड़ी प्रशंसा की है[1], परन्तु राजनैतिक परिणाम की दृष्टि से महाराणा की यह उदारता राजपूतों के लिये हानिकारक ही हुई।

मुबारिज़ुल्मुल्क के उच्चारण किये हुए अपमानसूचक शब्दों पर क्रुद्ध हो कर महाराणा सांगा ने गुजरात पर चढ़ाई कर वहां की जो बर्बादी की, उसका बदला

गुजरात के सुलतान का मेवाड़ पर आक्रमण

लेने के लिये सुलतान मुज़फ़्फ़र लड़ाई की तैयारी करने लगा। अपनी सेना को उत्साहित करने के लिये उसका वेतन बढ़ा दिया और एक साल की तनख़्वाह भी ख़ज़ाने से पेशगी दे दी गई। सोरठ का हाकिम मलिक अयाज़ बीस हज़ार सवार और तोपख़ाने के साथ उसके पास आ पहुंचा। सुलतान से मिलने पर उसने निवेदन किया कि यदि आप मुझे भेजें, तो मैं या तो राणा को क़ैद कर यहां ले आऊंगा या उसको परम-धाम को पहुंचा दूंगा। यह बात सुलतान को पसन्द आई और हि० स० ६२७ मुहर्रम (वि० सं० १५७७ पौष=ई० स० १५२० दिसम्बर) में उसको ख़िलअत देकर एक लाख सवार, एक सौ हाथी और तोपख़ाने के साथ भेजा। बीस हज़ार सवार और बीस हाथियों की दूसरी सेना भी मलिक की सहायतार्थ किवामुल्मुल्क की अध्यक्षता में भेजी गई। ये दोनों सेनाएं मोड़ासा होती हुई वागड़ में पहुंचीं और डूंगरपुर को जलाकर सागवाड़े होती हुई बांसवाड़े गईं। वहां से थोड़ी दूर पर पहाड़ों में शुजाउल्मुल्क के दो सौ सिपाहियों की राजपूतों से कुछ मुठभेड़ होने के पश्चात् सारी गुजराती सेना मन्दसोर पहुंची और उसने वहां के क़िले पर, जिसका रक्षक अशोकमल राजपूत था, घेरा डाला। महाराणा भी उधर से एक बड़ी सेना के साथ मन्दसोर से दस कोस पर नांदसा गांव में आ ठहरा। मांडू का सुलतान महमूद भी मलिक अयाज़ की सेना से आ मिला। मलिक अयाज़ ने क़िले में सुरंग लगवाने और साबात[2] बनवाने का प्रबन्ध कर घेरा आगे बढ़ाया। रायसेन का तंवर

(१) बादशाह अकबर का बख़्शी निज़ामुद्दीन अपनी पुस्तक तबकाते अकबरी में लिखता है कि जो काम राणा सांगा ने किया, वैसा काम अब तक और किसी से न हुआ। सुलतान मुज़फ़्फ़र गुजराती ने महमूद को अपनी शरण में आने पर सहायता दी थी, परन्तु युद्ध में विजय पाने और सुलतान को क़ैद करने के पश्चात् केवल राणा ने उसको पीछा राज्य दिया (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२६)।

(२) अकबर की चित्तोड़-विजय के वर्णन में 'साबात' का रोचक विवरण फ़ारसी पुस्तकों में मिलता है। साबात हिन्दुस्तान का ही ख़ास युद्ध-साधन है। यहां के सुदृढ़ क़िलों में तोपें

सलहदी दस हज़ार सवारों के साथ एवं आसपास के सब राजा, राणा से आ मिले। इस प्रकार दोनों तरफ़ बड़ी भारी सेनाएं लड़ने को एकत्र हो गयीं, परन्तु अपने अफ़सरों से अनबन हो जाने के कारण मलिक अयाज़ आगे न बढ़ सका और संधि करके दस कोस पीछे हट गया। सेनापति के पीछे हट जाने के कारण सुलतान महमूद और दूसरे सरदार भी वापस चले गये। मलिक अयाज़ गुजरात को लौट गया, जहां पहुंचने पर सुलतान ने उसे बुरा भला कहकर वापस सोरठ भेज दिया'।

बन्दूकें और युद्ध-सामग्री बहुत होने के कारण वे साबात से ही लिये जाते हैं। साबात ऊपर से ढका हुआ एक चौड़ा रास्ता होता है, जिसमें क़िलेवालों की मार से सुरक्षित रहकर हमला करनेवाले क़िले के पास तक पहुंच जाते हैं। अकबर ने दो साबात बनवाए, जो बादशाही डेरे के सामने थे। वे इतने चौड़े थे कि उनमें दो हाथी और दो घोड़े चले जा सकें; ऊंचे इतने थे कि हाथी पर बैठा हुआ आदमी भाला खड़ा किये जा सके। जब साबात बनाए जा रहे थे, तब राणा के सात आठ हज़ार सवार और कई गोलंदाज़ों ने उनपर हमला किया। कारीगरों के बचाव के लिए गाय-भैंस के मोटे चमड़े की छावन थी, तो भी वे इतने मरे कि ईंट-पत्थर की तरह लाशें चुनी गईं। बादशाह ने किसी से बेगार न ली; कारीगरों को रुपए और दाम बरसाकर भरपूर मज़दूरी दी। एक साबात क़िले की दीवार तक पहुंच गया और वह इतना ऊंचा था कि दीवार उससे नीची दिखाई देती थी। साबात की चमड़े की छत पर बादशाह के लिये बैठक थी कि वह अपने 'वीरों का करतब' देखता रहे और युद्ध में भाग भी ले सके। अकबर स्वयं बन्दूक लेकर उसपर बैठा और वहां से मार भी कर रहा था। इधर सुरंग लगाई जा रही थी और क़िले की दीवारों के पत्थर काटकर सेंध लग रही थी (तारीख़े अलफ़ी; इलियट्; जि० ५, पृ० १७१-७३)। साबात क़िले के दोनों ओर बनाए गये थे और ५ हज़ार कारीगर और खाती उनपर लगे थे। साबात एक तरह की दीवार (?मार्ग) है, जो क़िले से गोली की मार की दूरी पर खड़ी की जाती है और उसके तख्ते बिना कमाए चमड़े से ढके तथा मजबूत बँधे होते हैं। उनकी रक्षा में क़िले तक कूचा-सा बन जाता है। फिर दीवारों को तोपों से उड़ाते हैं और सेंध लगने पर बहादुर भीतर घुस जाते हैं। अकबर ने जयमल को साबात पर बैठकर गोली से मारा था (?तबकाते अकबरी; इलियट्; जि० ५, पृ० ३२६-२७)। इससे मालूम होता है कि साबात ढका हुआ मार्ग-सा होता था, जिससे शत्रु क़िले तक पहुंच जाते थे; किन्तु और जगह के वर्णनों से जान पड़ता है कि यह ऊंची टेकरी का सा भी हो, जिसपर से क़िले पर गरगज (ऊंचे स्थान) की तरह मार की जा सके।

(नागरीप्रचारिणी पत्रिका—नवीन संस्करण—भाग २, पृ० २५४, टि० ३)।

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २७१-७५। हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० ८४-८७। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ९०-९४।

मुसलमान इतिहास-लेखकों ने इस हार का कारण मुसलमान सरदारों की अनबन होना ही बतलाया है। मिराते सिकन्दरी में लिखा है कि सुलतान महमूद और किवामुल्मुल्क तो राणा से लड़ना चाहते थे, परन्तु मलिक अयाज़ इसके विरुद्ध था, इसलिये वह बिना लड़े ही संधि करके चला गया। इसके बाद सुलतान महमूद भी महाराणा से ओल में रक्खे हुए अपने शाहज़ादे के लौटाने की संधि कर लौट गया[1]। मुसलमान लेखकों का यह कथन मानने योग्य नहीं है, क्योंकि मुसलमानी सेना का मुख्य सेनापति मलिक अयाज़ हारकर वापस गया, जिससे वहां उसे सुलतान मुज़फ़्फ़र ने झिड़का, तो सुलतान महमूद महाराणा को संधि करने पर बाध्रित कर सका हो, यह समझ में नहीं आता। संभव है, कि उसने सांगा को दंड (जुर्माना) देकर शाहज़ादे को छुड़ाया हो। फ़िरिश्ता से यह भी पाया जाता है कि दूसरे साल सुलतान मुज़फ़्फ़र ने फिर चढ़ाई की तैयारी की, परन्तु राणा का कुंवर, मलिक अयाज़ की की हुई संधि के अनुसार कुछ हाथी तथा रुपये नज़राने के लिये लाया[2], जिससे चढ़ाई रोक दी गई। यह कथन भी विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि यदि मलिक अयाज़ ऐसी संधि करके लौटा होता, तो सुलतान उसे बुरा भला न कहता।

कुंवर भोजराज और उसकी स्त्री मीरांबाई

महाराणा सांगा का ज्येष्ठ कुंवर भोजराज था, जिसका विवाह मेड़ते के राव वीरमदेव के छोटे भाई रत्नसिंह की पुत्री मीरांबाई के साथ वि० सं० १५७३ (ई० स० १५१६) में हुआ था। परन्तु कुछ वर्षों बाद महाराणा की जीवित दशा में ही भोजराज का देहान्त हो गया, जिससे उसका छोटा भाई रत्नसिंह युवराज हुआ। कर्नल टॉड ने जनश्रुति के अनुसार[3] मीरांबाई को महाराणा कुंभा की राणी लिखा है[4] और उसी

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २७४-७५।

(२) वही; पृ० २७५, टि० *।

(३) देखो ऊपर पृ० ६२२, टिप्पण ३।

(४) मीरांबाई 'मेड़तणी' कहलाती है, जिसका आशय मेड़तिया राजवंश की कन्या है। जोधपुर के राव जोधा का एक पुत्र दूदा, जिसका जन्म वि० सं० १४६७ (ना० प्र० प०; भाग १, पृ० ११४) में हुआ था, वि० सं० १५१८ (ई० स० १४६१) या उससे पीछे मेड़ते का स्वामी बना। उसी से राठोड़ों की मेड़तिया शाखा चली। दूदा का ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेव, जिसका जन्म वि० सं० १५३४ (ई० स० १४७७) में हुआ था (वही; पृ० ११४), उस

आधार पर भिन्न भिन्न भाषाओं के ग्रंथों में भी वैसा ही लिखा जाने से लोग उसको महाराणा कुम्भा की राणी मानने लग गए हैं, जो भ्रम ही है।

हिन्दुस्तान में बिरला ही ऐसा गांव होगा, जहां भगवद्भक्त हिन्दू स्त्रियां या पुरुष मीरांबाई के नाम से परिचित न हों और बिरला ही ऐसा मन्दिर होगा, जहां उसके बनाए हुए भजन न गाये जाते हों। मीरांबाई मेड़ते के राठोड़ राव दूदा के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की, जिसको दूदा ने निर्वाह के लिये १२ गांव दे रक्खे थे, इकलौती पुत्री थी। उसका जन्म कुड़की गांव में वि० सं० १५५५ (ई० स० १४९८) के आसपास[1] होना माना जाता है। बाल्यावस्था में ही उसकी माता का देहान्त हो गया, जिससे राव दूदा ने उसे अपने पास बुलवा लिया और वहीं उसका पालन-पोषण हुआ। वि० सं० १५७२ (ई० स० १५१५) में राव दूदा के देहान्त होने पर वीरमदेव मेड़ते का स्वामी हुआ। गद्दी पर बैठने के दूसरे साल उसने उसका विवाह महाराणा सांगा के कुंवर भोजराज के साथ कर दिया। विवाह के कुछ वर्षों बाद युवराज भोजराज का देहान्त हो गया। यह घटना किस सम्वत् में हुई, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुआ, तो भी सम्भव है कि यह वि० सं० १५७५ (ई० स० १५१८) और १५८० (ई० स० १५२३) के बीच किसी समय हुई हो।

मीरांबाई बचपन से ही भगवद्भक्ति में रुचि रखती थी, इसलिये वह इस शोकप्रद समय में भी भक्ति में ही लगी रही। यह भक्ति उसके पितृकुल में पीढ़ियों से चली आती थी। दूदा, वीरमदेव और जयमल सभी परम वैष्णव थे। वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में उसका पिता रत्नसिंह, महाराणा सांगा और बाबर की लड़ाई में मारा गया। महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद रत्नसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ और उसके भी वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में मरने पर विक्रमादित्य मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। इस समय से पूर्व ही मीरांबाई की अपूर्व भक्ति और भावपूर्ण भजनों की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी और

(दूदा) के पीछे मेड़ते का स्वामी बना। उसके छोटे भाई रत्नसिंह की पुत्री मीरांबाई थी। महाराणा कुंभा वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में मारा गया, जिसके ९ वर्ष बाद मीरांबाई के पिता के बड़े भाई वीरमदेव का जन्म हुआ था। ऐसी दशा में मीरांबाई का महाराणा कुंभ की राणी होना सर्वथा असंभव है।

(१) हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० ९६।

सुदूर स्थानों से साधु सन्त उससे मिलने आया करते थे। इसी कारण विक्रमादित्य उससे अप्रसन्न रहता और उसको तरह तरह की तकलीफ़ें दिया करता था। ऐसा प्रसिद्ध है कि उसने उस(मीरांबाई)को मरवाने के लिये विष देने आदि के प्रयोग भी किए, परंतु वे निष्फल ही हुए। मीरांबाई की ऐसी स्थिति जानकर उसको वीरमदेव ने मेड़ते बुला लिया। वहां भी उसके दर्शनार्थी साधु-संतों की भीड़ लगी रहती थी। जब जोधपुर के राव मालदेव ने वीरमदेव से मेड़ता छीन लिया, तब मीरांबाई तीर्थयात्रा को चली गई और द्वारकापुरी में जाकर रहने लगी, जहां वि० सं० १६०३ (ई० स० १५४६) में[1] उसका देहान्त हुआ।

भक्तशिरोमणि मीरांबाई के बनाए हुए ईश्वर-भक्ति के सैकड़ों भजन भारत भर में प्रसिद्ध हैं और जगह-जगह गाए जाते हैं। मीरांबाई का मलार राग तो बहुत ही प्रसिद्ध है। उसकी कविता भक्तिरस-पूर्ण, सरल और सरस है। उसने राग-गोविन्द नामक कविता का एक ग्रन्थ भी बनाया था। मीरांबाई के सम्बन्ध की कई तरह की बातें पीछे से प्रसिद्ध हो गई हैं, जिनमें ऐतिहासिक तत्त्व नहीं है।

कुंवर भोजराज की मृत्यु के बाद रत्नसिंह युवराज हुआ, जिसके छोटे भाई उदयसिंह और विक्रमादित्य थे। उनको जागीर मिलने के सम्बन्ध में मुहणोत नैणसी ने लिखा है—"राणा सांगा का एक विवाह हाड़ा राव नर्बद की पुत्री करमेती (कर्मवती) से भी हुआ था, जिससे विक्रमादित्य और उदयसिंह उत्पन्न हुए। राणा का इस राणी पर विशेष प्रेम था। एक दिन करमेती ने राणा से निवेदन किया कि आप चिरंजीवी हों; आपका युवराज रत्नसिंह है और विक्रमादित्य तथा उदयसिंह बालक हैं, इसलिये आपके सामने ही इनकी जागीर नियत हो जाय तो अच्छा है। राणा ने पूछा, तुम क्या चाहती हो? इसके उत्तर में उसने कहा कि रत्नसिंह की सम्मति लेकर रणथंभोर जैसी कोई जागीर इनको दे दी जाय और हाड़ा सूरजमल जैसे राजपूत को इनका संरक्षक बनाया जाय। राणा ने इसे स्वीकार कर दूसरे दिन रत्नसिंह से कहा कि विक्रमादित्य

उदयसिंह और विक्रमादित्य को रणथंभोर की जागीर देना

(१) हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० ६६। मुंशी देवीप्रसाद; मीरांबाई का जीवनचरित्र; पृ० २८। चतुरकुलचरित्र; भाग १, पृ० ८०।

और उदयसिंह तुम्हारे छोटे भाई हैं, जिनको कोई ठिकाना देना चाहिये। महा शक्तिशाली सांगा से रत्नसिंह ने यही कहा कि आपकी जो इच्छा हो, वही जागीर दीजिए। इसपर राणा ने उनको रणथंभोर का इलाक़ा जागीर में देने की बात कही, तो रत्नसिंह ने कहा—'बहुत अच्छा'। फिर जब विक्रमादित्य और उदयसिंह को रणथंभोर का मुजरा करने की आज्ञा हुई, तो उन्होंने मुजरा किया। उस समय बूंदी का हाड़ा सूरजमल भी दरबार में हाज़िर था। राणा ने उसको कहा कि हम इन्हें रणथंभोर देकर तुम्हारी संरक्षा में रखते हैं। सूरजमल ने निवेदन किया कि मुझे इस बात से क्या मतलब, मैं तो चित्तोड़ के स्वामी का सेवक हूं। तब राणा ने कहा—'ये दोनों बालक तुम्हारे भानजे हैं, बूंदी से रणथंभोर निकट भी है और हमें तुम्हारे पर विश्वास है, इसी लिये इनका हाथ तुम्हें पकड़वाते हैं'। सूरजमल ने जवाब दिया कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु आपके पीछे रत्नसिंह मुझे मारने को तैयार होंगे, इसलिये आपके कहने से मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता; यदि रत्नसिंह ऐसा कह दें, तो बात दूसरी है। राणा ने रत्नसिंह की ओर देखा; तो उसने सूरजमल से कहा कि जैसा महाराणा फ़रमाते हैं वैसा करो; ये मेरे भाई हैं और आप भी हमारे सम्बन्धी हैं, मैं इसमें बुरा नहीं मानता। तब सूरजमल ने राणा की यह आज्ञा मान ली और साथ जाकर रणथंभोर में विक्रमादित्य और उदयसिंह का अधिकार करा दिया[1]"।

विक्रमादित्य और उदयसिंह को महाराणा सांगा ने यह बड़ी जागीर रत्नसिंह की आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध और अपनी प्रीतिपात्र महाराणी करमेती के विशेष आग्रह से दी; परन्तु अन्त में इसका परिणाम रत्नसिंह और सूरजमल दोनों के लिये घातक ही हुआ।

गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़रशाह के आठ शाहज़ादे थे, जिनमें सिकन्दरशाह सबसे बड़ा होने से राज्य का उत्तराधिकारी था। सुलतान भी उसी को अधिक चाहता था, क्योंकि वही सबमें योग्य था। सुलतान का दूसरा बेटा बहादुरख़ां (बहादुरशाह) भी गद्दी पर बैठना चाहता था, जिसके लिये वह षड्यन्त्र रचने लगा।

गुजरात के शाहज़ादों का महाराणा की शरण में आना

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र २९।

वह शेख़ जिऊ नाम के मुसलमान मुरशिद (गुरु) का, जो उसे बहुत चाहता था और 'गुजरात का सुलतान' कहकर संबोधन किया करता था, मुरीद (शिष्य) बन गया। एक दिन शेख़ ने बहुतसे लोगों के सामने यह कह दिया कि बहादुरशाह ही गुजरात का सुलतान होगा, जिससे सिकन्दरशाह उसको मरवाने का प्रयत्न करने लगा। बहादुरशाह ने प्राणरक्षा के लिए भागने का निश्चय किया और वहां से भागने के पहले वह अपने मुरशिद से मिला। शेख़ के यह पूछने पर कि तू गुजरात के राज्य के अतिरिक्त और क्या चाहता है, बहादुरशाह ने जवाब दिया कि मैं राणा के अहमदनगर को जीतने, वहां मुसलमानों को क़तल करने और मुसलमान स्त्रियों को क़ैद करने के बदले चित्तोड़ के क़िले को नष्ट करना चाहता हूं। शेख़ ने पहले तो इसका कोई उत्तर न दिया, पर उसके बहुत आग्रह करने पर यह कहा कि 'सुलतान' के (तेरे) नाश के साथ ही चित्तोड़ का नाश होगा। बहादुरशाह ने कहा कि इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। तदनन्तर[1] अपने भाई चांदखां और इब्राहीमखां[2] को साथ लेकर वह वहां से भागकर चांपानेर और बांसवाड़े होता हुआ चित्तोड़ में राणा सांगा की शरण आया, जिसने उसको आदरपूर्वक अपने यहां रक्खा। राणा सांगा की माता (जो हलवद के राजा की पुत्री थी) उसे बेटा कहा करती थी[3]।

एक दिन राणा के एक भतीजे ने बहादुरशाह को दावत दी। नाच के समय एक सुन्दरी लड़की के चातुर्य्य से बहादुरशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसकी प्रशंसा करने लगा, जिसपर राणा के भतीजे ने उससे पूछा, क्या आप इसे पहचानते हैं? यह अहमदनगर के काज़ी की लड़की है। जब महाराणा ने अहमदनगर अपने अधिकार में किया, तो काज़ी को मारकर मैं इसे यहां लाया था; इसके साथ की स्त्रियों और लड़कियों को दूसरे राजपूत ले आए। उसका कथन समाप्त भी न होने पाया था कि बहादुरशाह ने गुस्से में आकर उसको तलवार से मार डाला। राजपूतों ने उसे तत्क्षण घेर लिया और मारना

(१) मिराते सिकन्दरी। बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३००–३०५।

(२) मिराते सिकन्दरी में जहां बहादुरशाह के गुजरात से भागने का वर्णन है, वहां तो इन दोनों भाइयों के नाम नहीं दिये, परंतु उसके चित्तोड़ से लौटने के प्रसंग में इन दोनों के उसके साथ होने का उल्लेख है (बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३२६)।

(३) वही; पृ० ३०५।

चाहा, परन्तु उसी समय राणा की माता हाथ में कटार लिये हुए वहां आई और उसने कहा कि यदि कोई मेरे बेटे बहादुर को मारेगा, तो मैं भी यह कटार खाकर मर जाऊंगी। यह सारा हाल सुनकर राणा ने अपने भतीजे को ही दोष दिया और कहा कि उसे शाहज़ादे के सामने ऐसी बातें न करनी चाहिएं थीं; यदि शाह-ज़ादा उसे न भी मारता, तो मैं उसे दण्ड देता[1]। फिर बहादुरशाह यह देखकर, कि लोग अब मुझसे घृणा करने लगे हैं, चित्तोड़ छोड़कर मेवात की ओर चला गया, परन्तु थोड़े दिनों बाद वह चित्तोड़ को लौट आया।

उधर मुज़फ्फ़रशाह के मरने पर वि० सं० १५८२ (ई० स० १५२६) में सिकन्दरशाह गुजरात का सुलतान हुआ। थोड़े ही दिनों में वह भी मारा गया और इमादुल्मुल्क ने नासिरशाह को सुलतान बना दिया। पठान अली शेर ने गुजरात से आकर यह ख़बर बहादुरशाह को दी, जिसपर चांदखां को तो उसने वहीं छोड़ा और इब्राहीमखां को साथ लेकर वह गुजरात को चला गया[2]।

सिकन्दरशाह के गुजरात के स्वामी होने पर उसके छोटे भाई लतीफ़खां ने सुलतान बनने की आशा में नन्दरबार और सुलतानपुर के पास सैन्य एकत्र कर विद्रोह खड़ा करने का प्रयत्न किया। सिकन्दरशाह ने मलिक लतीफ़ को शरज़हखां का ख़िताब देकर उसको दमन करने के लिए भेजा, परन्तु उसके चित्तोड़ में शरण लेने की ख़बर सुनकर शरज़हखां चित्तोड़ को चला, जहां वह बुरी तरह से हारा और उसके १७०० सिपाही मारे गए[3]।

बाबर का हिन्दुस्तान में आना

बाबर फ़रग़ाना (रशियन तुर्किस्तान में), जिसे आजकल खोकन्द कहते हैं, के स्वामी प्रसिद्ध तैमूर के वंशज उमरशेख़ मिर्ज़ा का पुत्र था। उसकी माता चंगेज़खां के वंश से थी। उमरशेख़ के मरने पर वह ग्यारह वर्ष की उमर में फ़रग़ाने का स्वामी हुआ। राज्य पाते ही उसे बहुत वर्षों तक लड़ते रहना पड़ा; कभी वह कोई प्रान्त जीतता

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३०९-६।

(२) वहीं; पृ० ३२६।

इसी बहादुरशाह ने सुलतान बनने पर महाराणा विक्रमादित्य के समय चित्तोड़ पर आक्रमण कर उसे लिया था।

(३) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० ६६।

था और कभी अपना भी खो बैठता था। एक बार वह दिखहाट गांव में वहां के मुखिया के घर ठहरा। उस (मुखिया) की १११ साल की बूढ़ी माता उसको भारत पर तीमूर की चढ़ाई की कथाएं सुनाया करती थी, जो उसने तीमूर के साथ वहां गये हुए अपने एक सम्बन्धी से सुनी थीं[1]। सम्भव है कि इन कथाओं के सुनने से उसके दिल में भारत में अपना राज्य स्थापित करने की इच्छा उत्पन्न हुई हो। जब तुर्किस्तान में अपना राज्य स्थिर करने की उसे कोई आशा न रही, तब वह वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) में काबुल आया और वहां पर अधिकार कर लिया। वहां रहते हुए उसे थोड़े ही दिन हुए थे कि भेरा (पंजाब में) के इलाक़े के मालिक दरियाखां के बेटे यारहुसेन ने उसे हिन्दुस्तान में बुलाया। बाबर अपने सेनापतियों से सलाह कर शाबान हि० स० ६१० (वि० सं० १५६१ फाल्गुन=ई० स० १५०५ जनवरी) को काबुल से चला और जलालाबाद होता हुआ ख़ैबर की घाटी को पार कर बिकराम (बिगराम) में पहुंचा, परन्तु सिन्धु पार करने का विचार छोड़कर कोहाट, बन्नू आदि को लूटता हुआ वापस काबुल चला गया[2]। इसके दो साल बाद अपने प्रबल तुर्क शत्रु शैबानीख़ां (शाबाकख़ां) से हारकर वह हिन्दुस्तान को लेने के इरादे से जमादिउल्-अव्वल हि० स० ६१३ (वि० सं० १५६४ आश्विन=ई० सं० १५०७ सितम्बर) में हिन्दुस्तान की ओर चला और अदिनापुर (जलालाबाद) के पास डेरा डालने पर उसने सुना कि शैबानीख़ां कन्धार लेकर ही लौट गया है। इस ख़बर को सुनकर वह भी पीछा काबुल चला गया[3]। ई० स० १५१६ (वि० सं० १५७६) में उसने तीसरी बार हिन्दुस्तान पर हमला किया और सियालकोट तक चला आया। इसी हमले में उसने सैयदपुर में ३० हज़ार दास-दासियों को पकड़ा और वहां के हिन्दू सरदार को मारा। यहां से वह फिर काबुल लौट गया[4]।

इस समय दिल्ली के सिंहासन पर कमज़ोर सुलतान इब्राहीम लोदी के होने के कारण वहां का शासन बहुत ही शिथिल हो गया और उसकी निर्बलता

(१) तुज़ुके बाबरी का ए. एस. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० १५०।

(२) वही; पृ० २२६-३१।

(३) वही; पृ० ३४१-४३।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; बाबरनामा; पृ० २०४।

का लाभ उठाकर बहुतसे सरदारों ने विद्रोह कर अपने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का यत्न किया। पंजाब के हाकिम दौलतख़ां लोदी ने हि० स० ९३० (वि० सं० १५८१=ई० स० १५२४) में इब्राहीम लोदी से विद्रोह कर बाबर को हिन्दुस्तान में बुलाया। वह गक्खरों के देश में होता हुआ लाहौर के पास आ पहुंचा और कुछ प्रदेश जीतकर उसे दिलावरख़ां को जागीर में दे दिया, फिर वह काबुल चला गया[1]। उसके चले जाने पर सुलतान इब्राहीम लोदी ने वही प्रदेश फिर अपने अधिकार में कर लिया, जिसकी ख़बर पाकर उसने पांचवीं बार भारतवर्ष में आने का निश्चय किया। बाबर अपनी दिनचर्या में लिखता है कि राणा सांगा ने भी पहले मेरे पास दूत भेजकर मुझे भारत में बुलाया और कहलाया था कि आप दिल्ली तक का इलाक़ा ले लें और मैं (सांगा) आगरे तक का ले लूं[2]। इन्हीं दिनों इब्राहीम लोदी का चाचा अलाउद्दीन (आलमख़ां) अपनी सहायता के लिये उसे बुलाने को काबुल गया और उसके बदले में उसे पंजाब देने को कहा[3]। इन सब बातों को सोचकर वह स्थिर रूप से भारत पर अधिकार करने के लिये ता० १ सफ़र हि० स० ९३२ (मार्गशीर्ष सुदि ३ वि० सं० १५८२=१७ नवम्बर ई० स० १५२५) को काबुल से १२००० सेना लेकर चला और कुछ लड़ाइयां लड़ते हुए उसने पानीपत के प्रसिद्ध मैदान में डेरा डाला। ता० ८ रज्जब शुक्रवार हि० स० ९३२ (वैशाख सुदि ८ वि० सं० १५८३=२० अप्रेल ई० स० १५२६) को इब्राहीम लोदी से युद्ध हुआ, जिसमें वह मारा गया और बाबर दिल्ली के राज्य का स्वामी हुआ। वहां कुछ महीने ठहरकर उसने आगरा भी जीत लिया[4]।

महाराणा सांगा और बाबर की लड़ाई

बाबर यह अच्छी तरह जानता था कि हिन्दुस्तान में उसका सबसे भयंकर शत्रु महाराणा सांगा था, इब्राहीम लोदी नहीं। यदि बाबर न आता तो भी इब्राहीम लोदी तो नष्ट हो जाता। महाराणा की बढ़ती हुई शक्ति और प्रतिष्ठा को वह जानता था। उसे यह भी निश्चय था कि महाराणा से युद्ध करने के दो ही परिणाम हो सकते हैं—या तो

(२) मुंशी देवीप्रसाद; बाबरनामा; पृ० २०५–६।

(२) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५२९।

(३) प्रो० रश्ब्रुक विलियम्स; एन् एम्पायर-बिल्डर ऑफ़ दी सिक्स्टीन्थ सैन्चरी; पृ० १२२।

(४) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ४४५–७६।

वह भारत का सम्राट् हो जाय, या उसकी सब आशाओं पर पानी फिर जाय और उसे वापस काबुल जाना पड़े। इधर महाराणा सांगा भी जानता था कि अब इब्राहीम लोदी से भी अधिक प्रबल शत्रु आ गया है, जिससे वह अपना बल बढ़ाने लगा और खण्डार (रणथंभोर से कुछ दूर) के क़िले पर, जो मकँन के बेटे हसन के अधिकार में था, चढ़ाई कर दी, अन्त में हसन ने सुलह कर क़िला राणा को सौंप दिया[१]। सैनिक और राजनैतिक दृष्टि से बयाना (भरतपुर राज्य में) बहुत महत्त्व का स्थान था। वह महाराणा सांगा के अधिकार में था और उसने अपनी तरफ़ से निज़ामख़ां को जागीर में दे रक्खा था[२]। इसपर अधिकार करने के लिये बाबर ने तरदीबेग्र और कूचबेग्र की अध्यक्षता में एक सेना भेजी। निज़ामख़ां का भाई आलमख़ां बाबर से मिल गया। निज़ामख़ां महाराणा सांगा को भी क़िला सौंपना नहीं चाहता था और बाबर से लड़ने में अपने को असमर्थ देखकर उससे दोआब (अन्तरवेद) में २० लाख का एक परगना लेकर उसे क़िला सौंप दिया[३]। सांगा के शीघ्र आने के भय से बाबर ने अपनी शक्ति को बढ़ाना चाहा और उसके लिये उसने मुहम्मद जैतून और तातारख़ां को अपने पक्ष में मिला लिया, जिसपर उन्होंने बड़ी आय के परगने लेकर धौलपुर और ग्वालियर के क़िले उसे दे दिये[४]। बाबर ने पश्चिमी अफ़ग़ानों के प्रबल सरदार हसनख़ां मेवाती को भी अपनी तरफ़ मिलाने के विचार से उसके पुत्र नाहरख़ां को, जो पानीपत की लड़ाई में क़ैद हुआ था, छोड़कर ख़िलअत दी और उसके बाप के पास भेज दिया[५], परन्तु हसनख़ां बाबर के जाल में न फँसा।

इब्राहीम लोदी के पतन के बाद अफ़ग़ान अमीरों को यह मालूम होने लगा कि बाबर हिन्दुस्तान में रहकर अफ़ग़ानों को नष्ट करना और अपना राज्य दृढ़ करना चाहता है। इसपर वे सब तुर्कों को निकालने के लिये मिल गये। अफ़ग़ानों के हाथ से दिल्ली और आगरा छूट जाने के बाद पूर्वी अफ़ग़ानों ने बाबरख़ां लोहानी को सुलतान मुहम्मदशाह के नाम से बिहार के तख़्त पर बिठा

(१) तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५३०।

(२) हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० १२०।

(३) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५३८-३९।

(४) वही; पृ० ५३९-४०।

(५) वही; पृ० ५४५।

दिया[1]। पश्चिमी अफ़ग़ानों ने मेवात (अलवर) के स्वामी हसनख़ां की अध्यक्षता में इब्राहीम लोदी के भाई महमूद का पक्ष लिया। हसनख़ां के पक्षवालों ने महाराणा सांगा को अपना मुखिया बनाकर तुर्कों को हिन्दुस्तान से निकालने की उससे प्रार्थना की और हसनख़ां मेवाती १२००० सेना के साथ उसकी सेवा में आ रहा[2]।

खंडार को जीतकर महाराणा बयाना की तरफ़ बढ़ा और उसे भी ले लिया। इसके सम्बन्ध में बाबर अपनी दिनचर्य्या में लिखता है—'हमारी सेना में यह ख़बर पहुंची कि राणा सांगा शीघ्रता से आ रहा है, उस समय हमारे गुप्तचर न तो बयाने के क़िले में जा सके और न वहां कोई ख़बर ही पहुंचा सके। बयाने की सेना कुछ दूर निकल आई, परन्तु राणा से हारकर भाग निकली। इसमें संगरख़ां मारा गया। किताबेग ने एक राजपूत पर हमला किया, जिसने उसी के एक नौकर की तलवार छीनकर बेग के कन्धे पर ऐसा वार किया कि वह फिर राणा के साथ की लड़ाई में शामिल ही न हो सका। किस्मती, शाहमंसूर बर्लास और अन्य भागे हुए सैनिकों ने राजपूत-सेना की वीरता और पराक्रम की बड़ी प्रशंसा की[3]।

ता० ९ जमादिउल् अव्वल सोमवार (फाल्गुन सुदि १० वि० सं० १५८३ =११ फ़रवरी ई० स० १५२७) को सांगा का सामना करने के लिये बाबर रवाना हुआ, परन्तु थोड़े दिन आगरे के पास ठहरकर अपनी सेना को एकत्र करने और तोपख़ाने को ठीक करने में लगा रहा। भारतीय मुसलमानों पर विश्वास न होने के कारण उसने उन्हें बाहर के क़िलों पर भेजकर वहां के तुर्क सरदारों को[4] एवं शाहज़ादे हुमायूं[5] को भी जौनपुर से बुला लिया। पांच दिन आगरे में ठहरकर सीकरी में पानी का सुभीता देखकर, तथा कहीं राणा वहां के जल-स्थानों पर अधिकार न कर ले, इस भय से भी वहां जाने का विचार किया। किस्मती और दरवेश मुहम्मद सार्बान को सीकरी में डेरे लगाने के लिये भेज-

(१) अर्स्किन; हिस्ट्री ऑफ् इण्डिया; जि० १, पृ० ४४३।
(२) तुज़ुके बाबरी का ए.एस्. बैवरिज़-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५६२।
(३) वही; पृ० ५४७–४८।
(४) वही; पृ० ५४७।
(५) वही; पृ० ५४५।

कर स्वयं भी सेना के साथ वहां पहुंचा और मोर्चेबन्दी करने लगा। वहां बयाने का हाकिम मेहदी ख़्वाजा राणा सांगा से हारकर उससे आ मिला। यहां बाबर को ख़बर मिली कि राणा सांगा भी बसावर (बयाना से १० मील वायव्य कोण में) के पास आ पहुंचा है[1]।

ता० २० जमादीउल्-अव्वल हि० स० ९३३ (वि० सं० १५८३ चैत्र वदि ६=ई० स० १५२७ फ़रवरी ता० २२) को अब्दुल अज़ीज, जो बाबर का एक मुख्य सेनापति था, सीकरी से आगे बढ़कर खानवा आ पहुंचा। महाराणा ने उसपर हमला किया, जिसका समाचार पाकर बाबर ने शीघ्र ही सहायतार्थ मुहिबअली खलाफ़ा, मुल्लाहुसेन आदि की अध्यक्षता में एक सेना भेजी। राजपूतों ने इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई, शत्रुओं का झंडा छीन लिया, मुल्ला न्यामत, मुल्ला दाउद आदि कई बड़े २ अफ़सर मारे गये और बहुतसे क़ैद भी हुए। मुहिबअली भी, जो पीछे से सहायता के लिये आया था, कुछ न कर सका और उसका मामा ताहरतिबरी राजपूतों पर दौड़ा, परन्तु वह भी क़ैद हुआ। मुहिबअली भी लड़ाई में गिर गया और उसके साथी उसे उठा ले गये। राजपूतों ने मुग़ल-सेना को हराकर दो मील तक उसका पीछा किया[2]। इस विषय में मि० स्टेनली-लेनपूल का कथन है कि 'राजपूतों की शूरवीरता और प्रतिष्ठा के उच्च-भाव उन्हें साहस और बलिदान के लिये इतना उत्तेजित करते थे कि जिनका बाबर के अर्ध-सभ्य सिपाहियों के ध्यान में आना भी कठिन था'[3]। राजपूतों के समीप आने के समाचार लगातार पहुंचने पर बाबर कुछ तोपों को लाने की आज्ञा देकर आगे चला, परन्तु इस समय तक राजपूत अपने डेरों में लौट गये थे।

महाराणा की तीव्रगति, बयाने की लड़ाई और वहां से लौटे हुए शाहमंसूर किस्मती आदि से राजपूतों की वीरता की प्रशंसा सुनने के कारण मुग़ल सेना पहले ही हतोत्साह हो गई थी, अब्दुल अज़ीज़ की पराजय ने तो उसे और भी निराश कर दिया। इन्हीं दिनों काबुल से सुलतान क़ासिम हुसेन और अहमद

(१) तुज़ुके बाबरी का ए. एस. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५४८।

(२) वही; पृ० ५४९–५०।

(३) स्टेनली लेनपूल; बाबर; पृ० १७६।

यूसफ़ आदि के साथ ५०० सिपाही आये, जिनके साथ ज्योतिषी मुहम्मद शरीफ़ भी था। सहायक होने के बदले ज्योतिषी भी निराशा और भय, जो पहले ही सेना में फैले हुए थे, बढ़ाने का कारण हुआ, क्योंकि उसने यह सम्मति दी कि मंगल का तारा पश्चिम में है, इसलिये इधर (पूर्व) से लड़नेवाले (हम) पराजित होंगे[1]। बाबर अपनी दिनचर्य्या में लिखता है—"इस समय पहले की घटनाओं से क्या छोटे और क्या बड़े, सभी सैनिक भयभीत और हतोत्साह हो रहे थे। कोई भी आदमी ऐसा न था, जो बहादुरी की बात कहता या हिम्मत की सलाह देता। वज़ीर, जिनका कर्तव्य ही नेक सलाह देना था तथा अमीर, जो राज्य की सम्पत्ति भोगते थे, वीरता की बात भी नहीं कहते थे और न उनकी सलाह वीर पुरुषों के योग्य थी[2]"। अपनी सेना को उत्साहित करने के लिये बाबर ने खाइयां खुदवाईं और सेना की रक्षार्थ उसके पीछे सात-सात, आठ-आठ गज़ की दूरी पर गाड़ियां खड़ी कराकर उन्हें परस्पर जंजीरों से जकड़वा दिया। जहां गाड़ियां नहीं थीं, वहां काठ के तिपाए गड़वाए और सात-सात, आठ-आठ गज़ लंबे चमड़े के रस्सों से बांधकर उन्हें मज़बूत करा दिया। इस तैयारी में बीस-पच्चीस दिन लग गये[3]। उसने शेख़ जमाली को इस अभिप्राय से मेवात पर हमला करने के लिये भेजा कि हसनख़ां महाराणा से अलग हो मेवात को चला जाय[4]।

एक दिन बाबर इसी बेचैनी और उदासी में डूबा हुआ था कि उसे एक उपाय सूझा। वह ता० २३ जमादिउल्-अव्वल हि० स० ९३३ (चैत्र वदि ९ वि० सं० १५८३=२५ फरवरी ई० स० १५२७) को अपनी सेना को देखने के लिये जा रहा था, रास्ते में उसे यह ख़याल हुआ कि धर्माज्ञा के विरुद्ध किये हुए घोर पापों का प्रायश्चित्त करने का मैं सदा विचार करता रहा हूं, परन्तु अभी तक वैसा न कर सका। यह सोचकर उसने फिर कभी शराब न पीने की प्रतिज्ञा की और शराब की सोने-चांदी की सुराहियां और प्याले तथा मजलिस को सजाने का

(१) तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५५०-५१।

(२) वही; पृ० ५५६।

(३) वही; पृ० ५५०।

(४) वही; पृ० ५५१।

सामान मँगवाकर उसे तुड़वा दिया और गरीबों को बांट दिया। उसने अपनी दाढ़ी न कटवाने की प्रतिज्ञा भी की और उसका अनुकरण करीब ३०० सिपाहियों ने किया[1]। कर्नल टॉड ने लिखा है कि 'शराब के पात्रों के तोड़ने से तो सेना में फैली हुई निराशा और भी बढ़ गई'[2], परन्तु सेना के इतने निराश होते हुए भी बाबर निराश न हुआ। उसने जीवन के इतने उतार-चढ़ाव देखे थे कि वह निराश होना जानता ही न था। उसका पूर्वजीवन उत्तर की जंगली और क्रूर जातियों के साथ लड़ने-भिड़ने में व्यतीत हुआ था। हार पर हार और आपत्ति पर आपत्ति ने उसे साहसी, स्थिति को ठीक समझनेवाला और चालाक बना दिया था। इन संकटों से उसकी विचार-शक्ति दृढ़ हो गई थी तथा यह भी वह भली भांति जान गया था कि विकट अवस्थाओं में लोगों से किस तरह काम निकालना चाहिये। सेना की इस निराश अवस्था में उसने अन्तिम उपाय-स्वरूप मुसलमानों के धार्मिक भावों को उत्तेजित करने का निश्चय किया और अफ़सरों तथा सिपाहियों को बुलाकर कहा—

"सरदारो और सिपाहियो! प्रत्येक मनुष्य, जो संसार में आता है, अवश्य मरता है; जब हम चले जायंगे तब एक ईश्वर ही बाकी रहेगा; जो कोई जीवन का भोग करने बैठेगा उसको अवश्य मरना भी होगा; जो इस संसाररूपी सराय में आता है उसे एक दिन यहां से विदा भी होना पड़ता है, इसलिये बदनाम होकर जीने की अपेक्षा प्रतिष्ठा के साथ मरना अच्छा है। मैं भी यही चाहता हूं कि कीर्ति के साथ मेरी मृत्यु हो तो अच्छा होगा, शरीर तो नाशवान् है। परमात्मा ने हमपर बड़ी कृपा की है कि इस लड़ाई में हम मरेंगे तो शहीद होंगे और जीतेंगे तो ग़ाज़ी कहलावेंगे, इसलिये सबको कुरान हाथ में लेकर क़सम खानी चाहिये कि प्राण रहते कोई भी युद्ध में पीठ दिखाने का विचार न करे"।

इस भाषण के बाद सब सिपाहियों ने हाथ में कुरान लेकर ऐसी ही प्रतिज्ञा की[3], तो भी बाबर को अपनी जीत का विश्वास न हुआ और उसने रायसेन के सरदार

---

(१) तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५५१-५२।

(२) टॉ; रा; जि० १, ३५५।

(३) तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५५६-५७।

सलहदी द्वारा सुलह की बात चलाई। महाराणा ने अपने सरदारों से सलाह की, परन्तु सरदारों को सलहदी का बीच में पड़ना पसन्द न होने के कारण उन्होंने महाराणा के सामने अपनी सेना की प्रबलता और मुसलमानों की निर्बलता प्रकट कर सुलह की बात को जमने न दिया[1]। इस तरह संधि की बात कई दिन तक चलकर बन्द हो गई। इन दिनों बाबर बहुत तेज़ी से अपनी तैयारी करता रहा, परन्तु महाराणा सांगा के लिये यह ढील बहुत हानिकारक हुई। महाराणा की सेना में जितने सरदार थे, वे सब देशप्रेम के भाव से इस युद्ध में सम्मिलित नहीं हुए थे; सब के भिन्न भिन्न स्वार्थ थे और उनमें से कुछ तो परस्पर शत्रु भी थे। इतने दिन तक शान्त बैठने से उन सरदारों में वह जोश और उत्साह न रहा, जो युद्ध में आने के समय था। इतने दिन तक युद्ध स्थगित रखने से महाराणा ने बाबर को तैयारी करने का मौक़ा देकर बड़ी भूल की[2]।

विलम्ब करना अनुचित समझकर ता० ९ जमादिउस्सानी हि० स० ९३३ (चैत्र सुदि ११ वि० सं० १५८३=१३ मार्च ई० स० १५२७) को बाबर ने सेना के साथ कूच किया और एक कोस जाकर डेरा डाला। युद्ध के लिये जो जगह सोची गई, उसके आगे खाइयां खुदवाकर तोपों को जमाया, जिन्हें जंजीरों से अच्छी तरह जकड़ दिया और उनके पीछे जंजीरों से जकड़ी हुई गाड़ियों और तिपाइयों की आड़ में तोपची और बन्दूकची रखे गये। तोपों की दाहिनी और बाईं तरफ़ मुस्तफ़ा रूमी और उस्ताद अली[3] खड़े हुए थे। तोपों की पंक्ति के पीछे

(१) तुज़ुके बाबरी में सुलह की बात का उल्लेख नहीं है, परन्तु राजपूताने की ख्यातों आदि में उसका उल्लेख मिलता है (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६५)। कर्नल टॉड ने भी इसका उल्लेख किया है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३५६)। प्रो० रशब्रुक विलियम्स ने इस बात का विरोध किया है (ऐन् एम्पायर-बिल्डर ऑफ़ दी सिक्स्टीन्थ सैन्चरी; पृ० १५५–५६), परन्तु स्वयं बाबर ने युद्ध के पूर्व की अपनी सेना की निराशा का जो वर्णन किया है, उसे देखते हुए सुलह की बातचीत होना सम्भव ही प्रतीत होता है। कर्नल टॉड ने तो यहां तक लिखा है कि 'हमारा दृढ़ विश्वास है कि उस समय बाबर ऐसी स्थिति में था कि वह किसी भी शर्त को अस्वीकार न करता' (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३५६)।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३५६।

(३) मुस्तफ़ा रूमी और उस्ताद अली, दोनों ही बाबर के तोपखाने के मुख्य अफ़सर थे। उस्ताद अली तोपें ढालने में भी निपुण था। मुस्तफ़ा रूमी ने रूमियों की शैली की मज़बूत गाड़ियां बनवाकर खानवे की लड़ाई में सेना की रक्षार्थ आड़ के तौर खड़ी करवाई थीं।

बाबर की सारी सेना कई भागों में विभक्त होकर खड़ी थी। सेना का अग्रभाग (हरावल) दो हिस्सों में बाँटा गया था; दाहिनी भाग में चिनतीमूर, सुलेमानशाह, यूनस अली और शाह मंसूर बरलास आदि तथा बाईं ओर के भाग में अलाउद्दीन लोदी (आलमख़ां), शेख़ ज़ैन, मुहिब अली और शेरख़ां अपने-अपने सैन्य सहित खड़े हुए थे। इन दोनों के बीच कुछ पीछे की ओर हटकर सहायतार्थ रखी हुई सेना के साथ बाबर घोड़े पर सवार था। अग्रभाग (हरावल) से दक्षिण पार्श्व में हुमायूं की अध्यक्षता में मीर हामा, मुहम्मद कोकलताश, ख़ानख़ाना दिलावरख़ां, मलिक दाद करानी, क़ासिम हुसेन, सुलतान और हिन्दू बेग आदि की सेनाएं थीं। हुमायूं के अधीनस्थ सैन्य के निकट इराक़ का राजदूत सुलेमान आक़ा और सीस्तान का हुसेन आक़ा युद्ध देखने के लिये खड़े हुए थे। इससे भी दाहिनी ओर तर्दीक, मलिक क़ासिम और बाबा कश्का की अध्यक्षता में युद्ध-समय में शत्रु को घेरनेवाली[1] एक सेना थी। इसी तरह हरावल के वाम-पार्श्व में ख़लीफ़ा के निरीक्षण में महदी ख़्वाजा, मुहम्मद सुलतान मिरज़ा, आदिल सुले-मान, अब्दुल अज़ीज़ और मुहम्मद अली अपने-अपने सैन्य के साथ उपस्थित थे। इस सैन्य से बाईं तरफ़ मुमीन आताक़ और रुस्तम तुर्कमान की अध्यक्षता में घेरा डालनेवाली दूसरी सेना खड़ी थी[2]।

(१) बादशाह बाबर अपनी सेनाओं के दोनों दूरस्थ पार्श्वों पर एक-एक ऐसी सेना रखता था, जो युद्ध के जम जाने पर दोनों तरफ़ से घूमती हुई आगे बढ़कर शत्रुओं को घेर लेती थी। व्यूहरचना की इस रीति (Flanking movement—तुलग़मा) से राजपूत अपरिचित थे, परन्तु बाबर इसके लाभों को भली भांति जानता था और हरएक बड़े युद्ध में इस प्रणाली से, जो विजय का एक साधन मानी जाती थी, काम लेता था।

(२) तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५६४-६८। प्रो० रश्ब्रुक विलियम्स; ऐन एम्पायर बिल्डर ऑफ़ दी सिक्सटीन्थ सैञ्चरी; पृ० १४६-५२।

बाबर की कुल सेना कितनी थी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उसने स्वयं इसका उल्लेख अपनी दिनचर्या में कहीं नहीं किया और न किसी अन्य मुसलमान इति-हास-लेखक ने। प्रो० रश्ब्रुक विलियम्स ने उसकी सेना आठ-दस हज़ार के क़रीब बताई है (पृ० १५२), जो सर्वथा स्वीकार करने योग्य नहीं है; क्योंकि बाबर की दिनचर्या की पुस्तक से पाया जाता है कि जब वह काबुल से चला, तब उसके साथ १२००० सेना थी (तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ४५२)। जब वह पंजाब में आया, तब ख़ांजहां और अन्य अमीर, जो बाबर की तरफ़ से हिन्दुस्तान में छोड़े गये थे, ससैन्य

इस युद्ध में सम्मिलित होने के लिये महाराणा की सेना में हसनखां मेवाती और इब्राहीम लोदी का पुत्र महमूद लोदी भी अपनी अपनी सेनाओं सहित आ मिले। मारवाड़ का राव गांगा[1], आंबेर का राजा पृथ्वीराज[2], ईडर का राजा भारमल, वीरमदेव (मेड़तिया), नरसिंहदेव[3], वागड़ (डूंगरपुर) का रावल उदयसिंह,

---

उससे आ मिले। इन्दरी पहुंचने तक सुलेमान शेखज़ादा एवं बहुतसे अफ़ग़ान सरदार भी आकर ससैन्य मिल गये थे, जिनमें आलमख़ां, दिलावरख़ां आदि मुख्य थे इसपर बाबर की कुल सेना की भीड़भाड़ उसी की दिनचर्य्या के अनुसार तीस-चालीस हज़ार हो गई (वही; पृ० ४५६)। इस तरह पानीपत के युद्ध में ही उसकी सेना ४० हज़ार के लगभग थी। उस युद्ध में कुछ सेना मारी भी गई होगी, परन्तु उस विजय के बाद बहुतसे अफ़ग़ान सरदार उसके अधीन हो गये, जिससे घटने की अपेक्षा उसकी सेना का बढ़ना ही अधिक संभव है। शेख़ गोरन के द्वारा दो तीन हज़ार सिपाही भरती होने का तो स्पष्ट उल्लेख है (वही; पृ० ५२६)। इसके साथ आगे यह भी लिखा है कि जब बाबर ने दरबार किया, तो शेख़ बायज़ीद, फ़ीरोज़ख़ां, महमूदख़ां और काज़ी जीया उसके अधीन हुए और उन्हें उसने बड़ी २ जागीरें दीं (वही; पृ० ५२७)। खानवा की लड़ाई से पहले उसने हुमायूं, चीनतीमूर, तरदी बेग और कूच बेग आदि की अध्यक्षता में भिन्न २ स्थानों को जीतने के लिये सेना भेजना शुरू किया। प्रो० रश्ब्रुक विलियम्स के कथनानुसार यदि उसकी सेना केवल १०००० होती, तो भिन्न २ दिशाओं में सेना भेजना कठिन ही नहीं, असम्भव हो जाता। नासिरख़ां नुहानी और मारुफ़ फ़ारमुली की ४०–५० हज़ार सेना का मुक़ाबला करने के लिये शाहज़ादे हुमायूं को जौनपुर की तरफ़ भेजा (वही; पृ० ५३०), तो उसके साथ कम-से-कम ६–७ हज़ार सेना भेजी होगी। इन्हीं दिनों उसने संभल, इटावा, धौलपुर, ग्वालियर, जौनपुर और कालपी जीत लिये, जहां की सेनाएं भी उसके साथ अवश्य रही होंगी। खानवा के युद्ध से पूर्व हुमायूं आदि तुर्क सरदार भी अपनी-अपनी सेना सहित लौट आए थे। बाबर ने अपनी दिनचर्य्या में भी सांगा के साथ के युद्ध की व्यूह-रचना में अलाउद्दीन, ख़ानख़ाना दिलावरख़ां, मलिक दाउद करांनी, शेख़ गोरन, जलालख़ां, कमालख़ां और निज़ामख़ां आदि अफ़ग़ान सरदारों के नाम दिये हैं, जिनसे स्पष्ट है कि इस युद्ध में उसने अपने अधीनस्थ सरदारों से पूरी सहायता ली थी। इन सब बातों पर विचार करते हुए यही अनुमान होता है कि खानवा के युद्ध के समय बाबर के साथ कम-से-कम पचास साठ हज़ार सेना होनी चाहिये।

(१) राव गांगा (मारवाड़ का) की सेना इस युद्ध में सम्मिलित हुई थी। राव गांगा की तरफ़ से मेड़ते के रायमल और रतनसिंह भी इस युद्ध में गये थे (मुंशी देवीप्रसाद; मीरां-बाई का जीवनचरित्र; पृ० ६)।

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६४।

(३) नरसिंहदेव शायद महाराणा सांगा का भतीजा हो।

चन्द्रभाण चौहान, माणिकचन्द चौहान[1], दिलीप, रावत रत्नसिंह[2] कांधलोत (चूंडावत), रावत जोगा[3] सारंगदेवोत, नरबद[4] हाड़ा, मेदिनीराय[5], वीरसिंह देव, झाला अज्जा[6], सोनगरा रामदास, परमार गोकुलदास[7], खेतसी, रायमल राठोड़ (जोधपुर की सेना का मुखिया), देवालिया का रावत बाघसिंह और बीकानेर का कुंवर कल्याणमल[8] भी ससैन्य महाराणा के साथ थे[9]। इस प्रकार महाराणा के झण्डे के नीचे प्राय: सारे राजपूताने के राजा या उनकी सेना और कई बाहरी रईस, सरदार, शाहज़ादे आदि थे। महाराणा की सारी सेना[10] चार

(१) चन्द्रभाण चौहान और माणिकचन्द चौहान, दोनों पूर्व (अन्तरवेद) से महाराणा की सहायतार्थ आये थे। इनके वंशजों में इस समय बेदला, कोठारिया और पारसोलीवाले—प्रथम श्रेणी के सरदारों में हैं।

(२) रत्नसिंह के वंश में सलूम्बर का ठिकाना प्रथम श्रेणी के सरदारों में है।

(३) इसके वंश में कानोड़ का ठिकाना प्रथम श्रेणी और बाठरड़े का द्वितीय श्रेणी के सरदारों में है।

(४) नरबद हाड़ा (बूंदी के राव नारायणदास का छोटा भाई और सूरजमल का चाचा) खटूपुर (खटकड़) का स्वामी और बूंदी की सेना का मुखिया था।

(५) मेदिनीराय चन्देरी का स्वामी था।

(६) झाला अज्जा सादड़ी (बड़ी) वालों का मूलपुरुष था।

(७) यह कहां का था, निश्चय नहीं हो सका, शायद बिजोल्यांवालों का पूर्वज हो।

(८) यह बीकानेर के राव जैतसी का पुत्र था और उक्त राव की तरफ़ से महाराणा की सहायतार्थ बीकानेर की सेना का अध्यक्ष होकर लड़ने गया था (मुंशी सोहनलाल; तारीख़-बीकानेर; पृ० ११९–१६)। उक्त तारीख़ में खानवा की लड़ाई का वि० सं० १५९८ (ई० स० १५४१) में होना लिखा है, जो ग़लत है।

(९) तुज़ुके बाबरी का बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५६१–६२ और ५७३। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६४। ख्यातें।

(१०) महाराणा सांगा के साथ खानवा के युद्ध में कितनी सेना थी, इसका ब्यौरेवार विवेचन ख्यातों में तो मिलता नहीं और पिछले इतिहास-लेखकों ने उसकी जो संख्या बतलाई है, वह बाबर की दिनचर्या की पुस्तक से ली गई है। बाबर ने अपनी सेना की संख्या बताने में तो मौन ही धारण किया और उक्त पुस्तक में दिये हुए फ़तहनामे में महाराणा की सेना की जो संख्या दी है, उसमें अतिशयोक्ति की गई है। उसमें महाराणा तथा उसके साथ के राजाओं, सरदारों आदि की सेना की संख्या नीचे लिखे अनुसार दी है—

राणा सांगा	...	...	...	१०००००	सवार
सलाहउद्दीन (सलहदी, शल्यहति)	...		...	३००००	"

भागों—अग्रभाग (हरावल), पृष्ठ-भाग (चण्डावल, चन्दावल), दक्षिण-पार्श्व और वाम-पार्श्व—में विभक्त थी। महाराणा स्वयं हाथी पर सवार होकर सैन्य संचालन कर रहा था।

ता० १३ जमादिउस्सानी हि० स० ९३३ (चैत्र सुदि १४ वि० सं० १५८४= १७ मार्च ई० स १५२७) को सबेरे ९½ बजे के करीब युद्ध प्रारम्भ हुआ। राजपूतों ने पहले पहल मुग़ल-सेना के दक्षिण पार्श्व पर हमला किया, जिससे मुग़ल सेना का वह पार्श्व एकदम कमज़ोर हो गया; यदि वहां और थोड़ी देर तक सहायता न पहुंचती, तो मुग़लों की हार निश्चित थी। बाबर ने एकदम सहायता भेजी और चीनतीमूर सुलतान ने राजपूतों के वामपार्श्व के मध्य भाग पर हमला किया, जिससे मुग़ल-सेना का दक्षिणपार्श्व नष्ट होने से बच गया। चीनतीमूर के इस हमले से राजपूतों के अग्रभाग और वामपार्श्व में विशेष अन्तर पड़ गया, जिससे मुस्तफ़ा ने अच्छा अवसर देखकर तोपों से गोलों की

रावल उदयसिंह (वागड़ का)		...	...	१२०००	सवार
मेदिनीराय	...	...	...	१२०००	,,
हसनखां (मेवाती)	...	...	...	१००००	,,
महमूदखां (सिकन्दर लोदी का पुत्र)			...	१००००	,,
भारमल (ईडर का)	...	...	...	४०००	,,
नरपत (नरबद) हाड़ा		...	...	७०००	,,
सरदी (? शत्रुसेन खीची)		...	...	६०००	,,
बिरमदेव (वीरमदेव मेड़तिया)		...	...	४०००	,,
चन्द्रभान चौहान		...	...	४०००	,,
भूपतराय (सलहदी का पुत्र)		...	...	६०००	,,
मानिकचन्द चौहान		...	...	४०००	,,
दिलीपराय	...	...	...	४०००	,,
गांगा	...	...	...	३०००	,,
कर्मसिंह	...	...	...	३०००	,,
डूंगरसिंह ...	...	...	...	३०००	,,
			कुल	२२२०००	

इस प्रकार २२२००० सवार तो बाबर ने गिनाए हैं (वही; पृ० ५६२ और ५७३)। यदि सलहदी के पुत्र भूपत के ६००० सवार सलहदी की सेना के अन्तर्गत मान लिये जावें, तो भी बाबर की बतलाई हुई सेना २१६००० होती है और बाबर ने एक स्थल पर राणा की सेना

वर्षा शुरू कर दी। इस तरह मुग़लों के दक्षिणपार्श्व की सेना को सम्हल जाने का मौक़ा मिल गया। मुग़ल सेना का दक्षिणपार्श्व की तरफ़ विशेष ध्यान देखकर राजपूतों ने वामपार्श्व पर ज़ोरशोर से हमला किया[1], परन्तु इसी समय एक तीर महाराणा के सिर में लगा, जिससे वह मूर्छित हो गया और कुछ सरदार उसे पालकी में बिठाकर मेवाड़ की तरफ़ ले गये। इसपर कुछ सरदारों ने रावत रत्नसिंह को—यह सोचकर कि राजपूत सेना महाराणा को अपने में अनुपस्थित देखकर हताश न हो जाय—महाराणा के हाथी पर सवार होने और सैन्य-सञ्चालन करने को कहा, परन्तु उसने उत्तर दिया कि मेरे पूर्वज मेवाड़ का राज्य छोड़ चुके हैं, इसलिये मैं एक क्षण के लिये भी राज्य-चिह्न धारण नहीं कर सकता, परन्तु जो कोई राज्यछत्र धारण करेगा, उसकी पूर्ण रूप से सहायता करूंगा और प्राण रहने तक शत्रु से लडूंगा[2]। इसपर झाला अज्जा को सब राज्यचिह्नों के साथ महाराणा के हाथी पर सवार किया[3] और उसकी अध्यक्षता में सारी सेना लड़ने लगी[4]। वामपार्श्व पर राजपूतों

में २०१००० सवार होना बतलाया है (वही; पृ० ५६२), जो विश्वास योग्य नहीं है। पिछले मुसलमान इतिहास-लेखकों ने भी बाबर के इस कथन को अतिशयोक्ति मानकर इसपर विश्वास नहीं किया। अकबर के बख़्शी निज़ामुद्दीन ने अपनी पुस्तक तबक़ाते अकबरी में राणा सांगा की सेना १२०००० (अर्स्किन; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; जि० १, पृ० ४६६) और शाह नवाज़खां (सम्सामुद्दौला) ने मआसिरुल-उमरा में १००००० लिखा है (मआसिरुल-उमरा; जि० २, पृ० २०२; बंगाल एशियाटिक सोसायटी का संस्करण), जो संभव है।

(१) तुज़ुके बाबरी का ए. एस्; बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५६८–६६। प्रो० रश्ब्रुक विलियम्स; ऐन् एम्पायर-बिल्डर ऑफ़ दी सिक्स्टीन्थ सैन्चरी; पृ० १५३।

(२) हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० १४५–४६।

(३) झाला अज्जा ने महाराणा के सब राज्यचिह्न धारण कर युद्ध संचालन करने में अपना प्राण दिया, जिसकी स्मृति में उसके मुख्य वंशधर सादड़ी के राजराणा को अब तक महाराणा के वे समस्त राज्यचिह्न धारण करने का अधिकार चला आता है।

(४) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६६। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० १४६–४७।

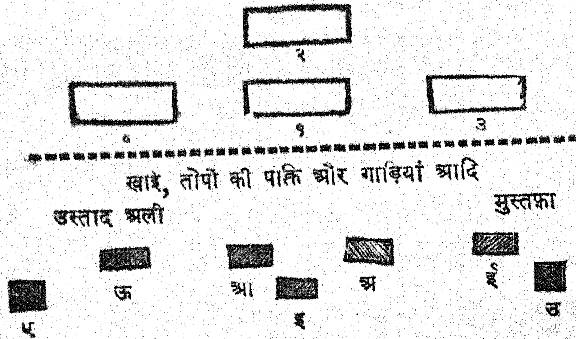
ख्यातों, वीरविनोद और कर्नल टॉड के राजस्थान आदि में लिखा मिलता है कि ऐन लड़ाई के वक़्त तंवर सलहदी, जो महाराणा की हरावल में था, राजपूतों को धोखा देकर अपने सारे सैन्य सहित बाबर से जा मिला (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३५६। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६६। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ० १४९), परंतु इसका उल्लेख किसी मुसलमान लेखक ने



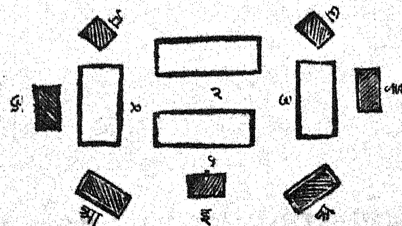
झाला अज्जा

खानवा के युद्ध की व्यूहरचना[1]

युद्ध के प्रारंभ की स्थिति



युद्ध के अन्त की स्थिति



तोपची और बन्दूकची

खाई

महाराणा की सेना

१—हरावल (अग्रभाग)

२—चन्दावल (पृष्ठ भाग)

३—वामपार्श्व

४—दक्षिणपार्श्व

बाबर की सेना

अ—हरावल का दक्षिण भाग

आ—हरावल का वाम भाग

इ—बाबर (सहायक सेना के साथ)

ई—दक्षिणपार्श्व

उ—दक्षिणपार्श्व को घेरा डालनेवाली सेना

ऊ—वामपार्श्व

ए—वामपार्श्व को घेरा डालनेवाली सेना

(१) प्रो० रश्ब्रुक विलियम्स की पुस्तक के आधार पर।

के इस आक्रमण को देखकर वामपार्श्व की घेरनेवाली सेना के अफ़सर मुमीन आताक़ और रुस्तम तुर्कमान ने आगे बढ़कर राजपूतों पर हमला किया और बाबर ने भी खलीफ़ा की सहायतार्थ ख़्वाजा हुसेन की अध्यक्षता में एक सेना भेजी।

अब तक युद्ध अनिश्चयात्मक हो रहा था; एक तरफ़ मुग़लों का तोपख़ाना धड़ाधड़ अग्नि-वर्षा कर राजपूतों को नष्ट कर रहा था, तो दूसरी ओर राजपूतों का प्रचण्ड आक्रमण मुग़लों की संख्या को बेतरह कम कर रहा था। इस समय बाबर ने दोनों पार्श्वों की घेरा डालनेवाली सेना को आगे बढ़कर घेरा डालने के लिये कहा और उस्ताद अली को भी गोले बरसाने के लिये हुक्म दिया। तोपों के पीछे सहायतार्थ रक्खी हुई सेना को उसने बन्दूकचियों के बीच में कर राजपूतों के अग्रभाग पर हमला करने के लिये आगे बढ़ाया। तोपों की उस मार से राजपूतों का अग्रभाग कुछ कमज़ोर हो गया। उनकी इस अवस्था को देखकर मुग़लों ने राजपूतों के दक्षिण और वामपार्श्व पर बड़े ज़ोर से हमला किया और बाबर की हरावल के दोनों भागों एवं दोनों पार्श्वों की सेनाएं तोपख़ाने सहित अपनी अपनी दिशा में आगे बढ़ती हुई घेरा डालनेवाली सेनाओं की सहायक हो गईं। इस आकस्मिक आक्रमण से राजपूतों में गड़बड़ी मच गई और वे अग्रभाग की तरफ़ जाने लगे, परन्तु फिर उन्होंने कुछ सम्हलकर मुग़लों के दोनों पार्श्वों पर हमला किया और मध्य भाग (हरावल) तक उनको खदेड़ते हुए वे बाबर के निकट पहुंच गये। इस समय तोपख़ाने ने मुग़ल सेना की बड़ी सहायता की; तोपों के गोलों के आगे राजपूत

नहीं किया और न अर्स्किन और स्टेन्ली लेनपूल आदि विद्वानों ने। प्रो० रश्ब्रुक विलियम्स ने तो इस कथन का विरोध भी किया है। यदि सलहदी बाबर से मिल गया होता और उससे बाबर को सहायता मिली होती, तो अवश्य उसे कोई बड़ी जागीर मिलती; परंतु ऐसा पाया नहीं जाता। बाबर ने तो उस युद्ध के पीछे उसकी पहले की जागीर तक छीनना चाहा और चंदेरी लेते ही उसपर आक्रमण करने का निश्चय किया था (देखो पृ० ६६६, टि० १)। दूसरी बात यह है कि यदि सलहदी महाराणा को धोखा देकर बाबर से मिल गया होता, तो वह फिर चित्तोड़ में आकर मुँह दिखाने का साहस कभी न करता; परन्तु जब महमूदशाह ने उसको मरवाना चाहा, तब वह महाराणा रत्नसिंह के पास चला आया (बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३४६)। इन सब बातों का विचार करते हुए उसके बाबर से मिल जाने के कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

न ठहर सके और पीछे हटे। मुग़लों ने फिर आक्रमण किया और सब ने मिलकर राजपूत सेना को घेर लिया। राजपूतों ने तलवारों और भालों से उनका सामना किया, परन्तु चारों ओर से घिर जाने और सामने से गोलों की वर्षा होने से उनका संहार होने लगा[1]। युद्ध के प्रारंभ और अन्त की दोनों पक्ष की सेनाओं की स्थिति पृ० ३७७ में दिये हुए नक्शे से स्पष्ट हो जायगी।

उदयसिंह, हसनखां मेवाती, माणिकचन्द चौहान, चंद्रभाण चौहान, रत्नसिंह चूंडावत, झाला अज्जा, रामदास सोनगरा, परमार गोकलदास, रायमल राठोड़, रत्नसिंह मेड़तिया और खेतसी आदि इस युद्ध में मारे गये[2]। राजपूतों की हार हुई और मुग़ल सेना ने डेरों तक उनका पीछा किया। बाबर ने विजयी होकर ग़ाज़ी की उपाधि धारण की। विजय-चिह्न के तौर पर राजपूतों के सिरों की एक मीनार (ढेर) बनवाकर वह बयाना की ओर चला, जहां उसने राणा के देश पर चढ़ाई करनी चाहिये या नहीं, इसका विचार किया, परन्तु ग्रीष्म ऋतु का आगमन जानकर चढ़ाई स्थगित कर दी[3]।

इस पराजय का मुख्य कारण महाराणा सांगा का प्रथम विजय के बाद तुरन्त ही युद्ध न करके बाबर को तैयारी करने का पूरा समय देना ही था। यदि वह खानवा के पास की पहली लड़ाई के बाद ही आक्रमण करता, तो उसकी जीत निश्चित थी[4]। राजपूत केवल अपनी अदम्य वीरता के साथ शत्रु-सेना पर तलवारों

(१) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५६८–७३। प्रो० रश्ब्रुक विलियम्स; ऐन् एम्पायर-बिल्डर ऑफ़ दी सिक्स्टींन्थ सैन्चरी; पृ० १५३–५५। अर्स्किन; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; पृ० ४७२–७३।

(२) तुज़ुके बाबरी का ए. एस्. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५७३। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६६।

इस युद्ध में बाबर की सेना का कितना संहार हुआ और कौन कौन अफ़सर मारे गये, इस विषय में बाबर ने तो अपनी दिनचर्या की पुस्तक में मौन ही धारण किया है और न पिछले मुसलमान इतिहास-लेखकों ने कुछ लिखा है; तो भी संभव है कि बाबर की सेना का भीषण संहार हुआ हो। भाटों के एक दोहे से पाया जाता है कि बाबर के सैन्य के ५०००० आदमी मारे गये थे, परंतु इसको भी हम अतिशयोक्ति से रहित नहीं समझते।

(३) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५७६–७७।

(४) एलफ़िन्स्टन ने लिखा है कि यदि राणा मुसलमानों की पहली घबराहट पर ही आगे बढ़ जाता, तो उसकी विजय निश्चित थी (हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; पृ० ४२३, नवम संस्करण)।

और भालों से आक्रमण करते थे और बाबर की इस नवीन व्यूहरचना से अन-भिज्ञ होने के कारण वे अपनी प्राचीन रीति से ही लड़ते थे और उनको यह विचार भी न था कि दोनों पार्श्वों पर दूरस्थित शत्रु-सेना अन्य सेनाओं के साथ आगे बढ़कर उन्हें घेर लेगी। उनके पास तोपें और बन्दूकें न थीं, तो भी वे तोपों और बन्दूकों की परवाह न कर बड़ी वीरता से आगे बढ़-बढ़कर लड़ते रहे, जिससे भी उनकी बड़ी हानि हुई। हाथी पर सवार होकर महाराणा ने भी बड़ी भूल की, क्योंकि इससे शत्रु को उसपर ठीक निशाना लगाकर घायल करने का मौक़ा मिला और उसको वहां से मेवाड़ की तरफ़ ले जाने का भी कुछ प्रभाव सेना पर अवश्य पड़ा।

इस पराजय से राजपूतों का वह प्रताप, जो महाराणा कुम्भा के समय में बहुत बढ़ा और इस समय तक अपने शिखर पर पहुंच चुका था, एकदम कम हो गया, जिससे भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति में राजपूतों का वह उच्च-स्थान न रहा। राजपूतों की शायद ही कोई ऐसी शाखा हो, जिसके राजकीय परिवार में से कोई-न-कोई प्रसिद्ध व्यक्ति इस युद्ध में काम न आया हो। इस युद्ध का दूसरा परिणाम यह हुआ कि मेवाड़ की प्रतिष्ठा और शक्ति के कारण राजपूतों का जो संगठन हुआ था वह टूट गया। इसका तीसरा और अंतिम परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष में मुग़लों का राज्य स्थापित हो गया और बाबर स्थिर रूप से भारतवर्ष का बादशाह बना, परन्तु इस युद्ध से वह भी इतना कमज़ोर हो गया कि राजपूताने पर चढ़ाई करने का साहस न कर सका। इस युद्ध से काणोता व बसवा गांव तक मेवाड़ की सीमा रह गई, जो पहिले पीलिया खाल (पीला-खाल) तक थी[1]।

महाराणा संग्रामसिंह का रणथंभोर में पहुंचना

मूर्छित महाराणा को लेकर राजपूत जब बसवा गांव (जयपुर राज्य) में पहुंचे, तब महाराणा सचेत हुआ और उसने पूछा—सेना की क्या हालत है और विजय किसकी हुई? राजपूतों के सारा वृत्तान्त सुनाने पर अपने को युद्ध-स्थल से इतनी दूर ले आने के लिये उसने उन्हें बुरा-भला कहा और वहीं डेरा डालकर फिर युद्ध की तैयारी शुरू की। कई सरदारों ने महाराणा को दूसरी बार युद्ध करने के विचार से रोका,

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६७।

परन्तु उसने यह जवाब दिया कि जब तक मैं बाबर को विजय न कर लूंगा, चित्तोड़ न लौटूंगा। फिर वह बसवा से रणथंभोर जा रहा।

इन दिनों महाराणा बहुत निराश रहता था; न किसी से मिलता जुलता और न महल से बाहर निकलता था। इस उदासीनता को दूर करने के लिये एक दिन सोदा बारहठ जमणा (? टोडरमल चाँचल्या) नामक एक चारण महाराणा के पास गया। पहले तो उसे राजपूतों ने महाराणा से मिलने न दिया, परन्तु उसके बहुत आग्रह करने पर उसको भीतर जाने दिया। उसने वहां जाकर सांगा को यह गीत सुनाया—

गीत

सतबार जरासँध आगळ श्रीरँग,
बिमुहा टीकम दीध बग।
मेळि घात मारे मधुसूदन,
असुर घात नांखे अळग ॥ १ ॥
पारथ हेकरसां हथणापुर,
हटियो त्रिया पडंतां हाथ।
देख जका दुरजोधण कीधी,
पछैं तका कीधी सज पाथ ॥ २ ॥
इकरां रामतणी तिय रावण,
मंद हरेगो दहकमळ।
टीकम सोहिज पथर तारिया,
जगनायक ऊपरां जळ ॥ ३ ॥
एक राड़ भवमांह अवत्थी,
अमरस आणै केम उर।
मालतणा केवा ऋण मांगा,
सांगा तू सालै असुर[1] ॥ ४ ॥

आशय—महाराणा! आपको निराश न होना चाहिये। जरासंध से सौ (कई) बार हारकर भी श्रीकृष्ण ने अन्त में उसे हराया। जब दुर्योधन ने

(१) ठाकुर भूरसिंह शेखावत; महाराणायशप्रकाश; पृ० ७०–७१।

द्रौपदी पर हाथ मारा, तब अर्जुन हस्तिनापुर से चला गया, परन्तु पीछे से उसने क्या क्या किया ? एक बार मूर्ख रावण सीता को हर ले गया था, जिसपर रामचन्द्र ने जल पर पत्थर तैराकर (समुद्र पर पुल बांधकर) कैसा बदला लिया ? हे राणा, तू एक हार पर क्यों इतना दुःख करता है ? तू तो शत्रु के लिये साल (दुःखरूप) है।

यह गीत सुनकर महाराणा की निराशा दूर हो गई और उसने उसे बकाण नामक गांव दिया, जो अभी तक उसके वंश में चला आता है[1]।

महाराणा सांगा के सिक्के और शिलालेख

महाराणा सांगा के पांच-छः प्रकार के ताम्बे के सिक्के देखने में आये, जिनकी एक तरफ़ राणा संग्रामसह, श्रीसंग्रामसह, श्रीराण संग्रामसह, श्रीसंग्रामसाह, श्रीसंग्रमसह या श्रीराणा सगमसह लेख मिलता है। पूरा लेख किसी सिक्के पर नहीं पाया गया; अलग २ सिक्कों पर लेख का भिन्न-भिन्न अंश आया है, किसी किसी सिक्के पर लेख के नीचे १५७५ और १५८० के अंक भी मिलते हैं, जो संवतों के सूचक हैं। सिक्कों की दूसरी तरफ़ किसी पर खड़ी रेखा के दोनों तरफ़ नीचे की ओर झुकी हुई दो दो वक्र रेखाएं हैं, जो शायद मनुष्य की भद्दी मूर्ति बनाने का यत्न हो; किसी पर त्रिशूल, स्वस्तिक का चिह्न और नीचे या ऊपर एक दो फ़ारसी अक्षर, जो शाह या साह के सूचक हों, मिलते हैं[2]। किसी पर पान की-सी आकृति और एक-दो फ़ारसी अक्षर हैं, जैसे कि आजकल के उदयपुरी पैसों (ढींगलों) पर मिल आते हैं। ये सिक्के चौकोर, परन्तु मोटे, भद्दे और असावधानी से बने हुए हैं, जिनपर के लेख में शुद्धता का विचार रहा हो, ऐसा पाया नहीं जाता। ये सिक्के कुंभा के तांबे के सिक्कों जैसे सुन्दर नहीं हैं।

---

(१) महाराणा चारणों के वीररस-पूर्ण गीतों के सुनने का अनुरागी था, इसी से उसने कई चारणों को जागीरें भी दी थीं। बृहत् इतिहास वीरविनोद के कर्त्ता महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास के पूर्व पुरुष महपा जैतावत को उसने वि० सं० १५७५ वैशाख सुदि ७ को ढोकलिया गांव दिया, जो अब तक उसके वंशजों के अधिकार में है (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३५८)। ऐसे ही महियारिया हरिदास को भी कुछ गांव दिये थे, जिनमें से पांचली गांव अब तक उसके वंश में चला आता है (वही; भाग १, पृ० ३७१)।

(२) डब्ल्यू. डब्ल्यू. वैब; दी करंसीज ऑफ़ राजपूताना; पृ० ७, प्लेट १, चित्र ६, १० और ११।

महाराणा सांगा उमर भर युद्ध ही करता रहा, इसलिये उसे मन्दिरादि बनाने का समय मिला हो, ऐसा पाया नहीं जाता। इसी से स्वयं महाराणा का खुदवाया हुआ कोई शिलालेख अब तक नहीं मिला। उसके राजत्वकाल के दो शिलालेख मिले हैं, जिनमें से एक चित्तोड़ से वि० सं० १५७४ वैशाख सुदि १३ का; उसमें राजाधिराज संग्रामसिंह के राज्य-समय उसके प्रधान द्वारा दो बीघे भूमि देवी के मन्दिर को अर्पण करने का उल्लेख है। दूसरा शिलालेख, वि० सं० १५८४ ज्येष्ठ वदि १३ का, डिग्गी (जयपुर राज्य में) के प्रसिद्ध कल्याणरायजी के मन्दिर में लगा हुआ है, जिससे पाया जाता है कि राणा संग्रामसिंह के समय तिवाड़ी ब्राह्मणों ने वह मंदिर बनवाया था।

यद्यपि खानवा के युद्ध में राजपूत हारे थे, तो भी उनका बल नहीं टूटा था। बाबर को अब भी डर था कि कहीं राजपूत फिर एकत्र हो हमला कर उससे

महाराणा सांगा की मृत्यु

राज्य न छीन लें, इसीलिये उसने उनपर आक्रमण कर उनकी शक्ति को नष्ट करने का विचार किया। इस निश्चय के अनुसार वह मेदिनीराय पर, जो महाराणा के बड़े सेनापतियों में से एक था, चढ़ाई कर कालपी, इरिच और कचवा (खजवा) होता हुआ ता० २६ रबीउस्सानी हि० स० ९३४ (वि० सं० १५८४ माघ वदि १३=ता० १९ जनवरी ई० स० १५२८) को चन्देरी पहुंचा[1]। बदला लेने के लिये इस अवसर को उपयुक्त जानकर महाराणा ने भी चन्देरी को प्रस्थान किया और कालपी से कुछ दूर इरिच गांव में डेरा डाला, जहां उसके साथी राजपूतों ने, जो नये युद्ध के विरोधी थे, उसको फिर युद्ध में प्रविष्ट देखकर विष दे दिया[2]। शनैः शनैः विष का प्रभाव बढ़ता देखकर वे उसको वहां से लेकर लौटे और मार्ग में कालपी[3] स्थान पर माघ

(१) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५६२।

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६७। हरबिलास सारड़ा; महाराणा सांगा; पृ०१२६-२७। मुंशी देवीप्रसाद का कथन है कि 'महाराणा मुकाम एरिच से बीमार होकर पीछे लौटे और रास्ते में ही जान देकर वचन निभा गये कि मैं फ़तह किये बिना चित्तोड़ को नहीं जाऊंगा' (महाराणा संग्रामसिंघजी का जीवनचरित्र; पृ० १४)।

(३) वीरविनोद; भा० १, पृ० ३६६, टि० १।

'अमरकाव्य' में कालपी स्थान में महाराणा का देहान्त होना और मांडलगढ़ में दाहक्रिया होना लिखा है, जो ठीक ही है। वीरविनोद में खानवा के युद्धक्षेत्र से महाराणा के बसवा में लाये

सुदि ६ वि० सं० १५८४[1] (ता० ३० जनवरी १५२८) को उसका स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार उस समय के सबसे बड़े प्रतापी हिन्दूपति महाराणा सांगा की जीवन-लीला का अन्त हुआ।

भाटों की ख्यातों के अनुसार महाराणा सांगा ने २८ विवाह किये थे, जिनसे उसके सात पुत्र—भोजराज,[2] कर्णसिंह, रत्नसिंह,[3] विक्रमादित्य, उदयसिंह,[4]

जाने पर वहीं देहान्त होना लिखा है (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६७), जो विश्वास के योग्य नहीं है।

(१) महाराणा की मृत्यु का ठीक दिन अनिश्चित है। वीरविनोद में वि० सं० १५८४ वैशाख (ई० स० १५२७ अप्रेल) में इस घटना का होना लिखा है (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३७२), जो स्वीकार नहीं किया जा सकता। मुहणोत नैणसी ने सांगा के जन्म और गद्दीनशीनी के संवतों के साथ तीसरा संवत् १५८४ कार्तिक सुदि ५ दिया है और साथ में लिखा है कि राणा सांगा सीकरी की लड़ाई में हारा (ख्यात; पत्र ४, पृ० २), परन्तु नैणसी की पुस्तक में विराम-चिह्नों का अभाव होने के कारण उक्त तीसरे संवत् को मृत्यु का संवत् भी मान सकते हैं और ऐसा मानकर ही वीरविनोद में महाराणा सांगा के उत्तराधिकारी रत्नसिंह की गद्दीनशीनी की यही तिथि दी है (वीरविनोद; भाग २, पृ० १); परन्तु नैणसी की दी हुई यह तिथि भी स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि उक्त तिथि हि० स० ९३४ ता० ३ सफ़र (ई० स० १५२७ ता० २१ अक्टूबर) को थी। बाबर बादशाह ने हि० स० ९३४ ता० ७ जमादि-उल्-अव्वल (वि०सं० १५८४ माघ सुदि ८=ई० स० १५२८ ता० २९ जनवरी) के दिन चन्देरी को विजय किया और दूसरे दिन अपने सैनिकों से सलाह की कि यहां से पहले रायसेन, भिलसा और सारंगपुर के स्वामी सलहदी पर चढ़ें या राणा सांगा पर (तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५९६)। इससे निश्चित है कि उक्त तिथि तक महाराणा सांगा की मृत्यु की सूचना बाबर को मिली न थी, अर्थात् वह जीवित था। चतुरकुलचरित्र में महाराणा की मृत्यु वि० सं० १५८४ माघ सुदि ९ (ता० ३० जनवरी ई० स० १५२८) को होना लिखा है (ठाकुर चतुरसिंह; चतुरकुलचरित्र; पृ० २७), जो संभवतः ठीक हो, क्योंकि बाबर के चन्देरी में ठहरते समय सांगा एरिच में पहुंचा था और एकआध दिन बाद उसका स्वर्गवास हो गया था।

(२) भोजराज का जन्म सोलंकी रायमल की पुत्री कुंवरबाई से हुआ था (बड़वे देवीदान की ख्यात। वीरविनोद; भाग २, पृ० १)।

(३) रत्नसिंह जोधपुर के राव जोधा के पोते बाघा सूजावत की पुत्री धनाई (धनबाई, धनकुंवर) से उत्पन्न हुआ था (बड़वे देवीदान की ख्यात। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३७१। मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ५, पृ० १ और पत्र २५, पृ० १)।

(४) विक्रमादित्य और उदयसिंह बूंदी के राव भांडा की पोती और नरबद की बेटी करमेती (कर्मवती) से पैदा हुए थे (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३७१। नैणसी की ख्यात; पत्र २५, पृ० १)।

महाराणा सांगा की सन्तति

पर्वतसिंह और कृष्णसिंह—तथा चार लड़कियां—कुंवर-बाई, गंगाबाई, पद्माबाई और राजबाई—हुई। कुंवरों में से भोजराज, कर्णसिंह, पर्वतसिंह और कृष्णसिंह तो महाराणा के जीवन-काल में ही मर गये थे।

महाराणा सांगा का व्यक्तित्व

महाराणा सांगा वीर, उदार, कृतज्ञ, बुद्धिमान और न्यायपरायण शासक था। अपने शत्रु को कैद करके छोड़ देना और उसे पीछा राज्य दे देना सांगा जैसे ही उदार और वीर पुरुष का कार्य था। वह एक सच्चा क्षत्रिय था; उसने कितने ही शाहज़ादों, राजाओं आदि को अपनी शरण में आने पर अच्छी तरह रक्खा और आवश्यकता पड़ने पर उनके लिये युद्ध भी किया। प्रारंभ से ही आपत्तियों में पलने के कारण वह निडर, साहसी, वीर और एक अच्छा योद्धा बन गया था, जिससे वह मेवाड़ को एक साम्राज्य बना सका। मालवे के सुलतान को परास्त कर और उससे रणथम्भोर,[1] गागरौन, कालपी, भिलसा तथा चन्देरी जीतकर उसने अपने राज्य को बहुत बढ़ा दिया था[2]। राजपूताने के बहुधा सभी तथा कई बाहरी राजा आदि

---

(१) कर्नल टॉड ने लिखा है—'रणथम्भोर जैसे अभेद्य दुर्ग को, जिसकी रक्षा शाही सेनापति अली बड़ी योग्यता से कर रहा था, सफलता से हस्तगत करने से सांगा की बड़ी कीर्ति हुई' (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३५६)। तुज़ुके बाबरी से पाया जाता है कि मालवे के सुलतान महमूद दूसरे को अपनी कैद से छोड़ने पर उसके जो इलाक़े महाराणा के हस्तगत हुए, उनमें रणथम्भोर भी था। संभव है, अली सुलतान महमूद का क़िलेदार हो और महाराणा को क़िला सौंप देने से उसने इनकार किया हो, अतएव उससे लड़कर क़िला लेना पड़ा हो।

(२) मुहणोत नैणसी ने लिखा है कि राणा सांगा ने बांधव (बांधवगढ़, रीवां) के बघेले मुकुन्द से लड़ाई की, जिसमें मुकुन्द भागा और उसके बहुतसे हाथी राणा के हाथ लगे (ख्यात; पत्र ५, पृ० १), परन्तु रीवां की ख्यात या रीवां के किसी इतिहास में वहां के राजाओं में मुकुन्द का नाम नहीं मिलता और न नैणसी ने बांधोगढ़ के बघेलों के वृत्तान्त में दिया है। कायस्थ अभयचन्द्र के पुत्र माधव ने रीवां के राजा वीरभानु के, जो बादशाह हुमायूं का समकालीन था, राज्य-समय वि० सं० १५६७ (ई० स० १५४०) से कुछ पूर्व 'वीरभानूदय' काव्य लिखा, जिसमें मुकुन्द का नाम नहीं है, यद्यपि उक्त काव्य का कर्त्ता माधव महाराणा सांगा का समकालीन था। नैणसी ने रीवां के बघेलों के इतिहास में वीरभानु के वंशधर विक्रमादित्य के संबंध में लिखा है कि वह मुकुन्दपुर में रहा करता था (ख्यात; पत्र ३१, पृ० १)। यदि वह नगर उसी मुकुन्द का बसाया हुआ हो, तो यही मानना पड़ेगा कि मुकुंद बांधवगढ़ (रीवां) का राजा नहीं, किन्तु वहां के किसी राजा के छोटे भाइयों में से था।

भी उसकी अधीनता या मेवाड़ के गौरव के कारण मित्रभाव से उसके झंडे के नीचे लड़ने में अपना गौरव समझते थे। इस प्रकार राजपूत जाति का संगठन होने के कारण वे बाबर से लड़ने को एकत्र हुए। सांगा अन्तिम हिन्दू राजा था, जिसके सेनापतित्व में सब राजपूत जातियां विदेशियों (तुर्कों) को भारत से निकालने के लिये सम्मिलित हुईं। यद्यपि उसके बाद और भी वीर राजा उत्पन्न हुए, तथापि ऐसा कोई न हुआ, जो सारे राजपूताने की सेना का सेनापति बना हो। सांगा ने दिल्ली के सुलतान को भी जीतकर आगरे के पास पीलाखाल को अपने राज्य की उत्तरी सीमा निश्चित की और गुजरात को लूटकर छोड़ दिया। इस तरह गुजरात, मालवे और दिल्ली के सुलतानों को परास्त कर[1] उसने महाराणा कुंभा के आरंभ किये हुए कार्य को, जो उदयसिंह के कारण शिथिल हो गया था, आगे बढ़ाया। बाबर लिखता है कि 'राणा सांगा अपनी वीरता और तलवार के बल से बहुत बड़ा हो गया था। उसकी शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि मालवे, गुजरात और दिल्ली के सुलतानों में से कोई भी अकेला उसे हरा नहीं सकता था। क़रीब २०० शहरों में उसने मस्जिदें गिरवा दीं और बहुतसे मुसलमानों को क़ैद किया। उसका मुल्क १० करोड़ की आमदनी का था; उसकी सेना में १००००० सवार थे। उसके साथ ७ राजा, ९ राव और १०४ छोटे सरदार रहा करते थे[2]'। उसके तीन उत्तराधिकारी भी यदि वैसे ही वीर और योग्य होते, तो मुग़लों का राज्य भारतवर्ष में जमने न पाता।

---

(१) *इब्राहिम पूरब दिसा न उलटै,*
पछम मुदाफर न दै पयाण ॥
दखणी महमदसाह न दोड़ै,
सांगो दामण तहुँ सुरताण ॥ १ ॥

(ठाकुर भूरसिंह शेखावत; महाराणायशप्रकाश; पृ० ६५)।

आशय—इब्राहीम पूर्व से, मुज़फ़्फ़रशाह पश्चिम से और मुहम्मदशाह दक्षिण से इधर (चित्तोड़ की तरफ़) नहीं बढ़ सकता, क्योंकि सांगा ने उन तीनों सुलतानों के पैर जकड़ दिये हैं।

(२) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ४८३ और ५६१-६२। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० ६।

इतना बड़ा राज्य स्थिर करनेवाला होने पर भी वह राजनीति में अधिक निपुण नहीं था; उसने इब्राहीम लोदी को नष्ट करने के लिये उससे भी प्रबल शत्रु (बाबर) को बुलाने का यत्न किया। अपने शत्रु को पकड़कर फिर छोड़ देना उदारता की दृष्टि से भले ही उत्तम कार्य हो, परन्तु राजनीति के विचार से बुरा ही था। इसी तरह गुजरात के सुलतान को हराकर उसके इलाक़ों पर अधिकार न करना भी उसकी भूल ही थी। राजपूतों की बहुविवाह की कुरीति से वह बचा हुआ नहीं था; अपने छोटे लड़कों को रणथंभोर जैसी बड़ी जागीर देकर उसने भविष्य के लिये एक कांटा बो दिया।

महाराणा सांगा का क़द मझोला, बदन गठा हुआ, चेहरा भरा हुआ, आंखें बड़ी, हाथ लंबे और रंग गेहुंआ था[१]। अपने भाई पृथ्वीराज के साथ के झगड़े में उसकी एक आंख फूट गई थी, इब्राहीम लोदी के साथ के दिल्ली के युद्ध में उसका एक हाथ कट गया और एक पैर से वह लँगड़ा हो गया था। इनके अतिरिक्त उसके शरीर पर ८० घाव भी लगे थे और शायद ही उसके शरीर का कोई अंश ऐसा हो, जिसपर युद्धों में लगे हुए घावों के चिह्न न हों[२]।



(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३४८। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३७१।

(२) वही; पृ० ३४८।

पांचवां अध्याय

महाराणा रत्नसिंह से महाराणा अमरसिंह तक

रत्नसिंह (दूसरा)

महाराणा सांगा की मृत्यु के समाचार पहुंचने पर उसका कुंवर रत्नसिंह[1] वि० सं० १५८४ माघ सुदि १५ (ई० स० १५२८ ता० ५ फ़रवरी) के आसपास[2] चित्तोड़ के राज्य का स्वामी हुआ।

हाड़ा सूरजमल से विरोध

महाराणा सांगा के देहान्त के समय महाराणी हाड़ी कर्मवती अपने दोनों पुत्रों के साथ रणथम्भोर में थी। अपने छोटे भाइयों के हाथ में रणथम्भोर की पचास-साठ लाख की जागीर का होना रत्नसिंह को बहुत अखरता था, क्योंकि वह उसकी आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध दी गई थी। कर्मवती और अपने दोनों भाइयों को चित्तोड़ बुलाने के लिये उसने पूरबिये पूरणमल को पत्र देकर रणथम्भोर भेजा और कर्मवती से कहलाया कि आप सब को यहां आ जाना चाहिये। उत्तर में उसने कहलाया कि स्वर्गीय महाराणा इन दोनों भाइयों को रणथम्भोर की जागीर देकर मेरे भाई सूरजमल को इनका संरक्षक बना गये हैं, इसलिये यह बात उसी के अधीन है। जब महाराणा का सन्देश सूरजमल को सुनाया गया, तो उसने उस बात को टालने के लिये कहा कि मैं चित्तोड़ आऊंगा और इस विषय में महाराणा से स्वयं बातचीत कर लूंगा। महाराणा सांगा ने जो दो बहुमूल्य वस्तु—सोने की कमरपेटी और रत्न जटित मुकुट—सुलतान मुहमूद से ली

(१) मुंशी देवीप्रसाद ने रत्नसिंह का जन्म वि० सं० १५५३ वैशाख वदि ८ को होना लिखा है (महाराणा रत्नसिंघजी का जीवनचरित्र; पृ० ४५)।

(२) देखो पृ० ६९६, टि० १।

थीं, वे विक्रमादित्य के पास होने से उनको भेजने के लिये भी रत्नसिंह ने कह-लाया था; परन्तु उसने भेजने से इनकार कर दिया। पूरणमल ने यह सारा हाल चित्तोड़ जाकर महाराणा से कहा। यह उत्तर सुनकर महाराणा बहुत अप्रसन्न हुआ[1]।

उधर हाड़ी कर्मवती विक्रमादित्य को मेवाड़ का राजा बनाना चाहती थी, जिसके लिये उसने सूरजमल से बातचीत कर बाबर को अपना सहायक बनाने का प्रपञ्च रचा। फिर अशोक नामक सरदार के द्वारा बादशाह से इस विषय में बातचीत होने लगी। बाबर अपनी दिनचर्य्या में लिखता है—"हि० स० ९३५ ता० १४ मुहर्रम (वि० सं० १५८५ आश्विन सुदि १५=ई० स० १५२८ ता० २८ सितम्बर) को राणा सांगा के दूसरे पुत्र विक्रमाजीत के, जो अपनी माता पद्मा-वती (?कर्मवती) के साथ रणथम्भोर में रहता था, कुछ आदमी मेरे पास आये। मेरे ग्वालियर को रवाना होने से पहले भी विक्रमाजीत के अत्यन्त विश्वासपात्र राजपूत अशोक के कुछ आदमी मेरे पास ७० लाख की जागीर लेने की शर्त पर राणा के अधीनता स्वीकार करने के समाचार लेकर आये थे। उस समय यह बात तय हो गई थी कि उतनी आमद के परगने उसे दिये जावेंगे और उन-को नियत दिन ग्वालियर आने को कहा गया। वे नियत समय से कुछ दिन पीछे वहां आये। यह अशोक विक्रमाजीत की माता का रिश्तेदार था; उसने विक्रमा-जीत को मेरी सेवा के लिये राज़ी कर लिया था। सुलतान महमूद से लिया हुआ रत्नजटित मुकुट और सोने की कमरपेटी भी, जो विक्रमाजीत के पास थी, उसने मुझे देना स्वीकार किया और रणथम्भोर देकर मुझसे बयाना लेने की बातचीत की, परन्तु मैंने बयाने की बात को टालकर शम्साबाद देने को कहा; फिर उनको ख़िलअत दी और ९ दिन के बाद बयाने में मिलने को कहकर विदा किया[2]"। फिर आगे वह लिखता है—"हि० स० ९३५ ता० ५ सफ़र (वि० सं० १५८५ का-र्तिक सुदि ६=ई० स० १५२८ ता० १९ अक्टूबर) को देवा का पुत्र हामूसी (?) विक्रमाजीत के पहले के राजपूतों के साथ इसलिये भेजा गया कि वह रणथं-भोर सौंपने और विक्रमाजीत के सेवा स्वीकार करने की शर्तें हिंदुओं की रीति

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४।

(२) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ६१२-१३।

के अनुसार तय करे। मैंने यह भी कहा कि यदि विक्रमाजीत अपनी शर्तों पर दृढ़ रहा, तो उसके पिता की जगह उसे चित्तोड़ की गद्दी पर बिठा दूंगा[1]"।

ये सब बातें हुईं, परन्तु सूरजमल रणथम्भोर जैसा क़िला बाबर को दिलाना नहीं चाहता था; उसने तो केवल रत्नसिंह को डराने के लिये यह प्रपंच रचा था; इसी से रणथम्भोर का क़िला बादशाह को सौंपा न गया[2], परन्तु इससे रत्नसिंह और सूरजमल में विरोध और भी बढ़ गया[3]।

गुजरात के सुलतान बहादुरशाह का भाई शाहज़ादा चांदखां उससे विद्रोह कर सुलतान महमूद के पास मांडू में जा रहा। बहादुरशाह ने चांदखां को उससे

महमूद ख़िलजी की चढ़ाई

मांगा, परन्तु जब उसने न दिया, तो वह मांडू पर चढ़ाई की तैयारी करने लगा[4]। महाराणा सांगा का देहान्त होने पर मालववालों पर मेवाड़वालों की जो धाक जमी थी, उसका प्रभाव कम हो गया। मालवे के कई एक इलाक़े मेवाड़ के अधिकार में होने के कारण सुलतान महमूद पहले ही से महाराणा से जल रहा था, ऐसे में रायसेन का सलहदी और सीवास का सिकन्दरखां[5]—जिनको वह अपने इलाक़े अधिकृत कर लेने के कारण मारना चाहता था[6]—महाराणा से आ मिले, जिससे वह महाराणा से और भी अप्रसन्न हो गया और अपने सेनापति शरज़हखां को मेवाड़ का इलाक़ा लूटने के लिये भेजा। इसपर महाराणा मालवे पर चढ़ाई कर संभल को लूटता हुआ सारंगपुर तक पहुंच गया, जिसपर शरज़हखां लौट गया और

---

(१) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ६१६-१७।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ७।

(३) महाराणा रत्नसिंह और सूरजमल के बीच अनबन होने की और भी कथाएं मिलती हैं, परन्तु उनके निर्मूल होने के कारण हमने उन्हें यहां स्थान नहीं दिया।

(४) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २६५।

(५) मिराते सिकन्दरी में सिकन्दरखां नाम दिया है (बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३४६), परन्तु फ़िरिश्ता ने उसके स्थान पर मुईनखां नाम लिखा है और उसको सिकन्दरखां का दत्तक पुत्र माना है (ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४,पृ० २६६)।

(६) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३४६। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २६६।

महमूद भी, जो उज्जैन में था, मांडू को चला गया[1]। ऐसे में गुजरात का सुलतान भी मालवे पर चढ़ाई करने के इरादे से वागड़ में आ पहुंचा और महाराणा के वकील डूंगरसी तथा जाजराय उसके पास पहुंचे। लौटते समय मालवे का मुल्क लूटते हुए महाराणा सलहदी सहित खरजी की घाटी के पास सुलतान बहादुरशाह से मिला, तो उसने महाराणा को ३० हाथी तथा कितने एक घोड़े भेट किये और १५०० ज़रदोज़ी ख़िलअतें उसके साथियों को दीं। सलहदी तथा अपने दोनों वकीलों और कुछ सरदारों को अपने सैन्य सहित सुलतान के साथ करके राणा चित्तोड़ चला गया[2]। महाराणा के इस तरह सुलतान बहादुर से मिल जाने के कारण हताश होकर सुलतान महमूद ने गुजरात के सुलतान से कहलाया कि मैं आपके पास आता हूं, परन्तु वह इसमें टालाटूली करता रहा। अधिक प्रतीक्षा न कर बहादुरशाह मांडू पहुंच गया और थोड़ी-सी लड़ाई के बाद महमूद को क़ैद कर अपने साथ ले गया[3]। इस तरह मालवे का स्वतन्त्र राज्य तो गुजरात में मिल गया, जिससे उस राज्य का बल बढ़ गया।

महाराणा रत्नसिंह का शिलालेख और सिक्का

स्वयं महाराणा रत्नसिंह का तो अब तक कोई शिलालेख नहीं मिला, परन्तु उसके मंत्री कर्मसिंह (कर्मराज) का खुदवाया हुआ एक शिलालेख शत्रुंजय तीर्थ (काठियावाड़ में पालीताणा के पास) से मिला है, जिसका आशय यह है कि संग्रामसिंह के पराक्रमी पुत्र रत्नसिंह के राज्य-समय उसके मंत्री कर्मसिंह ने गुजरात के सुलतान बाहदर (बहादुरशाह) से स्फुरन्मान (फ़रमान) प्राप्त कर शत्रुञ्जय का सातवां उद्धार कराया और पुण्डरीक के मन्दिर का जीर्णोद्धार कर उसमें आदिनाथ की मूर्ति स्थापित की। इस उद्धार के काम के लिये तीन सूत्रधार (सुथार) अहमदाबाद से और उन्नीस चित्तोड़ से गये थे, जिनके नाम उक्त लेख में दिये गये हैं। उक्त लेख में मंत्री कर्मसिंह के वंश का विस्तृत परिचय भी दिया है[4]। मुसलमानों के समय में मन्दिर बनाने की बहुधा मनाई थी, परन्तु संभव

---

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २६४-६५। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा रतनसिंघजी का जीवनचरित्र; पृ० ५०-५१।

(२) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३४७-५०। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० २६६-६७।

(३) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३५२-५३।

(४) ए. इं; जि० २, पृ० ४२-४७।

है कि कर्मसिंह ने महाराणा रत्नसिंह की सिफ़ारिश से बहादुरशाह का फ़रमान प्राप्त कर शत्रुंजय का उद्धार कराया हो।

महाराणा रत्नसिंह का एक तांबे का सिक्का हमें मिला, जो महाराणा कुंभा के सिक्कों की शैली का है, सांगा के सिक्कों जैसा भद्दा नहीं। उसकी एक तरफ़ 'राणा श्री रतनसीह' लेख है और दूसरी तरफ़ के चिह्न आदि सिक्के के घिस जाने के कारण अस्पष्ट हैं।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि महाराणा रत्नसिंह और बूंदी के हाड़ा सूरजमल के बीच अनबन बहुत बढ़ गई थी, इसलिये महाराणा ने उसको छल से मारने की ठान ली। इस विषय में मुहणोत नैणसी लिखता है—

महाराणा रत्नसिंह की मृत्यु

"राणा रत्नसिंह शिकार खेलता हुआ बूंदी के निकट पहुंचा और सूरजमल को भी बुलाया। वह जान गया कि राणा मुझे मरवाने के लिये ही बुला रहा है और इस पसोपेश में रहा कि वहां जाऊं या न जाऊं। एक दिन उसने अपनी माता खेतू से, जो राठोड़ वंश की थी, पूछा कि राणा के दूत मुझे बुलाने को आये हैं; राणा मुझसे अप्रसन्न है और वह मुझे मारेगा, इसलिये तुम्हारी आज्ञा हो तो हाथ दिखाऊं। इसपर माता ने उत्तर दिया—'बेटा, ऐसा क्यों करें? हम तो सदा से दीवाण (राणा) के सेवक रहे हैं, हमने कोई अपराध तो किया नहीं, जो राणा तुम्हारा वध करे। शीघ्र उसके पास जाओ और उसकी अच्छी तरह सेवा करो'। माता की यह आज्ञा सुनकर वह वहां से चला और बूंदी तथा चित्तोड़ के सीमा पर के गोकर्ण तीर्थवाले गांव में उससे आ मिला। राणा के मन में बुराई थी, तो भी उसने ऊपरी दिल से आदर किया और 'सूरभाई' कह कर उसका सम्बोधन किया। एक दिन उसने सूरजमल से कहा कि हमने एक नया हाथी खरीदा है, जिसपर आज सवारी कर तुम्हें दिखावेंगे। राणा हाथी पर सवार हुआ और सूरजमल घोड़े पर सवार हो उसके आगे आगे चलने लगा। एक तंग स्थान पर राणा ने उसपर हाथी पेला, परन्तु घोड़े को एड़ लगाकर वह आगे निकल गया और उसपर क्रुद्ध हुआ। राणा ने मीठी मीठी बातें बनाकर कहा कि इसमें हमारा कोई दोष नहीं है, हाथी अपने आप झपट पड़ा था।

फिर एक दिन पीछे उसने कहा कि आज सूअरों की शिकार खेलेंगे। राव ने कहा, बहुत अच्छा। राणा ने अपनी पंवार वंश की राणी से कहा कि कल

हम एकल सूअर को मारेंगे और तुम्हें भी तमाशा दिखावेंगे। दूसरे ही दिन राणी गोकर्ण तीर्थ पर स्नान करने गई। थोड़ी देर पहले सूरजमल भी वहां स्नानार्थ गया हुआ था। राणी के पहुंचते ही वह वहां से निकल गया। राणी की दृष्टि उसपर पड़ी, तो उसने एक दासी से पूछा, यह कौन है? उसने उत्तर दिया कि यह बूंदी का स्वामी हाड़ा सूरजमल है, जिसपर दीवाण (राणा) अप्रसन्न हैं। राणी तुरंत ताड़ गई कि जिस सूअर को राणा मारना चाहते हैं, वह यही है। रात को उसने राणा से फिर सूअर की बात छेड़ी और निवेदन किया कि उस एकल को मैंने भी देखा है; दीवाण उसे न छेड़ें, उसके छेड़ने में कुशल नहीं।

दूसरे ही दिन सवेरे सूरजमल को साथ ले राणा शिकार को गया। शिकार के मौक़े पर केवल राणा, पूरणमल पूरबिया, सूरजमल और उसका एक ख़वास (नौकर) थे। राणा ने पूरणमल को सूरजमल पर वार करने का इशारा किया, परंतु उसकी हिम्मत न पड़ी; तब राणा ने सवार होकर उसपर तलवार का वार किया, जिससे उसकी खोपड़ी का कुछ हिस्सा कट गया। इसपर पूरणमल ने भी एक वार किया, जो सूरजमल की जांघ पर लगा; तब तो लपककर सूरजमल ने पूरणमल पर प्रहार किया, जिससे वह चिल्लाने लगा। उसे बचाने के लिये राणा वहां आया और सूरजमल पर तलवार चलाई। इस समय सूरजमल ने घोड़े की लगाम पकड़कर झुके हुए राणा की गर्दन के नीचे ऐसा कटार मारा कि वह उसे चीरता हुआ नाभि तक चला गया। राणा ने घोड़े पर से गिरतेगिरते पानी मांगा तो सूरजमल ने कहा कि काल ने तुझे खा लिया है, अब तू जल नहीं पी सकता। वहीं राणा और सूरजमल, दोनों के प्राण-पक्षी उड़ गये। पाटण में राणा का दाह-संस्कार हुआ और राणी पंवार उसके साथ सती हुई"[1]। यह घटना वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में[2] हुई।

---

(१) ख्यात; पत्र २६ और २७, पृ० १।

(२) कर्नल टॉड ने रत्नसिंह की गद्दीनशीनी वि० सं० १५८६ में होना माना है, जो स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि वि० सं० १५८४ माघ सुदि ९ (३० जनवरी ई० स० १५२८) के आसपास महाराणा का स्वर्गवास होना ऊपर बतलाया जा चुका है। इसी तरह रत्नसिंह का देहान्त वि० सं० १५९१ (ई० स० १५३४) में मानना भी निर्मूल ही है, क्योंकि उसके उत्तराधिकारी विक्रमादित्य के समय बहादुरशाह के सेनापति तातारख़ां ने ता० ५ रज्जब हि० स० ९३९ अर्थात् वि० सं० १५८९ माघ सुदि ६ को चित्तोड़ के नीचे

विक्रमादित्य (विक्रमाजीत)

महाराणा रत्नसिंह के निस्संतान होने से उसका छोटा भाई विक्रमादित्य[1] रणथंभोर से आकर वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। शासन करने के लिये वह तो बिलकुल अयोग्य था। अपने ख़िदमतगारों के अतिरिक्त उसने दरबार में सात हज़ार पहलवानों को रख लिया, जिनके बल पर उसको अधिक विश्वास था और अपने छिछोरेपन के कारण वह सरदारों की दिल्लगी उड़ाया करता था, जिससे वे अप्रसन्न होकर अपने-अपने ठिकानों में चले गये और राज्यव्यवस्था बहुत बिगड़ गई।

मालवे पर अधिकार करने से गुजरात के सुलतान की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। मेवाड़ की यह अवस्था देखकर उसने चित्तोड़ पर हमला करने का विचार किया। सलहदी के मुसलमान हो जाने के पीछे जब बहादुरशाह ने रायसेन के क़िले—जो उसके भाई लखमनसेन (लक्ष्मणसिंह) की रक्षा में था—को घेरा, उस समय सलहदी का पुत्र भूपतराय महाराणा से मदद लेने को गया, जिसपर वह उसके साथ ४०-५० हज़ार सवार तथा बहुतसे पैदल आदि सहित उसकी सहायतार्थ चला[2]। इसपर बहादुरशाह ने हि० स० ९३९ (वि० सं० १५८९=ई० स० १५३२) में मुहम्मदख़ां आसीरी और इमादुल्मुल्क को मेवाड़ पर चढ़ाई करने को भेजा। चालीस हज़ार सवार लेकर विक्रमादित्य भी उसकी तरफ़ बढ़ा। सुलतान बहादुर को जब राणा की इस बड़ी सेना का पता लगा, तो वह भी अख़्तियारख़ां को

बहादुरशाह की चित्तोड़ पर चढ़ाई

के दो दरवाज़े विजय कर लिये थे, ऐसा मिराते सिकन्दरी से पाया जाता है (बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३७०)। महाराणा विक्रमादित्य का वि० सं० १५८९ वैशाख का एक ताम्रपत्र मिल चुका है (वीरविनोद; भाग २, पृ० २५); उससे भी वि० सं० १५८९ से पूर्व उसका देहान्त होना निश्चित है। बड़वे-भाटों की ख्यातों तथा अमरकाव्य में इस घटना का संवत् १५८७ दिया है, जो कार्त्तिकादि होने से चैत्रादि १५८८ होता है।

(१) देखो पृ० ६७२-७३।

(२) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३६०।

रायसेन पर आक्रमण करने के लिये छोड़कर अपनी सेना हताश न हो जाय इस विचार से २४ घंटों में ७० कोस की सफ़र कर अपनी सेना से स्वयं आ मिला[1]। अपने को लड़ने में असमर्थ देखकर राणा चित्तोड़ लौट गया; इसपर सुलतान भी पहले रायसेन को और पीछे चित्तोड़ को लेने का विचार कर मालवे को लौट गया[2]।

रायसेन को जीतने के बाद बहादुरशाह ने बड़ी भारी तैयारी कर हि० स० ६३६ (वि० सं० १५८६=ई० स० १५३२) में मुहम्मदख़ां आसीरी को चित्तोड़ पर हमला करने के लिये भेजा और खुदावन्दख़ां को भी, जो उस समय मांडू में था, मुहम्मदख़ां आसीरी से मिल जाने के लिये लिखा। ता० १७ रबिउस्सानी हि० स० ६३६ (मार्गशीर्ष वदि ४ वि० सं० १५८६=१६ नवम्बर ई० स० १५३२) को सुलतान स्वयं सेना लेकर मुहम्मदाबाद से चला और तीन दिन में मांडू जा पहुंचा। मुहम्मदख़ां और खुदावन्दख़ां जब मन्दसोर में पहुंचे, तब राणा ने संधि करने के लिये उनके पास अपने वकील भेजे। वकीलों ने उनसे संधि की बातचीत की और कहा कि राणा मालवे का वह प्रदेश, जो उसके पास है, सुलतान को दे देगा और उसे कर भी दिया करेगा[3]। इन्हीं दिनों महाराणा के बुरे बर्ताव से अप्रसन्न होकर उसके सरदार नरसिंहदेव (महाराणा सांगा का भतीजा) और मेदिनीराय (चन्देरी का) आदि बहादुरशाह से जा मिले और उसे वे महाराणा की सेना का भेद बताते रहते थे[4]। सुलतान ने संधि का प्रस्ताव अस्वीकार कर अलाउद्दीन के पुत्र तातारख़ां को भी चित्तोड़ पर भेजा, जो ता० ५ रज्जब हि० स० ६३६ (माघ सुदि ६ वि० सं० १५८६=३१ जनवरी ई० स० १५३३) को वहां जा पहुंचा और उसके नीचे के दो दरवाज़ों पर अधिकार कर लिया। तीन दिन बाद मुहम्मदशाह और खुदावन्दख़ां भी तोपखाने के साथ वहां पहुंच गये। इसके बाद सुलतान भी कुछ सवारों के साथ मांडू से चलकर वहां जा पहुंचा। दूसरे ही दिन उसने चित्तोड़ पर आक्रमण किया और

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३६१-६२।

(२) वही; पृ० ३६२-६३।

(३) वही; पृ० ३६६-७०।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० २७।

अलफ़ख़ां को ३०००० सवारों के साथ लाखोटा दरवाज़े (बारी) पर, तातारख़ां, मेदिनीराय और कुछ अफ़ग़ान सरदारों को हनुमान पोल पर, मल्लूख़ां और सिकन्दरख़ां को मालवे की फ़ौज के साथ सफ़ेद बुर्ज़ (धोली बुर्ज़) पर और भूपतराय तथा अल्पख़ां आदि को दूसरे मोर्चे पर तैनात कर बड़ी तेज़ी से हमला किया[1]। 'तारीख़े बहादुरशाही' का कर्त्ता लिखता है कि इस समय सुलतान के पास इतनी सेना थी कि वह चित्तोड़ जैसे चार क़िलों को घेर सकता था[2]। इधर राणी कर्मवती ने बादशाह हुमायूं से सहायता मिलने की आशा पर अपना वकील उसके पास भेजा, परन्तु उसने सहायता न दी।

रूमीख़ां ने, जो सुलतान का योग्य सेनापति था, बड़ी चतुरता दिखाई। क़िले की दीवारों को तोपों से उड़ा देने का यत्न किया गया, जिससे भयभीत होकर राणा की माता (कर्मवती) ने संधि करने के लिये वकील भेजकर सुलतान से कहलाया कि महमूद ख़िलजी से लिये हुए मालवे के ज़िले लौटा दिये जावेंगे और महमूद का वह जड़ाऊ मुकुट तथा सोने की कमरपेटी भी दे दी जायगी; इनके अतिरिक्त १० हाथी, १०० घोड़े और नक़द भी देने को कहा। सुलतान ने इस संधि को स्वीकार कर लिया और ता० २७ शाबान हि० स० ६३६ (चैत्र वदि १४ वि० सं० १५८६=ता० २४ मार्च ई० स० १५३३) को सब चीज़ें लेकर वह चित्तोड़ से लौट गया[3]।

---

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३७०-७१।

(२) वही; पृ० ३७१।

(३) वही; पृ० ३७१-७२।

मुहणोत नैणसी से पाया जाता है कि बहादुरशाह से जो संधि हुई, उसमें महाराणा ने उदयसिंह को सुलतान की सेवा में भेजना स्वीकार किया था, जिससे सुलतान उसे अपने साथ ले गया। सुलतान के कोई शाहज़ादा न होने से वज़ीरों ने अर्ज़ की कि यदि आप किसी भाई-भतीजे को गोद बिठा लें, तो अच्छा होगा। सुलतान ने कहा, राणा का भाई (उदयसिंह) ठीक है; वह बड़े घराने का है, मुसलमान बनाकर वह गोद रख लिया जायगा। उदयसिंह के राजपूतों ने जब यह बात सुनी तो वे उसको वहां से ले भागे। दूसरे दिन यह बात सुनते ही बादशाह ने दूसरी बार चित्तोड़ को आ घेरा (ख्यात; पत्र ११, पृ० २)। यह कथन मानने के योग्य नहीं है; क्योंकि इसका उल्लेख मिराते अहमदी, मिराते सिकन्दरी, फ़िरिश्ता आदि फ़ारसी तवारीख़ों में कहीं नहीं मिलता, और न वह सुलतान की दूसरी चढ़ाई का कारण माना जा सकता है।

बहादुरशाह की उक्त चढ़ाई से भी महाराणा का चाल-चलन कुछ न सुधरा और सरदारों के साथ उसका बर्ताव पहले का-सा ही बना रहा, जिससे कुछ और सरदार भी बहादुरशाह से जा मिले और उसे चित्तोड़ ले लेने की सलाह देने लगे।

बहादुरशाह की चित्तोड़ पर दूसरी चढ़ाई

मुहम्मदज़मां के विद्रोह करने पर हुमायूं ने उसे क़ैद कर बयाने के क़िले में भेज दिया, जहां से वह एक जाली फ़रमान के ज़रिये से छूटकर सुलतान बहादुरशाह के पास जा रहा। हुमायूं ने उसको गुजरात से निकाल देने या अपने सुपुर्द करने को लिखा, परन्तु उसने उसपर कुछ ध्यान न दिया। इस बात पर उन दोनों में अनबन होने पर सुलतान ने तातारख़ां को ४०००० सेना के साथ हुमायूं पर आक्रमण करने को भेज दिया और वह बुरी तरह से हारकर लौटा; तब हुमायूं ने सुलतान को नष्ट करने का विचार किया[1]। हुमायूं से शत्रुता होने के कारण बहादुरशाह भी चित्तोड़ जैसे सुदृढ़ दुर्ग को अधिकार में करना चाहता था। इसलिये वह मांडू से चित्तोड़ को लेने के लिये बढ़ा और क़िले के घेरे का प्रबन्ध रूमीख़ां के सुपुर्द किया तथा क़िला फ़तह होने पर उसे वहां का हाकिम बनाने का वचन दिया[2]।

उधर हुमायूं भी बहादुरशाह से लड़ने के लिये चित्तोड़ की तरफ़ बढ़ा और ग्वालियर आ पहुंचा, जिसकी ख़बर पाते ही सुलतान ने उसको इस आशय का पत्र लिखा कि मैं इस समय जिहाद (धर्मयुद्ध) पर हूं; अगर तुम हिन्दुओं की सहायता करोगे, तो ख़ुदा के सामने क्या जवाब दोगे? यह पत्र पढ़कर हुमायूं ग्वालियर में ही ठहर गया[3] और चित्तोड़ के युद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा करता रहा।

बहादुरशाह के इस आक्रमण के लिये चित्तोड़ के राजपूत तैयार न थे, क्योंकि कुछ सरदार तो बहादुरशाह से मिल गये थे और शेष सब महाराणा के बुरे बर्ताव के कारण अपने अपने ठिकानों में जा रहे थे। बहादुरशाह की

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० १२४-२५।

(२) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३८१।

(३) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० १२६।

फ़िरिश्ता ने हुमायूं का सारंगपुर तक आना लिखा है (जि० ४, पृ० १२६), परन्तु मिराते सिकन्दरी में उसका ग्वालियर में ही ठहर जाना बतलाया है (बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३८१)।

दूसरी चढ़ाई होने वाली है, यह ख़बर पाते ही कर्मवती ने सब सरदारों को निम्न आशय के पत्र लिखे—"अब तक तो चित्तोड़ राजपूतों के हाथ में रहा, पर अब उनके हाथ से निकलने का समय आ गया है। मैं क़िला तुम्हें सौंपती हूं, चाहे तुम रखो चाहे शत्रु को दे दो। मान लो तुम्हारा स्वामी अयोग्य ही है; तो भी जो राज्य वंशपरंपरा से तुम्हारा है, वह शत्रु के हाथ में चले जाने से तुम्हारी बड़ी अपकीर्ति होगी[1]"। हाड़ी कर्मवती का यह पत्र पाते ही सरदारों में, जो राणा के बर्ताव से उदासीन हो रहे थे, देशप्रेम की लहर उमड़ उठी और चित्तोड़ की रक्षार्थ मरने का संकल्प कर वे कर्मवती के पास उपस्थित हो गये। देवलिये का रावत बाघसिंह[2], साईदास रत्नसिंहोत (चूंडावत), हाड़ा अर्जुन,[3] रावत सत्ता, सोनगरा माला, डोडिया भाण, सोलंकी भैरवदास, झाला सिंहा, झाला सज्जा, रावत नरबद आदि सरदारों ने मिलकर सोचा कि बहादुरशाह के पास सेना बहुत अधिक है और हमारे पास क़िले में लड़ाई का या खाने-पीने का सामान इतना भी नहीं है कि दो-तीन महीने तक चल सके। इसलिये महाराणा विक्रमादित्य को तो उदयसिंह सहित बूंदी भेज दिया जाय और युद्ध-समय तक देवलिये के रावत बाघसिंह को महाराणा का प्रतिनिधि बनाया जाय। ऐसा ही किया गया। बाघसिंह सरदारों से यह कहकर—कि आपने मुझे महाराणा का प्रतिनिधि बनाया है, इसलिये मैं क़िले के बाहरी दरवाज़े पर रहूंगा—भैरव पोल पर जा खड़ा हुआ और उसके भीतर सोलंकी भैरवदास को हनुमान पोल पर, झाला राजराणा सज्जा और उसके भतीजे राजराणा सिंहा को गणेश पोल पर; डोडिये भाण और अन्य राजपूत सरदारों को इसी तरह सब जगहों, दरवाज़ों, परकोटे और कोट पर खड़ाकर लड़ाई शुरू कर दी, परन्तु शत्रु का बल अधिक होने, और उसके पास गोला-बारूद तथा यूरोपियन (पोर्चुगीज़) अफ़सर होने से वे उसको हटा न सके। इसी समय बीकाखोह की तरफ़ से सुरंग के द्वारा क़िले की पैंतालीस हाथ दीवार उड़ जाने से हाड़ा अर्जुन अपने

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २९।

(२) देवलिये (प्रतापगढ़) का रावत बाघसिंह दीवाण (महाराणा) का प्रतिनिधि बना, जिससे उसके वंशज अब तक दीवाण (देवलिये दीवाण) कहलाते हैं।

(३) हाड़ा अर्जुन हाड़ा नरबद का पुत्र था और बूंदी के राव सुलतान के बालक होने से उसकी सेना का मुखिया बनकर आया था।

साथियों सहित मारा गया। इस स्थान पर बहुतसे गुजरातियों ने हमला किया, परन्तु राजपूतों ने भी उनको बड़ी बहादुरी से रोका। 'बहादुरशाह' ने तोपों को आगे कर पाडलपोल, सूरजपोल और लाखोटा बारी की तरफ़ हमला किया, तब राजपूतों ने भी दुर्ग-द्वार खोल दिये और बड़ी वीरता से वे गुजराती सेना पर टूट पड़े। देवलिया प्रतापगढ़ के रावत बाघसिंह और रावत नरबद पाडल-पोल पर, देसूरी का सोलंकी भैरवदास भैरवपोल पर तथा देलवाड़े का राजराणा सज्जा व सादड़ी का राजराणा सिंहा हनुमान पोल पर; इसी तरह दूसरे स्थानों पर रावत दूदा[1] रत्नसिंहोत (चूंडावत), रावत सत्ता रत्नसिंहोत (चूंडावत), सिसोदिया कम्मा रत्नसिंहोत (चूंडावत), सोनगरा माला (बालावत), रावत देवीदास (सूजावत), रावत बाघ (सूरचंदोत), सिसोदिया रावत नंगा[2] (सिंहावत), रावत कर्मा (चूंडावत), डोडिया भाण[3] आदि सरदार अपनी अपनी सेना सहित युद्ध में काम आये। इस लड़ाई में कई हज़ार[4] राजपूत मारे गये और बहुतसी स्त्रियों ने हाड़ी कर्मवती के साथ जौहर कर अपने सतीत्व-रक्षार्थ अग्नि में प्राणाहुति दे दी[5]। इस युद्ध में बहादुरशाह की विजय हुई और उसने क़िले पर अधिकार कर लिया[6]। यह युद्ध 'चित्तोड़ का दूसरा शाका' नाम से प्रसिद्ध है।

विक्रमादित्य का चित्तोड़ पर फिर अधिकार

सुलतान ने, चित्तोड़ विजय होने पर, अपने तोपख़ाने के अध्यक्ष रूमीख़ां को उसका हाकिम बनाने के लिये वचन दिया था, परन्तु मंत्रियों और अमीरों के कहने से उसने अपना विचार बदल दिया, जिससे रूमीख़ां ने बहुत खिन्न होकर हुमायूं को एक गुप्त पत्र भेजकर कहलाया कि यदि आप इधर आवें तो शीघ्र विजय हो सकती है[7]।

---

(१) दूदा, सत्ता और कम्मा, तीनों सुप्रसिद्ध वीरव्रती चूंडा के वंशज रावत रत्नसिंह के पुत्र थे।

(२) नंगा सुप्रसिद्ध चूंडा के पुत्र कांधल के बेटे सिंह का पुत्र था।

(३) इसके वंश में सरदारगढ़ के सरदार हैं।

(४) ख्यातों आदि में बत्तीस हज़ार राजपूतों का लड़ाई में और तेरह हज़ार स्त्रियों का जौहर में प्राण देना लिखा है, जो अतिशयोक्ति ही है।

(५) वीरविनोद; भा० २, पृ० ३१।

(६) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३८३। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० १२६।

(७) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३८३-८४।

इस पत्र को पाकर हुमायूं बहादुरशाह की तरफ़ चला, जिसकी खबर सुनते ही सुलतान भी थोड़ी-सी सेना चित्तोड़ में रखकर हुमायूं से लड़ने को मन्दसोर[1] गया, जहां हुमायूं भी आ पहुंचा। सुलतान ने रूमीख़ां से युद्ध के विषय में सलाह की। रूमीख़ां ने, जो गुप्त रूप से हुमायूं से मिला हुआ था, युद्ध के लिये ऐसी शैली बताई, जिससे सुलतान की सेना अनभिज्ञ थी; उसी से सुलतान कुछ न कर सका। दो मास तक वहां पड़ा रहने और थोड़ा बहुत लड़ने के बाद ता० २० रमज़ान हि० स० ९४१ (वैशाख वदि ७ वि० सं० १५९२= २५ मार्च ई० स० १५३५) को सुलतान कुछ साथियों सहित घोड़े पर सवार होकर मांडू को भाग गया[2]। हुमायूं ने उसका पीछा किया, जिससे वह मांडू से चांपानेर और खंभात होता हुआ दीव के टापू में पुर्तगालवालों के पास गया, जहां से लौटते समय समुद्र में मारा गया[3]। इस प्रकार शेख जीऊ की 'तेरे नाश के साथ ही चित्तोड़ का नाश होगा,' यह भविष्य-वाणी पूरी हुई।

इधर बहादुरशाह के हारने के समाचार सुनकर चित्तोड़ में उसकी रखी हुई सेना भी भागने लगी। ऐसा सुअवसर देखकर मेवाड़ के सरदारों ने पांच-सात हज़ार सेना एकत्र कर चित्तोड़ पर हमला किया, जिससे सुलतान की रही-सही फ़ौज भी भाग निकली और अधिक रक्तपात बिना मेवाड़वालों का क़िले पर अधिकार हो गया; फिर विक्रमादित्य और उदयसिंह को सरदार बूंदी से चित्तोड़ ले आये।

विक्रमादित्य के सिक्के और ताम्रपत्र

महाराणा विक्रमादित्य के तांबे के दो सिक्के हमको मिले हैं, जिनकी एक तरफ़ 'राणा विक्रमादित्य' लेख और संवत् के कुछ अंक हैं; दूसरी तरफ़ कुछ चिह्नों के साथ फ़ारसी अक्षरों में 'सुल' शब्द पढ़ा जाता है, जो संभवतः सुलतान का सूचक हो। ये सिक्के महाराणा कुंभा के सिक्कों की शैली के हैं[4]।

महाराणा विक्रमादित्य का ताम्रपत्र वि० सं० १५८९ वैशाख सुदि ११ को

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जि० ४, पृ० १२९।

(२) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३८४-८६।

(३) वही; पृ० ३८६-९७।

(४) डब्ल्यू. डब्ल्यू. वैब; दी करंसीज़ ऑफ़ राजपूताना; पृ० ७।

मिला है, जिसमें पुरोहित जानाशंकर को जाल्या नाम का गांव दान करने का उल्लेख है[1]।

इतनी तकलीफ़ उठाने पर भी महाराणा अपनी बाल्यावस्था एवं बुरी संगति के कारण अपना चालचलन सुधार न सका और सरदारों के साथ उसका व्यवहार पूर्ववत् ही बना रहा, जिससे वे अपने अपने ठिकानों में चले गये; केवल कुछ स्वार्थी लोग ही उसके पास रहे। ऐसी दशा देखकर महाराणा रायमल के सुप्रसिद्ध कुंवर पृथ्वीराज का अनौरस (पासवानिया) पुत्र वणवीर चित्तोड़ में आया और महाराणा के प्रीतिपात्रों से मिलकर उसका मुसाहिब बन गया। वि० सं० १५९३ (ई० स० १५३६) में एक दिन, रात के समय उसने महाराणा को, जो उस समय १९ वर्ष का था, अपनी तलवार से मार डाला[2] और निष्कंटक राज्य करने की इच्छा से उदयसिंह का भी वध करना चाहा। महलों में कोलाहल होने पर जब उसकी स्वामिभक्ता धाय पन्ना को महाराणा के मारे जाने का हाल मालूम हुआ, तब उस ने उदयसिंह को बाहर निकाल दिया और उसके पलंग पर उसी अवस्था के अपने पुत्र को सुला दिया[3]। वणवीर ने उस स्थान पर जाकर पन्ना से पूछा, उदयसिंह कहां है? उसने पलंग की तरफ़ इशारा किया, जिसपर उसने तलवार से उसका काम तमाम कर दिया। अपने पुत्र के मारे जाने पर उदयसिंह को लेकर पन्ना महलों से निकल गई। दूसरे ही दिन वणवीर मेवाड़ का स्वामी बनकर राज्य करने लगा।

विक्रमादित्य का मारा जाना

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ५५।

(२) अमरकाव्य में, जो महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के समय का बना हुआ है, विक्रमादित्य के मारे जाने का संवत् १५९३ दिया है (वीरविनोद; भाग २, पृ० १४२), जो विश्वास के योग्य है, क्योंकि वह काव्य इस घटना से अनुमान ७५ वर्ष पीछे का बना हुआ है।

(३) कर्नल टॉड ने लिखा है कि इस समय उदयसिंह की अवस्था छः वर्ष की थी, जिससे उसकी धाय पन्ना ने उसे एक फल के टोकरे में रखकर बारी जाति के एक नौकर द्वारा क़िले से बाहर भिजवा दिया (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३६७-६८), जो स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि उदयसिंह का जन्म वि० सं० १५७८ भाद्रपद सुदि १२ को हुआ था (प्रसिद्ध ज्योतिषी चंडू के यहां का जन्मपत्रियों का संग्रह। नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग १, पृ० ११९), अतएव वह उसके पिता सांगा के देहान्त समय ही छः वर्ष का हो चुका था और इस समय उसकी अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी।

(वणवीर)

चित्तोड़ का राज्य मिल जाने से वणवीर का घमंड बहुत बढ़ गया और सरदारों पर वह अपनी धाक जमाने लगा। उसने उन सरदारों पर, जो उसके अकुलीन होने के कारण उससे घृणा करते थे, सख़्ती करना शुरू किया, जिससे वे उसके विरोधी हो गये और जब उनको उदयसिंह के जीवित रहने का समाचार मिल गया, तो वे उसको राज्यच्युत करने के प्रयत्न में लगे।

एक दिन भोजन करते समय उसने रावत खान (कोठारियावालों के पूर्वज) को अपनी थाली में से कुछ जूठा भोजन देकर कहा कि इसका स्वाद अच्छा है, तुम भी खाकर देखो। उसने अपनी पत्तल पर उस पदार्थ के रखते ही खाना छोड़ दिया। वणवीर के यह पूछने पर कि भोजन क्यों नहीं करते हो, उसने जवाब दिया कि मैंने तो कर लिया। इसपर उसने कहा कि यह तो तुम्हारा बहाना है, तुम मुझे अकुलीन जानकर मुझ से घृणा करते हो। रावत ने उत्तर दिया कि मैंने तो ऐसा नहीं कहा, परंतु आप ऐसा कहते हैं, तो ठीक ही है। यह कहकर वह उठ खड़ा हुआ और सीधा कुम्भलगढ़ चला गया, जहां उदयसिंह पहुंच गया था[1]। उसने बहुतसे सरदारों को उदयसिंह के पक्ष में कर लिया और अन्त में वणवीर[2] को राज्य छोड़कर भागना पड़ा, जिसका वृत्तान्त आगे लिखा जायगा।

उदयसिंह (दूसरा)

उदयसिंह को लेकर पन्ना देवलिये के रावत रायसिंह के पास पहुंची, जिसने

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६२-६३।

(२) चित्तोड़ के राम पोल के दरवाज़े के बाहरी पार्श्व में वणवीर के समय का एक शिलालेख खुदा हुआ है, जो वि० सं० १५९३ फाल्गुन वदि २ का है। उसमें ब्राह्मण, चारण, साधु आदि से जो दाण (महसूल, चुंगी) लिया जाता था, उसको छोड़ने का उल्लेख है।

उसके समय के कुछ ताम्बे के सिक्के भी मिले हैं, जिनपर 'श्रीराणा वणवीर' लेख मिलता है और नीचे संवत् की शताब्दी का अंक १५ दीखता है। ये सिक्के भी भद्दे हैं (डब्ल्यू. डब्ल्यू. वैब; दी करंसीज़ ऑफ़ राजपूताना; पृ० ७)।

उदयसिंह का बहुत कुछ सत्कार किया, परन्तु वणवीर के डर से सवारी और रक्षा आदि का प्रबन्ध कर उसने उसे डूंगरपुर भेज दिया। वहां के रावल आसकरण ने भी वणवीर के डर से उसे आश्रय न दिया और घोड़ा व राह-खर्च देकर विदा किया, तो पन्ना उसे लेकर कुंभलमेर पहुंची। वहां का क़िलेदार आशा देपुरा (महाजन) सारा हाल सुनकर सोच-विचार में पड़ गया और जब उसने उदयसिंह तथा पन्ना का हाल अपनी माता को सुनाया, तो उसने सम्मति दी कि तुम्हारे लिये यह बहुत अच्छा अवसर है। महाराणा सांगा ने तुम्हें उच्च पद पर पहुंचाया है, अतएव तुम भी उनके पुत्र की सहायता कर उस उपकार का बदला दो। माता के यह वचन सुनकर उसने उसको अपने पास रख लिया। यह बात थोड़े ही दिनों में सब जगह फैल गई, जिसपर वणवीर ने यह प्रसिद्ध किया कि उदयसिंह तो मेरे हाथ से मारा गया है और लोग जिसको उदयसिंह कहते हैं, वह तो बनावटी है; परन्तु उसका कथन किसी ने न माना, क्योंकि उस समय वह बालक नहीं था और उसके पन्द्रह वर्ष का होने के कारण कई सरदार तथा उसकी ननिहाल-(बूंदी)वाले उसे भली भांति पहचानते थे। कोठारिये के रावत खान ने कुंभलगढ़ पहुंचकर रावत सांईदास[1] (चूंडावत), केलवे से जग्गा[2], बागोर से रावत सांगा[3] आदि सरदारों को बुलाया। इन सरदारों ने उदयसिंह को मेवाड़ का स्वामी माना और राजगद्दी पर बिठलाकर नज़राना किया। इस घटना का वि० सं० १५६४ (ई० स० १५३७) में होना माना जाता है[4]।

उदयसिंह का राज्य पाना

सरदारों ने मारवाड़ से पाली के सोनगरे अखैराज (रणधीरोत) को बुलाकर उसकी पुत्री का विवाह उदयसिंह से कर देने को कहा। उसने उत्तर दिया कि विवाह करना मेरे लिये सब प्रकार से इष्ट ही है, परन्तु वणवीर ने वास्तविक उदयसिंह का मारा जाना और इनका कृत्रिम होना प्रसिद्ध कर रक्खा है; यदि आप सब सरदार इनका जूठा खा लें, तो मैं अपनी पुत्री का विवाह इनसे कर दूं। अखैराज

(१) यह रावत चूंडा का मुख्य वंशधर और सलूंबरवालों का पूर्वज था।

(२) यह रावत चूंडा के पुत्र कांधल का पौत्र, आमेटवालों का पूर्वज और सुप्रसिद्ध पत्ता का पिता था।

(३) उपर्युक्त जग्गा का भाई और देवगढ़वालों का मूल पुरुष।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६०–६३।

का संदेह दूर करने के लिये सब सरदारों ने उसका जूठा भोजन खाया[1]। इस-पर अखैराज ने भी उसके साथ अपनी बेटी का विवाह कर दिया। फिर उदयसिंह ने शेष सरदारों को परवाने भेजकर बुलाया। परवाने पाते ही बहुतसे सरदार और आसपास के राजा उसकी सहायतार्थ आ पहुंचे[2]। उधर मारवाड़ की तरफ़ से उसका श्वशुर अखैराज सोनगरा, कूंपा महराजोत आदि राठोड़ सरदारों को भी अपने साथ ले आया[3]। इस प्रकार बड़ी सेना एकत्र होने पर उदयसिंह कुंभलगढ़ से चित्तोड़ की तरफ़ चला।

वणवीर ने भी उदयसिंह की इस चढ़ाई का हाल सुनकर अपनी सेना तैयार की और कुंवरसी तंवर को उदयसिंह का मुकाबला करने के लिये भेजा। माहोली (मावली) गांव के पास दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई, जिसमें उदयसिंह की विजय हुई और कुंवरसी तंवर बहुत से सैनिकों सहित मारा गया। वहां से आगे बढ़कर उसने चित्तोड़ को जा घेरा और कुछ दिनों तक लड़ाई जारी रखने के बाद चित्तोड़ भी ले लिया। कोई कहते हैं कि वणवीर मारा गया और कुछ लोग कहते हैं कि वह भाग गया[4]। इस प्रकार वि० सं० १५९७ (ई० स० १५४०) में[5] उदयसिंह अपने सारे पैतृक-राज्य का स्वामी बना।

झाला सज्जा का पुत्र जैतसिंह किसी कारण से जोधपुर के राव मालदेव के पास चला गया, जिसने उसे खैरवे का पट्टा दिया। जैतसिंह ने अपनी पुत्री

---

(१) यह रिवाज़ तब से प्रचलित हुआ और अब तक विद्यमान है।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६३।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ५, पृ० १।

मुंशी देवीप्रसाद ने लिखा है कि उदयसिंह ने दूसरी शादी राठोड़ कूंपा (महराजोत) की लड़की से की थी, जिससे वह भी १५००० राठोड़ों के साथ आ मिला (महाराणा उदयसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० ८४), परन्तु नैणसी अखैराज का कूंपा को लाना लिखता है और शादी का उल्लेख नहीं करता। मेवाड़ के बड़वे की ख्यात में भी जहां उदयसिंह की राणियों की नामावली दी है, वहां कूंपा की पुत्री का नाम नहीं है।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६३–६४। नैणसी की ख्यात; पत्र ५, पृ० १।

(५) भिन्न भिन्न पुस्तकों में उदयसिंह के चित्तोड़ लेने और वणवीर के भागने के संवत् भिन्न भिन्न मिलते हैं। अमरकाव्य में इस घटना का वि० सं० १५९७ (ई० स० १५४०) में होना लिखा है (वीरविनोद; भाग २, पृ० ६४, टि० २), जो विश्वास के योग्य है। यही संवत् कर्नल टॉड और मुंशी देवीप्रसाद ने भी माना है।

मालदेव से महाराणा का विरोध

स्वरूपदेवी का विवाह मालदेव से कर दिया। एक दिन मालदेव अपने सुसराल (खैरवे) गया, जहां स्वरूपदेवी की छोटी बहिन को अत्यन्त रूपवती देखकर उसने उसके साथ भी विवाह करने के लिये जैतसिंह से आग्रह किया; परन्तु जब उसने साफ़ इनकार कर दिया, तब मालदेव ने कहा कि मैं बलात् विवाह कर लूंगा। इस प्रकार अधिक दबाने पर उसने कहा कि मैं अभी तो विवाह नहीं कर सकता, दो महीने बाद कर दूंगा। राव मालदेव के जोधपुर चले जाने पर उसने महाराणा उदयसिंह के पास एक पत्र भेजकर अपनी पुत्री से विवाह करने के लिये कहलाया। महाराणा के उसे स्वीकार करने पर जैतसिंह अपनी छोटी लड़की और घरवालों को लेकर कुंभलगढ़ की तरफ़ गुढ़ा नाम के गांव में आ रहा। स्वरूपदेवी ने, जो उस समय खैरवे में थी, अपनी बहिन को विदा करते समय दहेज में गहने देने चाहे, परन्तु जल्दी में गहनों के डिब्बे के बदले राठाड़ों की कुलदेवी 'नागणेची' की मूर्तिवाला डिब्बा दे दिया। उधर से महाराणा भी कुंभलगढ़ से उसी गांव में पहुंचा और उससे विवाह कर लिया[1]। जब वह डिब्बा खोला गया, तो उसमें नागणेची की मूर्ति निकली, जिसको महाराणा ने पूजन में रखा[2] और तभी से

(१) कर्नल टॉड ने लिखा है कि राव मालदेव की सगाई की हुई झाला सरदार की कन्या को महाराणा कुंभा ले आया था (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३३८). जो विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि मालदेव का जन्म महाराणा कुंभा के देहान्त से ४३ वर्ष पीछे हुआ था और झाला अज्जा व सज्जा महाराणा रायमल के समय वि० सं० १५६३ (ई० स० १५०६) में मेवाड़ में आये थे (देखो पृ० ६५३)। ऐसी दशा में कुंभा का मालदेव की सगाई की हुई सज्जा के पुत्र जैतसिंह की पुत्री को लाना कैसे संभव हो सकता है? झाली के महल कुंभलगढ़ के कटारगढ़ नामक सर्वोच्च स्थान पर कुंवर पृथ्वीराज के महलों के पास बने हुए थे, जो 'झाली का मालिया' नाम से प्रसिद्ध थे। कटारगढ़ पर के बहुधा सब पुराने महल तुड़वाकर वर्तमान महाराणा साहब ने उनके स्थान पर नये महल बनवाए हैं।

इस घटना का मारवाड़ की ख्यात में वि० सं० १५९७ (ई० स० १५४०) में होना लिखा है, जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि उस समय तक तो महाराणा उदयसिंह मेवाड़ का राज्य प्राप्त करने के लिये ही लड़ रहा था; अतएव यह घटना उक्त संवत् से कुछ पीछे की होनी चाहिये।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६७-६८। मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात; जि० १, पृ० १०८-९।

उसको साल में दो बार (भाद्रपद सुदि ७ और माघ सुदि ७) विशेष रूप से पूजने का रिवाज़ चला आता है[1]।

इस बात पर क्रुद्ध होकर राव मालदेव ने कुंभलमेर पर आक्रमण किया। महाराणा ने भी मुक़ाबला करने के लिये सेना भेजी। युद्ध में दोनों तरफ़ से कई राजपूतों के मारे जाने के बाद मालदेव की सेना भाग निकली[2]।

अब्बासख़ां सरवानी अपनी पुस्तक 'तारीख़े शेरशाही' में लिखता है—"जब हि० स० ६५० (वि० सं० १६००=ई० स० १५४३) में राव मालदेव के लड़ाई से भागने और उसके सरदार जैता, कूंपा आदि के सुलतान से लड़कर मारे जाने के बाद शेरशाह ने अजमेर ले लिया, तब उसके सरदारों ने कहा कि चातुर्मास निकट आगया है, इसलिये अब लौट जाना चाहिये। इसपर उसने उत्तर दिया कि मैं चातुर्मास ऐसी जगह बिताऊंगा, जहां से कुछ काम किया जासके। फिर वह चित्तोड़ की तरफ़ बढ़ा। जब वह चित्तोड़ से १२ कोस दूर था, उस समय राजा (राणा) ने क़िले की कुंजियां उसके पास भेज दीं, जिससे वह चित्तोड़ में आया और ख़वासख़ां के छोटे भाई मियां अहमद सरवानी को वहां छोड़कर स्वयं लौट गया"[3]।

महाराणा उदयसिंह और शेरशाह सूर

यह समय उदयसिंह के राज्य के प्रारंभ काल का ही था, जिससे संभव है कि उदयसिंह ने शेरशाह से लड़ना अनुचित समझ उससे सुलह कर उसे लौटा दिया हो। यदि चित्तोड़ का क़िला उसने ले लिया होता तो पीछा उदयसिंह के अधिकार में कैसे आया, इसका उल्लेख फ़ारसी तवारीख़ों या ख्यातों आदि में मिलना चाहिये था, परन्तु वैसा नहीं मिलता।

बूंदी का राव सुरताण अपने सरदारों आदि पर अत्याचार किया करता था, जिससे वे उससे अप्रसन्न रहते थे। बूंदी के लोगों की यह शिकायत सुनने पर महाराणा ने बूंदी का राज्य हाड़ा सुरजन को, जो हाड़ा अर्जुन का पुत्र था और महाराणा के पास रहा करता था[4], देना निश्चय कर उसे सैन्य के साथ बूंदी पर भेजा। सुरताण

महाराणा का राव सुरजन को बूंदी का राज्य दिलाना

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६८।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६८। मारवाड़ की ख्यात; पृ० १०६।

(३) तारीख़े शेरशाही—इलियट; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; जि० ४, पृ० ४०६।

(४) मुहणोत नैणसी लिखता है—"हाड़ा सुरजन राणा का नौकर था; उसकी जागीर

वहां से भागकर महाराणा के सरदार रायमल खीची के पास जा रहा और सुर-जन बूंदी के राज्य का स्वामी हुआ। यह घटना वि० सं० १६११ (ई० स० १५५४) में हुई[1]।

शेरशाह सूर का गुलाम हाजीखां एक प्रबल सेनापति था। अकबर के गद्दी बैठने के समय उसका मेवात (अलवर) पर अधिकार था। वहां से उसे निका-

महाराणा उदयसिंह और हाजीखां पठान

लने के लिये बादशाह अकबर ने पीर मुहम्मद सरवानी (नासिरुल्मुल्क) को उसपर भेजा; उसके पहुंचने से पहले ही वह भागकर अजमेर चला गया[2]। राव मालदेव ने उसे लूटने के लिये पृथ्वीराज (जैतावत) को भेजा। हाजीखां ने महाराणा के पास अपने दूत भेजकर कहलाया कि मालदेव हमसे लड़ना चाहता है, आप हमारी सहायता करें। इसपर महाराणा उसकी सहायतार्थ राव सुरजन, दुर्गा सिसोदिया[3], राव जयमल (मेड़तिये) को साथ लेकर अजमेर पहुंचा। तब सब राठोड़ों ने पृथ्वीराज से कहा कि राव मालदेव के अच्छे अच्छे सरदार पहले (शेरशाह आदि के साथ की लड़ाइयों में) मारे जा चुके हैं; यदि हम भी इस युद्ध में मारे गये, तो राव बहुत निर्बल हो जायगा। इस प्रकार उसे समझा-बुझाकर वे वापस ले गये[4]।

इस सहायता के बदले में महाराणा ने हाजीखां से रंगराय पातर (वेश्या), जो उसकी प्रेयसी थी, को मांगा। हाजीखां ने यह कहकर कि 'यह तो मेरी औरत है, इसे मैं कैसे दूं', उसे देने से इनकार किया। इसपर सरदारों ने महाराणा को उसे (वेश्या को) न मांगने के लिये समझाया, परंतु लम्पट राणा ने उनका

में १२ गांव थे। पीछे अजमेर में काम पड़ा, तब वह राणा की तरफ़ से लड़कर घायल हुआ था। फिर फूलिया खालसा किया जाकर बदनोर का पट्टा उसे दिया गया। इसी अवसर पर सुरताण के उपद्रव के समाचार पहुंचे, तब राणा ने सुरजन को बूंदी का राज-तिलक दिया और उसे बड़ा विश्वासपात्र जानकर रणथंभोर की क़िलेदारी भी सौंप दी" (ख्यात; पत्र २७, पृ० १)।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६९-७०।

(२) अकबरनामा—इलियट; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; जि० ६, पृ० २१-२२।

(३) यह सिसोदियों की चन्द्रावत शाखा का रामपुरे का स्वामी और महाराणा उदयसिंह का सरदार था, जिसको बादशाह अकबर ने मेवाड़ का बल तोड़ने के लिये पीछे से अपनी सेवा में रख लिया था।

(४) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र १४, पृ० १।

कहना न माना और राव कल्याणमल[1] व जयमल (वीरमदेवोत) आदि को साथ लेकर उसपर चढ़ाई कर दी, जिससे हाजीख़ां ने मालदेव से मदद चाही। मालदेव का महाराणा से पहले से ही विरोध हो चुका था, इसलिये उसने राठोड़ देवीदास (जैतावत), जैतमाल (जैसावत) आदि के साथ १५०० सेना उसकी सहायतार्थ भेज दी। वि० सं० १६१३ फाल्गुन वदि ६ (ता० २४ जनवरी ई० स० १५५७) को हरमाड़ा (अजमेर ज़िले में) गांव के पास दोनों सेनाएं आ पहुंचीं। राव तेजसिंह और बालीसा[2] (बालेचा) सूजा ने कहा कि लड़ाई न की जाय, क्योंकि पांच हज़ार पठान और डेढ़ हज़ार राजपूतों को मारना कठिन है; परन्तु राणा ने उनकी बात न सुनी और युद्ध शुरू कर दिया। हाजीख़ां ने एक सेना तो आगे भेज दी और स्वयं एक हज़ार सवारों को लेकर एक पहाड़ी के पीछे जा छिपा। जब राणा की सेना शत्रु-सैन्य के बीच पहुंची, तब पीछे से हाजीख़ां ने भी उसपर हमला किया। हाजीख़ां का एक तीर राणा के लगा और उसकी फ़ौज ने पीठ दिखाई। राव तेजसिंह (डूंगरसिंहोत), बालीसा सूजा, डोडिया भीम, चूंडावत छीतर आदि सरदार राणा की तरफ़ से मारे गये[3]।

वि० सं० १६१६ चैत्र सुदि ७ गुरुवार (ता० १६ मार्च ई० स० १५५६) को ग्यारह घड़ी रात गये महाराणा के कुंवर प्रतापसिंह के पुत्र अमरसिंह का जन्म हुआ[4]।

---

(१) बीकानेर का स्वामी। मारवाड़ की ख्यात में इस लड़ाई में उसका महाराणा के साथ रहना लिखा है। उसके पिता जैतसिंह को राव मालदेव ने मारा था, अतएव संभव है कि उसने इस लड़ाई में महाराणा का साथ दिया हो।

(२) बालेचा सूजा मेवाड़ से जाकर राव मालदेव की सेवा में रहा था। जब मालदेव ने झाली के मामले में कुंभलगढ़ पर चढ़ाई की, उस समय उसको भी साथ चलने को कहा, परंतु उसने अपनी मातृभूमि (मेवाड़) पर चढ़ने से इनकार किया और उसकी सेवा छोड़कर उसके गांव लूटता हुआ महाराणा के पास चला आया, तो उसने प्रसन्न होकर उसे दुगुनी जागीर दी। मालदेव ने बहुत क्रुद्ध होकर राठोड़ नगा (भारमलोत) को उसपर ५०० सवारों के साथ भेजा; उसने जाकर उसके चौपाए घेर लिये, तब सूजा ने भी सामना किया। इस लड़ाई में राठोड़ बाला, धन्ना और बीजा (भारमलोत) काम आये और सूजा ने अपने चौपाए छुड़ा लिये (मारवाड़ की ख्यात; पृ० १०६–१०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ७०)।

(३) मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र १४। मारवाड़ की ख्यात; जि० १, पृ० ७५-७६।

(४) अमरसिंह की जन्मपत्री हमारे पासवाले प्रसिद्ध ज्योतिषी चण्डू के यहां के जन्मपत्रियों के संग्रह में विद्यमान है।

महाराणा का उदयपुर बसाना

इस अवसर पर चित्तोड़ से सवार होकर महाराणा एकलिंगजी के दर्शन को गया और वहां से शिकार के लिये आहाड़ गांव की तरफ़ चला। मार्ग में उसने देखा कि बेड़च नदी एक बड़े पहाड़ में से निकल कर मेवाड़ की तरफ़ मैदान में गई है। महाराणा ने अपने सरदारों और अहलकारों से सलाह की कि चित्तोड़ का क़िला एक अलग पहाड़ी पर होने से शत्रु घेरकर इसपर अधिकार कर सकता है और सामान की तंगी से क़िलेवालों को यह छोड़ना पड़ता है। यदि इन पहाड़ों में राजधानी बसाई जाय, तो रसद की कमी न रहेगी और क़िले की मज़बूती के साथ ही पहाड़ी लड़ाई करने का अवसर भी मिलेगा। सब सरदारों और अहलकारों को यह सलाह बहुत पसंद आई और महाराणा ने उसी समय से वर्तमान उदयपुर से कुछ उत्तर में महल तथा शहर बसाना शुरू किया, जिसके कुछ खंडहर 'मोती महल' नाम से विद्यमान हैं।

दूसरे दिन शिकार खेलते हुए महाराणा ने पीछोला तालाब के पासवाली पहाड़ी पर झाड़ी में बैठे हुए एक साधु को देखा। प्रणाम करने पर उसने कहा कि यदि यहां शहर बसाओगे तो वह तुम्हारे वंश के अधिकार से कभी न छूटेगा। महाराणा ने उसका कथन स्वीकार कर उसकी इच्छानुसार पहले का स्थान छोड़कर जहां वह साधु बैठा था, वहीं एक महल की नींव अपने हाथ से डाली और अन्य महलों का बनना तथा शहर का बसना आरंभ हुआ। जिस महल की नींव महाराणा ने डाली थी, वह इस समय 'पानेड़ा' नाम से प्रसिद्ध है और वहीं मेवाड़ के राजाओं का राज्याभिषेक होता है। इसी संवत् में उदयसागर भी बनने लगा[१]।

मानसिंह देवड़े का महाराणा की सेवा में आना

सिरोही के स्वामी रायसिंह ने अपने अन्तिम समय सरदारों को बुलाकर कहा कि मेरा पुत्र उदयसिंह बालक है, इसलिये मेरे भाई दूदा देवड़ा को राज्यतिलक दे देना। रायसिंह के पीछे दूदा सिरोही का स्वामी हुआ। उसने भी अपने अन्तिम समय सरदारों से कहा कि राज्य का अधिकारी मेरा पुत्र मानसिंह नहीं, उदयसिंह है; इसलिये मेरे पीछे उसको गद्दी पर बिठाना और उदयसिंह से कहा कि

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ७२-७३।

यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो मानसिंह को लोहियाणा गांव जागीर में देना। गद्दी पर बैठते ही उदयसिंह ने उसे लोहियाणा गांव दे दिया, परन्तु थोड़े दिनों पीछे उसने अपने चाचा का सब उपकार भूलकर उससे वह गांव छीन लिया, जिससे वह महाराणा उदयसिंह के पास चला आया। महाराणा ने उसे अठारह गांवों के साथ वरकाणा बीजेवास का पट्टा देकर अपने पास रख लिया। इससे कुछ समय बाद वि० सं० १६१६ (ई० स० १५६२) में सिरोही का राव उदयसिंह शीतला से मर गया और उसका उत्तराधिकारी यही मानसिंह हुआ। वहां के राजपूत सरदारों ने इस भय से कि राव उदयसिंह की मृत्यु का समाचार सुनकर कहीं महाराणा उदयसिंह सिरोही पर अधिकार न कर ले, एक दूत को गुप्त रीति से भेजकर सारा वृत्तान्त मानसिंह को कहलाया तो महाराणा को सूचना दिये बिना ही वह भी पांच सवारों के साथ कुंभलगढ़ से सिरोही की ओर चला। इसकी सूचना मिलने पर महाराणा ने एक पुरोहित को जगमाल देवड़े के साथ मानसिंह के पास भेजकर कहलाया कि तुम हमारी आज्ञा बिना ही चले गये, इसलिये हम तुम्हारे चार परगने छीनते हैं। मानसिंह ने उस पुरोहित का आदर-सत्कार कर कहा कि महाराणा तो केवल चार परगनों के लिये ही फ़रमाते हैं, मैं तो सिरोही का राज्य नज़र करने को तैयार हूं। यह उत्तर सुनकर महाराणा प्रसन्न हुआ और उसके राज्य पर कुछ भी हस्तक्षेप न किया[1]।

चित्तोड़ पर अकबर की चढ़ाई

अकबर से पूर्व तीन सौ से अधिक वर्षों तक मुसलमानों के भिन्न-भिन्न सात राजवंशों ने दिल्ली पर शासन किया, परन्तु उनमें से एक भी वंश १०० वर्ष तक राज्य न कर सका। इसका मुख्य कारण यह था कि उन्होंने यहां के राजपूत राजाओं को सहायक बनाने का यत्न नहीं किया और मुसलमानों के भरोसे ही वे अपना राज्य स्थिर करना चाहते थे। बादशाह अकबर यह अच्छी तरह जानता था कि भारतवर्ष में एकच्छत्र राज्य स्थापित करने के लिये राजपूत-नरेशों को अपना सहायक बनाना नितान्त आवश्यक है और जब अफ़गान भी मुग़लों के शत्रु बन रहे हैं तब राजपूतों की सहायता लिये बिना मुग़ल-साम्राज्य की नींव सुदृढ़ नहीं हो

(१) मेरा सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० २०७–१४। मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ३२।

सकती। इसलिये उसने शनैः शनैः राजपूत राजाओं को अपने पक्ष में मिलाना चाहा और सबसे पहले आंबेर के राजा भारमल कछवाहे को अपना सेवक बनाकर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

अकबर यह भी जानता था कि राजपूत नरेशों में सबसे प्रबल और सबका नेता चित्तोड़ का राणा है, इसलिये यदि उसको अपने अधीन कर लिया जाय तो अन्य सब राजपूत राजा भी मेरी अधीनता स्वीकार कर लेंगे। उत्तर भारत पर शासन करने के लिये चित्तोड़ और रणथंभोर जैसे सुदृढ़ किलों पर अधिकार करना भी आवश्यक था। उन्हीं दिनों उसे महाराणा पर चढ़ाई करने का कारण भी मिल गया। बाज़बहादुर को, जो मालवे का स्वामी था और अकबर के डर से भाग गया था, महाराणा ने शरण दी[1]। इसी लिये उसने चित्तोड़ पर चढ़ाई करने का विचार किया। ता० २५ सफ़र हि० स० ९७५ (वि० सं० १६२४ आश्विन वदि १२=ता० ३१ अगस्त ई० स० १५६७) को मालवे जाते हुए अकबर ने बाड़ी स्थान पर डेरा डाला[2]। वहां से आगे चलकर वह धौलपुर में ठहरा, जहां राणा उदयसिंह का पुत्र शक्तिसिंह, जो अपने पिता से अप्रसन्न होकर उसे छोड़ आया था, बादशाह के पास उपस्थित हुआ। एक दिन अकबर ने हँसी में उसे कहा कि बड़े बड़े ज़मींदार (राजा) मेरे अधीन हो चुके हैं, केवल राणा उदयसिंह अब तक नहीं हुआ; अतएव उसपर मैं चढ़ाई करनेवाला हूं, तुम उसमें मेरी क्या सहायता करोगे? मेरे अकबर के पास आने से सब लोग यही समझेंगे कि मैं ही उसे अपने पिता के देश पर चढ़ा लाया हूं और इससे मेरी बड़ी बदनामी होगी, यह सोचकर शक्तिसिंह उसी रात को बिना सूचना दिये चित्तोड़

---

(१) विन्सेंट स्मिथ; अकबर दी ग्रेट मुग़ल; पृ० ८१–८२।

गुजरात के सुलतान बहादुरशाह को परास्त कर हुमायूं ने मालवे पर अधिकार कर लिया था। जब शेरशाह सूर ने हुमायूं का राज्य छीना तो मालवा भी उसके अधिकार में आ गया और शुजाअख़ां को वहां का हाकिम नियत किया। सूर वंश के निर्बल हो जाने पर शुजाअख़ां मालवे का स्वतन्त्र शासक बन गया। उसके मरने पर उसका पुत्र बाज़बहादुर (बायज़ीद) मालवे का स्वामी हुआ। वि० सं० १६१९ (ई० स १५६२) में अकबर ने अब्दुल्लाहख़ां को उसपर भेजा, जिससे डरकर वह भागा और गुजरात आदि में गया, परन्तु अन्त में निराश होकर महाराणा उदयसिंह की शरण में आ रहा।

(२) अकबरनामे का एच् बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४४२।

भाग गया[1]। यह समाचार पाकर अकबर बहुत क्रुद्ध हुआ और मालवे पर चढ़ाई करना स्थगित कर उसने चित्तोड़ को विजय करना निश्चय किया।

वह रबिउलअव्वल हि० स० ६७५ (वि० सं० १६२४ आश्विन=सितम्बर ई० स० १५६७) को चित्तोड़ की ओर रवाना हुआ और सिवीसुपर (शिवपुर) तथा कोटा के क़िलों पर अधिकार करता हुआ गागरौन पहुंचा। आसफ़खां और वज़ीरखां को मांडलगढ़ पर, जो राणा के सुदृढ़ दुर्गों में से एक था और जिसका रक्षक बाल्वी (बल्लू या बालनोत) सोलंकी था, भेजा; उन दोनों ने उसे जीत लिया[2]। मालवे की चढ़ाई की व्यवस्था कर अकबर स्वयं सेना लेकर चित्तोड़ की ओर बढ़ा[3]।

इधर कुंवर शक्तिसिंह ने धौलपुर से चित्तोड़ आकर अकबर के चित्तोड़ पर आक्रमण करने के दृढ़ निश्चय की सूचना महाराणा को दी, इसपर सब सरदार बुलाये गये, तो जयमल[4] वीरमदेवोत, रावत साईंदास चूंडावत, ईसरदास चौहान, राव बल्लू सोलंकी, डोडिया सांडा, राव संग्रामसिंह, रावत साहिबखान, रावत पत्ता, रावत नेतसी आदि सरदार उपस्थित हुए। उन्होंने महाराणा को यह सलाह दी कि गुजराती सुलतान से लड़ते लड़ते मेवाड़ कमज़ोर हो गया है और अकबर भी बड़ा बहादुर है, इसलिये आपको अपने परिवार सहित पहाड़ों की तरफ़ चला जाना चाहिये। इस सलाह के अनुसार महाराणा

---

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जिल्द २, पृ० ४४२-४३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ७३-७४।

(२) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४४३-४४।

(३) वही; जि० २, पृ० ४६४।

कर्नल टॉड ने अकबर का चित्तोड़ पर दो बार आक्रमण करना लिखा है। पहली बार जब अकबर आया, तब महाराणा की उपपत्नी ने उसे भगा दिया। इसपर सरदारों ने अपना अपमान समझकर उसे मार डाला। चित्तोड़ की यह फूट देखकर अकबर दूसरी बार उसपर चढ़ आया (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३७८-७६), परन्तु पहली चढ़ाई की बात कल्पित ही है।

(४) वीर जयमल राठोड़ वीरमदेव (मेड़तिये) के ११ पुत्रों में सब से बड़ा था। उसका जन्म वि० सं० १५६४ आश्विन सुदि ११ (ता० १७ सितम्बर ई० स० १५०७) को हुआ था। जोधपुर के राव मालदेव ने वीरमदेव से मेड़ता छीन लिया, परन्तु वह उससे फिर ले लिया गया था। अकबर ने वि० सं० १६१६ (ई० स० १५६२) में मिर्ज़ा शर्फ़ुद्दीन को

राठोड़ जयमल और सिसोदिया पत्ता[1] को सेनाध्यक्ष नियत कर रावत नेतसी[2] आदि कुछ सरदारों सहित मेवाड़ के पहाड़ों में चला गया और क़िले की रक्षार्थ ८००० राजपूत रहे[3]।

अकबर ने भी मांडलगढ़ से कूच कर ता० १९ रबीउस्सानी हि० स० ९७५ (मार्गशीर्ष वदि ६ वि० सं० १६२४=२३ अक्टूबर ई० स० १५६७) को क़िले के पास पहुंच कर डेरा डाला। अपने सेनापति बख़्शीस को उसने घेरा डालने का काम सौंपा, जो एक महीने में समाप्त हुआ। इस अवसर में उसने आसफ़ख़ां को रामपुरे के क़िले पर भेजा, जिसको उसने विजय कर लिया। राणा के कुंभलमेर और उदयपुर की तरफ़ जाने का समाचार सुनकर अकबर ने हुसेन कुलीख़ां को बड़ी सेना देकर उधर भेजा, परन्तु राणा का पता न लगने के कारण वह भी निराश होकर कुछ प्रदेश लूटता हुआ लौट आया[4]। चित्तोड़ पर अपना आक्रमण निष्फल होता देखकर अकबर ने सुरंग लगाने और साबात[5] बनाने का हुक्म दिया और जगह जगह मोर्चे रखकर तोपखाने से उनकी रक्षा की गई। लाखोटा दरवाज़े (बारी) के सामने अकबर स्वयं हसनख़ां, चग़ताईख़ां, राय पतरदास, इख़्तियारख़ां आदि अफ़सरों के साथ रहा; उसके मुक़ाबले में क़िले के भीतर राठोड़ जयमल रहा। यहीं एक सुरंग खोदी गई। दूसरा मोर्चा क़िले से पूर्व की तरफ़ सूरजपोल दरवाज़े के सामने शुजातख़ां, राजा टोडरमल और कासिमख़ां की अध्यक्षता में तोपखाने सहित था, जिसके सामने रावत साईंदास[6] (चूंडावत)

मेड़ता लेने के लिये भेजा। मिर्ज़ा ने क़िले को घेरा और सुरंग लगाना शुरू किया। एक दिन सुरंग से एक बुर्ज़ उड़जाने के कारण शाही सेना क़िले में घुस गई। दिन भर लड़ाई हुई, जिसमें दोनों तरफ़ के बहुतसे आदमी हताहत हुए। फिर आपस में संधि होने पर दूसरे दिन जयमल ने क़िला छोड़ दिया, तो भी उसके सेनापति देवीदास ने संधि के विरुद्ध क़िले का सामना जला डाला और वह अपने ५०० राजपूतों के साथ मिर्ज़ा से लड़कर मारा गया। मेड़ते का क़िला छूटने पर जयमल सपरिवार महाराणा की सेवा में आ रहा था।

(१) वीर पत्ता प्रसिद्ध चूंडा के पुत्र कांधल का प्रपौत्र और आमेटवालों का पूर्वज था।

(२) कानोड़ वालों का पूर्वज।

(३) वीरविनोद; भा० २, पृ० ७४-७५; और ख्यातें।

(४) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद जि० २, पृ० ४६४-६५।

(५) साबात के लिये देखो पृ० ६६८, टि० २।

(६) सलूंबरवालों का पूर्वज।

रहा। यहां से एक साबात पहाड़ी के बीच तक बनाई गई। तीसरे मोर्चे पर, जो क़िले के दक्षिण की तरफ़ चित्तोड़ी बुर्ज़ के सामने था, ख़्वाजा अब्दुल मजीद, आसफ़ख़ां आदि कई अफ़सरों सहित मुग़ल सेना खड़ी थी, जिसके मुक़ाबले में बल्लू सोलंकी आदि सरदार खड़े हुए थे[1]।

एक दिन दुर्ग के सब सरदारों ने मिलकर रावत साहिबखान चौहान[2] और डोडिये ठाकुर सांडा[3] को अकबर के पास भेजकर कहलाया कि हम वार्षिक कर दिया करेंगे और आपकी अधीनता स्वीकार करते हैं। कई मुसलमान अफ़सरों ने अकबर को यह संधि स्वीकार कर लेने के लिये कहा, परन्तु उसने राणा के स्वयं उपस्थित होने पर ही ज़ोर दिया[4]। संधि की बात के इस तरह बन्द हो जाने से राजपूत निराश नहीं हुए, किन्तु अदम्य उत्साह से युद्ध करने लगे। क़िले में कई चतुर तोपची थे, जो सुरंग खोदनेवालों और दूसरे मुसलमानों को नष्ट करते रहे। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि साबात की रक्षा में रहते हुए प्रतिदिन २०० आदमी मारे जाते थे। दिन दिन साबात आगे बढ़ाये जाते तथा सुरंगें खोदी जाती थीं। साबात बनने के समय भी राजपूत मौक़ा पाकर हमले करते रहे। तारीखे अल्फ़ी से पाया जाता है कि "जब साबात बन रहे थे, उस समय राणा के सात-आठ हज़ार सवार और कई गोलंदाज़ों ने उनपर हमला किया। कारीगरों के बचाव के लिये गाय भैंस के मोटे चमड़े की छावन थी, तो भी वे इतने मरे कि ईंट-पत्थर की तरह लाशें चुनी गईं[5]। बादशाह ने सुरंग और साबात बनानेवालों को जी खोलकर रुपया दिया। दो सुरंगें क़िले की तलहटी तक पहुंचाई गईं; एक में १२०

---

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४६६–६७। वीरविनोद; भाग २, पृ० ७५–७६।

(२) कोठारियावालों का पूर्वज।

(३) ऐसा प्रसिद्ध है कि अकबर ने डोडिया सांडा की बातों से प्रसन्न होकर उसे कुछ मांगने को कहा और बहुत आग्रह करने पर उसने यही कहा कि जब मैं युद्ध में मरूं तो बादशाह मुझे जलवा दें। कहते हैं कि अपना वचन निबाहने के लिये अकबर ने युद्ध में मरे हुए सब राजपूतों को जलवा दिया था।

(४) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४६७।

(५) तारीख़े अल्फ़ी–इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; जि०५, पृ० १७१–७३।

मन और दूसरी में ८० मन बारूद भरी गई। ता० १५ जमादिउस्सानी बुधवार (माघ वदि १ वि० सं० १६२४=१७ दिसम्बर ई० स० १५६७) को एक सुरंग उड़ाई गई, जिससे ५० राजपूतों सहित किले की एक बुर्ज़ उड़ गई; तब शाही फ़ौज क़िले में घुसने लगी, इतने में अचानक दूसरी सुरंग भी उड़ गई, जिससे शाही फ़ौज के २०० आदमी मर गये। सुरंग के इस विस्फोट का धड़ाका ५० कोस तक सुनाई दिया। राजपूतों ने चित्तोड़ की बुर्ज़, जो गिर गई थी, फिर बना ली[1]। उसी दिन बीकाखोह व मोर मगरी की तरफ़ आसफ़ख़ां ने तीसरी सुरंग उड़ाई, जिससे केवल ३० आदमी मरे। अब तक युद्ध में कोई सफलता न हुई, कई बार तो अकबर मरते मरते बचा; एक गोली उसके पास तक पहुंची, परन्तु उससे पासवाला आदमी ही मरा। अन्त में राजा टोडरमल और कासिमख़ां मीर की देखरेख में साबात बनकर तैयार हो गया। दो रात और एक दिन तक दोनों सेनाएं लड़ाई में इस तरह लगी रहीं कि खाना-पीना भी भूल गईं। शाही फ़ौज ने कई जगह क़िले की दीवार तोड़ डाली, परंतु राजपूतों ने उन स्थानों पर तेल, रुई, कपड़ा, बारूद इत्यादि जलाकर शत्रु को भीतर आने से रोका। एक दिन अकबर ने देखा कि एक राजपूत दीवार की मरम्मत कराने के लिये इधर-उधर घूम रहा है; उसपर उसने अपनी संग्राम नामक बंदूक से गोली चलाई, जिससे वह घायल हो गया[2]।

दीर्घ काल के अनन्तर दुर्ग में भोजन-सामग्री समाप्त होने पर राठोड़ जयमल मेड़तिये ने सब सरदारों को एकत्र करके कहा कि अब क़िले में भोजन का सामान नहीं रहा है, इसलिये जौहर कर दुर्ग-द्वार खोल दिये जावें और अब सब राजपूतों को बहादुरी से लड़कर वीर गति को पहुंचना चाहिये। यह सलाह सबको पसन्द आई और उन्होंने अपनी अपनी स्त्रियों और बच्चों को जौहर करने की आज्ञा दे दी। क़िले में पत्ता सिसोदिया, राठोड़ साहिबखान और ईसरदास चौहान की हवेलियों में जौहर की धधकती हुई अग्नि को देख-

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४६८।

(२) वही; जि० २, पृ० ४६९-७२।

अबुल्फ़ज़ल इस गोली से जयमल के मारे जाने का उल्लेख करता है, जो विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि वह अकबर की गोली से लँगड़ा हुआ था और अन्तिम दिन लड़ता हुआ मारा गया था, जैसा कि आगे पृ० ७२८ में बतलाया गया है।

कर अकबर बहुत विस्मित हुआ, तब भगवानदास (आंबेरवाले) ने उसे कहा कि जब राजपूत मरने का निश्चय कर लेते हैं, तो अपनी स्त्रियों और बच्चों को जौहर की अग्नि में जलाकर शत्रुओं पर टूट पड़ते हैं, इसलिये अब सावधान हो जाना चाहिये, कल क़िले के दरवाज़े खुलेंगे[1]।

दूसरे दिन सुबह होते ही शाही फौज ने क़िले पर हमला किया और राजपूतों ने भी दुर्ग-द्वार खोलकर घोर युद्ध किया। बादशाह की गोली लगने के कारण जयमल लँगड़ा हो गया था, इसलिये उसने कहा कि मैं पैर टूट जाने के कारण घोड़े पर नहीं चढ़ सकता, परन्तु लड़ने की इच्छा तो रह गई है। इसपर उसके कुटुंबी कल्ला ने उसे अपने कन्धे पर बिठाकर कहा कि अब लड़ने की (अपनी) आकांक्षा पूरी कर लीजिये। फिर वे दोनों नंगी तलवारें हाथ में लेकर लड़ते हुए हनुमान पोल और भैरव पोल के बीच में काम आये, जहां उन दोनों के स्मारक बने हुए हैं। डोडिया सांडा घोड़े पर सवार होकर शत्रु-सेना को काटता हुआ गंभीरी नदी के पश्चिमी किनारे पर मारा गया[2]। इस तरह राजपूतों का प्रचण्ड आक्रमण देखकर अकबर ने कई सधाये हुए हाथियों को सूंडों में खांडे पकड़ाकर आगे बढ़ाया। कई हजार सवारों के साथ अकबर भी हाथी पर सवार होकर क़िले के भीतर घुसा। ईसरदास चौहान[3] ने एक हाथ से अकबर के हाथी का दांत पकड़ा और दूसरे से सूंड पर खंजर मारकर कहा कि गुणग्राहक[4] बादशाह को मेरा मुजरा पहुंचे। इसी तरह राजपूतों ने कई हाथियों के दांत तोड़ डाले और कइयों की सूंडें काट डालीं, जिससे कई हाथी वहीं मर गये और बहुतसे दोनों तरफ़ के सैनिकों को कुचलते हुए भाग निकले। पत्ता चूंडावत (जग्गावत) बड़ी बहादुरी से लड़ा, परन्तु एक हाथी ने उसे सूंड से पकड़कर पटक दिया, जिससे वह

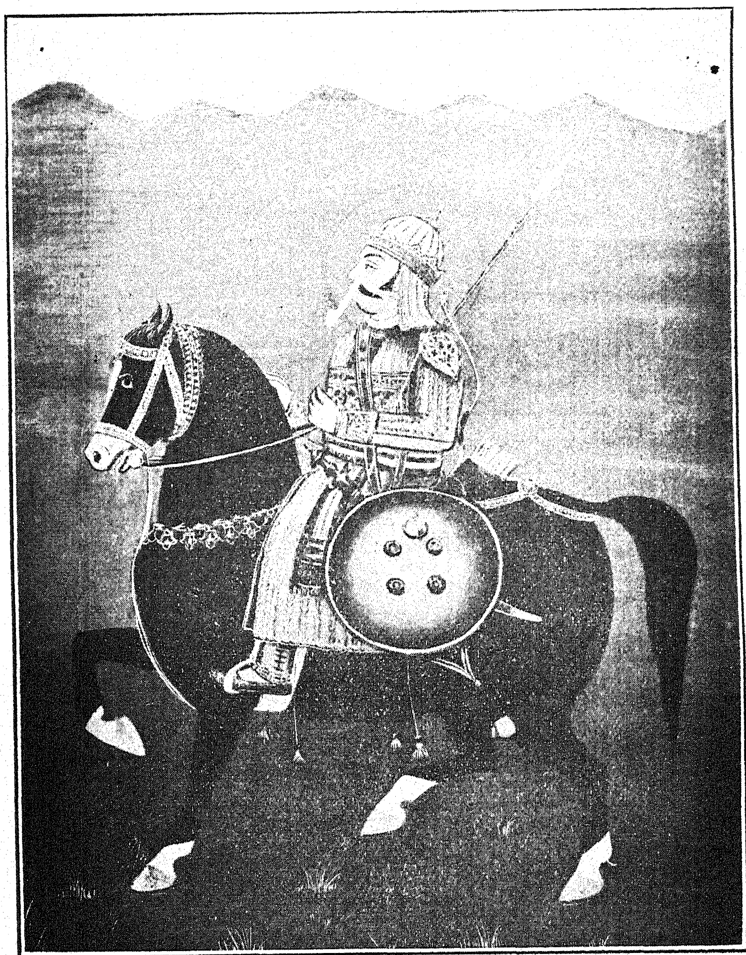
---

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जिल्द २, पृ० ४७२।

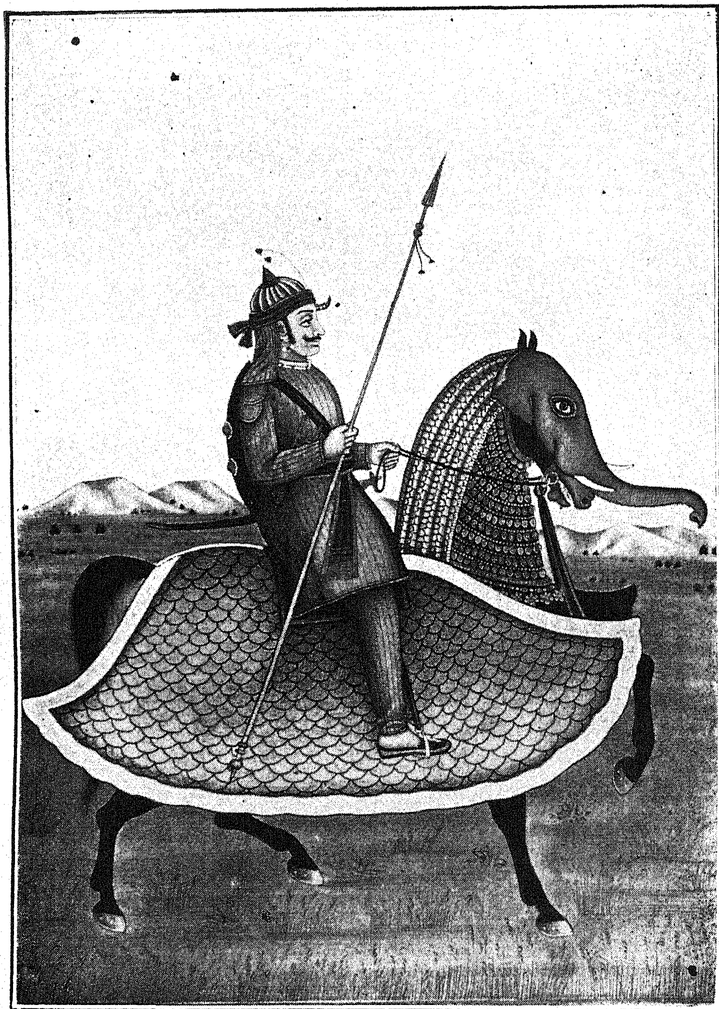
(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०-८१।

(३) बेदलेवालों के पूर्वज राव संग्रामसिंह का छोटा भाई।

(४) ऐसी प्रसिद्धि है कि ईसरदास की वीरता देखकर बादशाह अकबर ने एक दिन उसको अपने पास बुलाया और जागीर का लालच देकर अपना सेवक बनाना चाहा, परन्तु उस समय वह यह कहकर चला गया कि मैं फिर कभी आपके पास उपस्थित होकर मुजरा करूंगा। उसी वचन को निभाने के लिये उसने बादशाह को गुणग्राहक कहकर यहीं मुजरा किया।



राठोड़ जयमल



सीसोदिया पत्ता

सूरज पोल के भीतर मर गया[1]। रावत साईंदास, राजराणा जैता सज्जावत, राजराणा सुलतान आसावत, राव संग्रामसिंह, रावत साहिबखान, राठोड़ नेतसी आदि राजपूत सरदार मारे गये[2]। सेना के अतिरिक्त प्रजा का भी बहुत विनाश हुआ, क्योंकि युद्ध में उसने भी पूरा भाग लिया था, इसलिये अकबर ने क़त्ले-आम की आज्ञा दी थी। हि० स० ९७५ ता० २६ शाबान (वि० सं० १६२४ चैत्र वदि १३=ता० २५ फ़रवरी ई० स० १५६८) को दोपहर के समय अकबर ने क़िले पर अधिकार कर लिया और तीन दिन वहां रहकर अब्दुल मजीद आसफ़खां को क़िले का अधिकारी नियत कर वह अजमेर की तरफ़ रवाना हुआ[3]। जयमल और पत्ता की वीरता पर मुग्ध होकर अकबर ने आगरे जाने पर हाथियों पर चढ़ी हुई उनकी पाषाण की मूर्तियां बनवाकर क़िले के द्वार पर खड़ी करवाईं[4]। पहाड़ों में चार मास रहकर महाराणा रहे-सहे राजपूतों के साथ उदयपुर आया

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४७३—७५।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२; और ख्यातें।

कर्नल टॉड ने लिखा है कि जो राजपूत यहां मारे गये उनके यज्ञोपवीत तोलने पर ७४॥ मन हुए। तभी से व्यापारियों की चिट्ठियों पर प्रारंभ में ७४॥ का अंक इस अभिप्राय से लिखा जाता है कि यदि कोई अन्य पुरुष उनको खोल ले तो उसे चित्तोड़ के उक्त संहार का पाप लगे (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३८३)। यह कथन कल्पित है; न तो चित्तोड़ पर मरे हुए राजपूतों के यज्ञोपवीतों का तोल इतना हो सकता है और न उक्त अंक से चित्तोड़ के संहार के पाप का अभिप्राय है। उस अंक के लिये भिन्न भिन्न विद्वानों ने जो भिन्न भिन्न कल्पनाएं की हैं, वे भी मानने योग्य नहीं हैं। प्राचीन काल में किसी भी लेख के प्रारंभ करने से पूर्व बहुधा 'ॐ' लिखा जाता था, जैसा आजकल श्रीगणेशाय नमः, श्री रामजी आदि। प्राचीन काल में 'ओं' का सांकेतिक चिह्न हिन्दी के वर्तमान ७ के अंक के समान था (भारतीय प्राचीनलिपिमाला; लिपिपत्र १६, २०, २२, २६)। पीछे से उसके भिन्न भिन्न परिवर्तित रूपों के पास शून्य भी लिखा जाने लगा (वही; लिपिपत्र २७), जो जल्दी लिखे जाने से कालान्तर में ४ की शकल में पलट गया। उसके आगे विराम की दो खड़ी लकीर लगाने से ७४॥ का अंक बन गया है, जो प्राचीन 'ओं' का ही सूचक है। प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों तथा जैनों, बौद्धों की हस्तलिखित पुस्तकों आदि के प्रारंभ में बहुधा 'ओं' अक्षर लिखा हुआ मिलता है।

(३) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४७५-७६।

(४) ये मूर्तियां वि० सं० १७२० (ई० स० १६६३) तक विद्यमान थीं और फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने भी इन्हें देखा था (बर्नियर्स ट्रैवल्स; पृ० २५६—स्मिथ-संपादित)। पीछे से संभवतः औरंगज़ेब ने इन्हें धर्मद्वेष के कारण तुड़वा दिया हो।

और अपने महलों को, जो अधूरे पड़े थे, पूरा कराया[1]।

चित्तोड़ की विजय से एक साल बाद अकबर ने महाराणा के दूसरे सुदृढ़ दुर्ग रणथंभोर[2] को, जहां का क़िलेदार राव सुरजन हाड़ा था, विजय करने के लिये आसफ़ख़ां को सैन्य सहित भेजा, परन्तु फिर उसे मालवे पर भेजकर स्वयं बड़ी सेना के साथ ता० १ रज्जब हि० स० ९७६ (पौष सुदि २ वि० सं० १६२५=२० दिसम्बर ई० स० १५६८) को रणथम्भोर की ओर रवाना हुआ। अबुल्फ़ज़ल का कथन है—'वह मेवात और अलवर होता हुआ ता० २१ शाबान हि० स० ९७६ (फाल्गुन वदि ८ वि० सं० १६२५=८ फ़रवरी ई० स० १५६९) को वहां पहुंचा[3]। क़िला बहुत ऊंचा होने से उसपर मंजनीक[4] (मकरी यन्त्र) काम नहीं दे सकते थे। तब बादशाह ने रण[5] की पहाड़ी का

अकबर का रणथंभोर लेना

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८३।

(२) मालवे के अन्य प्रान्तों के साथ रणथंभोर का क़िला भी विक्रमादित्य के समय बहादुरशाह की पहली चढ़ाई की शर्तों के अनुसार उक्त सुलतान को सौंप दिया गया था। उसका सेनापति तातारख़ां वहीं से हुमायूं पर चढ़ा था। बहादुरशाह के मारे जाने पर गुजरात की अव्यवस्था के समय यह क़िला शेरशाह सूर के अधिकार में आ गया। शेरशाह के पीछे सूरवंश की अवनति के समय महाराणा उदयसिंह ने उधर के दूसरे इलाक़ों के साथ यह क़िला भी अपने अधिकार में कर लिया (तबक़ाते अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; जि० ५, पृ० २६०)। फिर उसने सुरजन को वहां का क़िलेदार नियत किया था (देखो पृ० ७१८, ८०४)।

(३) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४८९–९०।

(४) प्राचीन काल के युद्धों में पत्थर फेंकने का एक यंत्र काम में आता था, जिसे संस्कृत में मकरी यंत्र, फ़ारसी में मंजनीक और अंग्रेज़ी में Catapult कहते थे। तोपों के उपयोग से पूर्व यह यंत्र क़िले आदि में पत्थर बरसाने का मुख्य साधन समझा जाता था। इससे फेंके हुए बड़े बड़े गोलों के द्वारा दीवारें तोड़ी जाती थीं और निशाने भी लगाये जाते थे। चित्तोड़, रणथंभोर, जूनागढ़ आदि के क़िलों में कई जगह पत्थर के कुछ छोटे और बड़े गोले हमारे देखने में आये। बड़े से बड़े गोलों का वज़न अनुमान मन भर होगा। क़िलों में ऐसे गोलों का संग्रह रहा करता था। जूनागढ़ के क़िले में ऐसे गोलों से भरे हुए तहख़ाने भी देखे।

(५) रणथम्भोर का क़िला अंडाकृतिवाले एक ऊंचे पहाड़ पर बना है, जिसके प्रायः चारों ओर अन्य ऊंची ऊंची पहाड़ियां आ गई हैं, जिनको इस क़िले की रक्षार्थ कुदरती बाहरी दीवार कहें, तो अनुचित न होगा। इन पहाड़ियों पर खड़ी हुई सेना शत्रु को दूर रखने में समर्थ हो सकती है। इनमें से एक पहाड़ी का नाम रण है, जो क़िले की पहाड़ी से कुछ नीची है और क़िले तथा उसके बीच बहुत गहरा खड्डा होने से शत्रु उधर से तो दुर्ग पर पहुंच ही नहीं सकता।

निरीक्षण किया, क़िले पर घेरा डाला[1], मोर्चेबन्दी की और तोपों का दाग़ना शुरू हुआ[2]। रण की पहाड़ी तक एक ऊंचा साबात बनवाकर पहाड़ी पर तोपें चढ़ाई गई और वहां से क़िले पर गोलंदाज़ी शुरू की[3], जिससे क़िले की दीवारें टूटने और मकान गिरने लगे। उस दिन रमज़ान का आख़िरी दिन था और दूसरे दिन ईद थी। बादशाह ने कहा कि यदि क़िलेवाले आज शरण न हुए तो कल क़िले पर हमला किया जायगा[4]।

राजा भगवानदास कछवाहा[5] और उसके पुत्र मानसिंह तथा अमीरों के बीच में पड़ने से राव ने अपने कुंवर दूदा और भोज को बादशाह के पास भेजा। अकबर ने ख़िलअत देकर उन्हें उनके पिता के पास लौटा दिया। सुरजन ने भी यह इच्छा प्रकट की कि यदि बादशाह का कोई दरबारी मुझे लेने को आवे, तो मैं उपस्थित हो जाऊं। उसकी इच्छानुसार उसे लाने के लिये हुसेन कुलीख़ां भेजा गया, जिसपर उसने ता० ३ शव्वाल हि० स० ९७६ (चैत्र सुदि ४ वि० सं० १६२६= २१ मार्च ई० स० १५६९) को बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर मुजरा किया

(१) चित्तोड़ के क़िले को घेर लेना तो सहज है, परन्तु रणथंभोर को घेरना ऐसा कठिन कार्य है, कि बहुत बड़ी सेना के बिना नहीं हो सकता।

(२) अकबरनामे में अबुल्फ़ज़ल ने लिखा है कि जिन तोपों को समान भूमि पर बैलों की दो सौ जोडियां भी कठिनाई से खींच सकती थीं और जिनसे साठ साठ मन के पत्थर तथा तीस तीस मन के गोले फेंके जा सकते थे, वे बहुत ऊंची तथा खड़ी और घुमाववाली रण की पहाड़ी पर कहारों के द्वारा चढ़ाई गई (अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जिल्द २, पृ० ४९४)। यह सारा कथन कल्पित ही है। जिन्होंने रण की पहाड़ी देखी है, वे इस कथन की अप्रामाणिकता अच्छी तरह समझ सकते हैं। अकबर के समय में ऐसी तोपें न थीं, जो साठ मन के पत्थर या तीस मन के गोले फेंक सकें और जिनको चार-चार सौ बैल भी समान भूमि पर कठिनता से खींच सकें, ऐसी तोपों का उस समय की दशा देखते हुए कहारों द्वारा उक्त पहाड़ी पर चढ़ाया जाना माना ही नहीं जा सकता।

(३) यदि रण की पहाड़ी पर तोपें चढ़ाई गई हों, तो वे बहुत छोटी होनी चाहियें। रण की पहाड़ी का भी हस्तगत करना बहुत ही कठिन काम था। वहां से तोपों के गोले फेंकने की बात भी ऊपर के (टिप्पणवाले) कथन की तरह कल्पित ही प्रतीत होती है। वास्तव में उस क़िले पर घेरा डाला गया, परन्तु बिना लड़े ही राव सुरजन ने उसे अकबर को सौंप दिया था।

(४) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४९४।

(५) टॉ; रा; जि० ३, पृ० १४८१। मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र १७, पृ० २।

और किले की चाबियां उसे दे दीं। तीन दिन बाद किले से अपना सामान निकाल-कर उसने किला मेहतरखां के सुपुर्द कर दिया[1]। राव सुरजन ने महाराणा की सेवा छोड़कर[2] बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली, जिसपर वह गढ़कटंगा का किलेदार बनाया गया और पीछे से चुनार के किले का हाकिम नियत हुआ[3]।

अमरकाव्य और महाराणा उदयसिंह

महाराणा उदयसिंह के पौत्र अमरसिंह के समय के बने हुए अमरकाव्य की एक अपूर्ण प्रति मिली है, जिसमें उदयसिंह से सम्बन्ध रखनेवाली नीचे लिखी बातें पाई जाती हैं, जिनका उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता। उसने पठानों से अजमेर छीनकर राव सुरताण (बूंदी का) को दिया; आंबेर के राजा भारमल ने अपने पुत्र भगवानदास को उसकी सेवा में भेजा। रावत साईंदास को गंगराड़, भैंसरोड़, बड़ोद और बेगम (बेगूं); ग्वालि-यर के राजा रामसाह तंवर[4] को बारांदसोर, मेड़ते के राठोड़ जयमल को १०००(?) गांव सहित बदनोर और राव मालदेव के ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह को १०० गांव समेत

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ४९४-९५।

(२) राव देवीसिंह के समय से लेकर सुरजन तक बूंदी के स्वामी मेवाड़ के राणाओं के अधीन रहे और जब कभी किसी ने स्वतन्त्र होने का उद्योग किया तो उसका दमन किया गया, जैसा कि ऊपर कई जगह बतलाया जा चुका है। पहले पहल राव सुरजन ने मेवाड़ की अधी-नता छोड़कर बादशाही सेवा स्वीकार की थी। कर्नल टॉड ने राव सुरजन के बिना लड़े रणथम्भोर का किला बादशाह को सौंप देने के विषय में जो कुछ लिखा है, वह बूंदी के भाटों की ख्यात से लिया हुआ होने के कारण अधिक विश्वासयोग्य नहीं है। किला सौंपने में जिन शर्तों का बादशाह से स्वीकार कराना लिखा है, वे भी मानी नहीं जा सकतीं; क्योंकि ऐसा कोई सुल-हनामा बूंदी में पाया नहीं जाता और कुछ शर्तें तो ऐसी हैं, जिनका उस समय होने का विचार भी नहीं हो सकता (ना० प्र० प; भाग २, पृ० २४८-६७)। मुहणोत नैणसी के समय तक तो ये शर्तें ज्ञात नहीं थीं। उसने तो यही लिखा है कि सुरजन ने इस शर्त के साथ गढ़ बादशाह के हवाले किया कि "मैंने राणा की दुहाई दी है, इसलिये उसपर चढ़कर कभी नहीं जाऊंगा" (ख्यात; पत्र २७, पृ० २)। आगे चलकर नैणसी ने यहां तक लिखा है कि अकबर ने हाथियों पर चढ़ी हुई जयमल और पत्ता (जिन्होंने चित्तोड़ की रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग किया था) की मूर्तियां बनवाकर आगरे के किले के द्वार पर खड़ी करवाईं और सुरजन की मूर्ति कूकर (कुत्ते) की-सी बनवाई, जिससे वह बहुत लज्जित हुआ और काशी में जाकर रहने लगा (ख्यात; पत्र २७, पृ० २)।

(३) ब्लॉकमैन; आइने अकबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० १, पृ० ४०९।

(४) रामसाह ग्वालियर के तंवर राजा विक्रमादित्य का पुत्र था। अकबर के सेनापति

कैलवे का ठिकाना दिया। खीचीवाड़े और आबू के राजा उसकी सेवा में रहते थे[1]।

महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर नगर बसाना आरंभ कर महलों का कुछ अंश[2] और पीछोला तालाब के पश्चिमी तट के एक ऊंचे स्थान पर उदयश्याम[3] का मंदिर बनवाया। वि० सं० १६१६ (ई० स० १५५६) से उसने उदयसागर तालाब बनवाना शुरू किया, जिसकी समाप्ति वि० सं० १६२१ में हुई।

महाराणा उदयसिंह के बनवाये हुए महल, मंदिर और तालाब

चित्तोड़ छूटने के बाद महाराणा बहुधा कुंभलगढ़ में रहा करता था, क्योंकि उदयपुर शहर पूरी तरहसे बसा न था। वि० सं० १६२८ में वह कुंभलगढ़ से गोगूंदा गांव में आया और दसहरे के बाद बीमार होने के कारण फाल्गुन सुदि १५ (२८ फ़रवरी ई० स० १५७२) को वहीं उसका देहान्त हुआ, जहां उसकी छत्री बनी हुई है।

महाराणा का देहान्त

बड़वे की ख्यात में महाराणा उदयसिंह के २० राणियों से २५ कुंवरों—प्रतापसिंह, शक्तिसिंह[4], वीरमदेव[5], जैतसिंह, कान्ह, रायसिंह, शार्दूलसिंह, रुद्र-

इकबालख़ां से हारने पर वह अपने तीन पुत्रों (शालिवाहन, भवानीसिंह और प्रतापसिंह) सहित महाराणा उदयसिंह की सेवा में आ रहा था (हिन्दी टॉड राजस्थान; प्रथम खण्ड, पृ० ३५२-५३)।

(१) मूल पुस्तक; पत्र ४३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८७। अमरकाव्य का उपलब्ध अंश उदयपुर के इतिहास-कार्यालय में विद्यमान है, परन्तु इस इतिहास के लिखते समय हमें वह प्राप्त न हो सका, अतएव वीरविनोद से ही उपर्युक्त अवतरण लिया गया है।

(२) नौचौकी सहित पानेड़ा, रायआंगण, नेका की चौपाड़, पांडे की ओवरी और ज़नाना रावला (जिसको अब कोठार कहते हैं) उदयसिंह के बनवाये हुए हैं। उसकी एक राणी झाली ने चित्तोड़ में पाडल पोल के निकट एक बावड़ी बनवाई, जो झाली की बावड़ी नाम से प्रसिद्ध है।

(३) मुहणोत नैणसी लिखता है कि राणा राव सुरजन सहित द्वारिका की यात्रा को गया। उस समय रणछोड़जी का मन्दिर बहुत साधारण अवस्था में था; राव सुरजन ने दीवाण (राणा) से आज्ञा लेकर नया मन्दिर बनवाया, जो अब तक विद्यमान है (ख्यात; पत्र २७, पृ० २)।

(४) शक्तिसिंह से शक्तावत नामक सिसोदियों की प्रसिद्ध शाखा चली। उसके वंश में भींडर और बानसी के ठिकाने प्रथम श्रेणी के, बोहेड़ा, पीपल्या और विजयपुर दूसरी श्रेणी के सरदारों में और तीसरी श्रेणी के सरदारों में हींता, सेमारी, रूंद आदि कई ठिकाने हैं। शक्ता का मुख्य वंशधर भींडर का महाराज है।

(५) वीरमदेव के वंश में द्वितीय श्रेणी के सरदारों में हमीरगढ़, खैराबाद, मंडुआ, सनवाड़ आदि ठिकाने हैं।

महाराणा उदयसिंह की सन्तति

सिंह, जगमाल[1], सगर[2], अगर[3], सीया[4], पंचायण, नारायणदास, सुरताण, लूणकरण, महेशदास, चंदा, भावसिंह, नेतसिंह, सिंहा, नगराज[5], वैरिशाल, मानसिंह और साहिबखान—तथा २० लड़कियों[6] के होने का उल्लेख है।

उदयसिंह एक साधारण राजा हुआ—न वह बड़ा वीर था और न राजनीतिज्ञ। प्रारंभिक जीवन विपत्तियों में बीतने पर भी उसने उससे कोई विशेष

महाराणा उदयसिंह का व्यक्तित्व

शिक्षा न ली। अकबर ने राजपूतों के गर्व और गौरव रूप चित्तोड़ के किले पर आक्रमण किया, उस समय ४६ वर्ष का होने पर भी वह अपने राज्य की रक्षार्थ, क्षत्रियोचित वीरता के साथ रण में प्राण देने का साहस न कर, पहाड़ों में जा रहा। वह विलासप्रिय और विषयी था। हाजीखां पठान को विपत्ति के समय उसने सहायता दी, जिसके बदले में उससे उसकी प्रेयसी (रंगराय) मांगकर उसने अपनी लम्पटता का परिचय दिया। अन्तिम समय अपनी प्रेमपात्री महाराणी भटियाणी के पुत्र जगमाल को, जो राज्य का अधिकारी नहीं था, अपना उत्तराधिकारी बनाने का प्रपञ्च रचकर उसने अपनी विवेकशून्यता प्रकाशित की।

इन सब बातों के होते हुए भी वह विक्रमादित्य से अच्छा था, चित्तोड़ से दूर पहाड़ों से सुरक्षित प्रदेश में उदयपुर बसाकर उसने दूरदर्शिता का परिचय

(१) जगमाल अकबर की सेवा में जा रहा। उसका परिचय आगे दिया जायगा।

(२) यह भी बादशाही सेवा में जा रहा, जिसका वृतान्त आगे प्रसंगवशात् आयगा। इसके वंशज मध्यभारत के उमटवाड़े में उमरी, भदोड़ा और गणेशगढ़ के स्वामी हैं।

(३) अगर के वंशज अगरावत कहलाये।

(४) सीया के वंशज सीयावत कहलाये।

(५) नगराज को मगरा ज़िले में झाड़ोल (सलूंबर के ठिकाने के अन्तर्गत) के आसपास का इलाक़ा जागीर में मिला हो; ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि उसका स्मारक वहीं बना हुआ है, जिसपर के लेख से पाया जाता है कि वि० सं० १६५२ माघ वदि ७ को उसका देहान्त झाडोल गांव में हुआ। उसके साथ सात स्त्रियां और दो खवास (उपपत्नियां) सती हुई, जिनके नाम उक्त लेख में खुदे हुए हैं।

(६) इन बीस पुत्रियों में से हरकुंवरबाई का विवाह सिरोही के स्वामी उदयसिंह (रायसिंह के पुत्र) के साथ हुआ था और वह अपने पति के साथ सती हुई थी।



वीर शिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह

दिया और विक्रमादित्य के समय गये हुए इलाक़ों में से कुछ फिर अपने अधिकार में कर लिये।

प्रतापसिंह

वीरशिरोमणि प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह का, जो भारत भर में राणा प्रताप के नाम से सुप्रसिद्ध है, जन्म वि० सं० १५९७ ज्येष्ठ सुदि ३ रविवार (ता० ९ मई ई० स० १५४०) को सूर्योदय से ४७ घड़ी १३ पल गये हुआ था[1]।

प्रतापसिंह का राज्य पाना

अपनी राणी भटियाणी पर विशेष प्रेम होने के कारण महाराणा उदयसिंह ने उसके पुत्र जगमाल को अपना युवराज बनाया था[2]। सब सरदार उदयसिंह की दाहक्रिया करने गये, जहां ग्वालियर के राजा रामसिंह ने जगमाल को वहां न पाकर कुंवर सगर से पूछा कि वह कहां है? सगर ने उत्तर दिया, क्या आप नहीं जानते कि स्वर्गीय महाराणा उसको अपना उत्तराधिकारी[3] बना गये हैं? इसपर अखैराज सोनगरे ने रावत कृष्णदास[4] और सांगा[5] से कहा कि आप चूंडा के वंशधर हैं, अतएव यह काम आपकी ही सम्मति से होना चाहिये था[6]। बादशाह अक-

(१) हमारे पासवाले ज्योतिषी चंडू के यहां के जन्मपत्रियों के संग्रह में महाराणा प्रताप की जन्मपत्री विद्यमान है। उसी के आधार पर उक्त तिथि दी गई है। वीरविनोद में वि० सं० १५९६ ज्येष्ठ सुदि १३ दिया है, जो राजकीय (श्रावणादि) होने से चैत्रादि संवत् १५९७ होना चाहिये; परन्तु तिथि तेरस नहीं किन्तु तृतीया थी, क्योंकि उसी दिन रविवार था, तेरस को नहीं। उक्त तिथि को शुद्ध मानने का दूसरा कारण यह भी है कि उस दिन आर्द्रा नक्षत्र था, न कि तेरस के दिन। जन्मकुंडली में चन्द्रमा मिथुन राशि पर है, जिससे आर्द्रा नक्षत्र में उसका जन्म होना निश्चित है।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८६।

(३) मेवाड़ में यह रीति है कि राजा का उत्तराधिकारी उसकी दाहक्रिया में नहीं जाता।

(४) कृष्णदास (किशनदास) चूंडा का मुख्य वंशधर और सलूंबरवालों का पूर्वज था; उससे चूंडावतों की किशनावत (कृष्णावत) उपशाखा चली।

(५) रावत सांगा चूंडा के पुत्र कांधल का पौत्र तथा देवगढ़वालों का पूर्वज था। उसी से चूंडावतों की सांगावत उपशाखा चली।

(६) जब से चूंडा ने अपना राज्याधिकार छोड़ा तभी से "पाट" (राज्य) के स्वामी

बर जैसा प्रबल शत्रु सिर पर है, चित्तोड़ हाथ से निकल गया है, मेवाड़ उजड़ रहा है ऐसी दशा में यदि यह घर का बखेड़ा बढ़ गया तो राज्य नष्ट होने में क्या सन्देह है। रावत कृष्णदास और सांगा ने कहा कि ज्येष्ठ कुंवर प्रतापसिंह ही, जो सब प्रकार से योग्य है, महाराणा होगा। इस विचार के अनन्तर महाराणा की उत्तर-क्रिया से लौटकर सब सरदारों ने उसी दिन प्रतापसिंह को राज्य-सिंहासन पर बिठा दिया और जगमाल से कहा कि आपकी बैठक गद्दी के सामने है, अतएव आपको वहां बैठना चाहिये। इसपर अप्रसन्न होकर जगमाल वहां से उठकर चला गया और सब सरदारों ने प्रतापसिंह को नज़राना किया। फिर महाराणा प्रताप गोगूंदे से कुंभलगढ़ गया, जहां उसके राज्याभिषेक का उत्सव हुआ[1]।

जगमाल का अकबर के पास पहुंचना

वहां से सपरिवार चलकर जगमाल जहाज़पुर गया तो अजमेर के सूबेदार ने उसको वहां रहने की आज्ञा दी। वहां से वह बादशाह अकबर के पास पहुंचा और अपना सारा हाल कहने पर बादशाह ने जहाज़पुर का परगना उसको जागीर में दे दिया[2]।

इन दिनों सिरोही के स्वामी देवड़ा सुरताण और उसके कुटुंबी देवड़ा बीजा में परस्पर अनबन हो रही थी। ऐसे में बीकानेर का महाराजा रायसिंह सोरठ जाता हुआ सिरोही राज्य में पहुंचा। सुरताण और देवड़ा बीजा, दोनों रायसिंह से मिले और उससे अपनी अपनी सहायता करने के लिये कहा। महाराजा ने सुरताण से कहा कि यदि आप अपना आधा राज्य बादशाह अकबर को दे दें, तो मैं बीजा देवड़ा को यहां से निकाल दूं। सुरताण ने यह बात स्वीकार कर ली और बादशाह ने सिरोही का आधा राज्य जगमाल को दे दिया। इस प्रकार एक म्यान में दो तलवारों की तरह सिरोही में दो राजा राज्य करने लगे, जिससे उनमें परस्पर विरोध उत्पन्न हो गया; इसपर जगमाल बादशाह के पास पहुंचा

महाराणा और "ठाट" (राज्यप्रबन्ध) के अधिकारी चूंडा तथा उसके मुख्य वंशधर माने जाते थे। "भांजगड़" (राज्यप्रबन्ध) आदि का काम उन्हीं की सम्मति से होता चला आता था। इसी से अखैराज सोनगरे ने चूंडा के वंशजों से यह बात कही थी।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० १४६।

(२) वही; भाग २, पृ० १४६।

और उसने सहायता की प्रार्थना की। बादशाह ने उसकी सहायता के लिये रायसिंह चंद्रसेनोत[1] और दांतीवाड़ा के मालिक कोलीसिंह की अध्यक्षता में सिरोही पर सेना भेजी। शाही फ़ौज के साथ जगमाल के आने की ख़बर पाकर सुरताण यह सोचकर कि आबू में रहकर लड़ना अधिक सुविधाजनक होगा, सिरोही छोड़कर आबू चला गया। जगमाल ने सिरोही पर अधिकार कर सुरताण से आबू छीनने के लिये सेना के साथ कूच किया। सुरताण ने भी सेना तैयार कर जगमाल की सेना से दो कोस दूर एक उपयुक्त स्थान में डेरा डाला। उसके साथ लड़ने में हार जाने की संभावना देखकर जगमाल ने यह सोचा कि यदि पहिले सरदारों के ठिकानों पर हमला किया जाय, तो वे सब सुरताण को छोड़कर अपने अपने ठिकानों में चले जावेंगे और उस समय उस पर आक्रमण करने से हमारी जीत निश्चय ही होगी। इस विचार के अनुसार देवड़ा बीजा हरराजोत, राठोड़ खींवा मांडणोत आदि को कई मुसलमान सिपाहियों सहित भीतरट परगने की ओर भेजना निश्चय हुआ। इसपर देवड़ा बीजा[2] ने जगमाल तथा राठोड़ रायसिंह से कहा कि सुरताण बड़ा वीर है, उसकी युद्ध-कुशलता मैं जानता हूं, आप मुझे अलग करना चाहते हैं तो मैं भीतरट पर जाने को तैयार हूं, परंतु जिस समय सुरताण आपपर हमला करे, तब सावधान रहना। इसपर राठोड़ों ने उसे ताने के तौर पर कहा कि जहां मुर्गा नहीं होता वहां तो सदा रात ही रहती होगी। यह सुनकर बीजा अत्यन्त लज्जित हो गया और भीतरट की ओर चला गया।

इधर सुरताण ने यह देखकर कि बीजा जगमाल से अलग हो गया है, देवड़ा समरा[3] को दताणी गाँव में जाकर जगमाल और रायसिंह पर हमला करने की सलाह दी। सुरताण ने वि० सं० १६४० कार्तिक सुदि ११ (ई० स० १५८३ ता० १७ अक्टूबर) को जगमाल पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में जगमाल, राठोड़ रायसिंह तथा कोलीसिंह (दांतीवाड़ावाला) तीनों मारे गये

(१) जोधपुर के राव चंदसेन का तीसरा पुत्र।

(२) देवड़ा बीजा सिरोही के राव रणमल के दूसरे पुत्र गजा का आठवां वंशधर था।

(३) देवड़ा समरा देवड़ा बीजा का चाचा था।

और सुरताण की विजय हुई। इसप्रकार जगमाल का अन्त हुआ[1]। उसका विशेष वृत्तान्त हम सिरोही के इतिहास में लिखेंगे।

कुंवर मानसिंह से महाराणा का वैमनस्य

बादशाह अकबर ने गुजरात को विजय कर लिया था, परन्तु थोड़े ही समय पीछे वहां मिर्ज़ा मुहम्मद हुसेन और सरदार इख़्तियार-उल्मुल्क की अध्यक्षता में विद्रोह हो गया, जिसकी सूचना पाकर बादशाह को शीघ्र ही उधर जाना पड़ा। वहां शान्ति स्थापित कर वह तो अपनी राजधानी को लौटा[2] और कुंवर मानसिंह[3] को बहुतसी सेना के साथ डूंगरपुर तथा उदयपुर की तरफ़ यह आज्ञा देकर भेजा[4] कि जो हमारी अधीनता स्वीकार करे, उसका सम्मान करना और जो ऐसा न करे उसे दण्ड देना। शाही फ़ौज ने डूंगरपुर को विजय कर लिया और वहां का रावल आसकरण पहाड़ों में चला गया। फिर वह महाराणा को समझाकर बादशाही सेवा स्वीकार कराने के विचार से वि० सं० १६३० आषाढ़ (ई० स० १५७३ जून) में उदयपुर आया। महाराणा ने उसका आदर कर उसके साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार किया। कुंवर ने बादशाही सेवा स्वीकार कराने के लिये बहुत कुछ उद्योग किया, जो सब प्रकार से निष्फल ही हुआ। वहां से उसके विदा होने से पहिले महाराणा ने एक दिन उसके लिये उदयसागर की पाल पर दावत का प्रबन्ध किया और कुंवर अमरसिंह तथा मानसिंह को साथ लेकर वह वहां पहुंचा। भोजन के समय महाराणा स्वयं उपस्थित न हुआ और कुंवर अमरसिंह को आज्ञा दी कि तुम मानसिंह को भोजन करा देना। भोजन के समय मानसिंह ने महाराणा के भोजन में सम्मिलित होने का आग्रह किया तो अमरसिंह ने उत्तर दिया कि महाराणा के पेट में कुछ दर्द है, इसलिये वे उपस्थित न हो सकेंगे, आप भोजन कीजिये। इसपर जोश में आकर मानसिंह ने कहा कि

---

(१) मेरा सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० २२८–३१।

(२) स्मिथ; अकबर; पृ० ११७–२०।

(३) मानसिंह आंबेर के राजा भगवानदास के छोटे भाई भगवन्तदास का दूसरा पुत्र था, जिसको राजा भगवानदास ने गोद लिया था।

(४) कर्नल टॉड ने बादशाह का शोलापुर से कुंवर मानसिंह को मेवाड़ की तरफ़ भेजना लिखा है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३९१), जो ठीक नहीं है।

इस पेट के दर्द की दवा मैं खूब जानता हूं, अबतक तो हमने आपकी भलाई चाही, परन्तु आगे के लिये सावधान रहना। यह सुनकर कुलाभिमानी महाराणा ने कहलाया कि जो आप अपने सैन्य सहित आवेंगे तो मालपुरे में हम आपका स्वागत करेंगे और यदि अपने फूफा (अकबर) के बल पर आवेंगे, तो जहां मौक़ा मिलेगा, वहीं आपका सत्कार करेंगे। यह सुनते ही मानसिंह अप्रसन्न होकर वहां से चला गया। इसप्रकार दोनों के बीच वैमनस्य उत्पन्न हो गया। महाराणा ने मानसिंह को यवनसम्पर्क से दूषित समझकर भोजन तालाब में फिंकवा दिया और वहां की ज़मीन को खुदवाकर उसपर गंगाजल छिड़कवाया।

कुंवर मानसिंह ने बादशाह के पास पहुंचकर अपने अपमान का सारा हाल कहा, जिसपर क्रुद्ध हो उसने महाराणा का गर्वगंजन कर उसे सर्वतोभावेन अपने अधीन करने का विचारकर मानसिंह को ही भेजने का निश्चय किया[1]।

इस घटना का वर्णन संक्षेप से राजप्रशस्ति महाकाव्य[2] और राजपूताने की ख्यातों[3] आदि में भी लिखा मिलता है, परन्तु अबुलफ़ज़ल ने, जो मुसलमान इतिहास-लेखकों में सबसे बढ़कर खुशामदी था, इस बात का उल्लेख न कर इसके विरुद्ध यह लिखा है कि राणा ने मानसिंह का स्वागत कर अधीनता के साथ शाही ख़िलअत पहन ली और उसे अपने महलों में लेजाकर उसके साथ दग़ा करना चाहा, जिसका हाल मालूम होते ही मानसिंह वहां से चला गया[4]।

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३९१–९२; वीरविनोद; भाग २, पृ० १४७-४८।

(२) प्रतापसिंहोऽथ नृपः कच्छवाहेन मानिना।

मानसिंहेन तस्यासीद्वैमनस्यं भुजेर्विधौ ॥ २१ ॥

अकबरप्रभोः पार्श्वे मानसिंहस्ततो गतः।......॥ २२ ॥

राजप्रशस्तिमहाकाव्य; सर्ग ४।

(३) वंशभास्कर; पृ० २२५१। वंशभास्कर में इस घटना का महाराणा उदयसिंह के समय होना और कछवाहा भगवन्तदास (भगवानदास) का साथ होना माना है, जो ठीक नहीं है। यह घटना महाराणा प्रतापसिंह के समय की ही है।

(४) अकबरनामा; इलि. डा.; जि० ६, पृ० ४२-४३।

यह कथन सर्वथा अविश्वसनीय है, क्योंकि बादशाह का महत्त्व बताने के लिये झूठमूठ ही लिखा गया है, महाराणा का अधीनता के साथ ख़िलअत पहनना तो दूर रहा, वह तो अकबर को बादशाह नहीं, किन्तु तुर्क कहा करता था, जैसा कि आगे बतलाया जायगा। स्वयं जयपुर के इतिहास सम्बन्धी 'जयसिंहचरित्र' में, जो राम कवि का बनाया हुआ है, लिखा है कि मानसिंह ने भोजन के समय कहा कि जब आप भोजन नहीं करते तब हम क्यों करें। राणा ने कहलाया कि कुंवर आप भोजन कीजिये, अभी मुझे कुछ गिरानी है, पीछे से मैं भोजन करलूंगा। कुंवर ने कहा कि मैं आपकी इस गिरानी का चूर्ण दे दूंगा। फिर कुंवर कांसे (थाल) को हटाकर अपने साथियों सहित उठ खड़ा हुआ और रूमाल से हाथ पोंछकर उसने कहा कि चुल्लू तो फिर आने पर करूंगा[2]।

(१) अबुलफ़ज़ल ने तो यह भी लिख दिया है कि जब भगवन्तदास (भगवानदास) गोगूंदे पहुंचा, तब राणा उसको अपने यहां ले गया और उसके साथ अपने पुत्र अमरा (अमरसिंह) को राणा ने बादशाह की सेवा में भेज दिया और यह भी कहा कि जब मेरा चित्त शान्त होगा तब मैं भी उपस्थित हो जाऊंगा (एच. बेवरिज कृत अकबर नामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० ६२–६३)। अबुलफ़ज़ल का यह कथन भी सर्वथा कल्पित है। यदि महाराणा ने अधीनता के साथ ख़िलअत पहन ली होती और अपने ज्येष्ठ कुंवर अमरसिंह को भगवन्तदास (भगवानदास) के साथ बादशाही दरबार में भेज दिया होता तो फिर अकबर को महाराणा पर लगातार चढ़ाइयां करने की आवश्यकता ही न रहती। बादशाह जहांगीर के साथ महाराणा अमरसिंह की सुलह होने पर उसने अपने ज्येष्ठ कुंवर कर्णसिंह को उक्त बादशाह के दरबार में भेज दिया, जिसको उसने अपने लिये बड़ा ही गौरव समझा, जो उसके पिता अकबर को भी प्राप्त नहीं हुआ था, जैसा कि आगे बतलाया जावेगा।

दोहा

(२) राना सों भोजन समय गही मान यह बान।
हम क्यों जैवें आपहू जैंवत हो किन आन॥
कुंवर आप आरोगिये राना भाख्यो हेरि।
मोहि गरानी सी कछू अबै जैइहूं फेरि॥
कही गरानी की कुंवर भई गरानी जोहि।
अटक नहीं कर देऊंगो तूरण चूरण तोहि॥
दियो ठेल कांसो कुंवर उठे सहित निज साथ।
चुलू आंन भरि हौं कह्यौ पौंछ रुमालन हाथ॥

मेवाड़ पर कुंवर मानसिंह के भेजे जाने के विषय में 'इक़बालनामे जहांगीरी' का कर्ता मौतमिदखां लिखता है—"कुंवर मानसिंह, जो इसी दरबार का तैयार किया हुआ खास बहादुर आदमी है और जो फ़र्ज़न्द (बेटा) के ख़िताब से सम्मानित हो चुका है, अजमेर से कई मुसलमान और हिन्दू सरदारों के साथ राणा को पराजित करने के लिये भेजा गया। इसको भेजने में बादशाह का यही अभिप्राय था कि वह राणा की ही जाति का है और उसके बाप दादे हमारे अधीन होने से पहले राणा के अधीन और ख़िराजगुज़ार रहे हैं; इसको भेजने से संभव है कि राणा इसे अपने सामने तुच्छ और अपना अधीनस्थ समझकर लज्जा और अपनी प्रतिष्ठा के ख़याल से लड़ाई में सामने आ जाय और युद्ध में मारा जाय[1]"। फिर उसी पुस्तक में आगे लिखा है—"कुंवर मानसिंह शाही फ़ौज के साथ मांडलगढ़ पहुंचा और वहां सेना की तैयारी के लिये कुछ दिन ठहरा। राणा ने अपने गर्व के कारण उसे अपने अधीनस्थ जमींदारों में ही समझकर उसको उपेक्षा की दृष्टि से देखा और यह सोचा कि मांडलगढ़ पहुंच कर ही लड़ें[2]"।

कुंवर मानसिंह को मेवाड़ पर भेजने का कारण

उपर्युक्त कथन ठीक है, क्योंकि आंबेर का राज्य महाराणा कुंभा ने अपने अधीन किया था (पृ० ६१६), पृथ्वीराज राणा सांगा के सैन्य में था (पृ० ६८५) और भारमल का पुत्र भगवानदास भी पहले महाराणा उदयसिंह की सेवा में रहा था (पृ० ७३२)। जब से राजा भारमल ने अकबर की सेवा स्वीकार की, तब से आंबेरवालों ने मेवाड़ की अधीनता छोड़ दी।

बादशाह ने अजमेर पहुंचने पर महाराणा प्रताप को अधीन करने के विचार से कुंवर मानसिंह[3] को गाज़ीखां बदख़्शी, ख़्वाजा मुहम्मद रफ़ी बदख़्शी, शियाबुद्दीन

---

(१) इक़बालनामा (मुंशी देवीप्रसाद के संग्रहालय की पुस्तक); पृ० ३०३।

(२) वही; पृ० ३०५।

(३) कर्नल टॉड ने इस चढ़ाई में मुख्य सेनापति शाहज़ादा सलीम (पीछे से जहांगीर) का होना और उसके साथ मानसिंह तथा महाबतखां का होना लिखा है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३६२–६३) जो ठीक नहीं है, क्योंकि सलीम का जन्म हि० स० ९७७ ता० १७ रबि-उल् अव्वल (वि० सं० १६२६ आश्विन वदि ५=ई० स० १५६९ ता० ३१ अगस्त) बुधवार को हुआ था, अतएव इस चढ़ाई के समय उसकी आयु ६ वर्ष की थी, ऐसी अवस्था में उसका

मानसिंह का अजमेर से मेवाड़ को रवाना होना

गुरोह, पायन्दा कज़्ज़ाक, अलीमुराद उज़बक, काज़ीखां, इब्राहीम चिश्ती, शेख मंसूर, ख़्वाजा गयासुद्दीन, अली आसिफखां, सैयद अहमदखां, सैयद हाशिमखां, जगन्नाथ[1], सैयद राजू, महतरखां, माधोसिंह[2], मुजाहिदबेग, खंगार[3] और लूणकर्ण[4] आदि सरदारों तथा ५००० सवारों के साथ हि० स० ६८४ ता० २ मुहर्रम (वि० सं० १६३३ वैशाख सुदि ३=ई०स० १५७६ ता० २ अप्रेल) को मेवाड़ पर भेजा[5]। वह मांडलगढ़ पहुंच कर सेना की तैयारी करने लगा। उसके अजमेर से मांडलगढ़ पहुंचने का समाचार पाकर महाराणा कुंभलगढ़ से चलकर गोगूंदे पहुंचा और वहां अपने सरदारों से युद्ध के लिये सलाह की। महाराणा का विचार मांडलगढ़ जाकर ही मानसिंह से लड़ाई करने का था, परन्तु उसके सरदारों ने कहा कि इस समय कुंवर मानसिंह शाही बल पर आया है इसलिये पहाड़ों के सहारे से ही शाही

सेनापति नियत होना किसी प्रकार संभव नहीं। फ़ारसी तवारीख़ों में भी कहीं उसके इस चढ़ाई में शामिल होने का उल्लेख नहीं है। इसी तरह उक्त कर्नल ने महाबतखां को महाराणा प्रताप के भाई सगर का पुत्र, कंधार का हाकिम और उसका हिन्दूधर्म को छोड़कर मुसलमान होना माना है, ये तीनों बातें भी ठीक नहीं हैं, क्योंकि उस समय तक न तो सगर बादशाही सेवा में गया था और न महाबतखां सगर का पुत्र था और न वह हिन्दू से मुसलमान हुआ था। वह तो क़ाबुल के रहनेवाले ग़ोर बेग का बेटा था और उसका असली नाम जमालबेग था। उसकी मृत्यु हि० स० १०४४ (वि० सं० १६९१=ई० स० १६३४) में हुई थी।

(१) जगन्नाथ कछवाहा राजा भारमल का छोटा पुत्र और भगवानदास का छोटा भाई था, जो मांडल (मेवाड़) में मरा। उसकी छत्री मांडल के तालाब के निकट बनी हुई है, जिसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १६७० मार्गशीर्ष सुदि ११ को हुई थी (छत्री के शिलालेख से)।

(२) माधोसिंह कछवाहा राजा भगवानदास के छोटे भाई भगवन्तदास का ज्येष्ठ पुत्र और मानसिंह का बड़ा भाई था।

(३) खंगार राजा भारमल के छोटे भाई जगमाल का पुत्र था।

(४) लूणकर्ण कछवाहों की शेखावत शाखा के मूल पुरुष शेखा का प्रपौत्र, रायमल का पौत्र और सूजा का पुत्र था। उसके वंश में सांभर का इलाक़ा चला आता था। उसने राजा भारमल के साथ बादशाही सेवा स्वीकार की थी। अच्छी सेवा व बुद्धिमानी के कारण वह अकबर का प्रीतिपात्र हुआ और उसको रायरायां का ख़िताब भी मिला था।

(५) मुंशी देवीप्रसाद; अक़बरनामा; पृ० ७८-७९। इक़बालनामा; पृ० ३०३। मुन्तख़बुत्तवारीख़ (डब्ल्यू. एच. लोए कृत अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० २, पृ० २३६। अबुल्फ़ज़ल के अक़बरनामे का बेवरिजकृत अनुवाद; जि० ३, पृ० २३६-३७।

सेना का मुक़ाबला करना चाहिये। महाराणा ने भी इस सलाह को पसन्द किया और सेना की तैयारी शुरू कर दी।

मानसिंह ने मांडलगढ़ से चलकर मोही गाँव होते हुए खमणोर के समीप हल्दीघाटी[1] से कुछ दूर बनास नदी के किनारे डेरा डाला। महाराणा भी अपनी सेना तैयार कर गोगूंदे से चला और मानसिंह से तीन कोस की दूरी पर आ ठहरा[2]।

महाराणा की सेना में ग्वालियर का रामसिंह तंवर अपने पुत्रों-शालिवाहन, भवानीसिंह तथा प्रतापसिंह सहित, भामाशाह[3] और उसका भाई ताराचन्द[4],

(१) हल्दीघाटी नाथद्वारे से अनुमान ११ मील दक्षिण पश्चिम में है। गोगून्दा और खमणोर के बीच विकट पहाड़ी श्रेणियां आ गई हैं, जिनमें से एक तंग रास्तेवाली घाटी को हल्दीघाटी कहते हैं। यहां की मिट्टी हल्दी जैसे पीले रंग की होने के कारण ही उसका हल्दीघाटी नाम पड़ा है। वहां के पत्थरों पर पीली मिट्टी के लगने से वे भी ऊपर से पीले नजर आते हैं। मेवाड़ के कुछ लोग इसको हलदूघाटी भी कहते हैं, जो भ्रम ही है, क्योंकि हलदूघाटी हल्दीघाटी से भिन्न है और वह उदयपुर से जयसमुद्र जाते हुए मार्ग में आती है। हल्दीघाटी को देखने की इच्छा रखनेवालों को चाहिये कि वे उदयपुर से वहां न जावें, क्योंकि वह मार्ग विकट पहाड़ी श्रेणियों से भरा हुआ होने के कारण बड़ा ही दुर्गम है। सुगम मार्ग नाथद्वारे से है। वहां से अनुमान ८ मील पर खमणोर गांव है। जहां से ३ मील के अंतर पर हल्दीघाटी है। दर्शक उसको एक बार लांघकर उसके पीछे का दृश्य भी अवश्य देखें, जिससे उनको बदायूनी के लिखे हुए युद्ध का यथार्थ ज्ञान हो जायगा।

(२) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५१।

(३) भामाशाह कावड़िया गोत्र के ओसवाल जाति के महाजन भारमल का बेटा था। महाराणा सांगा ने उसे (भारमल को) अलवर से बुलाकर रणथंभोर का किलेदार नियत किया था। पीछे से जब हाड़ा सूरजमल (बूंदीवाला) वहां का किलेदार नियत हुआ उस समय भी रणथंभोर का बहुतसा काम उसी के हाथ में था। भामाशाह और उसका भाई ताराचंद वीर प्रकृति के पुरुष थे। महाराणा ने महासहानी रामा के स्थान पर उसको अपना प्रधान बनाया।

भामो परधानो करे, रामो कीधो रद।

(प्राचीन पद्य)।

महाराणा उसकी बड़ी खातिर करता था और वह दिवेर के शाही थाने पर हमला करने के समय भी राजपूतों के साथ था।

(४) ताराचन्द गोड़वाड़ का हाकिम भी रहा था और उस समय सादड़ी में रहता था। उसने सादड़ी के बाहर एक बारादरी और बावड़ी बनवाई। उसके पास ही ताराचन्द, उसकी चार औरतें, एक खवास, छः गायनें, एक गवैया और उस गवैये की औरत की मूर्तियां पत्थरों पर खुदी हुई हैं (सरस्वती; भाग १८, सं० २, पृ० ६७)।

झाला मानसिंह (सज्जावत[1]), झाला बीदा (सुलतानोत[2]), सोनगरा मानसिंह (अक्षयराजोत), डोडिया भीमसिंह[3], रावत कृष्णदास (चूंडावत[4]), रावत नेतसिंह (सारंगदेवोत[5]), रावत सांगा[6], राठोड रामदास (बदनोर के प्रसिद्ध जयमल का सातवां पुत्र), मेरपुर का राणा पुंजा, पुरोहित गोपीनाथ, परोहित जगन्नाथ, पडिहार कल्याण, बच्छावत महता जयमल, महता रत्ना, तैशाल[illegible], महासानी जगन्नाथ, राठोड शंकरदास[7], चारण जेसा और केशव (सोदा बारहठ[8]) आदि विद्यमान थे। इनके अतिरिक्त हकीमखां सूर भी मुगलों से लड़ने के लिये राणा की सेना में सम्मिलित हुआ[9]।

युद्ध छिड़ने के पूर्व एक दिन मानसिंह थोड़े से साथियों समेत शिकार को गया था, जिसकी सूचना गुप्तचरों ने महाराणा को दी और सामंतों ने निवेदन किया कि इस अच्छे अवसर को हाथ से न जाने देना चाहिये और शत्रु को मार देना चाहिये, परन्तु वीर महाराणा ने झाला बीदा (मानसिंह) की इच्छानुसार यही उत्तर दिया कि इसतरह छल और धोखे से शत्रु को मारना सच्चे क्षत्रियों का काम नहीं[10]।

हल्दीघाटी से कुछ ही दूर खमणोर के निकट दोनों सेनाओं का भीषण युद्ध

---

(१) देलवाडेवालों का पूर्वज।

(२) बड़ी सादड़ीवालों का पूर्वज।

(३) सरदारगढ़ (लावा) वालों का पूर्वज।

(४) सलूंबरवालों का पूर्वज।

(५) रावत नेतसी (कानोड़वालों का पूर्वज), रावत जोगा का, जो महाराणा सांगा की खानवा की लड़ाई में मारा गया था, पौत्र और रावत नरबद का जो बहादुरशाह की चित्तोड़ की चढ़ाई में पाडलपोल पर मारा गया था, पुत्र था।

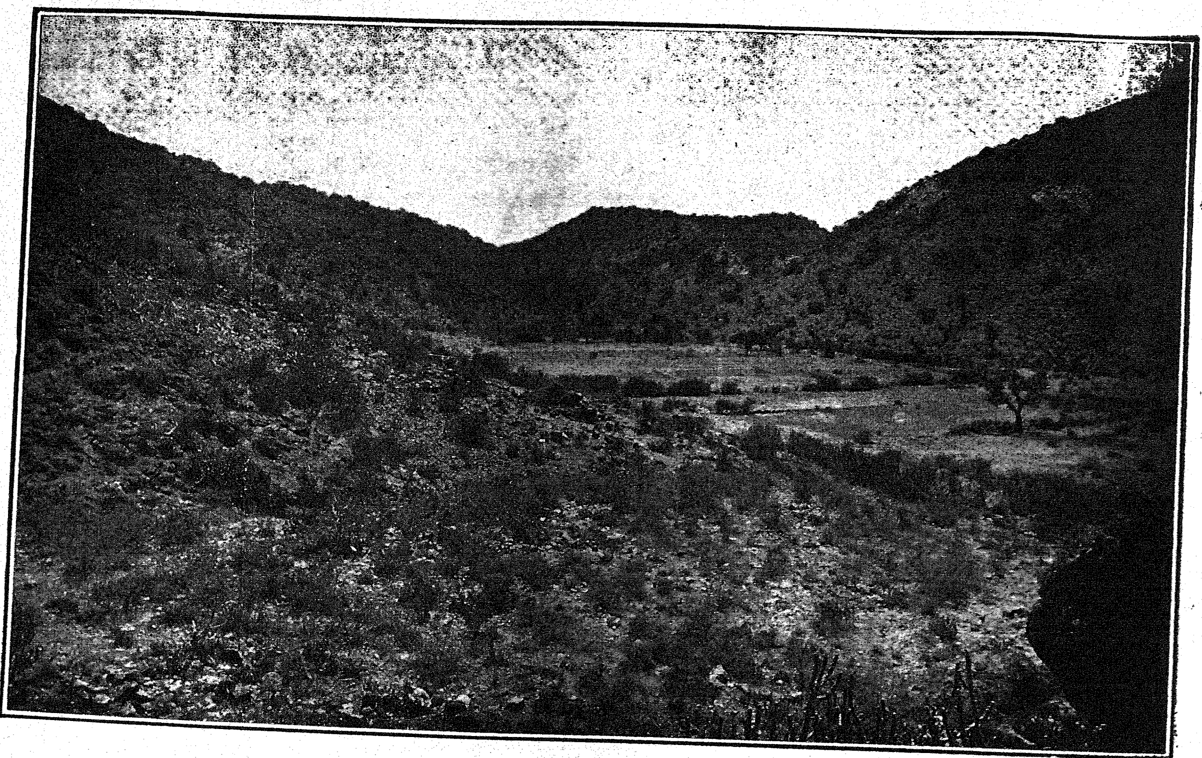
(६) देवगढ़वालों का मूलपुरुष।

(७) अकबर के साथ की चित्तौड़ की लड़ाई में मारे जानेवाले ठाकुर नेतसी का पुत्र और केलवेवालों का पूर्वज।

(८) जेसा और केशव दोनों सोम्याणावाले चारणों के पूर्वज थे।

(९) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५१ और ख्यातें।

(१०) देखो पृ० ७२-७३।



हल्दीघाटी का रणक्षेत्र

हि० स० ९८४ रबि उल् अव्वल के प्रारम्भ (वि० सं० १६३३ द्वितीय ज्येष्ठ सुदि

हल्दीघाटी का युद्ध

=ई० स० १५७६ जून) में हुआ। इस लड़ाई में अकबर का आश्रित अल्बदायूनी (मुन्तख़बुत्तवारीख़ का कर्त्ता) भी उपस्थित था। उसने अपनी आंखों देखा हुआ इसका जो वर्णन किया है, वह नीचे लिखा जाता है—

"जब मानसिंह और आसफ़ख़ां गोगून्दा से ७ कोस पर दर्रे (घाटी) के पास शाही सेना सहित पहुंचे तो राणा लड़ने को आया। ख़्वाजा मुहम्मद रफ़ी बदख़्शी, शियाबुद्दीन गुरोह, पायन्दाह कज़्ज़ाक, अलीमुराद उज़बक और राजा लूणकरण तथा बहुत से शाही सवारों सहित मानसिंह हाथी पर सवार होकर मध्य में रहा और बहुत से प्रसिद्ध जवान पुरुष हरावल के आगे रहे। चुने हुए आदमियों में से ८० से अधिक लड़ाके सैय्यद हाशिम बारहा के साथ हरावल के आगे भेजे गये और सैय्यद अहमदख़ां बारहा दूसरे सैय्यदों के साथ दक्षिण पार्श्व में रहा। शेख़ इब्राहीम चिश्ती के रिश्तेदार अर्थात् सीकरी के शेख़ज़ादों सहित काज़ीख़ां वाम पार्श्व में रहा और मिहतरख़ां चन्दावल में। राणा कीका (प्रतापसिंह) ने दर्रे (हल्दीघाटी) के पीछे से ३००० राजपूतों[1] सहित आगे बढ़कर अपनी सेना के दो विभाग किये। एक विभाग ने, जिसका सेनापति हकीम सूर अफ़ग़ान था, पहाड़ों से निकलकर हमारी हरावल पर आक्रमण किया। भूमि ऊंची नीची, रास्ते टेढ़े मेढ़े और कांटोंवाले होने के कारण हमारी हरावल में गड़बड़ी मच गई, जिससे हमारी (हरावल की) पूरी तौर से हार हुई। हमारी सेना के राजपूत, जिनका मुखिया राजा लूणकरण था और जिनमें से अधिकतर वाम पार्श्व में थे, भेड़ों के झुण्ड की तरह भाग निकले और हरावल को चीरते हुए अपनी रक्षा के लिये दक्षिण पार्श्व की तरफ़ दौड़े। इस समय मैं (अल्बदायूनी) ने, जो कि

---

(१) मेवाड़ की ख्यातों में कुंवर मानसिंह के साथ ८०००० और महाराणा के साथ २०००० सवार होना लिखा है। मुहणोत नैणसी ने कुंवर के साथ ४०००० और महाराणा के साथ नौ दस हज़ार सवार होना बतलाया है (ख्यात; पत्र ६, पृ० १), परंतु ये दोनों कथन अतिशयोक्ति से ख़ाली नहीं हैं। अल्बदायूनी ने, जो इस लड़ाई में शामिल था, कुंवर मानसिंह के साथ ५००० और महाराणा की सेना में ३००० सवार होना लिखा है (मुन्तख़बुत्तवारीख़ का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० २३३ और २३६), जो ठीक प्रतीत होता है।

हरावल के ख़ास सैन्य के साथ था, आसफ़ख़ां से पूछा कि ऐसी अवस्था में हम अपने और शत्रु के राजपूतों की पहिचान कैसे कर सकें ? उसने उत्तर दिया कि तुम तो तीर चलाये जाओ, चाहे जिस पक्ष के आदमी मारे जावें; इसलाम को तो उससे लाभ ही होगा। इसलिये हम तीर चलाते रहे और भीड़ ऐसी थी कि हमारा एक भी वार खाली न गया और काफ़िरों (हिन्दुओं) को मारने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। इस लड़ाई में बारहा के सैय्यदों तथा कुछ जवान वीरों ने रुस्तम की सी वीरता दिखाई। दोनों पक्षों के मरे हुए वीरों से रणखेत छा गया।

"राणा कीका के सैन्य के दूसरे विभाग ने, जिसका संचालक राणा स्वयं था, घाटी से निकलकर क़ाज़ीख़ां के सैन्य पर, जो घाटी के द्वार पर था, हमला किया और उसकी सेना का संहार करता हुआ वह उसके मध्य तक पहुंच गया, जिससे सब के सब सीकरी के शेख़ज़ादे भाग निकले और उनके मुखिये शेख़ मन्सूर के, जो शेख़ इब्राहीम का दामाद था, भागते समय एक तीर ऐसा लगा कि बहुत दिनों तक उसका घाव न भरा। क़ाज़ीख़ां मुल्ला होने पर भी कुछ देर तक डटा रहा, परन्तु दाहिने हाथ का अंगूठा तलवार से कट जाने पर वह भी अपने साथियों के पीछे भाग गया।

"हमारी जो फ़ौज पहले हमले में ही भाग निकली थी, नदी (बनास) को पार कर ५-६ कोस तक भागती ही रही। इस तबाही के समय मिहतरख़ां अपनी सहायक सेना सहित चंदावल से निकल आया। उसने ढोल बजाया और हल्ला मचाकर फ़ौज को एकत्र होने के लिये कहा[1]। उसकी इस कार्यवाही ने भागती हुई सेना में आशा का संचार कराया, जिससे उसके पैर टिक गये। ग्वालियर के राजा मान के पोते रामशाह ने, जो हमेशा राणा की हरावल में रहता था, ऐसी वीरता दिखलाई, जिसका वर्णन करना लेखिनी की शक्ति से बाहर है।

(१) मिहतरख़ां ने हल्ला मचाकर क्या कहा, इस विषय में बदायूनी ने कुछ नहीं लिखा, परंतु अबुल्फ़ज़ल अपने अकबरनामे में लिखता है कि सरसरी तौर से देखनेवालों की दृष्टि में तो राणा की जीत नज़र आती थी; इतने ही में एकाएक शाही फ़ौज की जीत होने लगी, जिसका कारण यह हुआ कि सेना में यह अफ़वाह फैल गई कि बादशाह स्वयं आ पहुंचा है। इससे बादशाही सेना में हिम्मत आ गई और शत्रु सेना की, जो जीत पर जीत प्राप्त कर रही थी, हिम्मत टूट गई (अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० २४६)।

मानसिंह के वे राजपूत, जो हरावल के वाम पार्श्व में थे, भगे, जिससे आसफ़खां[1] को भी भागना पड़ा और उन्होंने दाहिने पार्श्व के सैय्यदों की शरण ली। यदि इस अवसर पर सैय्यद लोग टिके न रहते, तो हरावल के भगे हुए सैन्य ने ऐसी स्थिति उत्पन्न करदी थी कि बदनामी के साथ हमारी हार होती।

"दोनों सेनाओं के मस्त हाथी अपनी अपनी फ़ौज में से निकलकर एक दूसरे से खूब लड़े और हाथियों का दारोगा हुसैनखां, जो मानसिंह के पीछेवाले हाथी पर सवार था, हाथियों की लड़ाई में शामिल हो गया। इस समय मानसिंह ने महावत की जगह बैठकर बड़ी वीरता दिखाई। उनमें से बादशाह का एक ख़ासा हाथी राणा के रामप्रसाद नामक हाथी से खूब लड़ता रहा; अन्त में रामप्रसाद का महावत तीर लगने से ज़मीन पर गिर गया, तो शाही हाथी का महावत फुर्ती से उछलकर उसपर जा बैठा[2]। ऐसी दशा में राणा टिक न सका और भाग निकला, जिससे उसकी सेना हताश हो गई। मानसिंह के जवान अंग-रक्षक बहादुरों ने बड़ी वीरता बतलाई। इस दिन से मानसिंह के सेनापतित्व के सम्बन्ध में मुल्ला शीरी का यह कथन 'हिन्दू इसलाम की सहायता के लिये तलवार खींचता है' चरितार्थ हुआ।

---

(१) अल्बदायूनी आसफ़ख़ां के साथ था, परंतु आसफ़ख़ां के भागने के साथ वह अपने भागने का उल्लेख नहीं करता, तो भी उसके ग्रंथ का अंग्रेज़ी अनुवादकर्त्ता टिप्पण में लिखता है कि हमारा ग्रंथकर्त्ता भी अवश्य आसफ़ख़ां के साथ भागा होगा (जि० २, पृ० २३८, टिप्पण १)।

(२) अल्बदायूनी ने दोनों पक्षों के हाथियों की लड़ाई का हाल बहुत ही संक्षेप से लिखा है। अबुल्फ़ज़ल अकबरनामे में लिखता है—"दोनों पक्ष के वीरों ने लड़ाई में जान सस्ती और इज़्ज़त महंगी कर दी। जैसे पुरुष वीरता से लड़े, वैसे ही हाथी भी लड़े। राणा की तरफ़ के, शत्रुओं की पंक्ति को तोड़नेवाले लूणा हाथी के सामने जमालख़ां फ़ौजदार गजमुक्त हाथी को ले आया। शाही हाथी घायल होकर भाग ही रहा था कि शत्रु के हाथी का महावत गोली लगने से मर गया, जिससे वह लौट गया। फिर राणा का प्रताप नामक एक सम्बन्धी मुख्य हाथी रामप्रसाद को ले आया, जिसने कई आदमियों को पछाड़ डाला। हारती दशा में कमालख़ां गजराज हाथी को लाकर लड़ाई में शरीक हुआ। पंजू रामप्रसाद का सामना करने के लिये रणमदार हाथी को लाया, जिसने अच्छा काम दिया। उस हाथी (रणमदार) के पांव भी उखड़नेवाले ही थे, इतने में रामप्रसाद हाथी का महावत तीर से मारा गया। तब वह हाथी पकड़ा गया, जिसकी बहादुरी की बातें शाही दरबार में अकसर हुआ करती थीं" (अबुल्फ़ज़ल के अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० २४५-४६)।

"इस लड़ाई में चित्तौड़वाले जयमल का पुत्र (राठौड़ रामदास) और ग्वालियर का राजा रामशाह अपने पुत्र शालिवाहन सहित बड़ी वीरता के साथ लड़कर मारे गये। तंवर खानदान का एक भी वीर पुरुष बचने न पाया। माधव-सिंह के साथ लड़ते समय राणा पर तीरों की बौछार की गई और हकीम सूर, जो सैय्यदों से लड़ रहा था, भागकर राणा से मिल गया। इस प्रकार राणा के सैन्य के दोनों विभाग फिर एकत्र हो गये। फिर राणा लौटकर पहाड़ों में, जहां चित्तौड़ की विजय के बाद वह रहा करता था और जहां वह क़िले के समान सुरक्षित रहता था, भाग गया[1]। उष्णकाल के मध्य के इस दिन गर्मी इतनी पड़ रही थी कि खोपड़ी के भीतर मगज़ भी उबलता था। ऐसे समय लड़ाई प्रातःकाल[2] से मध्याह्न तक चली और ५०० आदमी खेत रहे, जिनमें १२० मुसलमान और शेष (३८०) हिन्दू[3] थे। ३०० से अधिक मुसलमान घायल हुए। उस समय लू आग के समान चल रही थी, हमारे सैनिकों में चलने फिरने की भी शक्ति न रही थी और सेना में यह भी ख़बर फैल गई थी कि राणा छल के साथ पहाड़ के पीछे घात लगाये खड़ा होगा। इसी से हमारे

(१) तबक़ाते अकबरी का कर्त्ता निज़ामुद्दीन अहमद बख़्शी राणा के दो घाव—एक तीर का और एक भाले का—लगना लिखता है (तबक़ाते अकबरी; इलियट्; जि० ५, पृ० ३९९), परंतु अल्बदायूनी और अबुल्फ़ज़ल उसके घायल होने का उल्लेख नहीं करते। यदि महाराणा के दो घाव लगे होते तो उपर्युक्त दोनों मुसलमान लेखक ऐसा लिखे बिना न रहते। ऐसी दशा में तबक़ाते अकबरी का कथन अधिक विश्वास-योग्य नहीं है।

(२) अबुल्फ़ज़ल पहर दिन चढ़े लड़ाई का प्रारंभ होना लिखता है (अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० २४५), जो ठीक नहीं है, क्योंकि उदयपुर के जगदीश के मन्दिर की प्रशस्ति की पहली शिला के श्लोक ४१ में भी प्रतापसिंह का प्रातःकाल युद्ध में प्रवेश करना लिखा है, जिसका मूल अवतरण आगे दिया जायगा।

(३) अबुल्फ़ज़ल ने इस लड़ाई में १५० मुसलमान और ५०० शत्रुपक्ष के आदमियों का मारा जाना लिखा है (अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० २४७), जिसको हम ठीक नहीं मानते, क्योंकि अल्बदायूनी युद्धस्थल में मौजूद था, अतएव उसका कथन ही अधिक विश्वास के योग्य है। उसके कथनानुसार मरे हुए ३८० हिन्दुओं में शाही फौज के राजपूतों (कछवाहों) की संख्या भी शामिल होनी चाहिये। शाही फ़ौज में मुसलमानों की अपेक्षा कछ-वाहे अधिक थे, इसलिये इस लड़ाई में शाही सेना की अधिक हानि हुई होगी। अबुल्फ़ज़ल ने शाही फ़ौज के कितने राजपूत मारे गये, यह नहीं बतलाया।

सैनिकों ने राणा का पीछा न किया। वे अपने डेरों में लौट गये और घायलों का इलाज करने लगे।

"दूसरे दिन हमारी सेना ने वहां से चलकर रणखेत को इस अभिप्राय से देखा कि हरएक ने कैसा काम किया था। फिर दर्रे (घाटी) से हम गोगून्दे पहुंचे, जहां राणा के महलों के कुछ रक्षक तथा मन्दिरवाले, जिन सबकी संख्या बीस थी, हिन्दुओं की पुरानी रीति के अनुसार अपनी प्रतिष्ठा के निमित्त अपने अपने स्थानों से निकल आये और सब के सब लड़कर मारे गये। अमीरों को यह भय था कि रात के समय कहीं राणा उनपर टूट न पड़े, इसलिये अपनी रक्षार्थ उन्होंने सब मोहल्लों में आड़ खड़ी करा दी और गांव के चारों तरफ़ खाई खुदवाकर इतनी ऊंची दीवार बनवा दी कि सवार उसको फांद न सके। तत्पश्चात् वे निश्चिन्त हुए। फिर वे मरे हुए सैनिकों और घोड़ों की सूची बादशाह के पास भेजने को तैयार करने लगे, जिसपर सैय्यद अहमदखां बारहा ने कहा—'ऐसी फ़िहरिश्त बनाने से क्या लाभ है? मान लो कि हमारा एक भी घोड़ा व आदमी मारा नहीं गया। इस समय तो खाने के सामान[1] का बन्दोबस्त करना चाहिये। इस पहाड़ी इलाक़े में न तो अधिक अन्न पैदा होता है और न बनजारे आते हैं और सेना भूखों मर रही है'। इसपर वे खाने के सामान के प्रबन्ध का विचार करने लगे। फिर वे एक एक अमीर की अध्यक्षता में सैनिकों को इस अभिप्राय से समय समय पर भेजने लगे कि वे बाहर जाकर अन्न ले आवें और पहाड़ियों में जहां कहीं लोग एकत्र पाये जावें उनको क़ैद कर लें, क्योंकि हरएक को जानवरों के मांस और आम के फलों पर, जो वहां बहुतायत से थे, निर्वाह करना पड़ता था। साधारण सिपाहियों को रोटी न मिलने के कारण इन्हीं आम के फलों पर निर्वाह करना पड़ा, जिससे उनमें से अधिकांश बीमार पड़ गये।

"बादशाह ने तुरंत ही महमूदखां को गोगून्दे जाने की आज्ञा दी। उसने रणखेत की स्थिति को देखा और वहां से लौटकर हरएक आदमी ने लड़ाई में

(१) लड़ाई के दूसरे ही दिन सेना के पास खाने पीने का सामान कुछ भी न था और पीछे भी उसी कारण शाही सेना की दुर्दशा होती रही, जिसका वर्णन फ़ारसी तवारीख़ों में मिलता है, परन्तु उनमें यह कहीं नहीं लिखा मिलता कि ५००० सवारों की सेना के साथ एक दिन तक का भी खाने का सामान क्यों न रहा। इसका कारण यही संभव हो सकता है कि लड़ाई के दिन महाराणा के राजपूतों ने शत्रुसैन्य का खाने पीने का सामान लूट लिया हो और बाहर से सामान आने का मार्ग रोक लिया हो।

कैसा काम दिया इस विषय में जो कुछ उसके सुनने में आया, वह बादशाह से निवेदन किया। यह सुनकर बादशाह सामान्य रूप से तो प्रसन्न हुआ, परन्तु राणा का पीछा न कर उसको ज़िन्दा रहने दिया इसपर वह बहुत क्रुद्ध हुआ। अमीरों ने विजय के लिखित वृत्तांत के साथ रामप्रसाद हाथी को—जो लूट में हाथ लगा था और जिसको बादशाह ने कई बार राणा से मांगा था, परंतु दुर्भाग्यवश वह नटता ही रहा था—बादशाह के पास भेजना चाहा। आसफखां ने उक्त हाथी के साथ ग्रन्थकर्त्ता (मुझ) को भेजने की सलाह दी, क्योंकि वही इस काम के लिये योग्य था और जो धार्मिक भावों को पूरा करने के लिये ही लड़ने को भेजा गया था। मानसिंह ने हँसी के साथ कहा कि अभी तो उसे बहुत काम करना बाक़ी है। उसको तो हरएक लड़ाई में आगे रह-कर लड़ना चाहिये। इसपर मैंने जवाब दिया कि मेरा मुरशिदी का काम तो यहीं समाप्त हो चुका, अब मुझे बादशाह की सेवा में रहकर वहां काम देना चाहिये। इसपर मानसिंह खुश हुआ और हँसा। फिर ३०० सवारों को साथ देकर उस हाथी के साथ मुझे वहां से रवाना किया और वह (मानसिंह) भिन्न भिन्न जगह थाने नियत कर गोगून्दा से २० कोस मोहनी (मोही) गांव तक शिकार खेलता हुआ मेरे साथ रहा। वहां से एक सिफ़ारिशी पत्र देकर उसने मुझे सीख दी। मैं बाकोर (बागोर) और मांडलगढ़ होता हुआ आंबेर पहुंचा। लड़ाई की खबर सर्वत्र फैल गई थी, लेकिन मार्ग में उसके सम्बन्ध में जो कुछ मैं कहता, उसपर लोग विश्वास नहीं करते थे। फिर टोडा और बसावर होता हुआ मैं फतहपुर पहुंचा, जहां राजा भगवानदास के द्वारा बादशाह की सेवा में उप-स्थित हुआ और अमीरों के पत्र तथा हाथी बादशाह के नज़र किया। बादशाह ने पूछा 'इस हाथी का नाम क्या है'? मैंने निवेदन किया कि 'रामप्रसाद'। इस-पर बादशाह ने कहा कि यह विजय पीर की कृपा से हुई है, इसलिये अब से इसका नाम 'पीरप्रसाद' रक्खा जावे। फिर बादशाह ने मुझ से पूछा कि अमीरों ने तुम्हारी बड़ी प्रशंसा लिखी है, परंतु सच सच कहो कि तुम कौनसी सेना में रहे और वीरता का क्या क्या काम किया? फिर मैंने सारा हाल निवेदन किया, जिसपर बादशाह ने प्रसन्न हो कर मुझे ९६ अशर्फ़ियां बख़्शीं[1]"।

(१) अलबदायूनी की मुन्तख़बुत्तवारीख़ का डब्ल्यू. एच. लोए कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० २३६-४३।



चेटक घोड़े का चबूतरा
(मंदिर से बाईं तरफ)

अकबर के आश्रित अलबदायूनी के इस वर्णन से पाठक यह अच्छी तरह जान सकेंगे कि हल्दीघाटी की लड़ाई में कौनसा पक्ष प्रबल रहा और किसका भय किसपर छा गया था।

अब हम राजपूताने की पुस्तकों आदि के आधार पर थोड़ी सी और बातें नीचे लिखते हैं, जो फ़ारसी तवारीख़ों में नहीं मिलतीं—

महाराणा नीले (श्वेत) घोड़े चेटक पर सवार था। उसने अपने घोड़े को चक्कर दिलाकर कुंवर मानसिंह से कहा कि तुमसे जहां तक हो सके बहादुरी दिखाओ, प्रतापसिंह आ पहुंचा है। यह कहकर उसने मानसिंह पर भाले का वार किया, परंतु उसके हौदे में झुक जाने से महाराणा का बर्छा (भाला) उसके कवच में ही लगा और वह बच गया[1]। इस समय महाराणा के घोड़े के अगले दोनों पैर मानसिंह के हाथी की सूंड के सिरे पर लगे[2], जिससे उसकी सूंड में पकड़ी हुई तलवार से चेटक का पिछला एक पैर ज़ख्मी हो गया। महाराणा ने मानसिंह को मारा गया समझकर घोड़े को पीछा मोड़ लिया[3]। हल्दीघाटी से अनुमान दो मील दूर बलीचा गांव के निकट एक नाले के पास वि० सं० १४०८ (ई० स० १३५१) के बने हुए शिवालय के निकट चेटक का देहान्त हुआ, जहां उसका चबूतरा[4] बना हुआ है[5]।

---

(१) कोई कोई ऐसा भी मानते हैं कि महाराणा का बर्छा लोहे के हौदे में लगा, जिससे मानसिंह बच गया, परन्तु नीचे लिखे हुए प्राचीन पद्य से बख़्तर में भाला लगना पाया जाता है—

वाही राण प्रतापसी बखतर में बर्छी।
जाणे झींगर जाळ में मुंह काढ़े मच्छी॥ (प्राचीन पद्य)।

(२) इस युद्ध का उस समय का बना हुआ एक बड़ा चित्रपट उदयपुर राज्य में मौजूद है, जो ई० स० १९११ के दिल्ली दरबार के साथ की प्रदर्शिनी में रक्खा गया था। उसके मध्य में हाथी पर बैठे हुए मानसिंह पर महाराणा प्रताप का भाले का प्रहार करना अंकित था।

(३) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५२।

(४) चेटक का पुराना चबूतरा नष्ट हो गया है, उसके स्थान पर मिट्टी और पत्थरों का नया चबूतरा उसके पुजारियों ने बनवा लिया है, जिसके ऊपर एक सती का स्तंभ खड़ा किया गया है। इसके एक पार्श्व में घोड़े पर चढ़े हुए किसी वीर पुरुष की मूर्ति बनी है, अनुसंधान करने से ज्ञात हुआ कि यह नया चबूतरा पुराने चबूतरे के स्थान पर बनाया गया है और उस चबूतरे के पूजन के निमित्त बहुतसी भूमि दी गई है, जो अब तक पुजारियों के अधिकार में है। मूल चबूतरे पर संभव है कि पत्थर का घोड़ा बना हुआ हो।

(५) कर्नल टॉड ने हल्दीघाटी के क्षेत्र से महाराणा के लौटने का वर्णन करते हुए लिखा

इस युद्ध में झाला बीदा[1], झाला मानसिंह, तंवर रामसिंह अपने तीनों पुत्रों

है—"जब महाराणा अपने घायल घोड़े पर सवार होकर जा रहा था, तब दो मुग़ल सवारों ने उसका पीछा किया। चेटक के घायल होने के कारण वे राणा के निकट पहुंच गये और उसपर प्रहार करनेवाले ही थे, इतने में पीछे से मेवाड़ी भाषा में आवाज़ आई 'ओ नीला घोड़ा रा असवार'। प्रताप ने मुड़कर देखा तो पीछे से अपना भाई शक्ता घोड़े पर आता हुआ नज़र आया। शक्ता अपने व्यक्तिगत द्वेष के कारण प्रताप को छोड़कर अकबर की सेवा में जा रहा था और इस युद्ध में भी वह उसी की तरफ़ से लड़ा था, परंतु दो सबल मुग़ल सवारों को अपने घायल भाई का पीछा करते हुए देखकर उसके दिल में भ्रातृ-प्रेम उमड़ उठा, जिससे वह उन (मुग़लों) के पीछे हो लिया और उन्हें अपने भाले से मार डाला। इस समय दोनों भाई एक दूसेर को गले लगाकर मिले। वहीं घायल चेटक मर गया, जहां उसका चबूतरा बनाया गया। फिर शक्ता ने उसे अपना घोड़ा दिया। शक्ता वहां से सलीम के खानगी डेरे पर गया और उसने हँसकर कहा कि राणा प्रताप ने अपना पीछा करते हुए दो मुगल सवारों के साथ मेरे घोड़े को भी मार दिया है। सलीम के अभयदान देने पर उसने सत्य सत्य घटना कह सुनाई। सलीम ने भी अपने वचन को पाला, परंतु उसे दरबार से निकाल दिया और आगे से शक्तावतों का अपने यहां आना बन्द कर दिया" (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३९४-९५)।

इस युद्ध से १०० वर्ष बाद के बने हुए राजप्रशस्ति महाकाव्य में लिखा है कि जब मानसिंह ने दो मुग़लों को महाराणा का पीछा करने के लिये भेजा तो शक्तिसिंह भी मानसिंह की आज्ञा लेकर उनके पीछे गया। उसने प्रतापसिंह को आवाज़ दी कि ओ नीले घोड़े के सवार पीछे तो देखो। महाराणा ने पीछे देखा तो वे मुग़ल दृष्टि-गोचर हुए, फिर दोनों भाइयों ने उनको मार डाला और महाराणा ने शक्तिसिंह से कहा कि तेरे वंशज राणाओं के प्रिय होंगे। (सर्ग ४, श्लोक २६-३०)।

उपर्युक्त दोनों कथनों पर हम विश्वास नहीं कर सकते, क्योंकि १०० वर्षों में तो कई अनिश्चित बातें प्रसिद्धि में आ जाती हैं। हम ऊपर बतला चुके हैं कि शाहज़ादा सलीम उस समय ६ वर्ष का बालक था और लड़ाई में आया भी न था। किसी भी फ़ारसी तवारीख़ में शक्ता का उस समय बादशाही सेना में होना भी नहीं लिखा। शक्ता तो अपने पिता उदयसिंह के समय अकबर के पास गया था और उसके चित्तौड़ पर आक्रमण करने का विचार सुनते ही वापस भाग आया था (पृ० ७२३)। अल्बदायूनी का मानना है कि 'लड़ाई के अन्त में शाही सेना तो चलने फिरने को भी समर्थ न थी और यह अफ़वाह भी फैल गई थी कि राणा पहाड़ के पीछे छिपकर घात में खड़ा होगा, इसी से उसका पीछा न किया गया, महाराणा भी अकेला नहीं, किन्तु अपनी सारी सेना सहित लौटा था। बादशाह अकबर को प्रतापसिंह बहुत खटक रहा था, इसलिये वह तो जैसे बने वैसे उसे मारने की ही आज्ञा दिया करता था। ऐसी दशा में प्रतापसिंह को मारने को गये हुए दो मुग़लों को मारकर उसको बचा लेने की बात कह देने पर मानसिंह शक्तिसिंह को कड़ा दण्ड दिये बिना न रहता।

(१) झाला बीदा का दूसरा नाम मानसिंह था; जैसा कि महाराणा प्रतापसिंह के एक

सहित, रावत नेतसी (सारंगदेवोत), राठोड़ रामदास, डोडिया भीमसिंह, राठोड़ शंकरदास आदि महाराणा के कई सरदार मारे गये।

हल्दीघाटी के सम्बन्ध में दोनों पक्षवाले अपनी अपनी विजय बतलाते हैं। मुसलमानों का कथन तो ऊपर दर्ज हो गया, दूसरे पक्ष के कथन के संबन्ध में उदयपुर के जगदीश के मन्दिर की श्रावणादि विक्रम संवत् १७०८ (चैत्रादि विक्रम संवत् १७०९) द्वितीय वैशाख सुदि १५ गुरुवार (ई० स० १६५२ ता० १३ मई) की प्रशस्ति में लिखा है—"अपनी प्यारी तलवार को हाथ में लिये प्रतापसिंह प्रातःकाल (युद्ध में) आया तो मानसिंहवाली शत्रुकी सेना ने छिन्न भिन्न होकर पैर संकोचते हुए पीठ दिखाई[1]"। राणा रासा आदि मेवाड़ से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकों में भी महाराणा की विजय होना लिखा है।

जीर्णशीर्ण पर्वाने तथा मानसिंह के पुत्र दूदा के शिलालेख से पाया जाता है। कर्नल टॉड ने भी सादड़ी के झाला माना (मानसिंह) का इस युद्ध में मारा जाना लिखा है। कर्नल वाल्टर ने उसका दूसरा नाम बीदा लिखकर उसका मारा जाना बतलाया है। कर्नल टॉड ने यह भी लिखा है—'इस युद्ध की सेवा में उक्त माना की संतान को दाहिनी बैठक, महाराणा के सब राज्य-चिह्न, महलों के दरवाज़े तक नक्कारा बजाने का सम्मान मिला, जो अब तक जारी है और अन्य किसी सरदार को प्राप्त नहीं है' (टॉ; रा; जि० १, पृ० २३४)। टॉड का यह कथन ठीक है और अब तक इसका प्रचलन है, परन्तु यह इज़्ज़त तो झाला अज्जा के महाराणा सांगा और बाबर के खानवा के युद्ध में मारे जाने के समय से ही चली आती है, नई नहीं।

(१) कृत्वा करे खड्गलतां स्ववल्लभां
प्रतापसिंहे समुपागते प्रगे।
सा खंडिता मानवती द्विषच्चमूः
संकोचयन्ती चरणौ पराङ्मुखी ॥ ४१ ॥

(जगदीश के मन्दिर की प्रशस्ति; शिला १, अप्रकाशित)।

यह सारा श्लोक श्लेषपूर्ण है। इसका एक अर्थ ऊपर लिख दिया गया है। दूसरा भाव नायिका के सम्बन्ध का है, जिसका आशय यह है कि प्रातःकाल जब प्रतापसिंह खड्गलतारूपी अपनी वल्लभा (प्रिया) को हाथ में पकड़े हुए आया, तो उसको देख शत्रु-सेनारूपी मानवती खण्डिता हो गई और उल्टे पैरों लौट गई।

खण्डिता वह नायिका है, जिसका नायक रात को किसी अन्य नायिका के साथ रहकर सवेरे उसके पास आवे और वह (नायिका) उसमें संभोग के चिह्न देखकर कुपित हो। मानवती

इस प्रकार दोनों पक्षों के कथनों पर विचार करते हुए यही मानना पड़ता है कि उस समय के संसार के सबसे बड़े सम्पन्न और प्रतापी बादशाह अकबर के सामने एक छोटे से प्रदेश का स्वामी प्रतापसिंह कुछ भी न था, क्योंकि मेवाड़ के बहुतसे नामी नामी सरदार बहादुरशाह और अकबर की चित्तौड़ की चढ़ाइयों में पहले ही मर चुके थे, जिससे थोड़े ही स्वामिभक्त सरदार उस (प्रतापसिंह) के लिये लड़ने को रह गये थे। मेवाड़ का सारा पूर्वी उपजाऊ इलाक़ा अकबर की चित्तौड़ की विजय से ही बादशाही अधिकार में चला गया था, केवल पश्चिमी पहाड़ी प्रदेश ही प्रताप के अधिकार में था, तो भी उसका कुलाभिमान, बादशाह के आगे दूसरे राजाओं के समान सिर न झुकाने का अटल व्रत, अनेक आपत्तियां सहकर भी अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने का प्रण और उसका वीरत्व, ये ही उसको उत्साहित करते रहे थे। उसके सरदार भी अपने स्वामी का अनुकरण कर युद्ध में प्राणोत्सर्ग करने को अपना क्षात्र-धर्म समझते थे। इसी से प्रतापसिंह ने ३००० सवारों के साथ ५००० शत्रुसेना को पहले ही आक्रमण में तितर बितर कर कोसों तक भगा दिया, परन्तु शाही सेना की चन्दावल में बादशाह के आने का शोर मचने से समयसूचकता का विचार कर पहाड़ों का सहारा न छोड़ने की इच्छा से वह हल्दीघाटी के पीछे ससैन्य लौट गया।

हिन्दुओं के साथ की मुसलमानों की लड़ाई का मुसलमानों का लिखा हुआ वर्णन एकपक्षीय होता है, तो भी मुसलमानों के कथन से ही निश्चित है कि शाही सेना की बुरी तरह दुर्दशा हुई और प्रतापसिंह के लौटते समय भी उस सेना की स्थिति ऐसी न रही कि वह उसका पीछा कर सके और उसका भय तो उस (सेना) पर यहां तक छा गया था कि वह यही स्वप्न देखती थी कि राणा पहाड़ के पीछे रहकर हमारे मारने की घात में लगा हुआ होगा। दूसरे दिन गोगून्दा पहुंचने पर भी शाही अफ़सरों को यही भय बना रहा कि राणा आकर हमारे पर टूट न पड़े। इसी से उस गांव की चौतरफ़ खाई खुदवाकर घोड़ा न फांद सके, इतनी ऊंची दीवार बनवाई और गांव के तमाम मोहल्लों में

(मानिनी) स्त्री अपने पति का परस्त्री-संसर्ग सहन नहीं करती। यदि इस बात को वह जान ले तो उससे रूठ जाती है या उसको छोड़कर चली जाती है।

आड़ खड़ी करवा दी गई। फिर भी शाही सेना गोगून्दे में क़ैदी की भांति सीमाबद्ध ही रही और अन्न तक न ला सकी, जिससे उसकी और भी दुर्दशा हुई। इन सब बातों पर विचार करते हुए यही मानना पड़ता है कि इस युद्ध में प्रतापसिंह की ही प्रबलता रही थी।

महाराणा ने लड़ाई के बाद अपने घायलों को कोल्यारी गांव में लेजाकर उनका इलाज करवाया। फिर अपने राजपूतों व भीलों की सहायता से उसने कुल पहाड़ी नाके और रास्ते रोक लिये, जिससे गोगूंदेवाली शाही सेना के लिये रसद आदि सामान का पहुंचना रुक गया और उसकी आपत्ति दिन दिन बढ़ती गई[1]।

बादशाह ता० ६ रज्जब हि० स० ९८४ (वि० सं० १६३३ आश्विन सुदि ७= ई० स० १५७६ ता० २९ सितम्बर) को ख़्वाजा (मुइनुद्दीन चिश्ती) के उर्स पर अजमेर आया और वहां से ६००००० रुपये और कुछ सामान मक्का और मदीना के योग्य पुरुषों को बांटने के लिये देकर सुल्तान ख़्वाजा को उधर रवाना किया। उसके साथ कुतुबुद्दीन मुहम्मदख़ां, कुलीज़ख़ां और आसफ़ख़ां को यह आज्ञा देकर भेजा कि वे गोगून्दे से ख़्वाजा का साथ छोड़ दें, राणा के मुल्क में सब जगह फिरें और जहां कहीं उसका पता लगे वहीं उसको मार डालें[2]।

शाही सेना का अजमेर लौट जाना

मानसिंह को गोगूंदे में रहते हुए चार मास बीत गये थे, परन्तु उससे कुछ न बन पड़ा, जिससे बादशाह ने उसे तथा आसफ़ख़ां और काज़ीख़ां को वहां से चले आने की आज्ञा लिख भेजी और उनकी ग़लतियों[3]

(१) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५५।

(२) मुन्तख़बुत्तवारीख़ का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० २४६।

(३) मानसिंह और आसफ़ख़ां की कौनसी ग़लतियों के कारण बादशाह ने उनकी ड्योढ़ी बन्द कर दी, यह अल्बदायूनी ने नहीं बतलाया, परन्तु इस विषय में तबकाते-अकबरी (तारीख़े निज़ामी) का कर्त्ता निज़ामुद्दीन अहमद बख़्शी लिखता है–'मानसिंह वापस चले आने की आज्ञा पाते ही दरबार में उपस्थित हुआ। जब सेना की दुर्दशा के सम्बन्ध में जांच की गई, तो पाया गया कि सैनिक बहुत बड़ी आपत्ति में थे तो भी कुंवर मानसिंह ने राणा कीका (प्रतापसिंह) के मुल्क को लूटने न दिया। इसी से बादशाह उसपर अप्रसन्न हुआ और कुछ समय के लिये उसको दरबार से निकाल दिया' (तबकाते अकबरी; इलियट्; जि० ५, पृ० ४००–४०१)। अबुल्फ़ज़ल लिखता है–'दूरदर्शिता के कारण शाही कर्मचारी राणा की खोज

के कारण मानसिंह तथा आसफ़खां की ड्योढ़ी बंद कर दी[1]।

शाही सेना गोगूंदे में कैदियों की तरह पड़ी हुई थी। जब कभी थोड़े से आदमी रसद का सामान लेने के लिये जाते तो उनपर राजपूत धावा करते थे। इन आपत्तियों से शाही सेना घबराकर राजपूतों से लड़ती भिड़ती बादशाह के पास अजमेर चली गई और महाराणा बहुतसे बादशाही थानों के स्थान पर अपने थाने नियतकर कुंभलगढ़ चला गया[2]।

इस प्रकार बादशाह की महाराणा प्रतापसिंह पर की पहली चढ़ाई निष्फल हुई, जिससे बादशाह की क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी।

महाराणा का गुजरात पर हमला करना

शाही सेना के लौट जाने पर महाराणा ने अपना पक्ष सबल करने के लिये सिरोही के राव सुरताण, जालोर के स्वामी ताजखां और अपने श्वशुर ईडर के राजा नारायणदास को अपने पक्ष में मिला लिया। ये सब मिलकर अर्वली पहाड़ के दोनों तरफ़ लूट मार और फ़साद करने तथा गुजरात की तरफ़ के शाही थानों पर हमला करने लगे[3]। बादशाह ने यह समाचार सुनकर जालोर और सिरोही पर सैयद हाशिमखां, तरसूखां और रायसिंह को भेजा। जालोर और सिरोही दोनों के स्वामी बादशाह के अधीन हो गये। राणा का गुजरात पर का हमला रोकने के लिये बादशाह

में न गये और रसद पहुंचाने की कठिनता के कारण वे पहाड़ी प्रदेश से बाहर निकलकर चले आये। खुशामदी लोगों ने बादशाह को यह समझाया कि राणा को नष्ट करने में शाही कर्मचारियों ने शिथिलता की। इसपर बादशाह उनपर क्रुद्ध हुआ, परंतु पीछे से उसका क्रोध शांत हो गया' (अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० २५९-६०)। हमारी सम्मति में कुंवर मानसिंह पर जो अपराध लगाया गया, उसका वह दोषी नहीं था, क्योंकि बदायूनी के कथनानुसार कुंवर एक एक अमीर की अध्यक्षता में सैनिकों को अन्न लाने के लिये बराबर भेजा करता था, परन्तु गोगून्दे के आसपास का प्रदेश विकट पहाड़ियोंवाला होने के कारण वहां लूट करने पर भी सेना के लिये पर्याप्त अन्न मिलने की संभावना ही न थी। जिन लोगों ने इस प्रदेश को देखा है वे ही वहां की ठीक ठीक स्थिति का अनुमान कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त वहां अन्न न पहुंचने का यह भी कारण था कि जहां कहीं शाही फ़ौज के आदमी अन्न लेने के लिये जाते वहीं उनपर राजपूत हमला करते थे। मेवाड़ के निकट के शाही इलाक़ों से भी अन्न नहीं आ सकता था, क्योंकि रास्ता राजपूतों और भीलों ने रोक रक्खा था।

(१) मुन्तख़बुत्तवारीख़ का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० २४७।

(२) वीर विनोद; भाग २, पृ० १५५।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० २६।

ने तरसूखां को पाटन और सैयद हाशिम तथा रायसिंह को नाडोल की तरफ़ रक्खा[1], लेकिन इससे कुछ लाभ न हुआ।

महाराणा के दक्षिणी इलाक़ों में सिर उठाने का समाचार पाने पर अकबर ने शिकार का बहाना कर इस विचार से मेवाड़ में जाने का निश्चय किया कि जो काम बादशाह स्वयं कर सकता है वह नौकरों से नहीं हो सकता। वह ता० ३१ मिहर (वि० सं० १६३३ कार्तिक वदि ६=ई० स० १५७६ ता० १३ अक्टोबर) को अजमेर से गोगूंदे को रवाना हुआ। उसके वहां पहुंचने के पहले ही राणा पहाड़ों में चला गया। गोगूंदे से अकबर ने कुतुबुद्दीनखां, राजा भगवन्तदास (भगवानदास) और कुंवर मानसिंह को राणा के पीछे पहाड़ों में भेजा[2]। जहां जहां वे गये वहां महाराणा उनपर हमला करता ही रहा, जिससे अन्त में उनको पराजित होकर बादशाह के पास लौटना पड़ा। अबुल्फ़ज़ल उनके पराजय का हाल छिपाकर इतना ही लिखता है—"वे राणा के प्रदेश में गये, परन्तु उसका कुछ पता न लगने से विना आज्ञा ही लौट आये, जिसपर अकबर ने अप्रसन्न हो उनकी ड्योढ़ी बन्द कर दी, जो माफ़ी मांगने पर फिर बहाल की गई[3]"। फिर बादशाह बांसवाड़े की तरफ़ चला गया। वह ६ मास तक राणा के मुल्क में या उसके निकट रहा, परन्तु राणा ने उसकी परवाह तक न की[4]।

अकबर का गोगूंदे आना

बादशाह के मेवाड़ से चले जाने पर राणा भी पहाड़ों से उतरकर शाही थानों पर हमला करने लगा और मेवाड़ में होकर जानेवाले शाही लश्कर का आगरे का रास्ता बन्द कर दिया[5]। यह समाचार सुनकर बादशाह ने राजा भगवन्तदास (भगवानदास),

बादशाह का महाराणा पर फिर सेना भेजना

(१) अकबरनामे का एच. बेवरिजकृत अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० २६६-६७।

(२) वहीं; जि० ३, पृ० २६८-६९।

(३) वहीं; जि० ३, पृ० २७४-७५।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० २६।

(५) वही पृ० २६।

बदायूनी भी लिखता है कि मैं उस वक्त बीमारी के कारण बसावर में रह गया था और बांसवाड़े के रास्ते से लश्कर में जाना चाहता था, परन्तु अब्दुल्लाखां ने वह रास्ता बंद

कुंवर मानसिंह, बैरामख़ां के पुत्र मिर्ज़ाख़ां (खानखाना), कासिमख़ां मीरबहर तथा अन्य अफ़सरों को राणा पर भेजा[1]।

इनसे महाराणा क़ाबू में न आ सका। ये उसको पकड़ने की बहुत कोशिश करते थे, परंतु कभी उसको पकड़ न सके। एक पहाड़ पर राणा का पड़ाव सुनकर उसे घेरते तो वह दूसरे पहाड़ से निकलकर उनपर छापा मारता था। इस दौड़धूप का यह फल हुआ कि उदयपुर और गोगूंदे से शाही थाने उठ गये और मोही का थानेदार मुजाहिदबेग मारा गया[2]। एक बार महाराणा के राजपूतों ने शाही सेना पर हमला किया, जिसमें मिर्ज़ाख़ां की औरतें कुंवर अमरसिंह के द्वारा पकड़ी गईं, जिनका महाराणा ने बहिन बेटी की तरह सम्मान कर प्रतिष्ठा के साथ पीछा उन्हें अपने पति के पास पहुंचा दिया। महाराणा के इस उत्तम बर्त्ताव के कारण वह (मिर्ज़ाख़ां) उस समय से ही मेवाड़ के महाराणाओं की तरफ़ सद्भाव रखने लगा[3]।

बादशाह का शाहबाजख़ां को मेवाड़ पर भेजना

स्वतन्त्रता के प्रेमी महाराणा को नष्ट करने के लिये अकबर बारंबार भिन्न भिन्न सेनापतियों की अध्यक्षता में मेवाड़ पर तीन सैन्य भेज चुका था तथा एक बार स्वयं भी बड़ी सेना के साथ चढ़ आया था, परन्तु प्रत्येक बार असफलता ही हुई और शाही सेना को हारकर लौटना पड़ा। इस बार महाराणा को बिलकुल नष्ट करने के लिये एक बड़ी भारी सेना के साथ ता० १३ शाबान हि० स० ९८६ (वि० सं० १६३५ द्वितीय आश्विन सुदि पूर्णिमा=ई० स० १५७८ ता० १५ अक्टोबर) को बादशाह ने शाहबाज़ख़ां मीरबख़्शी के साथ कुंवर मानसिंह, राजा भगवन्तदास (भगवानदास),

---

और कठिनतापूर्ण बताकर मुझे लौटा दिया। फिर मैं सारंगपुर उज्जैन के रास्ते से दिवालपुर में जाकर बादशाह के पास उपस्थित हुआ (मुन्तख़बुत्तवारीख़; जि० २, पृ० २५०)।

(१) अबुल्फ़ज़ल; अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० ३, पृ० २७७।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० ३१।

(३) *अमरेशः खानखानादाराणां हरणं व्यधात् ॥ ३२ ॥*
सुवासिनीवत् संतोष्य प्रेषयामास ताः पुनः ।............॥ ३३ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग ४। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० ४०।

पायन्दाखां मुग़ल, सैयद कासिम, सैयद हाशिम, सैयद राजू, उलगअसद तुर्कमान, गाज़ीखां बदख़्शी, शरीफ़खां अतगह, मिर्ज़ाखां (खानखाना) और गज़रा चौहान आदि को रवाना किया[1]। उसने इस सैन्य को भी काफ़ी न समझकर सरहद की रक्षा के लिये बादशाह से और सेना मांगी, जिसपर उसने शेख इब्राहीम फ़तहपुरी को कुछ सेना देकर उसके पास सहायतार्थ भेजा[2]। शाहबाजखां कुंभलगढ़ को विजय करने का विचारकर उधर बढ़ा और राजा भगवानदास तथा कुंवर मानसिंह को, इस विचार से कि वे राजपूत होने के कारण राणा से लड़ने में सुस्ती करेंगे, उसने बादशाह के पास भेज दिया। वह शरीफ़खां, गाज़ीखां आदि को साथ लेकर शीघ्र ही आगे बढ़ा और उसने केलवाड़ा (जो कुंभलगढ़ के नीचे समान भूमि पर बसा है) ले लिया[3]। फिर मुसलमान पहाड़ पर चढ़ने लगे। कुंभलगढ़ का क़िला चित्तौड़ के समान एक अलग पहाड़ी पर स्थित नहीं, किन्तु पहाड़ की विस्तृत श्रेणी के सब से ऊंचे स्थान पर बना हुआ है, जिससे उसपर घेरा डालना सहज नहीं है। राजपूत शाही फ़ौज पर पहाड़ों की घाटियों में हमला करने लगे। एक दिन उन्होंने रात के समय छापा मारा और शाही सेना के चार हाथी किले में लाकर महाराणा को नज़र किये। शाही सेना ने नाडोल व केलवाड़ा की तरफ़ से नाकाबन्दी करके क़िले के रास्तों को घेरना शुरू किया। तब महाराणा, यह सोचकर कि इससे अब यहां रसद का आना कठिन हो जायगा और घिरकर व्यर्थ प्राण देना होगा, राव अक्षयराज के पुत्र भाण को क़िलेदार नियत कर बहुत से सैन्य के साथ क़िले से निकल गया और राणपुर में आकर ठहरा[4]। शाही सेना ने वहां रहे हुए राजपूतों पर आक्रमण किया और वे भी बड़ी वीरता से लड़े। क़िले में अकस्मात् एक बड़ी तोप के फट जाने से लड़ाई का सामान जल गया, जिसपर

(१) मुन्तख़बुत्तवारीख़ (डब्ल्यू. एच. लोए कृत अंग्रेज़ी अनुवाद जि० २, पृ० २७६)। अकबरनामा (बैवरीजकृत अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० ३, पृ० ३०७। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० ३२।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० ३२।

(३) अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० ३, पृ० ३३६–४०।

(४) वीर-विनोद; भाग २, पृ० २४७।

राजपूतों ने क़िले के किवाड़ खोल दिये और वे दिल खोलकर लड़ने लगे[1]। राव भाण सोनगरा व बहुत से नामी राजपूत क़िले के दरवाज़े व मन्दिरों पर लड़ते हुए काम आये[2]। शाहबाजख़ां ने २४ फरवरदीन (वि० सं० १६३५ वैशाख वदि १२=ई० स० १५७८ ता० ३ अप्रैल) को क़िले पर अधिकार कर लिया और गाजीख़ां बदख़्शी को क़िले में छोड़कर वह राणा के पीछे बांसवाड़े की तरफ़ रवाना हुआ। दूसरे दिन उसने दोपहर को गोगूंदे पर और आधी रात को उदयपुर पर अधिकार कर उसे लूटा[3]।

फिर वह महाराणा के पीछे पहाड़ों में फिरता रहा, परन्तु उसको जीत न सका। अन्त में उसने थककर पीछा करना छोड़ दिया और उसके एक डेरे को लूटकर, राव सुरजन (हाड़ा) के बेटे दूदा[4] को साथ ले पंजाब की ओर बादशाह के पास चला गया[5], जहां उसकी सिफ़ारिश से बादशाह ने दूदा का महाराणा की सेना में रहकर लड़ने का अपराध क्षमा किया[6]।

शाहबाजख़ां के मेवाड़ से लौट जाने पर महाराणा छप्पन की तरफ़ चला गया। वहां पर छप्पन के राठोड़ों ने सिर उठाया तो उसने चावंड के स्वामी लूणा

---

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० ३४०।

(२) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५७।

(३) अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० ३, पृ० ३४०।

(४) जब राव सुरजन हाड़ा ने बादशाही सेवा स्वीकार की, तब उसके पुत्र दूदा और भोज बादशाह के पास चले गये। दूदा वहां का बर्ताव और रंग ढंग देखकर बादशाही सेवा में रहने की अपेक्षा महाराणा की सेवा में रहना अधिक अच्छा समझकर महाराणा के पास चला आया था।

(५) महाराणा ने भामाशाह के भाई ताराचंद को कुछ सेना देकर मालवे में रामपुरे की ओर भेजा था, जिसको शाहबाजख़ां ने लौटते समय घेर लिया। ताराचंद वहां से लड़ता हुआ बसी के समीप पहुंचा, जहां घायल होकर घोड़े से गिर गया, परन्तु बसी का राव देवड़ा साईं-दास उसको उठाकर अपने क़िले में ले गया। जब शाहबाजख़ां दूसरी ओर चला गया तब महाराणा ने चावंड से कूच किया और मंदसोर आदि मालवे के शाही थानों को उठाता तथा दंड लेता हुआ वह वापस चावंड आ पहुंचा (वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५८)।

(६) अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० ३, पृ० ३५५-५६। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० ३४-३५।

महाराणा की बादशाह के विरुद्ध कार्रवाई

राठोड़ को वहां से निकालकर वहां अपना निवासस्थान नियत किया और अपने महल तथा चामुंडा माता का छोटासा मंदिर भी बनवाया, जो अबतक विद्यमान है[1]।

इन्हीं दिनों भामाशाह ने मालवे पर चढ़ाई कर वहां से २५ लाख रुपये और २०००० अशर्फ़ियां दंड में लेकर चूलिया ग्राम में महाराणा को भेट कीं। तदनन्तर जब दिवेर के शाही थाने पर आक्रमण किया गया, उस वक्त भामाशाह भी दूसरे राजपूतों के साथ लड़ने को गया था। कुंवर अमरसिंह ने वहां के मुग़ल थानेदार सुल्तानख़ां पर अपने बर्छे से ऐसा वार किया कि वह उसकी छाती को पार कर गया और वह मर गया[2]। थाने के दूसरे आदमी भी मारे गये और दिवेर की नाल पर महाराणा का क़ब्ज़ा हो गया। वहां से महाराणा कुंभलगढ़ की ओर चला, जिससे थोड़ी सी शाही फ़ौज, जो वहां पर थी, क़िले को छोड़कर भय के मारे भाग गई और कुंभलगढ़ पर उसने पीछा अधिकार कर लिया[3]।

फिर बादशाह ने मिर्ज़ाख़ां (ख़ानख़ाना) को फ़ौज देकर मालवे की ओर भेजा, जिससे भामाशाह जाकर मिला। मिर्ज़ाख़ां ने महाराणा को बादशाही सेवा में ले जाने का बहुत यत्न किया, लेकिन भामाशाह ने उसे स्वीकार न किया[4]।

कुछ दिनों बाद महाराणा ने बांसवाड़े और डूंगरपुरवालों को, जो बादशाही सेवा स्वीकार कर चुके थे, अपने अधीन करने के लिये रावत भाण (सारंग-देवोत) को फ़ौज देकर उनपर भेजा। सोम नदी पर लड़ाई हुई, जिसमें रावत भाण बहुत घायल हुआ और उसका काका रणसिंह मारा गया। चौहान हार-कर भाग गये और डूंगरपुर तथा बांसवाड़ावालों ने महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली[5]।

शाहबाज़ख़ां के पंजाब चले जाने पर महाराणा फिर पहाड़ों से निकलकर अपने प्रदेश पर अधिकार करने के लिये बांसवाड़े की तरफ़ से छप्पन के पहाड़ों

---

(१) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५८-५९।

(२) वही; भाग २, पृ० १५७-५८।

(३) वही; भाग २, पृ० १५८।

(४) वही; भाग २, पृ० १५९।

(५) वही; भाग २, पृ० १५९; और ख्यात।

शाहबाज़ख़ां का दूसरी बार मेवाड़ पर आना

में आया और शाही थानों पर हमला करना शुरू किया। बादशाह ने यह ख़बर सुनकर ता० ४ दे[1] (वि० सं० १६३५ पौष वदि १=ई० स० १५७८ ता० १५ दिसम्बर) को शाहबाज़ख़ां को गाज़ीख़ां, मुहम्मद हुसेन, शेख़ तीमूर बदख़्शी और मीरज़ादा अलीख़ां के साथ राणा को अधीन करने के लिये पंजाब से अजमेर भेजा और यह कहा कि यदि तुम उसको दमन किये विना लौट आये तो तुम्हारे सिर उड़ा दिये जायेंगे। इस सेना के साथ बड़ा ख़ज़ाना भी भेजा गया[2]।

शाहबाज़ख़ां शीघ्र ही बड़ी भारी सेना के साथ मेवाड़ में आया तो महाराणा फिर पहाड़ों में चला गया। शाहबाज़ख़ां दो तीन महीने तक तो मेवाड़ में फिरता रहा। फिर थानों में हर जगह कारगुज़ार आदमी रखकर वापस चला गया[3], क्योंकि उसको महाराणा की तलाश में दौड़धूप करने और लड़ते भिड़ते रहने के कारण कभी आराम नहीं मिलता था। शाहबाज़ख़ां के इस बार लौट जाने पर महाराणा ने यह आज्ञा प्रचलित की कि पहाड़ी प्रदेश को छोड़कर समान भूमि-वाले मेवाड़ के प्रदेश में कोई खेती न करे, जो कोई एक बिस्वा ज़मीन पर भी खेती कर मुसलमानों को हासिल देगा उसका सिर उड़ा दिया जायगा। इस आज्ञा से मेवाड़ के उस प्रदेश के किसान लोग अपनी खेती का सामान तथा अपने बालबच्चों सहित अपने देश को छोड़कर दूसरे इलाक़ों में जा बसे। शाही फ़ौज के जितने थाने मेवाड़ में नियत थे, उनकी सेना के वास्ते खाने पीने का सामान अजमेर आदि शाही इलाक़ों से पूरे इन्तज़ाम के साथ आया करता था, तिसपर भी मेवाड़ी राजपूत मौक़ा पाकर शाही फ़ौज से छेड़छाड़ किये विना नहीं रहते थे। ऊंटाले के शाही थानेदार की आज्ञा से एक किसान[4] ने अपने

(१) 'दे' इलाही सन् के दसवें महीने का नाम है।

(२) अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० ३, पृ० ३८०-८१।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० ३५। शाहबाज़ख़ां ने जाते समय कहां कहां थाने नियत किये इस विषय में अबुल्फ़ज़ल या मुंशी देवीप्रसाद ने कुछ भी नहीं लिखा है, परंतु वीर-विनोद से पाया जाता है कि उसने ऊंटाला, मोही, मदारिया, चित्तौड़, मांडल, मांडलगढ़, जहाज़पुर और मन्दसोर में बड़े मज़बूत थाने नियत किये तथा हज़ारों आदमियों के लश्कर वहां रखकर वह बादशाही सेना में लौट गया (भाग २, पृ० १६३)।

(४) कर्नल टॉड ने इस घटना का एक गड़ेरिये के साथ होना लिखा है, जो अपनी भेड़ों को ऊंटाले के पास चरा रहा था (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३८८-८९)।

खेत में सब्ज़ी बोई, जिसकी ख़बर पाते ही महाराणा ने रात के समय शाही फ़ौज में पहुंचकर उस (किसान) का सिर काट डाला। फिर लड़ता भिड़ता वह पहाड़ों में पीछा चला गया, तब से उसके डर के मारे उस प्रदेश में खेती का होना बंद हो गया[1]।

कर्नल् टॉड का कथन है कि महाराणा ने अपने पूर्वजों की नीति के अनुसार अपनी प्रजा को पहाड़ी प्रदेश में चले जाने की आज्ञा दी। मुसलमानों के साथ की लड़ाइयों में समभूमिवाले प्रदेश के उजड़ जाने से अर्वली से लगाकर पूर्वी उच्च प्रदेश (पथार) तक का सारा देश, जिसमें बनास और बेड़च नदियां बहती हैं, बिना बत्ती के चिराग़ के समान हो गया। जहां अन्न की खेती होती थी वहां घास उग आई। मुख्य मुख्य रास्तों पर कटीले बबूल खड़े हो गये और बस्तियों में शिकारी जानवर बसने लगे। इस नीति से प्रताप ने राजपूताने के इस बगीचे को विजेताओं के लिये निरुपयोगी बना दिया, जिससे मुग़लों की राजधानी तथा यूरोप के बीच का व्यापार, जो सूरत के बन्दर द्वारा होता था और जिसका मार्ग मेवाड़ के मध्य में होकर निकलता था, बन्द हो गया, क्योंकि माल लुट जाने लगा[2]।

महाराणा की दृढ़ता

राजपूताने में यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि एक दिन बादशाह ने बीकानेर के राजा रायसिंह के छोटे भाई पृथ्वीराज से, जो एक अच्छा कवि था, कहा कि राणा प्रताप अब हमें बादशाह कहने लग गया है और हमारी अधीनता स्वीकार करने पर उतारू हो गया है। इसपर उसने निवेदन किया कि यह ख़बर झूठी है। बादशाह ने कहा कि तुम सही ख़बर मंगवाकर अर्ज़ करो। तब पृथ्वीराज ने नीचे लिखे हुए दो दोहे बनाकर महाराणा के पास भेजे—

पातल जो पतसाह, बोलै मुख हूंतां बयण।
मिहर पछम दिस मांह, ऊगे कासप राव उत ॥ १ ॥
पटकूं मूंछां पाण, के पटकूं निज तन करद।
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक[3] ॥ २ ॥

(१) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५६।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३८८-८९।

(३) मलसीसर ठाकुर भूरसिंह शेखावत; महाराणायशप्रकाश; पृ० ८७।

आशय—महाराणा प्रतापसिंह यदि अकबर को अपने मुख से बादशाह कहें तो कश्यप का पुत्र (सूर्य) पश्चिम में उग जावे अर्थात् जैसे सूर्य का पश्चिम में उदय होना सर्वथा असंभव है वैसे ही आप (महाराणा) के मुख से बादशाह शब्द का निकलना भी असंभव है ॥ १ ॥ हे दीवाण (महाराणा) ! मैं अपनी मूंछों पर ताव दूं अथवा अपनी तलवार का अपने ही शरीर पर प्रहार करूं, इन दो में से एक बात लिख दीजिये ॥ २ ॥

इन दोहों का उत्तर महाराणा ने इस प्रकार दिया—

तुरक कहासी मुख पतौ, इण तन सूं इकलिंग ।
ऊगै जांही ऊगसी, प्राची बीच पतंग ॥ १ ॥
खुसी हूंत पीथल कमध, पटको मूंछां पाण ।
पछटण है जेतै पतौ, कलमाँ सिर केवाण ॥ २ ॥
सांग मूंड सहसी सको, समजस जहर सवाद ।
भड़ पीथल जीतो भलां, बैण तुरक सूं बाद[1] ॥ ३ ॥

आशय—(भगवान) 'एकलिंगजी' इस शरीर से (प्रतापसिंह के मुख से) तो बादशाह को तुर्क ही कहलावेंगे और सूर्य का उदय जहां होता है वहां ही पूर्व दिशा में होता रहेगा ॥ १ ॥ हे वीर राठोड़ पृथ्वीराज ! जबतक प्रतापसिंह की तलवार यवनों के सिर पर है तब तक आप अपनी मूंछों पर खुशी से ताव देते रहिये ॥ २ ॥ (राणा प्रतापसिंह) सिर पर सांग का प्रहार सहेगा, क्योंकि अपने बराबरवाले का यश ज़हर के समान कटु होता है। हे वीर पृथ्वीराज ! तुर्क (बादशाह) के साथ के वचनरूपी विवाद में आप भलीभांति विजयी हों ॥ ३ ॥

यह उत्तर पाकर पृथ्वीराज बहुत ही प्रसन्न हुआ और महाराणा की प्रशंसा में उसका उत्साह बढ़ाने के लिये उसने नीचे लिखा हुआ गीत लिख भेजा—

नर जेथ निमाणा निलजी नारी,
अकबर गाहक बट अवट ॥

---

(१) मूरसिंह शेखावत; महाराणायशप्रकाश; पृ० ८८ ।

ऊपर लिखे हुए पांचों दोहे राजपूताने में बहुत प्रसिद्ध होने के कारण अनेक राजपूतों के मुख से सुनने में आते हैं ।

चोहटै तिण जायर चीतोड़ो,
बेचै किम रजपूत बट ॥ १ ॥
रोज़ायतां तणैं नवरोजै,
जेथ मसाणा जणो जण ॥
हींदू नाथ दिलीचे हाटे,
पतो न खरचै खत्रीपण ॥ २ ॥
परपंच लाज दीठ नह व्यापण,
खोटो लाभ अलाभ खरो ॥
रज बेचबा न आवै राणो,
हाटे मीर हमीर हरो ॥ ३ ॥
पेखे आपतणा पुरसोतम,
रह अणियाल तणैं बळ राण ॥
खत्र बेचिया अनेक खत्रियां,
खत्रवट थिर राखी खुम्माण ॥ ४ ॥
जासी हाट बात रहसी जग,
अकबर ठग जासी एकार ॥
है राख्यो खत्री ध्रम राणैं,
सारा ले बरतो संसार[1] ॥ ५ ॥

आशय—जहां पर मानहीन पुरुष और निर्लज्ज स्त्रियां हैं और जैसा चाहिये वैसा ग्राहक अकबर है, उस बाज़ार में जाकर चित्तौड़ का स्वामी (प्रतापसिंह) रजपूती को कैसे बचेगा ? ॥ १ ॥ मुसलमानों के नौरोज़[2] में प्रत्येक व्यक्ति लुट

(१) भूरसिंह शेखावत; महाराणायशप्रकाश; पृ० ६४–६५ ।

(२) नौरोज़ का उत्सव ईरानी प्रथा के अनुसार प्रत्येक नये (सौर) वर्ष के प्रारंभ के दिन (ता० १ फ़रवरदीन) से १६ दिन तक मनाया जाता था। यह उत्सव अकबर ने ही अपने राज्य में प्रचलित किया था। दीवाने आम में एक ६० क़दम लम्बा और ४० क़दम चौड़ा शामियाना खड़ा किया जाता था, जिसके दरवाज़े आदि सोने और चांदी के ज़रदोज़ी वस्त्रों, सुनहरी कलशों, मोतियों की मालाओं, पुर्तगाली बनातों, रूमी मख़मलों, ज़री के कामवाले बनारसी वस्त्रों और कमख़ाबों से सजाये जाते थे। काश्मीरी शालें लटकाई जाती थीं। फ़र्श पर

गया, परन्तु हिन्दुओं का पति प्रतापसिंह दिल्ली के उस बाज़ार में अपने क्षत्रियपन को नहीं बेचता ॥ २ ॥ हम्मीर का वंशधर (राणा प्रतापसिंह) प्रपञ्ची अकबर की लज्जाजनक दृष्टि को अपने ऊपर नहीं पड़ने देता और पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा तथा अलाभ को अच्छा समझकर बादशाही दुकान पर रजपूती बेचने के लिये कदापि नहीं आता ॥ ३ ॥ अपने पुरखाओं के उत्तम कर्त्तव्य देखते हुए आप (महाराणा) ने भाले के बल से क्षत्रिय धर्म को अचल रक्खा,

---

ईरान और तुर्किस्तान की क़ालीनें बिछाई जाती थीं। यूरोप और चीन के रंगबिरंगे परदे लटकाये जाते थे। भीतर सुन्दर सुन्दर और अद्भुत चित्र, विलक्षण दर्पण, शीशे और बिल्लौर के कमल, कन्दीलें, झाड़, फ़ानूस, कुमकुमे (रंगबिरंगे कांच के छोटे बड़े गोले) लटकाये जाते थे। शामियाने के आस पास आसमानी ख़ेमे भी ताने जाते थे। शाही शामियाने के चारों ओर ४ एकड़ के घेरे में अमीर उमरा अपने अपने डेरों को बड़ी शानोशौकत व ठाठबाट से सजाते थे। ख़ानख़ाना व ख़ानआज़म के डेरों में भारत तथा विदेशों के अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र आदि का संग्रह रहता था। घड़ियां और घण्टे बजते थे, ज्योतिष-सम्बन्धी यन्त्र, गोल आकाशस्थ सितारों आदि के नक़शे और उनकी प्रत्यक्ष मूर्त्तियों में ग्रह और भिन्न भिन्न सौर जगत् चक्कर मारते थे। भार उठानेवाली कलें अपना काम करती थीं। तरह तरह के बाजे बजते थे। शाही मंडप में सोने और चांदी के कामवाली रत्नजटित गद्देवाली कुर्सियां रखी जाती थीं। बादशाह स्नान कर राजपूती ढंग की खिड़कीदार पगड़ी बांधकर चलता और ब्राह्मणों से टीका लगवाकर अपनी कुर्सी पर जा बैठता था। इन दिनों वह हरएक अमीर के डेरे में दर्शन देने जाता और अमीर अपनी अपनी शक्ति के अनुसार उसे भेट देते, जिसके बदले में वह उन्हें पदवी और जागीरें देता था। वह उस दिन तुलादान भी करता था। इस उत्सव में मीनाबाज़ार भी लगाया जाता था, जहां सब अमीर उमरावों की स्त्रियां आकर दुकानें लगाती थीं और सौदा भी प्रायः ज़नाना रक्खा जाता था। उसमें सभी प्रकार के सामान रेशम, रूमाल, टोपियां, मुर्ग़ी, अण्डे, घोड़े, क़ालीन, मेवे, अनाज, भूसा, बढ़ई और लोहारी के काम, तेल और मिट्टी के बरतन आदि बिकने के लिये आते थे। सब दुकानों पर स्त्रियां ही बैठती थीं। ख़्वाजासरा (हींजड़े बनाये हुए पुरुष), कलमाकनियां (पहरा देनेवाली स्त्रियां, जो विवाह नहीं कर सकती थीं) और उर्दूबेगानियां (बाज़ार से ख़रीदी हुई स्त्रियां, जो लड़ाई के वक़्त अमीरों के लिये बेगमों का काम देती थीं) अस्त्र-शस्त्र धारणकर प्रबंध के लिये घोड़े दौड़ाती थीं। पहरेदार भी स्त्रियां ही होती थीं। मालियों के स्थान पर मालिनें ही बाग़ सजाती थीं। बादशाह तथा उसकी बेगमें इस बाज़ार में सामान ख़रीदने के लिये आती थीं। बेगमें, बहिनें और कन्यायें बादशाह के पास बैठती थीं। अमीरों की स्त्रियां आकर सलाम करतीं, नज़रें देतीं और अपने बच्चों को उसके सामने उपस्थित करती थीं। इसके साथ ही दिन रात नाच गान होता रहता था (अकबरी दरबार; भाग १, पृ० २८६–८८। बेणीप्रसाद; हिस्ट्री ऑफ़ जहांगीर; पृ० ९७–९८)।

जब कि अन्य क्षत्रियों ने अपने क्षत्रियत्व को बेच डाला ॥ ४ ॥ अकबररूपी ठग भी एक दिन इस संसार से चला जायगा और उसकी यह हाट भी उठ जायगी, परंतु संसार में यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रियों के धर्म में रहकर उस धर्म को केवल राणा प्रतापसिंह ने ही निभाया। अब पृथ्वी भर में सबको उचित है कि उस क्षत्रियत्व को अपने बर्ताव में लावें अर्थात् राणा प्रतापसिंह की भांति आपत्ति भोग कर भी पुरुषार्थ से धर्म की रक्षा करें ॥ ५ ॥

कर्नल टॉड ने पहाड़ों में रहते समय की महाराणा प्रतापसिंह की आपत्तियों का वर्णन करते हुए लिखा है—"कुछ ऐसे अवसर आये कि अपनी अपेक्षा भी अधिक प्रिय व्यक्तियों की ज़रूरतों ने उसे कुछ विचलित कर दिया। उसकी महाराणी पहाड़ों की चट्टानों या गुफ़ाओं में भी सुरक्षित नहीं थी और ऐश आराम में पलने के योग्य उसके बच्चे भोजन के लिये उसके चारों तरफ़ रोते रहते थे, क्योंकि अत्याचारी मुग़ल उनका इतना पीछा करते थे कि राणा को बना बनाया भोजन पांचवार छोड़ना पड़ा। एक समय उसकी राणी तथा कुंवर (अमरसिंह) की स्त्री ने जंगली अन्न के आटे की रोटियां बनाईं और प्रत्येक के भाग में एक एक रोटी आई। आधी रोटी उस समय के लिये और आधी दूसरे समय के लिये। प्रताप उस समय अपने दुर्भाग्य पर विचार करने में डूबा हुआ था कि उसकी लड़की के हृदय-वेधी चीत्कार ने उसे चौंका दिया। बात यह हुई कि एक जंगली बिल्ली लड़की की रक्खी हुई रोटी उठा ले गई, जिससे मारे भूख के वह चिल्लाने लगी। उस समय प्रतापसिंह का धैर्य विचलित हो गया। अपने पुत्रों और सम्बन्धियों को प्रसन्नतापूर्वक रणक्षेत्र में अपने साथ रहते हुए देखकर वह यही कहा करता था कि राजपूतों का जन्म इसलिये ही होता है, परन्तु भोजन के लिये अपने बच्चों की चिल्लाहट के कारण उसकी दृढ़ता स्थिर न रह सकी। ऐसी स्थिति में राज्य करना उसने शाप के तुल्य समझा और अकबर को अपनी कठिनाइयां कम करने के लिये लिखा"[1]।

महाराणा की पहाड़ों में स्थिति

यह सम्पूर्ण कथन अतिशयोक्तिपूर्ण कपोलकल्पना मात्र है, क्योंकि महाराणा को कभी ऐसी कोई आपत्ति सहनी नहीं पड़ी थी। उत्तर में कुंभलगढ़ से लगाकर दक्षिण में ऋषभदेव से परे तक अनुमान ६० मील लम्बा और पूर्व में

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३९८।

देवारी से लगाकर पश्चिम में सिरोही की सीमा तक क़रीब ८० मील चौड़ा पहाड़ी प्रदेश, जो एक के पीछे एक पर्वतश्रेणियों से भरा हुआ है, महाराणा के अधिकार में था। महाराणा तथा सरदारों के ज़नाने एवं बालबच्चे आदि इसी सुरक्षित प्रदेश में रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर उनके लिये अन्न आदि लाने को गोड़वाड़, सिरोही, ईडर और मालवे की तरफ़ के मार्ग खुले हुए थे। उक्त पहाड़ी प्रदेश में जल तथा फलवाले वृक्षों की बहुतायत होने के अतिरिक्त बीच बीच में कई जगह समान भूमि आ गई है और वहां सैकड़ों गांव आबाद हैं। ऐसे ही वहां कई पहाड़ी क़िले तथा गढ़ भी बने हुए हैं और पहाड़ियों पर हज़ारों भील बसते हैं। वहां मक्का, चने, चावल आदि अन्न अधिकता से उत्पन्न होते हैं और गायें, भैंसें आदि जानवरों की बहुतायत के कारण घी, दूध आदि पदार्थ आसानी से पर्याप्त मिल सकते हैं। ऐसे ही छप्पन, तथा बानसी से लगाकर धर्यावद के परे तक का सारा पहाड़ी प्रदेश भी उस(महाराणा)के अधिकार में था। शाही सेना से केवल मेवाड़ का उत्तर पूर्वी प्रदेश ही घिरा हुआ था। इतने बड़े पहाड़ी प्रदेश को घेरने के लिये लाखों की संख्या में सेना चाहिये। ऐसे देश का सहारा होने से ही महाराणा अपनी स्वतन्त्रता को स्थिर रख सका और मुसलमानों की ऊपर लिखी हुई चढ़ाइयां निष्फल ही हुईं। वह अपने सरदारों सहित विस्तृत पहाड़ी प्रदेश में निडर रहता था और उसके स्वामिभक्त एवं वीर प्रकृति के हज़ारों भील लोग, जो बन्दरों की तरह पहाड़ लांघने में कुशल होते हैं, शत्रु-सैन्य के हलचल की ४०-५० मील दूर तक की ख़बरों को ७—८ घंटों में उसके पास पहुंचा देते थे, जिससे वह शत्रु पर कहां हमला करना ठीक होगा, यह सोचकर अपने राजपूतों सहित पहाड़ों की ओट में घात लगाये रहा करता और मौक़ा पाते ही उसपर टूट पड़ता था। इसी से अकबर की सेना ने पहाड़ों में दूर तक प्रवेश करने का एक बार भी साहस न किया। भील लोग महाराणा की भिन्न भिन्न प्रकार की सेवा करने के अतिरिक्त मौक़ा पड़ने पर शाही सेना की रसद को भी लूट लिया करते और महाराणा तथा सरदारों के ज़नानों की रक्षा भी किया करते थे। इसी से शाहबाज़खां एक बार भी अधिक दिन तक मेवाड़ में न टिक सका और ख़ास ख़ास जगह बड़ी सेना के साथ थाने बिठाकर लौट गया। महाराणा इन थानों पर बराबर हमला कर उनको उठाता रहा। कर्नल् टॉड ने महाराणा की आपत्ति का जैसा चित्र खींचा है

वैसा ही हुआ होता, तो अबुल्फ़ज़ल जैसा लेखक, जो पग पग पर बादशाह की खुशामद किया करता है और ज़रा ज़रासी बात को बढ़ा बढ़ा कर लिखता है, इस बात को राई का पर्वत बनाकर न मालूम कितना ही लिख मारता, परंतु उसके अकबरनामे तथा अन्य फ़ारसी तवारीख़ों में आपत्तियों के मारे महाराणा के अधीनता स्वीकार करने के लिये अकबर को पत्र लिखने का उल्लेख कहीं नहीं है। अलबत्ता यह बात निश्चित है कि उदयपुर या गोगूंदे के राजमहलों में रहने का सा आराम वहां नहीं था और शत्रु से लड़ने की चिंता सदा लगी ही रहती थी। ऐसी भी प्रसिद्धि है कि एक दिन कुंवर अमरसिंह की स्त्री ने अपने पति से पूछा कि इन आपत्तियों का अंत कब होगा। इसपर उसने कहा कि न जाने कब होगा। महाराणा ने एक बड़े बादशाह से वैर बांधा है और अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये राजमहलों के सुख को छोड़कर पहाड़ों में रहने की ही प्रतिज्ञा[1] की है। जब यह बात महाराणा के कानों तक पहुंची तब उसने अपने

---

(१) कर्नल टॉड ने लिखा है—"चित्तौड़ छूट जाने के कारण राणा प्रताप ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक चित्तौड़ पीछा प्राप्त न होगा तब तक मैं और मेरे वंशज सोने चांदी के पात्रों को छोड़कर पत्तल पर भोजन करेंगे, घास के बिस्तर पर सोयेंगे, दाढ़ी बढ़ने देंगे और नक्कारा सैन्य के पीछे बजावेंगे। मेवाड़ की अवनति के चिह्न रूप अबतक नक्कारा सेना या सवारी में सबसे पीछे रहता है, दाढ़ी कटवाई नहीं जाती, प्रताप के वंशज सोने चांदी के थालों में भोजन करते हैं तो भी उनके नीचे पत्तल और बिस्तर के नीचे घास रखी जाती है" (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३८७)।

ये सब बातें कल्पित हैं। उदयपुर के महाराणाओं के भोजन की रीति तो यह है कि प्राचीन शैली के अनुसार फ़र्श को धोकर उसपर धुला हुआ शुद्ध श्वेत वस्त्र बिछाया जाता है, जिसपर बाजोट (छः पायोंवाली षट्कोण या चार पायोंवाली चतुष्कोण चौकी, जो अनुमान ६ इंच ऊंची होती है) रखा जाता है। उसपर पत्तल और पत्तल पर थाल रखा जाता है। यह पत्तल कर्नल् टॉड के कथनानुसार चित्तोड़ की उक्त प्रतिज्ञा के निमित्त नहीं, किन्तु प्राचीन भोजन शैली का चिह्नमात्र है। प्राचीन काल में भोजन पत्तलों पर ही होता था। उनके बिस्तर के नीचे घास कभी नहीं रखी जाती और नक्कारा तो महाराणा उदयसिंह से चित्तौड़ का क़िला छूटा, तब से ही सैन्य के पीछे रहने लगा और अब तक रहता है।

राजपूतों में पहले आजकल के जैसी ऊपर की तरफ़ मुड़ी हुई दाढ़ी रखने की रीति ही नहीं थी। राजपूताने के कई मन्दिरों में वि० सं० १४०० के आसपास तक की राजपूत राजाओं या सरदारों की कई खड़ी मूर्त्तियां मिली हैं, जिनके या तो दाढ़ी नहीं है और है तो नीचे की तरफ़ लटकती हुई और अन्त में चपटी, जैसी कि मिस्र में मिलनेवाली मूर्त्तियों के

सरदारों से कहा—'मुझे विश्वास है कि कुंवर अमरसिंह जो आराम चाहता है, मेरे पीछे अपनी स्वतन्त्रता के लिये लड़ना पसंद न कर तुर्कों की दी हुई ख़िलअत पहिन, उनके फ़र्मान अदब के साथ ग्रहणकर, उनकी तावेदारी स्वीकार करेगा और उनके दरबार में सिर झुकाकर हमारे बेदाग़ वंश को दाग़ लगावेगा'। इसपर अमरसिंह बहुत ही लज्जित हुआ, तो भी अपने पिता के सामने कुछ कह न सका परन्तु दिल में यह ठान ली कि मैं भी बादशाह के आगे कभी सिर न झुकाऊंगा'[1]।

होती है। ऐसी दाढ़ीवाली दो मूर्त्तियां राजपूताना म्यूज़ियम (अजमेर) में सुरक्षित हैं, जिनमें से एक पर वि० सं० १३८६ का लेख है और दूसरी विना लेख की। ये दाढ़ियां पंचकेश के चिह्न रूप हैं। ऊपर की तरफ़ मुड़ी हुई दाढ़ी रखने की रीति पहले राजपूतों में बिलकुल न थी। वि० सं० १६०० के आसपास और उसके पीछे बहुधा तमाम राजपूत गलमुच्छे ही रखते थे, जैसे कि नाथद्वारा आदि के वैष्णव मन्दिरों के सेवक लोग अबतक रखते हैं। मुसलमानों में नीचे की ओर बढ़ी हुई दाढ़ी रखने की रीति थी, जैसा कि बाबर और हुमायूं के चित्रों से पाया जाता है। अकबर ने दाढ़ी बिलकुल मुंडवा दी और वह गलमुच्छे भी नहीं रखवाता था। जहांगीर राजपूतों की तरह गलमुच्छे और शाहजहां गलमुच्छों के साथ ख़सख़सी दाढ़ी रखता था। औरंगज़ेब के मुसलमान शैली की नीचे को बढ़ी हुई दाढ़ी थी। बहादुरशाह (प्रथम) के ख़सख़सी से कुछ बड़ी दाढ़ी थी। फ़र्रुख़सियर की दाढ़ी राजपूतों की वर्तमान दाढ़ी से कुछ मिलती हुई थी। पीछे से राजपूतों ने भी उसकी दाढ़ी का अनुकरण किया।

उदयपुर के महाराणाओं में पहले पहल महाराणा संग्रामसिंह दूसरे (वि० सं० १७६७) ने गलमुच्छों के साथ ख़सख़सी से कुछ बड़ी दाढ़ी रखवाई। जगतसिंह (दूसरे) और प्रतापसिंह (दूसरे) ने उसका अनुकरण कर बिलकुल ख़सख़सी दाढ़ी रखवाई। फिर अरिसिंह (दूसरे) से शंभूसिंह तक वर्तमान शैली की दाढ़ी रही। सज्जनसिंह ने पहले गलमुच्छे, फिर बहुत बड़ी दाढ़ी रखवाई और अंत में उसे कटवाकर छोटी रखवाई। वर्तमान महाराणा साहब को ऐसी (बड़ी) दाढ़ी का विशेष आग्रह है।

जोधपुर के महाराजा भीमसिंह ने (वि० सं० १८४६) पहले पहल एक प्रकार की दाढ़ी रखवाई। मानसिंह ने भी उसी का अनुकरण किया। तख़्तसिंह ने वर्तमान शैली की दाढ़ी रखवाना शुरू किया, जो जसवन्तसिंह तक रही।

जयपुर में महाराजा जगतसिंह (वि० सं० १८६०) ने सर्व प्रथम एक प्रकार की (ठोढ़ी पर से कटी हुई) और रामसिंह तथा माधोसिंह ने वर्तमान शैली की दाढ़ी रखवाई।

राजपूतों की वर्तमान शैली की दाढ़ी कुछ परिवर्तन के साथ फ़र्रुख़सियर की दाढ़ी का अनुकरण मात्र है। महाराणा प्रतापसिंह ने कभी दाढ़ी नहीं रखी, जैसा कि उसके चित्रों से पाया जाता है।

(१) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १६४।

बादशाह ने शाहबाज़खां आदि को महाराणा पर दूसरी बार भेजते समय कहा था कि यदि तुम महाराणा को अधीन न करोगे तो तुम्हारे सिर उड़ा दिये जायेंगे। इसपर भी वह बादशाह की इस आज्ञा का पालन न कर सका जिससे वह उसपर अप्रसन्न रहने लगा। इसी से उसने उस(शाहबाज़खां)की जगह दस्तमखां को अजमेर का सूबेदार नियत किया, परन्तु वह ४ मास में ही कछवाहों[1] के हाथ से मारा गया, जिससे उसकी जगह मिर्ज़ाखां (खानखाना) नियत हुआ। जब महाराणा ने शेरपुरे के थाने पर हमला किया, तब मिर्ज़ाखां ने अपने पर किये हुए पहले के एहसान का स्मरण कर उससे छेड़छाड़ न की, जिससे वह (महाराणा) आगे बढ़ने लगा। बादशाह के फ़तहपुर पहुंचने पर मिर्ज़ाखां वि० सं० १६३८ माघ सुदि ६ (ई० स० १५८२ ता० २६ जनवरी) को दरबार में उपस्थित हुआ। उस समय बख़्शियों ने उस(मिर्ज़ाखां)को शाहबाज़खां से ऊपर खड़ा किया, जिसको उस(शाहबाज़खां)ने अपना अपमान समझा और वह आज्ञा भंग करने को उद्यत हुआ। इसपर बादशाह ने क्रुद्ध होकर उसे रायसल दरबारी के पहरे में रखवा दिया[2]।

शाहबाज़खां पर बादशाह की नाराजगी

वि० सं० १६४० श्रावण शुक्ला १२ (ई० स० १५८३ ता० २१ जुलाई) को महाराणा प्रतापसिंह के कुंवर अमरसिंह के पुत्र कर्णसिंह का जन्म हुआ, जिसकी बड़ी खुशी मनाई गई।

कर्णसिंह का जन्म

फिर महाराणा अपना मुल्क पीछा लेने लगा, जिससे हर एक थाने पर लड़ाई शुरू हुई और रास्ते बंद हो गये[3]। इस बात की खबर मिलने पर बादशाह

(१) बलभद्र शेखावत का बेटा अचला और राजा भारमल के भतीजे मोहनदास, सूरदास और तिलोकसी पंजाब से बादशाह की आज्ञा के विना ही लूनी (?) चले गये और वहां बादशाह के विरुद्ध उपद्रव मचाने लगे, जिससे दस्तमखां उनपर भेजा गया, परन्तु वह उनके साथ की लड़ाई में घायल होकर शेरपुरे में मर गया (अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० ४७८-७९)।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; प्र० च०; पृ० ३९-४०।

(३) वही; पृ० ४१।

जगन्नाथ कछवाहे का मेवाड़ पर आना

ने ता० २४ आज़र इलाही सन् २६ (वि० सं० १६४१ मार्गशीर्ष सुदि १४=ई० स० १५८४ ता० ६ दिसंबर) को जगन्नाथ कछवाहे को अच्छी तरह हिदायत कर बड़े सैन्य के साथ मेवाड़ पर भेजा और मिरज़ा जाफ़रबेग को बख़्शी बनाकर उसके साथ कर दिया[१]। जगन्नाथ ने जाकर मांडलगढ़, मोही और मदारिया आदि स्थानों पर शाही थाने नियत किये[२]। कुछ समय पीछे सैय्यद राजू को सैन्य-सहित मांडलगढ़ में छोड़कर वह राणा के निवासस्थान की तरफ़ चला, परंतु राणा ने दूसरी तरफ़ से निकलकर शाही अधिकार में आये हुए प्रदेश पर आक्रमण किया, जिसपर सैय्यद राजू राणा से लड़ने को बढ़ा, परंतु वह (राणा) चित्तौड़ की तरफ़ चला गया, जिससे सैय्यद भी अपने स्थान को लौट गया। इस समय यद्यपि शाही सेना की विजय न हुई तो भी उधर के लोगों को शान्ति मिल गई। जगन्नाथ भी राणा के निवासस्थान पर हमला कर सैय्यद राजू के पास लौट आया[३]।

जगन्नाथ क़रीब दो वर्ष मेवाड़ में भटकता रहा। एक समय वह महाराणा के बिल्कुल निकट पहुंच भी गया था, परंतु कुछ कर न सका। अन्त में निराश होकर वि० सं० १६४३ (ई० स० १५८६) में वह कश्मीर को चला गया[४]।

इस प्रकार बादशाह ने भिन्न भिन्न अफसरों की अध्यक्षता में महाराणा को अधीन करने या मार डालने के विचार से कई बार मेवाड़ पर सेनाएं भेजीं

महाराणा की विजय

और एक बार खुद भी चढ़ा, परंतु सफलता न हुई। फिर महाराणा के देहान्त तक अर्थात् ११ वर्ष तक कोई चढ़ाई नहीं हुई, क्योंकि बादशाह को पंजाब की तरफ लड़ाइयों में लगा रहना पड़ा था। महाराणा ने एक ही वर्ष अर्थात् वि० सं० १६४३ (ई० स० १५८६) में चित्तौड़गढ़ और मांडलगढ़ को छोड़कर सारे मेवाड़ को पीछा अपने अधीन कर लिया[५]। फिर उसने मानसिंह और जगन्नाथ कछवाहे की चढ़ाइयों का

---

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० ६६१।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० १५६।

(३) अकबरनामा (अंग्रेज़ी); जि० ३, पृ० ६६१।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; प्र० च०; पृ० ४२।

(५) वही; पृ० ४४। वीर-विनोद; भाग २, पृ० १६४।

बदला लेने के लिये आंबेर के इलाक़े पर हमला कर उसके धनाढ्य नगर मालपुरे को लूटकर नष्ट भ्रष्ट कर दिया[१]। महाराणा की शेष आयु सुख से व्यतीत हुई। उसने अपने उजड़े हुए मुल्क को आबाद किया, उदयपुर नगर की, जो शत्रु की चढ़ाइयों से बसते बसते अधूरा रह गया था, आबादी बढ़ाई; अपने सरदारों की, जो लड़ाइयों के समय अपने साथ रहे थे, प्रतिष्ठा और पद में वृद्धि की तथा उनको बड़ी बड़ी जागीरें दीं[२]।

सगर का बादशाही सेवा में जाना

महाराणा ने कुंवर अमरसिंह की पुत्री का सम्बन्ध सिरोही के राव सुरताण के साथ करना चाहा तो सगर ने अर्ज़ किया कि अपना भाई जगमाल सुरताण के साथ की लड़ाई में मारा गया है और आप अपनी पोती का सम्बन्ध उससे करना चाहते हैं, यह दुःख की बात है। आपको तो उससे अपने भाई का वैर लेना चाहिये। महाराणा ने जगमाल के बादशाही सेवा स्वीकार करने के कारण सगर के कथन पर कुछ ध्यान न दिया, जिससे वह रुष्ट हो गया और उसने निवेदन किया कि मुझे मेवाड़ से चले जाने की आज्ञा दीजिये। इसपर महाराणा ने कहा कि यदि तुम दिल्ली चले जाओगे तो हमारे घराने की प्रतिष्ठा के कारण तुम्हें वहां आश्रय तो मिल ही जायगा, परंतु तुम्हारा मेवाड़ छोड़कर बाहर जाना तो तभी सार्थक समझा जायगा जब तुम अपने ही बाहुबल से नामवरी हासिल कर सको। यह सुनकर सगर चुपचाप वहां से चलकर मानसिंह कछवाहे के पास चला गया। उसने कहा कि यदि तुम अपना उदय चाहते हो तो बादशाही सेवा स्वीकार कर लो। उसके विना कुछ भी नहीं हो सकता। सगर के यह बात स्वीकार करलेने पर वह उसको बादशाह के पास ले गया। बादशाह ने उसका हाल सुनकर उससे कहा कि हम तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर देंगे[३]। फिर उसने सगर को राणा की उपाधि देकर अपनी सेवा में रख लिया[४], क्योंकि अपनी अधीनता स्वीकार न करने के कारण वह महाराणा को बाग़ी समझता था।

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४०३। मुंशी देवीप्रसाद; प्र० च०; पृ० ४४।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; प्र० च०; पृ० ४४।

(३) वीर-विनोद; भाग २, पृ० २१६–२०।

(४) तुज़ुके जहांगीरी (अलेक्ज़ेण्डर राजर्स कृत अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० १, पृ० १६-१७।

महाराणा प्रतापसिंह के समय के नीचे लिखे हुए शिलालेख और दानपत्र[1] देखने में आये—

महाराणा के समय के शिलालेख आदि

१—वि० सं० १६३० ज्येष्ठ सुदि ५ सोमवार का शिलालेख। इसमें महाराणा प्रतापसिंह के किसी ब्राह्मण को भूमिदान करने का उल्लेख है[2]।

२—वि० सं० १६३४ मार्गशीर्ष वदि ३ का दानपत्र। इसका आशय यह है कि महाराजाधिराज महाराणा प्रतापसिंह ने ओडा गांव (मेवाड़ में) पुरोहित राम[3] भगवान काशी को पुण्यार्थ दिया। यह गांव पहले महाराणा उदयसिंह ने दान किया था, परन्तु गोगूंदे की लड़ाई के दिनों उसका ताम्रपत्र खो गया, जिससे यह नया कर दिया गया। इसकी आज्ञा भामाशाह के द्वारा पहुंची और पंचोली जेता ने इसे लिखा।

३—वि० सं० १६३६ फाल्गुन सुदि ५ का दानपत्र, जिसका आशय यह है—'महाराजाधिराज महाराणा प्रतापसिंह ने चारण कान्हा को मीरघेसर (मृगेश्वर)[4] गांव भामाशाह की उपस्थिति में दिया[5]'।

कर्नल टॉड ने लिखा है—"शत्रु के प्रवाह को रोकने में असमर्थ होने के कारण उस (प्रताप) ने अपने चरित्र के अनुकूल एक प्रस्ताव किया और तदनुसार

(१) ब्राह्मणों, चारणों, भाटों, साधुओं, मन्दिरों और मठों आदि को जो गांव आदि सदा के लिये पुण्यार्थ दिये जाते थे, उनकी सनद ताम्रपत्र पर खुदवाई जाती थी और किसी की सेवा पर प्रसन्न होकर जो गांव आदि दिये जाते थे, उनकी सनद (पट्टा) कागज़ पर लिखी जाती थी।

(२) यह शिलालेख उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित है।

(३) राम (सनाढ्य ब्राह्मण) कोठारिया के चौहानों का पुरोहित था। बणवीर के समय उदयसिंह को कुंभलगढ़ में गद्दी पर बिठलानेवाले सरदारों में अग्रणी कोठारिया का रावत खान था। उसपर पूर्ण विश्वास होने के कारण महाराणा ने अपने भरोसे के सेवक उसी से लिये थे, जिनमें पुरोहित राम भी था। उसी समय से राम के वंशज उदयपुर में रहने लगे।

(४) मृगेश्वर गांव जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ प्रदेश में है, जो पहले उदयपुर राज्य के अन्तर्गत था।

(५) यह ताम्रपत्र मुंशी देवीप्रसाद ने सरस्वती; भाग १८, संख्या २, पृ० ९५–९८ में इसके 'दन्तालपत्र' सहित प्रकाशित किया है (चारण लोग ताम्रपत्र के आशय को याद रखने के लिये उसका भावार्थ पद्यबद्ध कर लेते हैं, जिसे वे 'दन्तालपत्र' कहते हैं)।